हिन्दी
24

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

सामान्य विधि औपनिवेशिक पद्द, विनिर्दिष्ट अनुतोषविधि, न्यास-विधि टिप्पणियां

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड–24

सामान्य विधि औपनिवेशिक पद्द, विनिर्दिष्ट अनुतोषविधि, न्यास-विधि टिप्पणियां

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल, 1891 परिनिर्वाण 6 दिसंबर, 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 24

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड : 24

सामान्य विधि औपनिवेशिक पद, विनिर्दिष्ट अनुतोष विधि, न्यास–विधि टिप्पणियाँ

पहला संस्करण : 2019 (जून)
दूसरा संस्करण : 2020 (अगस्त)

ISBN : 978-93-5109-132-5

आवरण परिकल्पना : डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, पी.एच.डी.

पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

ISBN (सेट) : **978-93-5109-129-5**

रियायत के अनुसार सामान्य (पेपरबैक) 1 सेट (खंड 1–40) का मूल्य : रू 1073/-
रियायत नीति (Discount Policy) संलग्न है,

प्रकाशकः
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार
15 जनपथ, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571
जनसंपर्क अधिकारी फोन : 011–23320588
वेबसाइट :http://drambedkarwritings.gov.in
Email-Id :cwbadaf17@gmail.com

मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा.लि., W-30 ओखला, फेज–2, नई दिल्ली–110020

परामर्श सहयोग

डॉ. थावरचन्द गेहलोत

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार

एवं

अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री रामदास अठावले

सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री कृष्णपाल गुर्जर

सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री रतनलाल कटारिया

सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री आर. सुबह्मण्यम

सचिव

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार

सुश्री उपमा श्रीवास्तव

अतिरिक्त सचिव एवं सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, पी.एच.डी.

निदेशक

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

डॉ. बृजेश कुमार

संयोजक, सी.डब्ल्यू.बी.ए.

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सकंलन (अंग्रेजी)

श्री वसंत मून

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA
तथा
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
CHAIRPERSON, DR. AMBEDKAR FOUNDATION

संदेश

स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माता डॉ. अम्बेडकर, बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। डॉ. अम्बेडकर एक उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, प्रकाण्ड विद्वान, सफल राजनीतिज्ञ, कानूनविद्, अर्थशास्त्री और जनप्रिय नायक थे। वे शोषितों, महिलाओं और गरीबों के मुक्तिदाता थे। डॉ. अम्बेडकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष के प्रतीक है। डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र की वकालत की। एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण में डॉ. अम्बेडकर का योगदान अतुलनीय है।

डॉ. अम्बेडकर के लेख एवं भाषण क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के दर्शन–सूत्र है। भारतीय समाज के साथ–साथ संपूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव या छुआछूत मौजूद है, ऐसे समस्त समाज को दमन, शोषण तथा अन्याय से मुक्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर का दृष्टिकोण और जीवन–संघर्ष एक उज्ज्वल पथ प्रशस्त करता है। समतामूलक, स्वतंत्रता की गरिमा से पूर्ण, बंधुता वाले एक समाज के निर्माण के लिए डॉ. अम्बेडकर ने देश की जनता का आह्वान किया था।

डॉ. अम्बेडकर ने शोषितों, श्रमिकों, महिलाओं और युवाओं को जो महत्त्वपूर्ण संदेश दिए, वे एक प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण के लिए अनिवार्य दस्तावेज है। तत्कालीन विभिन्न विषयों पर डॉ. अम्बेडकर का चिंतन–मनन और निष्कर्ष जितना उस समय महत्त्वपूर्ण था, उससे कहीं अधिक आज प्रासंगिक हो गया है। बाबासाहेब की महत्तर मेधा के आलोक में हम अपने जीवन, समाज राष्ट्र और विश्व को प्रगति की राह पर आगे बढ़ा सकते हैं। समता, बंधुता और न्याय पर आधारित डॉ. अम्बेडकर के स्वप्न का समाज–"सबका साथ सबका विकास" की अवधारणा को स्वीकार करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्न्ता हो रही है, कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, "बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : संपूर्ण वांग्मय" के अन्य अप्रकाशित खण्ड 22 से 40 तक की पुस्तकों को, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों और देश के आम जन–मानस की मांग को देखते हुए मुद्रत किया जा रहा है।

विद्वान, पाठकगण इन खंडों के बारे में हमें अपने अमूल्य सुझाव से अवगत कराएंगे तो हिंदी में अनुदित इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

(डॉ. थावरचंद गेहलोत)

बाबासाहेब अम्बेडकर के सम्पूर्ण वाङ्मय (Complete CWBA Vols.) का विमोचन
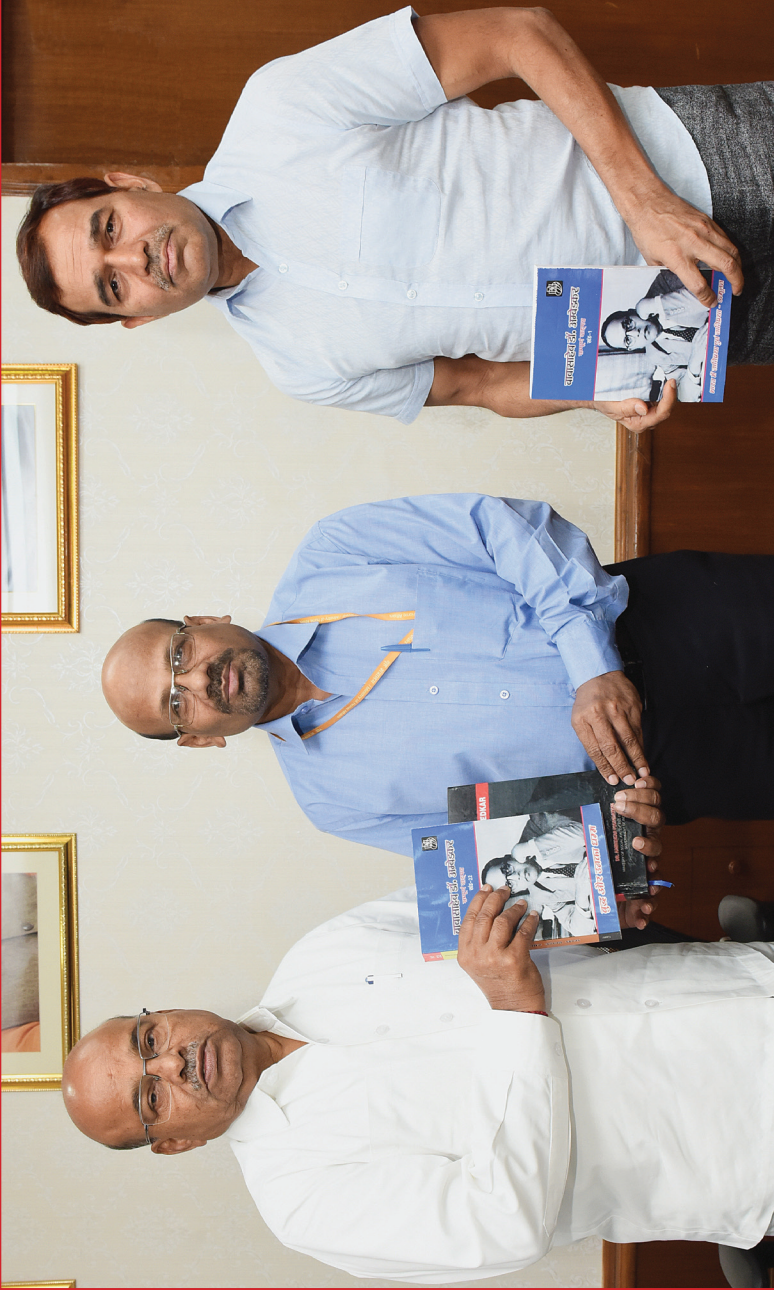
हिंदी और अंग्रेजी में CWBA / सम्पूर्ण वाङ्मय, (Complete Volumes) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संग्रहित कार्यों के संपूर्ण खण्ड, डॉ. थावरचंद गेहलोत, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, और अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा जारी किया गया है। साथ ही डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान और श्री सुरेन्द्र सिंह, सदस्य सचिव भी इस अवसर पर उपस्थित थे। हिंदी के खंड 22 से खंड 40 तक 2019 में पहली बार प्रकाशित हुए है।

उपमा श्रीवास्तव, आई.ए.एस.
अपर सचिव
UPMA SRIVASTAVA, IAS
Additional Secretary

भारत सरकार
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
Government of India
Ministry of Social Justice & Empowerment
Shastri Bhawan, New Delhi-110001
Tel. : 011-23383077 Fax : 011-23383956
E-mail : as-sje@nic.in

प्राक्कथन

भारतरत्न डॉ. बी.आर. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन के ऐसे पुरोधा रहे हैं, जिन्होंने जीवनपर्यंत समाज के आख़िरी पायदान पर संघर्षरत् व्यक्तियों की बेहतरी के लिए कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे इसलिए उनके लेखों में विषय की दार्शनिक मीमांसा प्रस्फुटित होती है। बाबासाहेब का चिंतन एवं कार्य समाज को बौद्धिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समृद्धि की ओर ले जाने वाला तो है ही, साथ ही मनुष्य को जागरूक मानवीय गरिमा की आध्यात्मिकता से सुसंस्कृत भी करता है।

बाबासाहेब का संपूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के विरुद्ध अनवरत क्रांति की शौर्य–गाथा है। वे एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें वर्ण और जाति का आधार नहीं बल्कि समता व मानवीय गरिमा सर्वोपरि हो और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की कोई गुंजाइश न हो। समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रति कृतसंकल्प बाबासाहेब का लेखन प्रबुद्ध मेधा का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

भारतीय समाज में व्याप्त विषमतावादी वर्णव्यवस्था से डॉ. अम्बेडकर कई बार टकराए। इस टकराहट से डॉ. अम्बेडकर में ऐसा जज़्बा पैदा हुआ, जिसके कारण उन्होंने समतावादी समाज की संरचना को अपने जीवन का मिशन बना लिया।

समतावादी समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता के कारण डॉ. अम्बेडकर ने विभिन्न धर्मों की सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन व तुलनात्मक चिंतन–मनन किया।

मैं प्रतिष्ठान की ओर से माननीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार का आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सद्परामर्श एवं प्रेरणा से प्रतिष्ठान के कार्यों में अपूर्व प्रगति आई है।

उपमा श्रीवास्तव

(उपमा श्रीवास्तव)
अतिरिक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार, एवं
सदस्य सचिव

प्रस्तावना

बाबासाहेब डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर एक प्रखर व्यक्तित्व, ज्ञान के प्रतीक और भारत के सुपुत्र थे। वह एक सार्वजनिक बौद्धिक, सामाजिक क्रांतिकारी और एक विशाल क्षमता संपन्न विचारक थे। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के व्यावहारिक विश्लेषण के साथ–साथ अंतःविषयक दृष्टिकोणों को अपने लेखन और भाषणों के माध्य से प्रभावित किया जो बौद्धिक विषयों और भावनाओं को अभिव्यक्त एवं आंदोलित किया। उनके लेखन में वंचित वर्ग के लोगों के लिए प्रकट न्याय और मुक्ति की गहरी भावना है। उन्होंने न केवल समाज के वंचित वर्गों की स्थितियों को सुधारने के लिए अपना जीवन समर्पित किया, बल्कि समन्वय और 'सामाजिक समरसता' पर उनके विचार राष्ट्रीय प्रयास को प्रेरित करते रहे। उम्मीद है कि ये खंड उनके विचारों को समकालीन प्रासंगिकता प्रदान कर सकते हैं और वर्तमान समय के संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर के पुनःपाठ की संभावनाओं को उपस्थित कर सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत के साथ–साथ विदेशों में भी जनता के बीच बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर की विचारधारा और संदेश के प्रचार–प्रसार हेतु स्थापित किया गया है। यह बहुत ख़ुशी की बात है कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री के नेतृत्व में प्रतिष्ठान के शासी निकाय के एक निर्णय के परिणामस्वरूप, तथा पाठकों की लोकप्रिय माँग पर डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, बाबासाहेब अम्बेडकर के हिंदी में संपूर्ण वांग्मय (Complete CWBA Volumes) का दूसरा संस्करण पुनर्मुद्रित कर रहा है।

मैं संयोजक, अनुवादकों, पुनरीक्षकों, आदि सभी सहयोगियों, एवं डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान में अपनी सहायक, कुमारी रेनू और लेखापाल, श्री नन्दू शॉ के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी निष्ठा एवं सतत् प्रयत्न से यह कार्य संपन्न किया जा सका है।

विद्वान एवं पाठकगण इन खंडों के बारे में सुझाव से डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान को उसकी वैधानिक ई–मेल आई.डी. **cwbadaf17@gmail.com** पर अवगत कराएं ताकि, अनुदित इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान हमेशा पाठकों को रियायती कीमत पर खंड उपलब्ध कराने के लिए प्रयास करता रहा है, तदनुसार आगामी संस्करण का भी रियायत नीति (Discount Policy) के साथ बिक्री जारी रखने का निर्णय लिया गया है। अतः प्रत्येक खंड के साथ प्रतिष्ठान की छूट नीति को संलग्न कर दिया गया है। आशा है कि ये खंड पाठकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने रहेंगे।

(डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी)
निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार,

15, जनपथ,
नई दिल्ली

जिस समाज में कुछ वर्गों के लोग जो कुछ चाहें वह सब कुछ कर सकें और बाकी वह सब भी न कर सकें जो उन्हें करना चाहिए, उस समाज के अपने गुण होते होंगे, लेकिन इनमें स्वतंत्रता शामिल नहीं होगी। अगर इंसानों के अनुरूप जीने की सुविधा कुछ लोगों तक ही सीमित है, तब जिस सुविधा को आमतौर पर स्वतंत्रता कहा जाता है, उसे विशेषाधिकार कहना अधिक उचित होगा।

—डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विषय सूची

रियायत नीति (Discount Policy)

कितने अपराधियों के विचारण न्यायालय एक साथ कर सकती है। अभियुक्तों का संयोजन

धारा 239

निम्नलिखित व्यक्तियों को एक साथ आरोपित एवं विचारित किया जा सकता है:-

(अ) उसी कार्य संपादन के क्रम में उसी अपराध के अभियुक्त व्यक्तिगण।

(ब) एक अपराध के अभियुक्त एवं जो व्यक्तिगण अपराध के दुष्प्रेषण के दोषी या ऐसे दोषों को करने के लिए प्रयत्नशील।

(स) एक ही प्रकार के एक अपराध से अधिक अपराधों के धारा 234 के आशय से बारह महीनों की कालावधि में उनके द्वारा संयुक्तत: किए गए अभियुक्त व्यक्तिगण।

(द) एक ही कार्य संपादन के क्रम में किए गए विभिन्न अपराधों के अभियुक्त व्यक्तिगण।

(ई) एक अपराध, जिसमें चोरी, बलात छीनना या आपराधिक दुरुपयोग सम्मिलित हैं, के अभियुक्त व्यक्तिगण।
एवं

(फ) संपत्ति, जिसका कब्ज़ा प्रथम नामित व्यक्तियों द्वारा कृत अपराध द्वारा किया जाना आरोपित है, के प्राप्त करने या रखे रखने या उसके निपटान या छिपाने में सहायता करने के अपराध के अभियुक्त व्यक्तिगण।

या

किसी ऐसे अंतिम नामित अपराध को करने के प्रयास करने या उसके उत्प्रेरण के अपराध के अभियुक्त व्यक्तिगण।

(क) भा.दं.सं. की धाराओं 411 एवं 414 के अधीन या चोरी की गई संपत्ति के संबंध में उन धाराओं में से किसी एक के जिसका कब्ज़ा एक अपराध पर हस्तांतरित किया गया अपराध के अभियुक्त व्यक्तिगण।

(ग) भा.दं.सं. के अध्याय 12 के अधीन जाली सिक्का बनाने संबंधी किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्तिगण और उसी अध्याय में उसी सिक्के से संबंधित या दुष्प्रेरण के या किसी ऐसे अपराध के करने के प्रयास के अभियुक्त व्यक्तिगण।

टिप्पणी:- विभिन्न व्यक्तियों के संयुक्त विचारण की प्रक्रिया के लिए आधार उसी लक्ष्य को प्राप्त करने में प्रारंभ से लेकर अंत तक उनकी संगति है।

यह तथ्य कि उन्होंने अंतरालों पर अनक्रमिक कार्यों द्वारा अपनी योजना कार्यान्वित की, यदि योजना की अखंडता कार्यों की श्रृंखला को एक कार्य बनने से निष्पादित नहीं करती है अर्थात् उसी उद्देश्य को पूरा करना जो प्रथम से लेकर अंतिम कार्य तक उनका था।

20 कलकत्ता 358
5 मद्रास 199

4. अभियुक्त एवं साक्षियों को उपस्थित करना।

यद्यपि न्यायालय ने एक अपराध का संज्ञान कर लिया है, वास्तविक दंड कार्यवाहियां तभी प्रारंभ हो सकती हैं जब अभियुक्त एवं साक्षीगण न्यायालय में उपस्थित हों, एक आरोप का उत्तर देने के लिए और दूसरे साक्ष्य देने के लिए।

वे न्यायालय के समक्ष किस प्रकार लाए जाने हैं?

धारा 104

1. जब धारा 173 के अधीन किए गए अन्वेषण पर आधारित पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लिया जाता है तो अभियुक्त एवं साक्षीगण पहले ही न्यायालय के समक्ष होते हैं।
2. जब संज्ञान धारा 173 के अधीन पुलिस रिपोर्ट पर से अन्यथा किया जाता है तब अभियुक्त एवं साक्षीगण न्यायालय के समक्ष नहीं होते हैं। वे न्यायालय के समक्ष लाए जाने होते हैं।

उनको न्यायालय में लाने की क्या प्रक्रिया होती है?

दंड प्रक्रिया संहिता ऐसी दो प्रक्रियाएं अनुघात करती है।

धारा 68

1. उपस्थित होने के लिए सम्मन, 2. गिरफ्तारी के लिए वारंट

(1) उपस्थित होने के लिए सम्मन

इस संहिता के अंतर्गत न्यायालय द्वारा निर्गत हर एक सम्मन लिखित दो प्रतियों में ऐसे न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा या ऐसे अन्य अधिकारी, जैसा उच्च न्यायालय समय-समय पर नियमत: निर्देश करे, के द्वारा हस्ताक्षरित एवं सीलबंद होगा।

2. सम्मन पुलिस अधिकारी या स्थानीय सरकार द्वारा निर्धारित। इस हेतु ऐसे नियम के अधीन इसे निर्गत करने वाले न्यायालय के पदाधिकारी या अन्य लोक सेवक द्वारा तामील किया जाएगा।

धारा 69

वैयक्तिक तामील

1. यदि व्यावहारिक हो तो सम्मन की एक प्रति देते या प्रस्तुत करते हुए वैयक्तिक तौर पर तामील की जाए।
2. सम्मन तामील कृत प्रत्येक व्यक्ति, यदि तामीलकर्त्ता अधिकारी ऐसी अपेक्षा करे तो दूसरी प्रतिलिपि की पिछली तरफ हस्ताक्षर करके रसीद देगा।

3. निगमों पर तामील

निगमित कंपनी या अन्य निगमित संस्थानों पर सचिव, स्थानीय प्रबंधक या ब्रिटिश भारत में निगम के प्रमुख अधिकारी, पर तामील होकर प्रभावी हो सकता है। ऐसे मामले में तामील प्रभावी समझी जाएगी, जब सम्मन सामान्य डाक से आ जाए।

धारा 70

जब व्यक्ति पाया नहीं जाए तो तामील की प्रतिलिपियों में से एक उसके परिवार के किसी वयस्क पुरुष के पास उसके लिए छोड़कर या प्रेसीडेंसी टाउन में उसके साथ रहने वाले उसके नौकर के पास छोड़कर तामील की जा सकती है।

वह व्यक्ति जिसके पास वह छोड़ा जाता है, प्रतिलिपि की पिछली तरफ हस्ताक्षर करेगा।

प्रतिस्थापित तामील अनुचित है जहां अभियुक्त को वैयक्तिगत तौर पर तामील करने के लिए पर्याप्त प्रयास नहीं किए जाते हैं।

धारा 71

यदि यह संभव नहीं है तो तामीलकर्त्ता अधिकारी सम्मन की प्रतिलिपियों में से एक को घर या वासित भूमि, जिसमें सम्मानित व्यक्ति साधारणतः रहता है, के सुप्रकट भाग पर चस्पा करेगा।

धारा 72

सरकारी या रेलवे कम्पनी के नौकर पर तामील।

जहां समनित व्यक्ति सरकार या रेलवे कंपनी की सक्रिय सेवा में है, सम्मन जारी करने वाला न्यायालय साधारणतः उस कार्यालय के, जिसमें ऐसा व्यक्ति नियोजित है, प्रमुख को दो प्रतियां भेजेगा, और वह प्रमुख उस पर सम्मन की धारा 69 में बताई युक्ति से तामील कराएगा और उसे उस धारा में अपेक्षित पृष्ठांकन के साथ अपने हस्ताक्षर से न्यायालय को वापस करेगा।

सम्यक तामील का साक्ष्य होगा।

धारा 73

स्थानीय सीमाओं के बाहर सम्मनों की तामील।

जब एक न्यायालय इच्छा करता है कि उसके द्वारा निर्गत सम्मन उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं से बाहर किसी स्थान पर तामील किया जाएगा तो वह साधारणतः ऐसे सम्मन को दो लिपियों में मजिस्ट्रेट को भेजेगा जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं में समनित व्यक्ति रहता है या जहां तामील होना है।

धारा 74

ऐसे वादों में, जब तामील कर्त्ता उपस्थित न हो, तामील का सबूत।

1. मजिस्ट्रेट के समक्ष किए जाने के लिए तात्पर्यित यह शपथपत्र कि ऐसे सम्मन तामील कर दिए गए हैं और सम्मन की प्रतिलिपि (धारा 69 एवं धारा 70 द्वारा प्रावधानित ढंग से) उस व्यक्ति द्वारा जिसको वह दिया था या प्रस्तुत किया था या जिसके पास इसे छोड़ गया था, पृष्ठांकित किए जाने के लिए तात्पर्यित साक्ष्य में स्वीकार करने योग्य होगा और इसमें किया कथन जब तक विपरीत/प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए, सही समझा जाएगा।
2. इस धारा में वर्णित शपथ पत्र सम्मन की प्रतिलिपि के साथ संलग्न किया जा सकता है और न्यायालय को लौटाया जा सकता है।

वकील पर तामील पर्याप्त नहीं है।

6 सी.डब्ल्यू.एन. 927

प्रतिलिपि तामील होनी चाहिए और उसे मात्र दिखलाना पर्याप्त नहीं है।

5 बी.एच.सी.आर. 20

प्रस्तुतिकरण तामील के बराबर है यदि सम्मन अस्वीकार किया जाता है।

28 एम.एल.एफ. 505

सम्मन को प्राप्त करने (लेने) से इंकार करना कोई अपराध नहीं है।

II. गिरफ्तारी का वारंट

धारा 75

1. गिरफ्तारी का वारंट लिखित रूप में होगा, पीठासीन अधिकारी या एक मजिस्ट्रेट की न्यायपीठ की स्थिति में ऐसी न्यायपीठ के किसी सदस्य द्वारा हस्ताक्षरित होगा और उस पर न्यायालय की मुहर लगी होगी।

जब तक कि न्यायालय, जिसने उसे निर्गत किया था, के द्वारा निरस्त नहीं किया जाता है या जब तक निष्पादित नहीं हो जाता है तब तक वारंट प्रवर्तित रहेगा।

2. सम्मन एवं वारंट में अंतर

सम्मन समनित व्यक्ति के लिए एक आदेश है।

वारंट गिरफ्तार होने वाले व्यक्ति के लिए एक आदेश नहीं है। अतः सम्मन की अवज्ञा के लिए व्यक्ति दंडित किया जा सकता है। किन्तु वह वारंट की अवज्ञा के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है।

5 डब्ल्यू.आर.डी. –71

धारा 76

न्यायालय प्रतिभूति लेने के लिए निर्देशित कर सकता है।

1. निर्गत करने वाला न्यायालय अपने विवेक से वारंट पर पृष्ठांकन करके निर्देशित कर सकता है कि यदि ऐसा व्यक्ति एक विनिर्दिष्ट समय पर न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति के लिए पर्याप्त प्रतिभूतियों के साथ बंधपत्र निष्पादित करता है और उसके बाद न्यायालय के द्वारा जब तक अन्यथा निर्देशित न किया जाए, वह अधिकारी जिसके लिए वारंट निदेशित किया गया था ऐसी प्रतिभूति लेगा और ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा से रिहा कर देगा।
2. पृष्ठांकन व्यक्त करेगा –
   (अ) प्रतिभूतियों की संख्या।
   (ब) वह धनराशि, जिसमें वे एवं व्यक्ति जिसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट निर्गत किया जाता है, से अलग बंधित किए जाने हैं।
   (स) वह समय जिस पर न्यायालय के समक्ष उसको उपस्थित होना है।
3. जब कभी इस धारा के अधीन प्रतिभूति ली जाती है तो वह अधिकारी जिसके लिए वारंट निदेशित किया जाता है बंधपत्र न्यायालय को अग्रसारित करेगा।

धारा 77

1. *वारंट किसको निदेशित।*

साधारणतः वारंट एक या अधिक पुलिस अधिकारियों को निदेशित किया जाएगा और जब प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट द्वारा निर्गत किया जाता है तो हमेशा इसी प्रकार निदेशित किया जाएगा, किन्तु कोई अन्य मजिस्ट्रेट ऐसा वारंट निर्गत करने वाला यदि उसका तुरंत निष्पादन आवश्यक है और कोई पुलिस अधिकारी तुरंत उपलब्ध नहीं है उसे किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को निदेशित कर सकता है, और ऐसा व्यक्ति या व्यक्तिगण से निष्पादित करेगा/करेंगे।

2. *एक से अधिक व्यक्तियों के लिए संबोधित/सम्प्रेषित वारंट।*

सबके द्वारा या उनमें से किसी एक या एक से अधिक द्वारा निष्पादित किया जा सकता है।

धारा 78

1. वारंट भूमिधर, कृषक या भूमि–प्रबंधक को निदेशित किया जा सकता है।

(1) किसी फरार अभियुक्त, (2) घोषित अपराधी, या (3) ऐसा व्यक्ति जो गैर–ज़मानती अपराध का अभियुक्त है और जो खोज से बचता रहा है।

2. उसे कौन हस्ताक्षरित एवं निष्पादित करेगा, यदि व्यक्ति अपने प्रभार की भूमि पर है।

3. वह व्यक्ति गिरफ्तार होने पर निकटतम पुलिस थाने को दे दिया जाएगा।

धारा 79

वह पुलिस अधिकारी जिसको वारंट भेजा गया है, उस पर पृष्ठांकन करके एक अन्य पुलिस अधिकारी को उसे निष्पादित करने को दे सकता है।

धारा 80

गिरफ्तार करने वाला पक्ष गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति को वारंट का सार सूचित करेगा।

धारा 81

प्रतिभूति के संबंध में धारा 76 के प्रावधानों के अधीन गिरफ्तारी करने वाला पक्ष बिना अनावश्यक विलम्ब के गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष लाएगा, जिसकी उसे प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है।

धारा 82

गिरफ्तारी वारंट ब्रिटिश भारत में किसी भी स्थान पर निष्पादित किया जा सकता है।

धारा 83

1. जब वारंट की तामील जारीकर्त्ता न्यायालय के न्यायक्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के बाहर की जानी है तो वह न्यायालय पुलिस अधिकारी को ऐसा वारंट भेजने के बजाए जिस न्यायक्षेत्र में इसकी तामील की जानी है उसकी स्थानीय सीमा में डाक द्वारा अपना किसी मजिस्ट्रेट, अथवा जिला पुलिस अधीक्षक, अथवा पुलिस आयुक्त को प्रेषित कर सकता है।
2. मजिस्ट्रेट अथवा डी.एस.पी. अथवा आयुक्त जिसे ऐसा वारंट प्रेषित किया गया है, उस पर अपना नाम पृष्ठांकित करेगा और व्यवहार्य होने पर, अपने अधिकार–क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं में इससे पूर्व प्रावधानित अनुसार तामील करवाएगा।

धारा 84

1. जब पुलिस अधिकारी को निर्देशित वारंट की अधिकार-क्षेत्र के बाहर तामील की जानी है तो वह साधारणतः इसे पृष्ठांकन हेतु मजिस्ट्रेट अथवा पुलिस अधिकारी, जो वारंट तामील करने की सीमा के भीतर स्टेशन प्रभारी के अधिकारी के रैंक से नीचे का न हो, के पास पृष्ठांकन हेतु ले जाएगा।
2. ऐसा मजिस्ट्रेट अथवा पुलिस अधकारी अपने नाम का पृष्ठांकन करेगा और ऐसा पृष्ठांकन उस पुलिस अधिकारी के लिए पर्याप्त प्राधिकारी होगा जिसे उसकी तामील करने का निर्देश दिया जाता है।
3. यदि पृष्ठांकन प्राप्त करने में विलंब होने की संभावना है तो इसकी तामील बिना पृष्ठांकन के भी की जा सकती है।

धारा 85

जब गिरफ्तारी बाहर की जाती है तो गिरफ्तार व्यक्ति को मजिस्ट्रेट जिला पुलिस अधीक्षक, पुलिस आयुक्त के पास ले जाया जाएगा।

धारा 86

तब वे उसे वारंट निर्गत करने वाले न्यायालय को अभिरक्षा में ले जाना निर्देशित करेंगे।

गिरफ्तारी के वारंट के अनिष्पादन का प्रभाव

धारा 87

1. यदि व्यक्ति फरार है तो न्यायालय ऐसी उद्घोषणा के प्रकाशन की दिनांक से 30 दिन से अनधिक नियत स्थान पर नियत समय पर उसके उपस्थित होने की अपेक्षा करते हुए एक लिखित उद्घोषणा प्रकाशित कर सकता है।
2. उद्घोषणा किस प्रकार प्रकाशिता की जानी है:

(अ) वह उस स्थान पर जहां वह साधारणतः निवास करता है, पढ़ी जाएगी।

(ब) उस घर जिसमें वह रहता है, के किसी सुप्रकट स्थान पर चस्पा की जाएगी।

(स) उसकी एक प्रति न्यायालय के भवन पर चस्पा की जाएगी।

धारा 88

1. उद्घोषणा निर्गत करने वाला न्यायालय धारा 87 के अधीन घोषित व्यक्ति से संबंधित स्थावर या जंगम या दोनों प्रकार की संपत्ति की कुर्की के आदेश किसी भी समय कर सकता है।

2. ऐसा आदेश, ऐसे व्यक्ति की किसी संपत्ति की कुर्की उस जिले के अंतर्गत जिसमें वह बनाई गई है, के प्राधिकृत करेगा।

धारा 89

कुर्क की गई संपत्ति की वापसी

यदि व्यक्ति, कुर्की के आदेश के दिनांक के बाद दो वर्षों के अंतर्गत उपस्थित होता है और समाधान करता है (1) कि वह फरार नहीं हुआ, या स्वयं को छिपाया नहीं और (2) कि उसे समय के अंतर्गत उपस्थित होने जैसी घोषणा का ज्ञान नहीं था।

धारा 90

वारंट किसके विरुद्ध निर्गत किया जा सकता है?

साधारणतः कोई भी आदमी यह कल्पना करेगा कि वह केवल अभियुक्त के विरुद्ध निर्गत किया जा सकता है। किन्तु ऐसा नहीं है। विधि यह है कि वारंट, एक जूरी सदस्य या निर्धारक के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को जिसे सम्मन जारी किया जा सकता है, जारी किया जा सकता है।

इसका अभिप्राय है कि वारंट एक साक्षी के विरुद्ध भी जारी किया जा सकता है।

परंतु –

(1) न्यायालय, उपस्थित होने के लिए समय से पूर्व यह विश्वास करने का कारण देखता है कि वह फरार हो गया है या सम्मन का आज्ञापालन नहीं करेगा। या

(2) किस समय पर वह उपस्थित होने से असफल रहता है और समय पर उपस्थित होने के लिए सम्मन सम्यक रूप से तामील किया हुआ दर्शाया जाता है किन्तु वह उपस्थित नहीं होता है।

सम्यक प्रक्रिया द्वारा न्यायालय के समक्ष बुलाए गए पक्षों की सतत उपस्थितियों के लिए रक्षोपाय

धारा 91

जब कोई व्यक्ति, जिसकी उपस्थिति या गिरफ्तारी के लिए न्यायालय में पीठासीन अधिकारी सम्मन या वारंट निर्गत करने के लिए प्राधिकृत है न्यायालय में उपस्थित होता है, तो ऐसा अधिकारी उस व्यक्ति से न्यायालय में उपस्थिति के लिए प्रतिभूतियों के साथ या के बिना बंधपत्र निष्पादित करने की अपेक्षा कर सकता है।

धारा 92

जब कोई व्यक्ति जो किसी बंधपत्र से आबद्ध है उपस्थित नहीं होता है तो पीठासीन अधिकारी, यह निर्देशित करते हुए कि ऐसा व्यक्ति गिरफ्तार किया जाए और उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाए, वारंट निर्गत कर सकता है। इसके अतिरिक्त परिवादी, अभियुक्त एवं साक्षियों को, न्यायालय के समक्ष तात्विक तथ्य जो अपराध की विषय वस्तु है या वस्तुएं हैं, जो अपराध को सिद्ध करने के लिए आवश्यक है, लाने की आवश्यकता है।

कूटरचित दस्तावेज, व्यक्ति परिरुद्ध

अतः हमें इनके प्रस्तुत करने के संबंध में नियमों पर विचार करना चाहिए।

किसी दस्तावेज या वस्तु का प्रस्तुतीकरण।

धारा 94

(1) जब कोई न्यायालय समझता है कि किसी दस्तावेज या वस्तु का प्रस्तुतीकरण ऐसे न्यायालय के समक्ष अन्वेषण, जांच या विचारण या अन्य कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए आवश्यक या यथेष्ट है तो वह उस व्यक्ति के लिए जिसके कब्ज़े या अधिकार में ऐसा दस्तावेज या वस्तु होने का विश्वास किया जाता है, सम्मन में व्यक्त समय या स्थान पर उसे प्रस्तुत करने एवं उपस्थित होने की अपेक्षा करते हुए सम्मन जारी कर सकता है।

(2) जब सम्मन मात्र प्रस्तुत करने के लिए है तो उसे उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं। उसे भेज देना ही पर्याप्त है।

****

(पूर्व का भाग नहीं मिला है - संपादक)

अधिकारी या न्यायाधीश या उनकी उपस्थिति एवं सुनवाई में उसके वैयक्तिक निर्देशन में और अधीक्षण में और मजिस्ट्रेट या सत्री न्यायाधीश द्वारा हस्ताक्षरित होगा।

उन मामलों में, जिनमें मजिस्ट्रेट या सत्री न्यायाधीश द्वारा साक्ष्य लेखबद्ध नहीं किया जाता है जैसे-जैसे हर एक साक्षी का परीक्षण आगे बढ़ता है, तो जैसा साक्षी कथन करता था कि सारांश का ज्ञापन तैयार करेगा और ऐसा ज्ञापन मजिस्ट्रेट या सत्री न्यायाधीश द्वारा अपने हाथ से लिखा और हस्ताक्षरित किया जाएगा और वह अभिलेख का अंग होगा।

धारा 363

सत्रीय न्यायाधीश एवं मजिस्ट्रेट परीक्षा के दौरान साक्षी के आचरण के संबंध में टिप्पणी भी अभिलिखित करेगा।

धारा 360

जैसे ही हर एक साक्षी के साक्ष्य का लिखा जाना पूर्ण हो जाए, वह अभियुक्त की उपस्थिति में यदि वह हाजिर है या उसके अधिवक्ता की उपस्थिति में यदि वह अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होता है, पढ़ा जाए और यदि आवश्यक है तो यह सही किया जाए।

जब साक्ष्य पढ़ा जाता है और साक्षी साक्ष्य के किसी भाग की शुद्धता अस्वीकार करता है तो मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश साक्ष्य को सही करने के स्थान पर साक्षी के द्वारा किए गए प्रतिवादों का एक ज्ञापन बना सकता है और ऐसी टिप्पणी सम्मिलित करेगा जैसी वह आवश्यक समझता है।

पढ़े जाने को छोड़ देना एक अवैधता है।

II प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के समक्ष

धारा 362

अपीलीय मामले एवं अनअपीलीय मामले।

अपीलीय मामलों में-

मजिस्ट्रेट साक्षी के साक्ष्य को अपने हाथ से लिखेगा या खुले न्यायालय में बोलकर लिखवाएगा।

इस प्रकार लिखा गया सकल साक्ष्य मजिस्ट्रेट द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा और अभिलेख का अंग बनेगा।

मजिस्ट्रेट अभियुक्त के परीक्षण के सार का ज्ञापन बनाएगा। ऐसा ज्ञापन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके अपने हाथ से हस्ताक्षरित किया जाएगा और अभिलेख का एक अंग होगा।

अनअपीलीय मामलों में -

प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के लिए साक्ष्य को अभिलिखित करना या आरोप बनाना आवश्यक नहीं होगा।

धारा 359, 362(2)

साक्ष्य लेखबद्ध करने का ढंग

साक्ष्य साधारणतया विवरणात्मक रूप में लिखा जाएगा यद्यपि न्यायालय अपने विवेकानुसार किसी विशेष प्रश्न और उत्तर को लिखेगा या लिखवाएगा।

अपवाद - अभियुक्त की परीक्षा

धारा 364

उससे (अभियुक्त से) पूछे गए प्रत्येक प्रश्न एवं उसके द्वारा दिए प्रत्येक उत्तर समेत समग्र परीक्षा को पूर्ण रूप से अभिलिखित किया जाएगा। यह उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त की परीक्षा के अभिलेख पर लागू नहीं होता है।

(II) संक्षिप्त विचारण में अभिलेख।

धारा 260

(1) जिला मजिस्ट्रेट

(2) प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट इस संबंध में स्थानीय सरकार द्वारा विशेष रूप से प्राधिकृत सशक्त है।

(3) प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की शक्तियों से सन्निविष्ट एवं स्थानीय सरकार द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त कोई भी न्यायपीठ मजिस्ट्रेट यदि वह उचित समझता है तो सभी या निम्न अपराधों में से किसी का संक्षिप्त रूप से विचारण कर सकेगा।

(अ) मृत्यु, निर्वासन या 6 माह से अधिक समय के कारावास के अदंडनीय अपराधों को और धारा में वर्णित कुछ अपराधों का।

जो मामले संक्षिप्त रूप से विचारित किए जा सकते हैं वे अपीलीय या अनअपीलीय हो सकते हैं।

धारा 263

किन्तु ऐसे प्ररूप में, जिन्हें स्थानीय सरकार निदेश करे, निम्न विवरण प्रविष्ट किए जाएंगे–

(अ) क्रम संख्या

(ब) अपराध करने का दिनांक

(स) सूचना या परिवाद (शिकायत) का दिनांक

(द) (यदि कोई है) परिवादी का नाम

(ई) अभियुक्त का नाम, माँ या बाप, एवं निवास स्थान

(फ) परिवादित अपराध (यदि कोई सिद्ध है) और संपत्ति जिसके संबंध में अपराध किया जाता है।

(ग) अभियुक्त का तर्क और परीक्षण यदि कोई हो।

(ह) निष्कर्ष एवं दोष सिद्ध में इसके कारणों का संक्षिप्त विवरण।

(ड) दंडादेश या अन्य अंतिम आदेश

(ज) वह दिनांक जिसको कार्यवाहियां समाप्त हुईं।

अपीलीय मामलों में

धारा 264

न्यायालय दंडादेश देने से पूर्व अनअपीलीय मामलों में अपेक्षित निर्णय साक्ष्य का सार एवं विवरण भी देते हुए अभिलिखित करेगा।

ऐसा निर्णय अपीलीय मामलों में अभिलेख मात्र होगा।

निर्णय

धारा 366

किसी भी दंड न्यायालय में प्रत्येक आचरण में निर्णय सुनाया जाएगा या ऐसे निर्णय का सारांश खुले न्यायालय में स्पष्ट किया जाएगा –

(1) खुले न्यायालय में, या तो तुरंत या अधिसूचित की जाने वाली पश्चात्वर्ती तारीख को बशर्ते कि यदि पक्षों के द्वारा अनुरोध किया गया हो, समग्र पढ़ा जाएगा।

(2) अभियुक्त यदि अभिरक्षा में लाया जाएगा एवं अभिरक्षा नहीं है तो घोषित निर्णय को सुनने के लिए लाया जाएगा।

सिवाए वहां के जहां उसकी वैयक्तिक उपस्थिति मुक्त कर दी गई है और दंडादेश केवल अर्थ दंड हो या विमुक्त कर दिया गया हो।

ध्यान दीजिए – (3) यदि निर्णय अनुपस्थिति में घोषित किया जाए तो वह पढ़ा नहीं जाएगा।

धारा 367

प्रत्येक निर्णय जब तक अन्यथा प्रावधान न हो न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा लिखा जाएगा या बोलकर लिखवाया जाएगा। उसमें निम्नलिखित बातें होंगी –

(1) निर्धारण के लिए विचार बिन्दु।

(2) उन पर निर्णय।

(3) निर्णय के कारण।

(4) खुले न्यायालय में पीठासीन अधिकारी द्वारा उसे सुनाए जाने के समय हस्ताक्षरित एवं दिनांकित किया जाएगा और जहां वह पीठासीन अधिकारी द्वारा नहीं लिखा गया है वहां ऐसे निर्णय का प्रत्येक पृष्ठ उसके द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा।

(5) इसमें (यदि कोई हो) अपराध एवं भा.दं.सं. या अन्य विधि की धारा जिसके अधीन अभियुक्त सिद्ध दोष किया गया है, और दंड जिसके लिए दंडादेशित किया गया है का स्पष्ट विवरण होगा।

(6) जब दोष सिद्धि भा.दं..सं. के अधीन है और यह संदेहास्पद है कि उस संहिता को एक ही धारा के दो भागों में से किस भाग के अधीन अपराध आता है तो न्यायालय प्रत्यक्ष रूप से उसको अभिव्यक्त करेगा और वैकल्पिक निर्णय देगा।

(7) यदि अभियुक्त दोषमुक्त किया जाता है तो ह उस अपराध का विवरण देगा जिससे उसे दोषमुक्त किया गया है और निर्देशित करेगा कि वह स्वतंत्र किया जाए।

(8) यदि अभियुक्त मृत्यु दंड के अपराध के लिए दोषसिद्ध होता है और न्यायालय उसको मृत्यु से भिन्न दंड के लिए दंडादेशित करता है तो न्यायालय ये कारण देगा परन्तु जूरी द्वारा विचारण में न्यायालय को निर्णय लिखने की आवश्यकता नहीं है किन्तु सेशन न्यायालय आरोप के शीर्ष को अभिलिखित करेगा।

धारा 368

जब मृत्यु का दंडादेश हो – दंडादेश यह निर्देशित करेगा कि वह तब तक गर्दन से लटकाया जाए जब तक मर न जाए।

धारा 369

निर्णय का परिवर्तन

संहिता या अन्य विधि या उच्च्च न्यायालय के विषय में अन्यथा उपबंधित के सिवाए कोई भी न्यायालय लिपिकीय गलतियों को सही करने के अतिरिक्त जबकि निर्णय पर हस्ताक्षर हो चुके हैं, उसे परिवर्तित या पुनर्विलोकित नहीं करेगा।

उच्च्च न्यायालय को भी कोई शक्ति नहीं है।

धारा 370

प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट द्वारा निर्णय

उपरोक्त में निर्णय अभिलिखित करने के स्थान पर प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट निम्नलिखित विवरणों को अभिलिखित करेगा –

(अ) क्रम संख्या

(ब) अपराध करने का दिनांक

(स) परिवादी (यदि कोई हो) का नाम

(द) अभियुक्त का नाम (यूरोपीय ब्रिटिश जनता के विषय के अतिरिक्त) उसके माता–पिता एवं निवास।

(ई) परिवादित या सिद्ध अपराध।

(फ) अभियुक्त के तर्क एवं परीक्षण (यदि कोई हो)

(ग) अंतिम आदेश

(ह) ऐसे आदेश का दिनांक

(ई) सभी वादों में जहां दंडादेश, कारावास या 200 से अनधिक अर्थ दंड या दोनों का है, दोष सिद्धि के कारणों का विवरण।

धारा 371

निर्णय की प्रति अभियुक्त को अविलम्ब दी जाए।

सम्मन मामलों से भिन्न अन्य मामलों में वह नि:शुल्क दी जाएगी। जूरी द्वारा विचारण में आरोप के शीर्ष की एक प्रति उसे जूरी द्वारा दी जाएगी। मृत्यु के दंडादेश में, अभियुक्त को अपील की अवधि के समय को सूचित करेगा।

धारा 373

सेशन न्यायालय का जिला मजिस्ट्रेट को निष्कर्ष एवं दंडादेश की प्रतिलिपि भेजा जाना।

अपराधी के विचारण से भिन्न कार्यवाइयां

(i) शांति बनाए रखने एवं सुव्यवस्था बनाए रखने से संबंधित।

(ii) कुछ बाध्यताओं के प्रवर्तन से संबंधित पारिवारिक बाध्यता एवं लोक त्रुटि।

(iii) लोक शक्ति बनाए रखने से संबंधित।

(iv) लोक जमाव से संबंधित शक्ति बनाए रखना एवं व्यवस्था कायम रखना।

अपराध किए जाने पर दंड देने से बेहतर है अपराध को रोकना। यह सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता है। अपराध को रोकने का प्रयास व्यक्ति की स्वतंत्रता में अनुचित हस्तक्षेप को अंतर्ग्रस्त कर सकता है।

इंग्लिश विचारधारा इस दृष्टिकोण की ओर है कि राज्य को तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब व्यक्ति का आचरण अपराध के समान हो। अर्थात् - राजद्रोह, जमाव की आंग्ल विधि।

दूसरी ओर भारतीय विधि एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाती है। अर्थात् प्रेस अधिनियम, लोक अधिसेशन अधिनियम।

ऐसा होने से दंड प्रक्रिया संहिता में अपराधों को रोकने के लिए दंड न्यायालयों को सक्षम बनाने के लिए कुछ धाराओं का अधिनियम न किया गया है।

(पृष्ठ खाली छूटा - संपादक)

* * * * * * * *

अध्याय - VIII
लोक प्रशांति के विरुद्ध अपराधों से संबंधित है।

पृष्ठ खाली छूटा - संपादक

* * * * * * * * *

न्यायालय लोकाचार के निवारक या पूर्वाभासी कार्यों के लिए निम्नलिखित प्रथा को अनुध्यात करता है :-

(1) संसार में हर एक देश में झगड़ालू लोग हैं और कुछ झगड़े तो ऐसे हैं जो हिंसा और गंभीर अपराध की ओर भी ले जाते हैं।

(2) इसी प्रकार प्रचार की कुछ शैलियां यदि बेरोकटोक की जाएं तो अबोध व्यक्तियों को हानिकारक बातें करने को प्रेरित कर सकती हैं, वे असत्यों को परिचालित कर रही हो सकती हैं, या अत्यधिक भयानक अर्ध सत्यों का भी अबोध व्यक्तियों को विश्वास कराके विश्वास पर कार्य कराने के दोषपूर्ण षड्यंत्र का आनंद लिया जा रहा है जिसका आनंद वस्तुतः किसी के द्वारा नहीं लिया जाता है।

(3) यहां वे लोग भी हैं जो ईमानदारी के काम के बजाए प्रमोद के जीवन को अधिक पंसद करते हैं, कभी-कभार अपराध भी पता लगाना असंभव प्रतीत होता है। ऐसे भी व्यक्ति हैं जो स्वयं अपने द्वारा किए गए अपराध की आय पर रहते हैं या दूसरों द्वारा किए गए अपराध की कमाई के अंश पर जीवित रहते हैं, जिनकी वे पकड़े जाने से बचने में सहायता करते हैं या उनकी सहायता एक संगठन बना कर करते हैं जो अपने समर्थकों को उनकी बेईमानी की कमाई को ठिकाने लगाने का सुअवसर या दंड से मुक्ति की अच्छी संभावना प्रदान करते हैं।

(4) आभ्यासिक अपराधी।

धारा 183

(9) जब अपराधी यात्रा या समुद्र यात्रा पर है और वहां अपराध किया जाता है तो वहां उस अपराध की जांच और विचारण ऐसे न्यायालय द्वारा किया जा सकेगा जिसकी अधिकारिता में कहीं भी या किसी भी स्थानीय सीमाओं के अंतर्गत –

अपराधी या वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध उस यात्रा या समुद्र यात्रा में या वस्तु जिसके संबंध में अपराध किया गया था।

धारा 184

(10) रेलों, तारघरों, डाकखानों, अस्त्र एवं शस्त्रों से संबंधित तत्समय प्रवर्तित किसी विधि के प्रावधानों के विरुद्ध सभी अपराधों की जांच और विचारण प्रेसीडेंसी नगर में किया जा सकता है।

धारा 185

(11) संदिग्ध मामलों में, उच्च न्यायालय को विनिश्चित करना है कि किस अधीनस्थ न्यायालय की अधिकारिता होगी।

जहां दो या अधिक अधीनस्थ न्यायालय एक ही उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न हों वहां उच्च न्यायालय जिसकी दांडिक अपीली अधिकारिता के अंतर्गत कार्यवाही पहले आरंभ हुई विनिश्चय कर सकता है एवं निदेश दे सकता है।

धारा 186

(12) जब प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट, उपखंड मजिस्ट्रेट या स्थानीय सरकार द्वारा विशेष रूप से सशक्त प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट यह विश्वास करने के कारण देखता है कि अधिकारिता की ऐसी स्थानीय सीमाओं के बाहर किसी व्यक्ति ने अपराध किया है (ब्रिटिश भारत के अंदर या बाहर।) तो जिन अपराधों की जांच और विचारण ऐसी स्थानीय सीमाओं के अंतर्गत नहीं किया जा सकता, किन्तु तत्समय प्रवर्तित किसी विधि के द्वारा ब्रिटिश भारत में किया जाए।

ऐसा मजिस्ट्रेट उस अपराध में जांच कर सकता है और उस व्यक्ति को उपस्थित होने के लिए बाध्य कर सकता है और उसको अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के पास भेज सकता है।

ब्रिटिश भारत के बाहर किए गए अपराध

अब तक हम ब्रिटिश भारत की सीमाओं के अंतर्गत किए गए अपराधों के संबंध में विचार कर चुके हैं। अब मान लो कि यद्यपि अपराधी ब्रिटिश भारत के भीतर है किंतु अपराध ब्रिटिश भारत के बाहर किया जाता है तो ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाए?

यह दो प्रकार निपटाया जा सकता है –

(1) अपराधी विचारण के लिए उस देश में भेजा जा सकता है जहां अपराध किया गया था।

(2) अपराधी ब्रिटिश भारत में विचारित किया जा सकता है। प्रथम प्रत्यर्पण की कार्यवाही कहलाता है। दूसरा क्षेत्रीय अधिकारिता के अनुसार कार्यवाही करना कहा जा सकता है।

(1) भारत के बाहर प्रत्यर्पण किसी –

(अ) देशी राज्य

(ब) विदेशी राज्य

(स) सम्राट के डोमिनियन में हो सकता है।

(अ) देशी राज्य

देशज राज्य का प्रत्यर्पण भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम, 1903 के द्वारा विनियमित होता है।

* * * * *

पार्लियामेंट की संविधियों और भारतीय विधानमंडल के अधिनियमों का मान करते हुए मैं निरपेक्ष न्यायालयों के अधिक्षेत्रीय उद्देश्य के लिए इस भूमंडल का भौगोलिक विभाजन निम्नानुसार करता हूं:–

(1) दंड प्रक्रिया संहिता एवं भारतीय साम्राज्य विधानमंडल के अन्य अधिनियमों द्वारा विनियमित देश एवं विदेशों के क्षेत्रीय विभाजन।

(2) संविधियों 41 एवं 42 वी आई सी सी 73 द्वारा विनियमित सीमा क्षेत्रीय सागर।

(3) महासागर, संविधियों 12 एवं 13 विक. सी. 96 (नौ अधिकरण अपराध औपनिवेशिक) 23 एवं 24 विक सी 88 एवं 37 और 38 विक सी 2 द्वारा विनियमित होते हैं। यह इस प्रकार देखा जाएगा कि महासागरों पर अपराध पार्लियामेंट संविधि 12 द्वारा नियंत्रित होते हैं और 13 विक औपनिवेशिक न्यायालयों की सभी अपराधों जो नौ–सेनाध्यक्ष द्वारा अन्वीक्षित हुए हैं, को अन्वीक्षित किया जाना निर्धारित करती है। धारा 23 एवं 24 विक सी 88 संविधि 12 एवं 13 विक सी 96 को भारत में प्रयुक्तनीय बनाता है और संविधि 37 एवं 88 विक. सी. 27 अपराध को भारतीय विधि के अनुसार दंडनीय बनाता है।

19 बम्बई एल.आर. 527

भारत, 1897 के साधारण अधिनियम की धारा 8 के खंड 3(27) में इस प्रकार परिभाषित है –

भारत के वायसराय के द्वारा महामहिम के महाधिपत्य के अधीन किसी देशी राजा

या प्रमुख के राज्य क्षेत्र के साथ ब्रिटिश भारत अभिप्रेत रहेगा जिसका प्रयोग भारत के गवर्नर जनरल या भारत के गवर्नर जनरल के अधीनस्थ कोई अन्य अधिकारी के माध्यम से किया जाए।

ब्रिटिश भारत, 1897 के साधारण अधिनियम के खंड 3 (7) में परिभाषित है –

ब्रिटिश भारत से हिज मैजिस्टी के अधिक्षेत्रों के भीतर के वे सब राज्य क्षेत्र और स्थान अभिप्रेत होंगे जो हिज मैजिस्टी द्वारा भारत के गवर्नर जनरल द्वारा या भारत के गवर्नर जनरल के अधीनस्थ किसी राज्यपाल या अन्य अधिकारी के माध्यम से तत्समय महामहिम द्वारा शासित होंगे।

ब्रिटिश भारत – बृ. भा. + 3 मील

8 बम्बई एच.सी.आर. कि.सी. 63

* * * * *

दंड संहिता के अधीन अपराधों के लिए किनका विचारण किया जा सकता है।

धारा 31 भा.दं.सं.–

सपरिषद् भारत के वायसराय द्वारा पारित किसी भी विधि द्वारा कथित क्षेत्र की सीमाओं के परे किए गए अपराध के लिए विचारण किए जाने को उत्तरदायी किसी व्यक्ति के साथ कथित क्षेत्र के बाहर किए गए किसी कार्य के लिए इस संहिता के प्रावधानों के अनुसार उसी ढंग से कार्रवाई की जाएगी मानो ऐसा कार्य कथित क्षेत्र की सीमाओं के अंतर्गत किया गया था।

धारा 41 भा.दं.सं. – इस संहिता के प्रावधान किसी भी अपराध पर लागू हो

(1) ब्रिटिश भारत के परे या बाहर किसी स्थान पर महामहिम की प्रजा किसी देशज भारतीय के........।

(2) भारत में किसी देशज राजा या प्रमुख की क्षेत्रीय सीमाओं के अंतर्गत किसी अन्य ब्रिटिश प्रजा के ....।

(3) भारत में किसी देशज राजा या प्रमुख की क्षेत्रीय सीमाओं के अंतर्गत साम्राज्य का सेवक चाहे वह ब्रिटिश प्रजा हो या नहीं...

स्पष्टीकरण :– इस धारा में अपराध शब्द ब्रिटिश भारत के बाहर किया गया कोई कार्य है जो यदि ब्रिटिश भारत में किया जाता तो इस संहिता के अधीन दंडनीय होता।

अधिनियम की धारा 7(1)

इस धारा के अधीन ऐसी रियासत (राज्य) का राजनैतिक अभिकर्ता डी.एस. (जनपद मजिस्ट्रेट) – जिलाधिकारी या मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट को संबोधित अधिपत्र द्वारा अपराधी के समर्पण की मांग कर सकता है परन्तु वह अपराधी यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा

हो और अपराध ऐसा हो जो भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम की प्रथम अनुसूची में वर्णित हो।

धारा 10

ब्रिटिश भारत में मजिस्ट्रेट अपनी प्रेरणा से बिना किसी अधियाचन की संतोषप्रद सूचना या परिवाद पर गिरफ्तारी के वारंट जारी कर सकते हैं और अपराधी को उस राज्य जिसके अधिक्षेत्र में उसने अपराध किया था, को समर्पित कर सकते हैं।

ध्यान दीजिए – यह अधिनियम अधकिारों एवं उनके द्वारा संरक्षित प्रत्यर्पण के विशेष प्रावधानों के अधीन है।

प्रत्यर्पण, प्रत्यर्पण अधिनियम द्वारा नियमित होता है।

(ब) विदेशी राज्य – अपराध का परिदृश्य।

विदेशी राज्य की स्थिति में जहाँ इंग्लिश प्रत्यर्पण लागू होता है, अपराधी अधियाचन पर ऐसे विदेशी राज्य को समर्पित किया जा सकता है।

परन्तु

(i) भारत की सरकार या स्थानीय सरकार उपयुक्त समझती है,

(ii) यदि अपराध भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम की प्रथम अनुसूची में वर्णित में से एक है।

(iii) यदि अपराध राजनैतिक प्रकृति का नहीं है।

(स) *अधिराज्य* – अपराध का परिदृश्य।

प्रत्यर्पण निम्न से आंशिक रूप में शासित होता है –

(i) प्रपलायी अपराधियों का अधिनियम (संसदीय संविधि) एवं और भागत:

(ii) भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम द्वारा।

समग्र आपराधिक अधिक्षेत्र स्थानीय है : अपराध का अधिक्षेत्र उस देश से संबंधित होता है जहां अपराध किया गया था।

एल.आर. (1918) ए सी 458

अपराध विशुद्धत: स्थानीय है। अर्थात् उस स्थान की विधि पर निर्भर करता है जिसमें वह किया जाता है। उस अपराधी व्यक्ति की राष्ट्रीयता पर नहीं।

एल.आर. (1894) ए.सी. 670

ब्रिटिश भारतीय न्यायालयों का ब्रिटिश राज्य क्षेत्र के बाहर किए गए एवं पूर्ण हुए अपराधों के लिए एक विदेशी का विचारण करने की अधिकारिता नहीं। कोई भी विदेशी प्रजाजन ब्रिटिश भारत के बाहर किए गए अपराध के लिए ब्रिटिश भारत में विचारित नहीं किया जा सकता है।

28 अल 372: 2 बम्बई एल.आर. 337

जहां देशी राज्य के प्रजाजन ने उस राज्य में चोरी की और बाद में वह ब्रिटिश भारत

में चोरी की गई संपत्ति के साथ पाया गया, तो वहां ब्रिटिश भारतीय न्यायालय को उसे चोरी के अपराध के लिए विचारित करने की अधिकारिता नहीं थी। तो भी उसे चोरी की संपत्ति को रखने के अपराध में विचारित करने की अधिकारिता थी।

10, बम्बई 186

पाया गया – उसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति कहां खोजा गया, वरन् यह है कि वह वास्तव में कहां उपस्थित है, चाहे वह स्वयं अपने आप आता है या गिरफ्तार करके लाया जाता है।

6, बम्बई 622

इस धारा के अधीन विचारण इस तथ्य के कारण दूषित नहीं किया जाएगा कि अभियुक्त एक विदेशी राज्य क्षेत्र से अवैध गिरफ्तारी के अधीन ब्रिटिश भारत में लाया गया है।

13 बम्बई एल.आर. 296

धारा 106 एवं 107 खतरनाक झगड़ों के बारे में है

धारा 106 निम्नलिखित विषयों के बारे में है:-

कोई व्यक्ति धारा 143, 149, 153ए एवं 154 के अधीन दंडनीय अपराध से भिन्न भा.दं.सं. के अध्याय 8 के अधीन दंडनीय किसी अपराध या हमला या शांति भंग के अंतर्गत आने वाले अन्य अपराध या उसको या अपराधिक अभित्रास करने वाले अभियुक्त व्यक्ति को उत्तेजित करने वाले अभियुक्त, अभित्रास सिद्ध दोष है और ऐसा न्यायालय इस मत का है कि ऐसे व्यक्ति से शांति बनाए रखने के लिए बंधपत्र निष्पादित कराने की अपेक्षा करना आवश्यक है, ऐसा न्यायालय उसको दंडादेश करते हुए तीन वर्ष से अनाधिक ऐसी विधि के लिए जो वह नियत करना ठीक समझे उसके साधनों के अनुपात में रकम का बंधपत्र प्रतिभूतियों के सहित या बिना निष्पादित करने का आदेश देता है।

2. यदि दोष सिद्धि अपील करने पर या अन्यथा रद्द कर दी जाती है, तो इस प्रकार निष्पादित बंधपत्र शून्य हो जाएगा।

3. उच्च न्यायालय पुनरीक्षण में प्रतिभूति की मांग कर सकता है।

टिप्पणी – शांति भंग को अंतर्ग्रस्त करने वाले दो निर्वचन –

(1)ये शब्द उन अपराधों का निर्देश करते हैं जिनमें शांति भंग एक आवश्यक तत्व है और उन अपराधों को नहीं तो मात्र प्रकापन करते हैं। या जिनसे शांति भंग की ओर जाना संभाव्य है।

30 कलकत्ता 366 47 मद्रास 846 (848)

(2)ये शब्द उन अपराधों को सम्मिलित करते हैं जहां हैं जहां शांतिभंग होनी संभावित है।

यह बम्बई एवं इलाहाबाद उच्च न्यायालयों का मत है ताकि धारा 504 भा.दं.सं. को

शांति भंग का प्रकापन करने के आशय से अनादर एवं धारा 448 भा.दं.सं. (एक भूमि चिह्न का हटाया जाना) अन्तर्ग्रस्त करने वाले मामलों में बंधपत्र ठीक है।

धारा 107

जब कभी किसी दंड न्यायालय को सूचित किया जाए कि कोई व्यक्ति शांति भंग करने वाला या लोक प्रशांति में गड़बड़ी करने वाला है या कोई सदोष कार्य जो संभवतः शांति भंग या लोक प्रशांति विक्षुब्धि का कारण बन सकता है, मजिस्ट्रेट मत से यदि उसके होने के लिए पर्याप्त कारण है ऐसे व्यक्ति से कारण बताने की अपेक्षा कर सकेगा कि उसे एक बंधपत्र प्रतिभूतियों के सहित या प्रतिभूतियों के बिना एक वर्ष से अत्यधिक के लिए जो मजिस्ट्रेट उपयुक्त समझे, निष्पादित करने का आदेश क्यों न दे।

टिप्पण –

1. *सूचित किया जाता है।* सूचना विश्वसनीय हो। एक प्राइवेट व्यक्ति का कथन जो शपथ या सत्य प्रतिज्ञान पर न हो विश्वस्त सूचना नहीं है जिस पर अकेले मजिस्ट्रेट इस धारा के अंतर्गत सम्मन जारी कर सके। सूचना स्पष्ट एवं सुनिश्चित प्रकार की हो। प्रत्यक्षतः उस व्यक्ति को प्रभावित करने वाली जिसे सम्मन जारी किया जाता है, और ठोस तथ्य एवं विवरणों को प्रकट करना चाहिए, ताकि ऐसे व्यक्ति को सूचना मिल सके कि उसे किस चीज का सामना करना है।

6 इलाहाबाद 26

2. शांति भंग करने की संभावना वाला कार्य निश्चित रूप से सन्निकट हो ताकि यह किसी समय दी गई सूचना के समय सोच में होना दर्शाया जाए।
3. शांति भंग में परिणत होने वाला कार्य निश्चित रूप से दोषपूर्ण होना चाहिए।

ऐसे कार्य जो विधिपूर्ण अधिकारों के अनुपालन के समान हों, इस धारा के अधीन आदेश को आवश्यक बनाने के लिए दोषपूर्ण नहीं माने जाते हैं।

कोई कार्य जो विधिपूर्ण है, इसलिए अवैध नहीं हो जाता है कि कुछ व्यक्ति उसका विरोध करते हैं।

दोषपूर्ण कृत्य का अर्थ है एक निषिद्ध कार्य या दंडनीय घोषित कार्य या दंड विधि द्वारा दोषपूर्ण कार्य न कि मात्र अनुपयुक्त कार्य।

अर्थात्

गाय को मारना।

खुली सड़क पर गीत गाना – बैलेंडों का गाना।

मस्जिद में नमाज़ों में जोरदार आवाज़ में “आमीन” कहना।

धारा 108 भयावह प्रचार के बारे में है।

यह ऐसे व्यक्ति के बारे में है जो सीमाओं के अंतर्गत या बहिर्गत या तो मौखिक रूप से या लिखित रूप से या किसी अन्य युक्ति में साशय प्रचार करता है या प्रचार करने का प्रयास करता है या किसी प्रकार प्रचार को दुष्प्रेरित करता है।

(अ) कोई राजद्रोहात्मक विषय अर्थात् कोई विषय जिसका प्रकाशन धारा 174 अ. भा.दं.सं. के अधीन दंडनीय है।

(ब) कोई भी विषय जिसका प्रकाशन धारा 153-ए भा.दं.सं. के अन्तर्गत दंडनीय है। या

(स) न्यायाधीश से संबंधित कोई विषय जो भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अभित्रास या मानहानि के समान हो।

ऐसा मजिस्ट्रेट यदि उसकी राय में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, उस व्यक्ति से कारण बताने की अपेक्षा कर सकता है कि एक वर्ष से अनाधिक समय के लिए जैसा मजिस्ट्रेट नियम करने को उपयुक्त समझे, भूतियों के सहित या बिना बंधपत्र निष्पादित करने के आदेश क्यों न दे।

टिप्पण –

1. किसी भी उपाय से जैसे ग्रामोफोन के रिकॉर्डो द्वारा।
2. साशय निर्दोष अभिकर्ताओं एवं अबोध कार्यकर्ताओं अर्थात् पत्रों के लड़कों एवं दूसरों को जो केवल उठाई-धराई का काम करते हैं, अपवर्जित करेंगे।
3. लिखना नहीं वरन् प्रचार आवश्यक है। जब मामला समाचार पत्र के द्वारा प्रचारित किया जाता है तो संपादक, स्वामी, मुद्रक या प्रकाशक के विरुद्ध स्थानीय सरकार के आदेश के अतिरिक्त कोई अन्य कार्यवाही प्रक्रिया नहीं की जाएगी।

धाराएं 109 एवं 110 खतरनाक चरित्रों के संदर्भ में व्यवहार।

धारा 109 निम्नोक्त व्यक्तियों के संदर्भ में व्यवहार करती है।

(अ) मजिस्ट्रेट की स्थानीय सीमाओं के अंतर्गत अपनी उपस्थिति को छुपाने के लिए सावधानी बरतने वाला व्यक्ति और यह विश्वास करने का कारण कि ऐसा व्यक्ति ऐसे पूर्वोपाय कोई अपराध करने के दृष्टिकोण से कर रहा है।

(ब) व्यक्ति जो अपनी जीविका के प्रकट साधन नहीं रखता है या जो अपने विषय में संतोषजनक परिकलन नहीं देता है।

इन वादों में बंध पत्र एक वर्ष के लिए हो सकता है :-

(1) छिपाना अपराध कारित करने की दृष्टि से हो।

(2) जीविका के प्रकट साधन।

धनहीन या बिना धंधे के होना जीवनयापन के प्रकट साधन बिना होना नहीं है।

53 कलकत्ता 347 विक्टर बनाम सम्राट

धारा 110 आभ्यासिक अपराधियों के निम्नलिखित विषयों के बारे में है।

(1) अभ्यासतः लूट करने वाला, सेंध मारने वाला चोर या कूटकारी या

(2) अभ्यासतः चोरी की संपत्ति, यह जानते हुए कि वह चोरी की संपत्ति है, को प्राप्त करने वाला या

(3) अभ्यासतः चोरों को रक्षित करता या ठहराता है या चोरी की संपत्ति के संगुप्तन या विक्रय में सहायता करता है, या

(4) आभ्यासिक अपराधियों की दशा में बंधपत्र 3 वर्षों के लिए हो

धारा 121

ऐसे व्यक्तियों को शांति बनाए रखने या अच्छा व्यवहार करने को बाध्य करने की अंगीकृत विधा, उनसे शांति रखने या सदाचार के लिए प्रतिभूति की मांग एक निश्चित समयावधि के लिए करना है।

शांति बनाए रखने या सदाचार के बीच बंधपत्र का अंतर।

1. शांति रखने का बंधपत्र, किसी अपराध के करने से सहमत नहीं होगा। किन्तु केवल ऐसे अपराध के करने से जिससे परिणामतः शांति होना संभाव्य है।
2. अच्छे व्यवहार के लिए किया गया बंधपत्र किसी कारावास के दंडनीय अपराध के किए जाने पर समहृत हो जाता है।

बंधपत्र-भंग पर प्रक्रिया। जब कोई व्यक्ति अपराध के लिए दंडित होने से बंधपत्र समहृत कर देता है तो समहृत बंधपत्र की रकम वसूली जा सकती है, किन्तु उसे तुरन्त बंधपत्र के अव्यतीत काल के कारण कारावास नहीं भेजा जा सकता है। मजिस्ट्रेट का उपचार इस अध्याय के अधीन नवीन कार्यवाही करना है।

मजिस्ट्रेट द्वारा, पुनर्संज्ञान को भंग करने वाले अभियुक्त पक्ष को उन साक्षियों का जिसके साक्ष्य पर कारण बताओ न्यायादेश द्वारा जारी किया गया है, का प्रतिपरीक्षण करने का अवसर दिए बिना समहृत किया जाना न्यायोचित कार्यवाही नहीं है।

प्रतिभूति जमानत सहित या जमानत बिना एक वैयक्तिक प्रतिभूति हो सकती है।

मजिस्ट्रेट को प्रतिभूतियों के वर्ग को परिभाषित करने का अधिकार है, अर्थात् भूमिधारक आदि।

धारा 122

मजिस्ट्रेट किसी भी प्रतिभूति को स्वीकृत करने से इंकार कर सकता है या उसके या उसके पूर्वाधिकारी द्वारा पूर्व में स्वीकृत किसी प्रतिभूति को इस आधार पर निरस्त कर सकता है कि बंधपत्र के प्रयोजन के लिए ऐसा प्रतिभूति अनुपयुक्त व्यक्ति है।

उपयुक्ता के बारे में जांच भी होनी होती है।

योग्यता की परीक्षा यह है कि क्या प्रतिभू जिसके लिए उसने प्रतिबद्धता की है, उस

पर उसका उचित नियंत्रण है? केवल आर्थिक योग्यता ही उसकी योग्यता की परीक्षा नहीं है। प्रतिभूति की आवश्यकता का उद्देश्य मान्यताओं को जब्त करके क्राउन के लिए धन प्राप्त करना नहीं है, अपितु यह सुनिश्चित करना है कि मुलज़िम का अच्छा व्यवहार होना चाहिए।

प्रतिभू अनुपयुक्त है, यदि वह अन्यत्र रहता था।

बम्बई उच्च न्यायालय के अनुसार यह पर्याप्त है यदि वे शोध क्षम्य एवं सम्माननीय है।

22 बम्बई एल.आर. 190

अभियुक्त को नियंत्रित करने की योग्यता वांछनीय शर्त नहीं है।

धारा 126

प्रतिभू किसी भी समय अपने बंधपत्र को निरस्त करने के लिए आवेदन कर सकता है।

प्रतिभू का दायित्व

प्रतिभू का दायित्व बंधपत्र का उल्लंघन होने पर उद्भूत होता है जो पुनः मुख्य व्यक्ति की दोषसिद्धि पर निर्भर करता है।

सम्यक व्यवहार एवं शांति सामान्य विषय है और बहुत से अपराधों को अन्तर्विष्ट करते हैं। ऐसा होने पर यह अभिनिर्धारण करना अनुचित होगा कि प्रतिभू मुख्य व्यक्ति के प्रत्येक कल्पनीय अपराध के लिए जिम्मेदार है।

वे ऐसे अच्छे आचरण के लिए दायित्व को निर्दिष्ट करते हैं, जैसा उन परिस्थितियों में जिनके अंतर्गत प्रतिभूति मांगी गई थी।

प्रक्रिया

धारा 112

जब मजिस्ट्रेट ऐसी धारा के अधीन किसी व्यक्ति से कारण दर्शाने की अपेक्षा करना आवश्यक समझता है तो वह लिखित रूप से आदेश करेगा। प्राप्त सूचना के सार को व्यवस्थित करते हुए, निष्पादित किए जाने वाले बंधपत्र की रकम, वह समय जब तक लागू रहता है, और यदि कोई अन्य वांछित हो तो प्रतिभूओं की श्रेणी एवं आचरण।

धारा 113

यदि व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित है तो वह उसके लिए पढ़ा जाएगा या यदि वह ऐसी इच्छा करता है तो उसका सारांश उसको समझाया जाएगा।

धारा 114

यदि वह उपस्थित नहीं है तो सम्मन जारी किया जाएगा।

यदि तुरन्त शांति भंग का भय है तो वारंट जारी किया जा सकता है।

धारा 115

आदेश की प्रति उस सम्मन के साथ होगी।

धारा 116

वैयक्तिक उपस्थिति से छूट देने की शक्ति।

धारा 117

सूचना की सत्यता के बारे में जांच

जब व्यक्ति उपस्थित है तो मजिस्ट्रेट सूचना की सत्यता, जिस पर वाद लिया गया है की जांच करने के लिए अग्रसर होगा और ऐसा साक्ष्य लेगा जैसा आवश्यक हो।

यदि धारा 107 के अधीन कार्यवाही की जाती है तो प्रक्रिया सम्मन वाद की होगी।

यदि कार्यवाही धाराओं 108, 109, 110 के अधीन की जाती है तो यह वारंट वाद जैसा होगा सिवाय इसके कि आरोप लगाना आवश्यक नहीं होगा।

जांच लंबित रहते हुए मजिस्ट्रेट यदि समझता है कि अभिलिखित कारणों से तुरन्त कार्यवाही करना आवश्यक है, तो उस व्यक्ति को जांच के समापन के लिए बंधपत्र निष्पादित करने के लिए निदेश करेगा।

धारा 118

यदि ऐसी जांच करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि बंधपत्र आवश्यक है तो मजिस्ट्रेट तदनुसार आदेश करेगा।

परन्तु –

1. आदेश उससे भिन्न नहीं होगा जो उस व्यक्ति को दिया गया था।
2. प्रत्येक बंधपत्र की धनराशि अत्यधिक नहीं होगी।
3. यदि वह व्यक्ति अवयस्क है तो बंधपत्र केवल उसके प्रतिभूओं द्वारा निष्पादित किया जाएगा।

धारा 119

यदि यह सिद्ध नहीं किया जाता है कि वह शांति या अच्छा व्यवहार रखने के लिए आवश्यक है तो मजिस्ट्रेट यदि वह अभिरक्षा में है तो उसे मुक्त करेगा या इस आशय की प्रविशिष्ट करते हुए उसे रिहा करेगा।

जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही की जाती है क्या वह एक अभियुक्त व्यक्ति है?

इस प्रश्न पर मतवैभिन्य है। कुछ वादों में यह माना गया है कि वह अभियुक्त व्यक्ति है।

अन्य वादों में यह माना गया है कि वह अभियुक्त व्यक्ति नहीं है।

बम्बई एल.आर. 27

धाराएं स्वत: स्पष्ट हैं।

इस प्रकार के पदों का जैसे व्यक्ति ऐसे व्यक्ति आदि का सुविचारित प्रयोग और अभियुक्त व्यक्ति, जो सूचित है, व्यक्ति जो कारण दर्शाने के लिए अपेक्षित है अभियुक्त

शब्द से सोच समझकर बचा गया है।

ऐसा होने पर उसे शपथ दिलाई जा सकती है और परीक्षित एवं प्रति परीक्षित किया जा सकता है।

धारा 120

प्रतिभूति की अवधि दंडादेश के समाप्त होने पर आरंभ होगी यदि कोई व्यक्ति उस समय पर उसे भोग रहा था।

अन्य मामलों में वह आदेश के दिनांक से प्रारंभ होगी जब तक कि मजिस्ट्रेट एक बाद की दिनांक पर्याप्त कारणों से नियत न करे।

धारा 123

प्रतिभूति देने में असफल होने पर यदि पहले से ही कारागार में हैं तो वह ऐसा विधि के समाप्त होने तक या ऐसे समय के अंतर्गत जब तक वह न्यायालय या मजिस्ट्रेट जिसने आदेश किया था को प्रतिभूति नहीं देता है तब तक कारागार में ही रखा जाएगा।

2. जब प्रतिभूति की समयावधि एक वर्ष से अधिक है और प्रतिभूति देने में असफल है, तो मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश या उच्च न्यायालयों जिसको भी वाद प्रस्तुत किया जाना है, को लंबित करते हुए उसे कारागार में बंद रखने का आदेश करेगा।

सत्र न्यायाधीश या उच्च न्यायालय तीन वर्षों से अधिक कारावास के सिवाए कोई भी आदेश पारित कर सकता है।

3. जब किसी व्यक्ति का मामला निर्देशित किया जाता है तो संयुक्त रूप से विचारित अन्य व्यक्तियों के मामले भी भेजे जाते हैं। किन्तु उनकी समयावधि को बढ़ाया नहीं जाएगा।

कारावास

शांति बनाए रखने के लिए प्रतिभूति देने में असफलता पर सादा। धारा 108 एवं 109 के अधीन सदाचरण के लिए सादा। धारा 110 के अधीन कठिन।

धारा 124

1. डी.एम. (जिला मजिस्ट्रेट) या प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, किसी व्यक्ति के प्रतिभूति देने में असफल हो जाने पर, यदि उसका मत है कि उसे समाज या अन्य व्यक्ति के प्रति बिना जोखिम के मुक्त किया जा सकता है, तो आदेश कर सकता है।
2. जिला मजिस्ट्रेट या प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट प्रतिभूति की धनराशि या प्रतिभूओं की संख्या या समयावधि जिसके लिए प्रतिभूति अपेक्षित की गई है, को कम भी कर सकता है।

3. किसी व्यक्ति का उन्मोचन सशर्त या बिना शर्त हो सकता है।

जब समयावधि समाप्त हो जाती है तो शर्त नहीं रहेगी।

मुक्ति का आदेश निरस्त किया जा सकता है यदि प्रतिबंधिता (शर्त) पूरी नहीं की जाती है।

जब सशर्त आदेश निरस्त किया जाता है, तो ऐसा व्यक्ति किसी पुलिस अधिकारी द्वारा बिना वारंट गिरफ्तार किया जा सकता है और वह जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

जब तक वह मौलिक आदेश की शर्तों के अनुसार प्रतिभूति नहीं देता है तब तक जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट ऐसे व्यक्ति को असमाप्त भाग के अधीन कारावास के लिए प्रतिप्रेषित कर सकता है।

यदि वह उसके बाद मौलिक आदेश की शर्तों में प्रतिभूति देता है तो उसे रिहा किया जा सकता है।

कतिपय बाध्यताओं के प्रवर्तन विषयक कार्यवाहियां

(पृष्ठ खाली छूटा - संपादक)

धारा 9 प्रपलायी अपराधी अधिनियम, 1881

उन अपराधों को वर्णित करता है जिनमें एक अधिक्षेत्र से फरार अपराधी समर्पित किया जा सकता है।

धारा 19 (द) भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम

भी ऐसे अपराधों को वर्णित करता है जिनमें एक अधिराज्य से अपराधी समर्पित किया जा सकता है।

क्षेत्रीय अधिकारिता के विषय में।

उसको प्रत्यर्पित करने के बजाए, क्या ब्रिटिश भारत में ब्रिटिश भारत के बाहर कारित अपराध के लिए विचारण किया जा सकता है?

धारा 188

उत्तर है - हां। परन्तु

(1) वह हिज मजेस्टी की देशी भारतीय प्रजा हो।

(2) वह ब्रिटिश प्रजा है और किसी देशी राजा या प्रमुख की सीमाओं के भीतर अपराध करता है।

(3) वह हिज मजेस्टी का सेवक है (चाहे वह ब्रिटिश जन है या नहीं) और अपराध किसी देशी राजा या प्रमुख की सीमाओं में किया।

(4) ऐसा अपराधी ब्रिटिश भारत में पाया जाए।

ध्यान दीजिए - धारा 188 विदेशी सीमाओं में कारित अपराधों के विचारण के लिए

अधिकारिता प्रदान करती है, किन्तु समुद्रों पर नहीं।

19 बम्बई एल.आर. 527

* * * * *

वह क्या है जिसका संज्ञान लिया जाता है?

जिसका न्यायालय संज्ञान लेता है वह अपराध है न कि यह तथ्य कि विशेष व्यक्ति उस अपराध को कारित किए जाने के लिए अभिकथित हैं।

कारण:-

(1) जब कार्यवाहियों के दौरान जिन्हें उपयुक्त रूप से लिए गए संज्ञान से न्यायालय ने आरंभ किया है यह प्रकट होता है कि वह व्यक्ति उस या उनसे जो जब संज्ञान लिया गया था अपराधी अभिकथित थे या प्रकट हो रहे थे, से भिन्न है तब न्यायालय इन नवीन अभियुक्तों को आदेशिक निर्गत कर सकता है और उनके साथ ठीक वैसे ही व्यवहार कर सकता है जैसे कि वह व्यक्ति या व्यक्तियों के प्रति आदेशिका निर्गत कर सकता है एवं व्यवहार कर सकता है जो मूलत: वर्णित थे।

(2) वस्तुत: न्यायालय तब भी संज्ञान ले सकता है जब अपराधी पूर्णत: अज्ञात है और तब जैसे ही जांच या अन्वेषण दर्शाता है कि ऐसा साक्ष्य व्यक्ति को अनुवीक्ष्ण पर रखने को न्यायोचित ठहराता है, के बाद यथाशीघ्र आदेशिका निर्गत कर सकता है।

(3) पुन: यदि मजिस्ट्रेट कोई मामला अंतरण पर प्राप्त करता है जिसका उसने संज्ञान नहीं लिया है अपने प्राधिकार पर, उन सबके विरुद्ध जिन्हें किसी स्तर पर साक्ष्य दर्शाता है कि संभवत: अपराधियों के रूप में हो, आदेशिका जारी कर सकता है।

संज्ञान के लिए वर्जन

1. धारा 337 - एक इकबाली गवाह।

दंड न्यायालयों की शक्तियां।

इस विषय का उल्लेख तीन विभिन्न शीर्षों के अंतर्गत किया जा सकता है।

(1) अपराध के संज्ञान लेने की शक्ति।

(2) आपराधिक विषय में वादकालीन आदेश पारित करने की शक्ति।

(3) दंड देने की शक्ति।

1. अपराध के संज्ञान लेने की शक्ति।

क्या कोई न्यायालय अपराध का संज्ञान ले सकता है: यह निम्न बातों पर निर्भर करता है:-

(अ) न्यायालय की प्रस्थिति।

(ब) अपराधी की राष्ट्रीयता पर।

(स) इस बात पर कि क्या अभियुक्त जज या मजिस्ट्रेट के हाथों न्याय पाएगा।

(अ) न्यायालय की प्रस्थिति।

धारा 6

दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार ब्रिटिश भारत में दंड न्यायालयों की पांच श्रेणियां होंगी।

(i) सत्र न्यायालय

(ii) प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट

(iii) प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट

(iv) द्वितीय श्रेणी मजिस्ट्रेट

(v) तृतीय श्रेणी मजिस्ट्रेट

इसके साथ उच्च न्यायालय अवश्य जोड़ लेना चाहिए।

(i) दंड संहिता के अधीन अपराधों के संबंध में।

धारा 28

1. उच्च न्यायालय भारतीय दंड संहिता के अधीन किसी भी अपराध का विचारण कर सकता है।
2. न्यायालय भारतीय दंड संहिता के अधीन किसी भी अपराध का विचारण कर सकता है।
3. किन्तु अन्य मजिस्ट्रेटों के संबंध में वे केवल ऐसे अपराधों का संज्ञान ले सकते हैं जिन्हें वे दंड प्रक्रिया संहिता की द्वितीय अनुसूची के आठवें स्तंभ में धारित प्रावधानों (उपबंधों) के द्वारा करने के लिए सशक्त हैं।

धारा 29

(ii) अन्य विधियों के अधीन अपराधों के संबंध में।

(1) यदि विधि न्यायालय को वर्णित करती है तो अन्य कोई भी न्यायालय अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता है।

(2) यदि विधि न्यायालय को वर्णित नहीं करती तब,

(अ) वह उच्च न्यायालय द्वारा विचारित किया जा सकता है या

(ब) वह भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की दूसरी अनुसूची के स्तंभ (कालम) आठ के अंतर्गत शीर्षक "अन्य विधियों के विरुद्ध अपराध" में वर्णित न्यायालय द्वारा विचारित किया जा सकता है।

धारा 29-अ

(ब) अपराधी की राष्ट्रीयता

यदि अपराधी एक यूरोपीय ब्रिटिश जन है तो मजिस्ट्रेट द्वितीय या तृतीय श्रेणी रु.

50/– से अधिक के लिए अन्यथा दंडनीय अपराध के लिए विचारित नहीं कर सकते।

यदि अपराध ऐसा है कि वह कारावास से दंडनीय नहीं है शास्ति (जुर्माने) से दंडनीय है और शास्ति रु. 50/– से अधिक नहीं है, तब वह मजिस्ट्रेट द्वितीय या तृतीय श्रेणी द्वारा विचारित किया जा सकता है।

किन्तु यदि वह कारावास दंडनीय है या रु. 50/–से अधिक शास्ति से दंडनीय है तो वह उनके द्वारा विचारित नहीं किया जा सकता है।

ध्यान दीजिए – यह इसलिए है यदि यूरोपीय ब्रिटिश जन विशेषाधिकारों के परे एक शक्तिगत सिद्धांत द्वारा उसको दिए गए विशेषाधिकारों का दावा करता है।

1923 से पूर्व परिभाषा निम्नानुसार थीः–

यूरोपीय ब्रिटिश जन का अभिप्राय है (i) हिज मजेस्टी का कोई प्रजाजन यू के (आंगल संयुक्त राज्य) या किसी यूरोपीय, अमरीकी या ऑस्ट्रेलियाई उपनिवेशों में या हिज मजेस्टी के अधिक्षेत्रों, या न्यूजीलैंड के उपनिवेश में या केप ऑफ गुड होप के उपनिवेश में या नेटाल में जन्में देशीयकृत आवासित है (ii) कोई शिशु या पौत्र ऐसे लोगों के औरस वंशानुगत।

अधिवास – वह स्थान जहां व्यक्ति का घर है, जिसके लिए व्यक्ति वापस लौटता है। अधिवास तीन प्रकार का होता है –

(1) जन्म से

(2) चयन से

(3) विधि प्रवर्तन से (अर्थात् पत्नी अपने पति का अधिवास अर्जित करती है।

धारा 195

न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों के बारे में है।

सामान्य नियम

मजिस्ट्रेट व्यक्ति को अपने ही प्राधिकार के संबंध में कारित न्यायालय के अवमान के लिए दोष सिद्ध नहीं कर सकता है, एक दूसरे मजिस्ट्रेट के लिए उपापर्ण आवश्यक है। न्यायालय जिसके समक्ष अपराध किया गया था और जिसके द्वारा प्रारंभिक जांच की गई थी, धारा 476 के अधीन मामले का विचारण नहीं करना चाहिए।

धारा 480

जब न्यायालय की दृष्टि में अपराध किए जाएं तो न्यायालय अपराध का विचारण कर सकता है। जब अपराध –

175 लोक सेवक को प्रस्तुत करने के लिए आबद्ध द्वारा विलेख को प्रस्तुत करने में विलोप

178 शपथ या प्रतिज्ञान लेने से इंकार करना

179 प्रश्न करने के अधिकृत लोक सेवक को उत्तर देने से इंकार करना

180 एक कथन पर हस्ताक्षर करने से इंकार करना

228 न्यायिक हैसियत में बैठे लोक सेवक का साशय अपमान या विघ्न

धारा 485

उत्तर देने से इंकार करने वाले या विलेख को प्रस्तुत न करने वाले साक्षी का 7 दिन का कारावास या ‍ ‍ापर्ण

यूरोपीय ब्रिटिश प्र जन के द्वारा पहले से प्राप्त विशेषाधिकारों एवं विशेषाधिकार जिन्हें वह अब उपभोग करता है, सुविधा के लिए देखो वुडरोफा दंड प्रक्रिया (1926) पृष्ठ 516-519

धारा 4(1) यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजन से अभिप्रेत है -

(1) ब्रिटिश द्वीपों या किसी उपनिवेश में जन्मा देशीयकृत या अधिवासित यूरोपीय वंशज या हिज मजेस्टी का कोई प्रजाजन या

(2) हिज मजेस्टी का कोई प्रजाजन जो विधिसम्मत आनुवांशिकता से ऐसे व्यक्ति का पुत्र - या पौत्र है।

खंड-1 के आवश्यक तत्त्व

(1) यूरोपीय वंशज ब्रिटिश द्वीपों या किसी

(2) पुरुष पंक्ति में उपनिवेश में

(3) जन्मा

देशीय कृत

अधिवासित

ब्रिटिश द्वीपों या किसी उपनिवेश में।

खंड-2 के अनिवार्य तत्त्व - कोई व्यक्ति स्वयं जन्मा, देशीयकृत या अधिवासित नहीं हो सकता है। किन्तु वह ऐसे व्यक्ति का पुत्र हो सकता है। खंड 2 के अधीन यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजन के विशेषाधिकारों का दावा करने वाला सिद्ध करे -

1. विधिसम्मत वंशज
2. अपने पिता या पितामह की राष्ट्रीयता।

6 एम.एच.सी.आर. - 7 टर्नबुल

* * * * * * * *

III इस पर निर्भर करता है कि क्या अभियुक्त न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट के हाथों न्याय पाएगा। यदि न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट स्वयं परिवादी है तो न्याय पाने का कोई अवसर पाना मुश्किल है। विधि का सिद्धान्त है कि किसी भी मामले में कोई अभियोगी न्यायाधीश नहीं होगा। यह सिद्धान्त निम्न धारा में लेखाबद्ध है -

धारा 487

(1) धारा 480 एवं 485 में यथावधानित के सिवाए किसी दंड न्यायालय का कोई न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के अलावा, किसी व्यक्ति को धारा 195 में निर्दिष्ट अपराध के लिए ऐसे न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट के रूप में न्यायिक प्रक्रिया के अनुक्रम में विचारित नहीं करेगा जबकि ऐसा अपराध स्वयं उसके समक्ष कारित हुआ है या उसके प्राधिकार के अवमान में या उसकी जानकारी में लाया जाता है।

(2) धारा 476 या 482 में कोई बात सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय के लिए उपार्पण को अधिकृत सशक्त मजिस्ट्रेट को ऐसे न्यायालय को किसी वाद को स्वयं उपार्जित करने से नहीं रोकेगी।

टिप्पण –

धारा 195 न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों के बारे में है।

धारा अभिव्यक्त करती है कि यदि ऐसा अपराध न्यायाधीश के समक्ष कारित या उसके प्राधिकार के अवमान में किया गया है और उसके प्रज्ञान में लाया जाता है और उसके द्वारा विचारित नहीं किया जाएगा।

जब तक कि मामला धारा 480 एवं 485 के अंतर्गत नहीं उठता है।

अवमान किया गया कोई कार्य या प्रकाशित किया गया लेख जिसका उद्देश्य न्यायालय या न्यायाधीश को अवमान में लाना है या उसके प्राधिकार को निम्न करना है या न्याय के साथ उचित क्रम में या न्यायालय को विधिपूर्वक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करना है।

नवियांबेग 10 बी.एच.सी.आर. 73

न्यायाधीश – 1872 की संहिता में न्यायालय शब्द के बदले इस शब्द का निवेशन अयोग्यता को वैयक्तिक बनाता है और किसी अधिकारी विशेष के पद पर उत्तरवर्ती अब ऐसा विचारण कर सकता है।

मजिस्ट्रेट में प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट सम्मिलित है।

12 सी.डब्ल्यू.एन. 246

विचारण में अपील की सुनवाई सम्मिलित है।

चूंकि ऐसा न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट का अभिप्राय है कि दंड न्यायालय के न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट की हैसियत से विचारण नहीं कर सकता है। यदि यही विषय उसके समक्ष किसी अन्य हैसियत में आता तो वह विचारण कर सकता है।

सामर्थ्य की समरूपता से सुभिन्न वैयक्तिक समरूपता। धारा सामर्थ्य की समरूपता पर आधारित है।

16 कलकत्ता 776 ब

18 बंबई 380 ब

प्रतिकूल – 1 मद 305 – अयोग्यता वैयक्तिक समरूपता पर आधारित है।

धारा 556

कोई भी न्यायाधीश उस न्यायालय जिसमें उसके न्यायालय से एक अपील लंबित है की अनुज्ञा के सिवाए किसी वाद या जिसमें वह पक्ष है, या व्यक्तिगत रूप से हितबद्ध है, का विचारण या विचारण के लिए उपार्पण नहीं करेगा और कोई भी न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट स्वयं अपने द्वारा किए गए निर्णय या पारित आदेश की अपील नहीं सुनेगा।

स्पष्टीकरण – न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट इस धारा के अर्थ के अंतर्गत किसी मामले में केवल इस कारण एक पक्ष या हितबद्ध नहीं समझा जाएगा कि वह एक नगरपालिका उपायुक्त है या अन्यथा लोक हैसियत में सम्बद्ध है या केवल इस कारण कि वह उस स्थान जिसमें अपराध का किया जाना आरोपित है को देखा था या किसी अन्य स्थान जिसमें वाद के लिए तात्विक संव्यवहार का घटित होना आरोपित है और मामले के संबंध में जांच की थी।

पक्षकार –

वैयक्तिक हितबद्ध से मात्र बौद्धिक हित का विवक्षित नहीं है। यह उस व्यक्ति द्वारा जो वाद में हितबद्ध कहा जाता है के लाभ कमाने या किसी क्षति या अलाभ से बचने की प्रत्याशी की प्रकृति की कोई बात विवक्षित है।

8 बम्बई एल.आर. 947

आर्थिक हित

कोई मजिस्ट्रेट जो उस कंपनी का अंशधारक है जो वाद में परिवादी है, वाद में विचारण करने के अयोग्य है।

20 बम्बई 502

मजिस्ट्रेट को एक दंडनीय वाद जिसमें उसका ऋणी व्यक्ति या तो परिवादी या अभियुक्त के रूप में संबंधित है विचारित नहीं करना चाहिए।

संबंध –

मजिस्ट्रेट जो परिवादी का सेवक है अयोग्य होगा।

7 कलकत्ता 322 : 10 कलकत्ता 194

मजिस्ट्रेट जो परिवादी का स्वामी है, अयोग्य नहीं होगा।

9 बम्बई 172

मजिस्ट्रेट जो परिवादी का पति है, अयोग्य होगा।

14 बम्बई 572

487 एवं 556 के बीच अंतर

1. धारा 487 उच्च न्यायालय को अयोग्य नहीं मानती है, धारा 556 मानती है।

2. धारा 487 उपार्पण को अयोग्य नहीं ठहराती है। धारा 556 ठहराती है।

556 एवं 526 (अंतरण) के बीच भिन्नता

वादों में अत्यधिक भ्रामकता है।

अपराध का संज्ञान लेना न कि अपराधी का।

* * * * *

धारा 129 – मजिस्ट्रेट को एक अवधिपूर्ण जमाव को तितर-बितर करने जिसे अन्यथा विक्षेपित नहीं किया जा सकता, जबकि उसको लोक रक्षा के लिए तितर-बितर करना आवश्यक है, सैन्यबल को बुलाने के लिए सशक्त करता है।

(II) आम दंड के मामले में वादकालीन आदेश पारित करने की शक्ति।

धारा 36

1. साधारण शक्तियां

दंड प्रक्रिया संहिता की तृतीय अनुसूची में वर्णित है। वे मजिस्ट्रेट की श्रेणी के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।

2. अतिरिक्त शक्तियां

स्थानीय सरकार या जिला मजिस्ट्रेट किसी उपखंड मजिस्ट्रेट या प्रथम, द्वितीय या तृतीय श्रेणी मजिस्ट्रेट को कतिपय अतिरिक्त शक्तियों से निर्विष्ट कर सकता है। वे दंड प्रक्रिया संहिता की चतुर्थ अनुसूची में वर्णित हैं। वे मजिस्ट्रेट की श्रेणी के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।

ऐसी शक्तियों के प्रयोग का ढंग

धारा 107 (3) जब मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने का कारण हो कि कोई व्यक्ति शांति भंग या लोक प्रशांति को अस्तव्यस्त कर सकता है, और ऐसी शांति भंग या अस्तव्यस्तता का होना रोका नहीं जा सकता है तो मजिस्ट्रेट उसकी गिरफ्तारी के वारंट जारी कर सकता है। वह अपने कारण अभिलिखित करेगा।

न्यायालय ऐसे दंडादेश दे सकता है जो विधि द्वारा अधिकृत है। यदि अपराधी न्यायालय से अपने लिए विधि की अपेक्षा के स्थान पर ऐसा दंडादेश देने के लिए कहता है जिसे विधि अनुमत नहीं करती है तो ऐसा दंडादेश विधि मान्य नहीं होगा।

3 बी.एल.आर. – 50

लघुकरण दंड संहिता की धारा 59 इंगित करती है कि किन वादों में कारावास के स्थान पर निर्वासन का दंडादेश किया जा सकता है।

कारावास के स्थान पर निर्वासन केवल सारवार दंड के रूप में प्राधिकृत है। नौ वर्षों के निर्वासन एवं रु. 300/- का जुर्माना और अनअदायगी पर 3 वर्षों का और आगे निर्वासन का दंडादेश आदेश के परवर्ती भाग के संबंध में अनुपयुक्त है।

5 मद्रास 28

III. दंड की शक्तियां

भारतीय दंड संहिता की धारा 53 द्वारा निर्धारित अपराध के लिए दंड निम्नलिखित है:-

I. मृत्यु

(अ) जो धारा 121, 132, 194, 302, 305, 307, 396 में दी जा सकती है।

(ब) जो निश्चित धारा 303 (एक आजीवन अपराधी द्वारा कारित हत्या) में दी जा सकती है।

II. निर्वासन - कालापानी

(i) आजीवन

(अ) जो धारा 75, 125, 128 में दिया जा सकता है।

(ब) जो धारा 226, 311 में निश्चित रूप से दिया जाना चाहिए।

(ii) किसी भी अवधि के लिए -

(अ) जो धारा 121-अ, 124-अ में दिया जा सकता है।

(ब) धारा 59 के अन्तर्गत जो सात साल से कम एवं उस अवधि से ज्यादा नहीं है, जिसके लिए अपराधी को कारावास हो सकता था, दिया जा सकता है।

III. दांडिक अधिसेविता

जो तब दिया जाए, जब कोई यूरोपीय या अमरीकी निर्वासन के दंडनीय अपराध के लिए सिद्ध दोष हो। धारा 59

4. कारावास

1. जो 14 वर्षों से अनाधिक किसी भी अवधि के लिए हो सकता है।
2. वह सादा हो सकता है, या
3. वह कठोर हो सकता है।

1921 के अधिनियम सं. 16 की धारा 4 द्वारा निरसित

5. (i) समग्र संपत्ति का समपहरण

(अ) जो धारा 62 में किया जा सकता है।

(ब) जो धारा 121, 122 में किया जा सकता है।

(ii) विशिष्ट संपत्ति का समपहरण

(अ) जो धारा 126, 127 में किया जा सकता है।

(ब) जो धारा 169 में अवश्य किया जाना चाहिए।

* * * * * * * *

पुनरीक्षण अधिकारिता

सिविल प्रक्रिया संहिता
धारा 115

उच्च न्यायालय ऐसे उच्च न्यायालय के अधीन किसी न्यायालय से किसी भी मामले का अभिलेख मंगवा सकता है और जिसमें उसके संबंध में कोई अपील नहीं हो सकती और यदि अधीनस्थ न्यायालय प्रकट होता है-

अ) विधि द्वारा अनिविष्ट न्यायाधिक्षेत्र का निष्पादन करने वाला है, अथवा

ब) इस प्रकार निविष्ट एक न्यायाधिक्षेत्र के निष्पादन करने में असफल रहने वाला है, अथवा

स) अपने न्यायाधिक्षेत्र में अवैधत: या भौतिक अनियमितत: कार्य करने वाला है, उच्च न्यायालय, 'वाद' में ऐसा आदेश कर सकता है, यदि वह उपयुक्त समझे।

दंड प्रक्रिया संहिता
धारा 435

1) उच्च न्यायालय या कोई सत्र न्यायालय या जनपद मजिस्ट्रेट या कोई परगना मजिस्ट्रेट में प्रांतीय सरकार द्वारा अधिकृत, किसी अवर दंड न्यायालय में अपने न्यायाधिक्षेत्र की स्थानीय सीमाओं में स्थित रहकर किसी प्रक्रिया के अभिलेख को मंगवा सकता है, अपने किसी प्रयोजन की शुद्धता या प्राथमिकता के उद्देश्य हेतु किसी निष्कर्ष के किसी दंडादेश का निष्पादन निलंबित हो और यदि अभियुक्त बंदीगृह (हवालात) में है कि वह अभिलेख के परीक्षण के लंबित होने के क्रम में प्रतिभूति पर रिहा किया जाए या उसके अपने मुचलके पर रिहा किया जाए।

सिविल प्रक्रिया संहिता	दंड प्रक्रिया संहिता

स्पष्टीकरण

सभी मजिस्ट्रेट मौलिक या अपीलीय न्यायाधिक्षेत्र को निष्पादित करते हुए सत्र न्यायालय से अवर (न्यायालय) समझे जाएंगे। इस उपधारा और धारा 437 के प्रयोजनों हेतु।

यदि कोई प्रभागीय मजिस्ट्रेट उपधारा 1 के अधीन विचार करता है कि ऐसा कोई निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश अवैध या अनुपयुक्त है या कि कोई ऐसी प्रक्रिया अनियमित है, वह अभिलेख को, ऐसी टिप्पणी के साथ जिसे वह उपयुक्त समझे, जनपद मजिस्ट्रेट को अग्रसारित करेगा।

* * * * *

(4) यदि आवेदन इस धारा के अधीन या तो सेशन न्यायाधीश या जिला मजिस्ट्रेट को किया जाता है तो कोई और अन्य आवेदन उनमें से किसी अन्य के द्वारा विचारित नहीं किया जाएगा।

धारा 436

धारा 435 के अधीन या अन्यथा किसी अभिलेख का परीक्षण कर लेने पर उच्च न्यायालय अथवा सेशन न्यायाधीश जिला मजिस्ट्रेट को उसके स्वयं के द्वारा या उसके किसी अधीनस्थ के द्वारा उसको निर्देशित कर सकता है और जिला मजिस्ट्रेट स्वयं या किसी अधीनस्थ मजिस्ट्रेट को किसी ऐसे परिवाद पर, जो धारा 203 अथवा धारा 204 की उपधारा (3) के अंतर्गत खारिज कर दिया गया है अथवा अपराध के आरोपी किसी व्यक्ति के वाद में जो विमुक्त कर दिया गया है, आगे जांच के लिए निर्देशित कर सकता है।

सिविल प्रक्रिया संहिता

दंड प्रक्रिया संहिता

उपबंधित कि कोई भी न्यायालय इस धारा के अधीन किसी ऐसे व्यक्ति के वाद में जो विमुक्त कर दिया गया है, के लिए कोई निर्देशन नहीं देगा, जब तक कि ऐसे व्यक्ति को अवसर न मिला हो, यह कारण दर्शाने का कि ऐसा निर्देशन क्यों नहीं देना चाहिए।

धारा 437

जब धारा 435 या अन्यथा के अधीन किसी वाद के अभिलेख को परीक्षित करते समय सत्र न्यायाधीश या जनपद मजिस्ट्रेट विचारित करता है ऐसा वाद अनन्य रूप में सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है और कि एक अभियुक्त व्यक्ति अनुपयुक्ततः एक अवसर न्यायालय द्वारा विमुक्त कर दिया गया है, सत्र न्यायाधीश या जनपद मजिस्ट्रेट उसे गिरफ्तार करा सकता है और उस पर एक नवीन परिपृच्छा के लिए निर्देशित करने के स्थान पर उसको अन्वीक्षण के लिए उपार्जित करने के आदेश कर सकता है, उस विषय पर जिसके लिए वह सेशन न्यायाधीश या जिला मजिस्ट्रेट की राय में अनुपयुक्त ढंग से विमुक्त किया गया है।

निम्नवत् उपबंधितः-

(अ) कि अभियुक्त को ऐसे न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट को कारण दर्शाने का एक अवसर न मिला हो कि सुपुर्दगी क्यों नहीं की जानी चाहिए।

(ब) कि यदि ऐसा न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट सोचता है कि साक्ष्य दर्शाता है कि कोई अन्य अपराध अभियुक्त द्वारा किया जा चुका है ऐसा न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट ऐसे अपराध में परिपृच्छा करने के लिए अवर न्यायाधीश को निर्देशित कर सकता है।

सिविल प्रक्रिया संहिता	दंड प्रक्रिया संहिता
	धारा 438 (1) सत्र न्यायाधीश या जिला मजिस्ट्रेट, यदि वह उचित समझता है, धारा 435 या अन्यथा के अधीन किसी प्रक्रिया के अभिलेख के परीक्षण करने पर ऐसे आदेश के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिवेदन कर सकता है और जब ऐसा प्रतिवेदन एक अनुशंसा धारित करता है कि दंडादेश प्रतिवर्तित या परिवर्तित हो, तो आदेश कर सकता है कि ऐसे दंडादेश का निष्पादन निलंबित किया जाए और अभियुक्त यदि परिरोध में है, कि वह प्रतिभूति या उसके निजी मुचलके पर रिहा किया जाए। (2) अतिरिक्त सेशन न्यायाधीश के पास सेशन जज की सभी शक्तियां हैं, और वह उन सबका इस अध्याय के अंतर्गत, किसी भी वाद के संबंध में जो उसको सेशन न्यायाधीश के किसी सामान्य या विशिष्ट आदेश के तहत या द्वारा स्थानांतरित की गई हैं, का समावेश कर सकता है। **धारा 439** (1) किसी प्रक्रिया, जिसका अभिलेख उसके स्वयं के द्वारा मंगवाया गया है, या जो आदेश के लिए प्रतिवेदित किया गया है, या जो अन्यथा उसकी जानकारी में आता है, उच्च न्यायालय अपने विवेक से धारा 423, 426, 427 एवं 428 या एक न्यायालय पर धारा 338 द्वारा एक अपीलीय न्यायालय पर प्रदत्त शक्तियों और अधिकारों के निष्पादन में दंडादेश को आगे बढ़ा सकता है और जब पुनरीक्षण न्यायालय की संरचना में न्यायाधीशगण अपनी राय में समान रूप से

सिविल प्रक्रिया संहिता	दंड प्रक्रिया संहिता

विभाजित हैं तो वादा धारा 429 में प्रावधानित विधा में निपटाया जाएगा।

(2)इस धारा के अंतर्गत अभियुक्त के प्रतिकूल कोई भी आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि उसको या तो व्यक्तिगत रूप से या उसके अपने बचाव में अधिक्ता द्वारा सुने जाने का अवसर प्राप्त नहीं हो जाता।

(3)जहां दंडादेश इस धारा के अधीन धारा 34 के अंतर्गत अन्यथा कार्य करने वाले एक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया है तो ऐसे न्यायालय के मतानुसार न्यायालय उस अपराध के लिए जो अभियुक्त ने कारित किया है, के लिए एक प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट से बड़ा दंड नहीं करेगा।

(4)धारा 273 के अधीन एक प्रविष्टि के प्रति इस धारा में कुछ भी प्रयुक्त नहीं होगा या एक उच्च न्यायालय को एक दोषमुक्ति के निर्णय को कारावंदी में प्रत्यावर्तित करने के लिए अधिकृत किया जाना समझा जाएगा।

(5)जहां इस संहिता के अधीन एक अपील लंबित है और कोई अपील नहीं लाई जाती है, तो उस अपील करने वाले पक्ष के वाद पर, जो अपील कर सकता था, पुनरीक्षण की युक्ति से कोई प्रक्रिया धारित नहीं की जाएगी।

(6)इस धारा में किसी बात के होते हुए भी कोई दोष सिद्ध व्यक्ति – जिसको उपधारा (2) के अधीन कारण दर्शाने के लिए एक अवसर प्रदान किया गया है कि उसका दंडादेश क्यों आगे नहीं बढ़ाया जाए, कारण दर्शाने में उसके दोष सिद्ध होने के विरुद्ध भी

सिविल प्रक्रिया संहिता	दंड प्रक्रिया संहिता

कारण दर्शाने को अधिकृत होगा।

धारा 440

अपने पुनरीक्षण के अधिकारों को निष्पादित कर रहे किसी न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता द्वारा सुने जाने का अधिकार किसी पक्ष को नहीं है:

परंतु कि न्यायालय यदि उपयुक्त समझता है, जब अधिकारों का निष्पादन करते हुए किसी पक्ष को या तो व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता द्वारा सुना जाता है और कि इस धारा में कुछ भी धारा 439 और उपधारा (2) को प्रभावित करने वाला नहीं समझा जाएगा।

संदर्भ

ऐसी शर्तों एवं सीमाओं के अधीन जैसी कि वे निर्धारित की जा सकती हैं, कोई न्यायालय एक वाद को व्यक्त करते हुए और उसे न्यायालय की सम्मति के लिए संदर्भित कर सकता है और उच्च न्यायालय उस पर ऐसा आदेश, जैसा वह उपयुक्त समझे, कर सकता है।

एक प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट यदि वह उपयुक्त सोचता है, किसी विधि के प्रश्न को जो उसके समक्ष लंबित किसी वाद की सुनवाई में उत्पन्न होता है, उच्च न्यायालय की सम्मति के लिए संदर्भित कर सकता है या ऐसे किसी वाद में ऐसे संदर्भ पर उच्च न्यायालय के निर्णय के अधीन निर्णय दे सकता है और ऐसे निर्णय को लंबित करते हुए या तो अभियुक्त को कारागाार के लिए उपार्पित कर सकता है या उसे निर्णय के समय न्यायालय में उपस्थित होने के लिए प्रतिभूति पर मुक्त कर सकता है।

धारा 433

(1)जब एक प्रश्न इस प्रकार संदर्भित कर दिया गया है, उच्च न्यायालय उस पर जैसा समझे, ऐसा आदेश पारित करेगा और उस ऐसे आदेश की एक प्रति उस मजिस्ट्रेट

सिविल प्रक्रिया संहिता

दंड प्रक्रिया संहिता

को भिजवाने की व्यवस्था कराएगा, जिसके द्वारा संदर्भित किया गया था, जो उस वाद को कथित आदेश के अनुरूपतः निपटाएगा।

(2) उच्च न्यायालय निर्देशित कर सकता है जिसके द्वारा ऐसे संदर्भ का व्यय अदा किया जाएगा।

पुनर्विलोकन

धारा 114

पूर्व कथित जैसे विषय में कोई व्यक्ति अपने आपको व्यथित मानते हुए–

(अ) एक डिक्री या आदेश द्वारा, जिससे इस संहिता द्वारा अपील अनुमत है, किन्तु जिसने कोई अपील प्रस्तुत नहीं की है।

(ब) एक डिक्री या आदेश द्वारा, जिसमें कोई अपील इस संहिता द्वारा अनुमत नहीं है, या

(स) एक लघुवाद न्यायालय से संदर्भ पर एक निर्णय के द्वारा निर्णय के पुनर्वीक्षण के लिए न्यायालय, जिसने डिक्री या आदेश को पारित किया है, के प्रति आवेदन कर सकता है और न्यायालय उस पर जैसा वह उपयुक्त समझता है, आदेश कर सकता है।

पुनर्विलोकन का कोई प्रावधान नहीं।

सिविल प्रक्रिया संहिता

अपील

धारा 96

इस संहिता के कलेवर में या तत्समय के लिए किसी अन्य विधि द्वारा स्पष्टतः प्रावधानित से अन्यथा के अतिरिक्त एक अपील किसी मौलिक न्यायाधिक्षेत्र द्वारा निष्पादित न्यायालय की प्रत्येक डिक्री से, उस न्यायालय के निर्णयों से अपीलों को सुनने के लिए अधिकृत न्यायालय में स्वीकार्य होगी।

(2) एक पक्षीय पारित एक मौलिक डिक्री से अपील की जा सकती है।

धारा 100

(1) जहां इस संहिता के कलेवर में या तत्समय के लिए प्रवर्तित किसी अन्य विधि द्वारा स्पष्ट रूप से प्रावधानित से अन्यथा के बिना मौलिक क्षेत्राधिकार को निष्पादित करने वाले किसी भी न्यायालय के अधीनस्थ उच्च न्यायालय द्वारा अपील में पारित हरेक डिग्री से अपील उच्च न्यायालय में निम्न आधारों पर स्वीकार्य होगी, यथा –

(अ) निर्णय विधि के या विधिक शक्ति रखने वाले किसी लोकाचार के विपरीत हुआ हो।

(ब) निर्णय विधि के या विधि की शक्ति रखने वाले लोकाचार के भौतिकवाद की अवधारणा में असफल रहने पर;

(स) इस संहिता या तत्समय के लिए प्रवर्तित किसी अन्य कानून द्वारा प्रावधानित प्रक्रिया में सारवान त्रुटि या दोष जो संभवतः गुणवत्ता पर वाद के निर्णय में त्रुटि या दोष उत्पन्न कर सकती है।

दंड प्रक्रिया संहिता

धारा 404

इस संहिता या तत्समय में प्रवर्तित किसी विधि द्वारा जैसे प्रावधानों के अतिरिक्त एक दंड न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश से कोई भी अपील स्वीकार्य नहीं होगी।

धारा 407

(1) किसी तृतीय या द्वितीय श्रेणी मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए अन्वीक्षण पर दोषसिद्ध कोई भी व्यक्ति या धारा 349 के अधीन दंडादेशित या जिसके संबंध में आदेश किया गया है या एक द्वितीय श्रेणी के परगना मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 380 के अधीन एक दंडादेश पारित कर दिया गया है, ऐसा व्यक्ति जनपद मजिस्ट्रेट के यहां अपील कर सकता है।

(2) जिला मजिस्ट्रेट निर्देशित कर सकता है कि इस धारा के अधीन कोई अपील या ऐसी अपीलों का एक वर्ग उसके प्रथम अधीन एवं ऐसी अपीलों को सुनने के लिए प्रांतीय सरकार द्वारा अधकृत किसी मजिस्ट्रेट द्वारा सुना जाएगा और उसके बाद ऐसी अपील या अपीलों का वर्ग ऐसे अधीनस्थ मजिस्ट्रेट के यहां प्रस्तुत किया जा सकता है, या यदि पूर्व में प्रस्तुत जिला मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत या ऐसे अधीनस्थ मजिस्ट्रेट को स्थानांतरित किया जा सकता है। जिला मजिस्ट्रेट ऐसे मजिस्ट्रेट से कोई अपील या अपीलों के वर्ग को, जो उस प्रकार प्रस्तुत या स्थानांतरित है वापस ले सकता है।

सिविल प्रक्रिया संहिता

(2) इस धारा के अंतर्गत एक पक्षीय पारित एक अपीलीय डिक्री से अपील स्वीकार की जा सकती है।

धारा 104

(1) निम्न आदेशों से एक अपील स्वीकार्य होगी, और उस संहिता के कलेवर या तत्समय के लिए प्रवर्तित किसी विधि द्वारा स्पष्टतः प्रावधानित से अन्यथा के बिना किसी भी अन्य आदेशों से नहीं :

(a) जहां न्यायालय द्वारा अनुमत कालावधि में पंचाट परिपूर्ण नहीं किए जाने पर पीछे जाने वाला आदेश;

(b) एक विशेष वाद के रूप में व्यक्त एक पंचाट पर एक आदेश;

(c) पंचाट को उपांतरित और शुद्ध करते हुए एक आदेश;

(d) मध्यस्थता को संदर्भित करने वाले इकरारनामे को पत्रावली में रखने या न रखने का आदेश;

(e) मध्यस्थता को संदर्भित करने के लिए एक वाद जहां एक इकरारनामा है, को स्थगित करने या न करने का एक आदेश;

(f) न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना मध्यस्थता के पंचाट को पत्रावली में रखने या रखने को अस्वीकार करने का एक आदेश;

(ff) धारा 32A के अधीन एक आदेश;

(g) धारा 95 के अधीन एक आदेश;

(h) जहां ऐसी गिरफ्तारी या संरोध एक डिग्री के निष्पादन में है, के अतिरिक्त किसी

दंड प्रक्रिया संहिता

धारा 408

कोई व्यक्ति एक सहायक सत्र न्यायाधीश, एक जिला मजिस्ट्रेट, और किसी अन्य प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट द्वारा धारित अन्वीक्षण में दोष सिद्ध या धारा 349 के अधीन दंडादेशित व्यक्ति या जिसके संबंध में एक आदेश किया गया है या धारा 380 के अधीन एक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट द्वारा दंडादेश पारित किया गया है, सत्र न्यायालय में अपील कर सकता है।

निम्नानुसार प्रतिबंधितः

* * * * *

(ब) जब किसी वाद में एक सहायक सत्र न्यायाधीश या धारा 30 के अधीन विशेष रूप से अधिकृत मजिस्ट्रेट चार वर्ष से अधिक कारावास का दंडादेश या निर्वासन का दंडादेश पारित करता है, तो सबकी या किसी ऐसे अन्वीक्षण में दोषसिद्ध अभियुक्त की अपील उच्च न्यायालय में स्वीकार्य होगी।

(स) यदि कोई व्यक्ति धारा 124A के अधीन अपराध के कारण दोषसिद्ध होता है तो अपील उच्च न्यायालय में स्वीकार्य होगी।

धारा 409

सत्र न्यायालय या सत्र न्यायाधीश की अपील सत्र न्यायाधीश या अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा सुनी जाएगीः

परंतु कि, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश केवल ऐसी अपीलों को सुनेगा जैसे कि प्रांतीय सरकार सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्देशित कर सकता है, या जैसा कि

सिविल प्रक्रिया संहिता

व्यक्ति का ऐसी संहिता के किसी प्रावधान के अंतर्गत एक शास्ति को आरोपित करने या संरोध को निर्देशित करने का एक आदेश;

(i) नियमों के अधीन किया गया कोई आदेश, जिसकी अपील नियमों द्वारा स्पष्टत: अनुमत है: उपबंधित कि, कोई आदेश या कम धन की अदायगी के लिए कोई आदेश, निश्चित रूप से नहीं किया गया, को छोड़कर उपबंध (ff) में उल्लिखित किसी आदेश के विरुद्ध कोई अपील स्वीकार्य नहीं होगी।

(2)इस धारा के अंतर्गत अपील में पारित किसी आदेश से कोई अपील स्वीकार्य नहीं होगी।

धारा 105

(1)जैसे कि अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रावधानित है, को छोड़कर एक न्यायालय द्वारा उसके मौलिक या अपीलीय क्षेत्राधिकार के निष्पादन में किए गए किसी आदेश से कोई भी अपील स्वीकार्य नहीं होगी, किंतु जहां एक डिक्री किसी त्रुटि, दोष या अनियमितता के आदेश से वाद के निर्णय को प्रभावित करने वाली हो, तो इसे अपील के ज्ञापन में एक आधार के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

(2)तथापि उपधारा (1) में धारित कोई बात जहां इस संहिता के लागू होने के बाद किए गए अतिप्रेषण के आदेश से व्यथित कोई पक्ष जिसमें अपील स्वीकार्य होते हुए भी अपील नहीं करता है, तो वह उसके बाद उसकी शुद्धता पर विवाद करने से प्रतिबंधित कर दिया जाएगा।

दंड प्रक्रिया संहिता

विभाग का सत्र न्यायाधीश उसको बताता है।

धारा 410

कोई व्यक्ति सत्र न्यायाधीश या अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश पारित अन्वीक्षण पर दोषसिद्ध होने पर उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।

धारा 411

कोई व्यक्ति एक प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट द्वारा आयोजित एक अन्वीक्षण में दोष सिद्ध होने पर उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है, यदि मजिस्ट्रेट ने उसको छह मास से अधिक के कारावास या दो सौ रुपए से अधिक शास्ति का दंडादेश दिया है।

धारा 411A

धारा 449 के प्रावधानों के पूर्वाग्रहों के बिना उसके मौलिक दंड क्षेत्राधिकार के निष्पादन में एक उच्च न्यायालय द्वारा किए गए अन्वीक्षण में दोष सिद्ध कोई व्यक्ति धारा 418 अथवा धारा 423 उपधारा (2) अथवा उच्च न्यायालय के अधिकार लेख में धारित किसी बात के होते हुए भी उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है:

(अ) किसी अपील के आधार को, जो केवल विधिक विषय को समाहित करता है, पर अभिसंशा के विरुद्ध;

(ब) अपीली न्यायालय की अनुमति के साथ, अथवा न्यायाधीश, जिसने वाद का अन्वीक्षण किया था के प्रमाण पत्र पर कि यह अपील के लिए उपयुक्त वाद है, या अपील के किसी अन्य आधार पर, जो केवल विधि एवं सत्यमिश्रित एक विषय

सिविल प्रक्रिया संहिता

धारा 109

ब्रिटिश भारत के न्यायालयों से अपीलों के संबंध में परिषद में महामहिम द्वारा समय-समय पर बनाए गए नियमों के अधीन और उसके बाद धारित प्रावधानों के प्रति परिषद में महामहिम के लिए अपील स्वीकार्य होगी –

(अ) एक उच्च न्यायालय या अंतिम अपीलीय क्षेत्राधिकार के किसी अन्य न्यायालय द्वारा एक अपील पर पारित किसी डिक्री या अंतिम आदेश के प्रति;

(ब) मौलिक सिविल क्षेत्राधिकार के निष्पादन में एक उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतिम आदेश के प्रति; और

(स) किसी डिक्री का अंतिम आदेश जब वाद, जैसा कि उसके बाद प्रावधानित परिषद में महामहिम के लिए अपील के लिए उपयुक्त वाद होना प्रमाणित किया जाता है।

धारा 110

धारा 109 के उपखंड (अ) एवं (ब) में वर्णित वादों के हरेक में वाद विषयक धनराशि प्रथमत: निश्चित रूप से दस हजार रुपए या उससे अधिक होनी चाहिए और परिषद में महामहिम को अपील में धनराशि संविषयक विवाद पर निश्चित रूप से वही या अधिक होना चाहिए।

अथवा डिक्री या अंतिम आदेश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, कोई दावा या प्रश्न या समान मूल्य की संपत्ति के संबंध रखने

और जहां डिक्री या अंतिम आदेश, की गई अपील से न्यायालय अपने से निम्न

दंड प्रक्रिया संहिता

को अन्वेषित करता है; या कोई अन्य आधार, जो अपीलीय न्यायालय में अपील के लिए पर्याप्त आधार का होना प्रकट करता है; और

(स) जब तक कि दंडादेश विधि द्वारा नियत नहीं है, पारित आदेश के विरुद्ध अपीलीय न्यायालय की अनुमति के साथ।

(2) धारा 417 में धारित किसी बात के होते हुए भी प्रांतीय सरकार लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय द्वारा उसके मौलिक क्षेत्राधिकार के निष्पादन में पारित उन्मोचन के आदेश के प्रति उच्च न्यायालय में अपील करने के लिए निर्देशित कर सकती है और ऐसी अपील धारा 418, या धारा 423, उपधारा (2) या किसी उच्च न्यायालय के अधिकार में धारित किसी विषय के होते हुए भी, किन्तु इस धारा की उपधारा (1) के उपबंध (ब) और (स) द्वारा आरोपित प्रतिरोधों के अधीन अभिशंसा के विरुद्ध एक अपील तथ्यपरक विषय के साथ-साथ विधिक विषय पर भी स्वीकार्य होगी।

(3) किसी अधिनियम या नियमन में धारित अन्यत्र किसी बात के होते हुए भी इस धारा के अधीन एक अपील कम से कम दो न्यायाधीशों से बने उच्च न्यायालय द्वारा सुनी जाएगी, जिनके द्वारा मौलिक अन्वीक्षण किया गया था, से अन्य न्यायाधीशों से और यदि ऐसे प्रभागीय न्यायालय अव्यावहारिक हैं, उच्च न्यायालय प्रांतीय सरकार को प्रतिवेदित करेगा, जो धारा 527 के अधीन अपील को एक अन्य

सिविल प्रक्रिया संहिता

डिक्री या अंतिम आदेश को करने वाले न्यायालय के आदेश की पुष्टि करता है, अपील विधि के सारभूत प्रश्न को समाहित करता है।

धारा 111

धारा 109 में धारित किसी विषय के होते हुए भी परिषद में महामहिम को कोई अपील स्वीकार्य नहीं होगी –

(अ) अधिकार लेख से महामहिम द्वारा संघटित एक उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश की डिक्री या अंतिम आदेश से या एक प्रभागीय न्यायालय के एक न्यायाधीश या ऐसे उच्च न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीश के या एक ऐसे उच्च न्यायालय के विधायी न्यायालय के न्यायाधीश या उपरोक्त दो अधिक न्यायाधीशों के अंतिम आदेश या डिक्री से, जहां ऐसे न्यायाधीश विचारों में समानतः बंटे हैं और तत्समय पर उच्च न्यायालय के समग्र न्यायाधीशों की संख्या समान नहीं होती।

(ब) किसी डिक्री से, जिससे धारा 102 के अधीन कोई द्वितीय अपील स्वीकार्य नहीं है।

धारा 111 (अ)

जहां भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 205 (1) के अधीन एक प्रमाणपत्र दिया गया है, अंतिम तीन पूर्वगत धाराएं संघीय न्यायालय की अपीलों के संबंध में प्रयुक्त की जाती हैं और तदनुसार महामहिम के लिए संदर्भ के रूप में अभिप्रायित की जाएगी।

दंड प्रक्रिया संहिता

उच्च न्यायालय को स्थानांतरित करने के दृष्टिकोण के साथ कार्यवाही करेगी।

(4)इस संबंध में परिषद में महामहिम द्वारा जैसी समय-समय पर बनाई जा सकती है, के अधीन एक ऐसी शर्त, जैसी कि उच्च न्यायालय स्थापित या अपेक्षा कर सकता है, परिषद में एक अपील महामहिम को स्वीकार्य होगी, किसी उपधारा (1) के अधीन एक विभागीय न्यायालय द्वारा अपील पर किया गया कोई आदेश जिसके संबंध में उच्च न्यायालय घोषित करता है कि विषय ऐसी अपील के लिए उपयुक्त है।

धारा 412

इससे पूर्व धारित किसी विषय के होते हुए भी जहां एक अभियुक्त व्यक्ति दोषी माना जा चुका है और एक उच्च न्यायालय के द्वारा अभिशंसित किया जा चुका है, सत्र न्यायालय या कोई प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट ऐसे तर्क पर कोई अपील दंडादेश की सीमा या विधिकतः अतिरिक्त स्वीकार्य नहीं होगी।

धारा 413

इससे पूर्व धारित किसी बात के होते हुए भी एक अभिशस्त व्यक्ति द्वारा ऐसे वादों, जिनमें एक उच्च न्यायालय मात्र छह माह से अधिक कारावास या कम से कम 200/- रुपए के दंडादेश या एक सत्र न्यायालय कम से कम एक माह से अधिक दंडादेश पारित करता है, या जिसमें एक सत्र न्यायालय या जिला मजिस्ट्रेट

सिविल प्रक्रिया संहिता

उपबंधित कि,

कथित धाराओं की इतनी मात्रा इस प्रकार वादों को परिसीमित करती हैं जिनमें एक अपील स्वीकार्य होगी, उन वादों जिनमें एक अपील संघीय न्यायालय की अनुमति के बिना स्वीकार्य होगी, को परिसीमित करने हेतु अभिप्रेत होगी, अन्यथा आधार से कि एक सारभूत विधिक प्रश्न कथित अधिनियम या परिवाद में किए गए किसी आदेश के प्रतिवादन के रूप में दोषपूर्ण ढंग से निर्णीत किया गया है,

(ब) धारा 109 के वाक्यांश के अधीन निर्धारित करने में, कि क्या वाद उपयुक्त है और धारा 110 के अधीन है कि क्या अपील एक सारभूत विधिक प्रश्न को समाहित करती है कि कोई विधिक प्रश्न जहां तक कि कथित अधिनियम उसके अधीन परिषद में किए गए किसी आदेश की व्याख्या में संभव है, विवेचना के बाहर छोड़ दिया जाएगा।

दंड प्रक्रिया संहिता

या अन्य प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट मात्र पचास रुपए शास्ति का दंडादेश पारित करता है, कोई अपील स्वीकार्य नहीं होगी।

शासपत्र और दिवालिया अधिनियम

ऐसे मामले जिनमें पक्ष सिद्ध करने से विबंधित है :

विबंधन की विधि धारा 115, 116 एवं 117 में अन्तर्विष्ट है। धारा 115 विबंधन के सामान्य नियमों का विवरण करती है। धारा 116 एवं 117 विशेष प्रकार के विबंधनों को अधिनियमित करती हैं।

2. धारा 115

(1) धारा 115 की धारा 31 के साथ तुलना।

विबंधन एक स्वीकृति के समान है जितना कि यह एक तथ्य की एक अभिव्यक्ति है। सर्वाधिक स्वीकृतियां उस पक्ष द्वारा, जो उनको करती है, वापस ली जा सकती हैं। तथ्य, जो उन्होंने व्यक्त किया, बना रहता है, किन्तु उस पक्ष को जिसने उनको व्यक्त किया था उसका स्पष्टीकरण करते हुए सुना जा सकता है कि उसने उसे अतिशीघ्रता में एवं असावधानीपूर्ण और गलत आशंका के अधीन व्यक्त किया था। यहां तक कि उसे कहते हुए भी सुना जा सकता था कि वह जानता था जो उसने कहा असत्य है। किन्तु एक कथन एक व्यक्ति द्वारा एक अन्य व्यक्ति के प्रति एक ऐसे सुस्पष्ट ढंग एवं ऐसी परिस्थितियों में किया जा सकता है कि उसका दूसरे पर निश्चयात्मक प्रभाव होता है। विधि एक व्यक्ति को, ऐसे एक कथन का खंडन करने के लिए अनुमति नहीं देगी। एक विबंधन और एक स्वीकरण में बहुत कम अंतर है और इस प्रश्न, कि क्या एक कथन मात्र एक स्वीकरण है या एक विबंधन है, का उत्तर कथन की स्वाभाविकता और उससे सम्बन्धित परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

(2) विबंधन के नियम की विधिक अपेक्षाएं क्या हैं?

विबंधन का नियम प्रवर्तन में आता है जब निम्नोक्त तीन शर्तें सन्तुष्ट हो जाती हैं।

37 बम्बई एल.आर. 544 पी.सी.

(i) प्रतिवादी के द्वारा, एक तथ्य के अस्तित्व का निरूपण करने वाला एक कथन या उसके अधिकृत एजेन्ट द्वारा वादी या उसके पक्ष में किसी व्यक्ति के प्रति:

(ii) इस अभीच्छा से कि कथन के विश्वास पर वादी को कार्य करना चाहिए; और

(iii) वादी कथन के विश्वास पर कार्य करता है।

कथन निरूपण के समान ही होना चाहिए।

निरूपण शब्द या आचरण द्वारा हो सकता है।

अ. यदि यह शब्दों द्वारा है तो उनकी असत्यता के ज्ञान के साथ जानबूझ कर किया गया एक सक्रिय दुर्निरूपण हो सकता है।

दृष्टांत:-

मैककेंस बनाम लंदन और नार्दर पश्चिम रेलवे कं.

(1861) 7 एच. एवं एन. 477

एम. ने रेलवे कंपनी से अपने घोड़ों को लिवरपूल के निकट एजहिल से वुल्वर हेम्पटर्न तक ट्रकों में ले जाने के लिए एक संविदा की, जो घोड़ों को ले जाने के लिए उपयुक्त और बिल्कुल ठीक हो।

एम. ने एक घोषणापत्र भरा जिसमें उसने व्यक्त किया कि घोड़े का मूल्य दस पाउंड से अधिक प्रति घोड़ा न हो। रेलवे द्वारा चल रही व्यवस्था में घोड़ों को ले जाने के ढंग थे। एक था, मालिक एक ट्रक में जितने घोड़े ले जाना चाहे, उतने भेजने का था। दूसरा तरीका था घोड़ों को घोड़े के बक्सों से भेजने की। जिसमें प्रत्येक घोड़ा अलग घुड़साल में रखा जाए। दूसरे तरीके में घोड़े ले जाने का किराया ले जाने की दर पहले तरीके से तीन गुना अधिक थी। एक और नियम था कि रेलवे 10 पाउंड से अधिक मूल्य के घोड़ों को ट्रकों में ले जाएगी।

यातायात में, रेलवे द्वारा उपलब्ध कराए गए ट्रकों में खराबी होने की वजह से, कुछ घोड़े घायल हो गए। एम. ने इस आधार पर नुकसान-क्षति को माना कि प्रत्येक घोड़े का मूल्य 10 पाउंड से 25 पाउंड हुआ, जिस धन राशि को अदा करने के लिए रेलवे सहमत थी, चूंकि उन्होंने स्वीकार किया था कि ट्रक खराब था। वादी ने दावा किया कि घोड़े का वास्तविक मूल्य 40 और क्षति 55 (पचपन) पाउंड हो गई।

यह सक्रिय दुर्निरूपण का एक मामला है।

दृष्टांत :-((2) मुन्नूलाल बनाम लाला चुन्नीलाल।

1 आई.ए. 144

रीपसिंह ऋणी था किन्तु काफी सम्पदा का अधिकारी था। एम. उसका बैंकर था। 9 अक्टूबर 1863 को एम. ने आर. से 20,000 रु. से लिए गए ऋण को सुरक्षित करने के लिए, एक सम्पदा को गिरवी रखा। 19 अगस्त 1863 को आर. ने उसी सम्पत्ति को सी. को बेच दिया। जब क्रय के लिए आर. एवं सी. के बीच मोल-तोल घटित हुआ, एम. उपस्थित था और उसमें उसने भाग लिया और सी. के द्वारा पूछताछ करने पर उत्तर में उसको विश्वास दिलाया कि उसका सम्पदा पर कोई ग्रहणाधिकार नहीं था।

1869 में एम. ने सी. के विरुद्ध अपने बन्धक पत्र की अदायगी को प्रवर्तित करने के लिए मामला दाखिल किया। वह विबंधित किया गया।

यह भी सक्रिय दुर्निरूपण का मामला था।

ब. निरूपण अनभिज्ञ दुर्निरूपण हो सकता है।

दृष्टांत :- गॉल्ड बनाम पबॉक लोकल बोर्ड

(1881) 50 एल.जे. (एम.सी.) 44

गॉल्ड से सम्बन्धित कतिपय परिसरों को गंदी दशा में रखा गया था। बोर्ड ने उसे कुछ सुधार करने के लिए कहा जिसे करना गॉल्ड ने अस्वीकार कर दिया। जब बोर्ड ने उसे यह व्यक्त करते हुए नोटिस दिया कि यदि दिए गए समय के अंदर सुधार नहीं

किए तो बोर्ड उनको निष्पादित करेगा।

व्यय को वसूल करने की दो विधाएं थीं जो अधिनियम द्वारा निर्धारित की गई थीं। एक विधा धारा 213 के द्वारा थी और दूसरी धारा 240 के द्वारा थी। धारा 213 ने बोर्ड को अनुमत किया वसूल करने को बोर्ड द्वारा स्थानीय दर से लगाए गए चन्दे सहित वसूलने के लिए अनुमति दी। और धारा 240 ने उनको स्वतंत्रत: एकमुश्त वसूल करना अनुमत किया। गॉल्ड को दिए गए नोटिस में यह व्यक्त किया गया था कि वसूली धारा 213 के अंतर्गत होगी। किन्तु एक वाद में बोर्ड ने धारा 240 के प्रावधान के रूप में वसूल करना चाहा। बोर्ड विबंधित किया गया। यह अनभिज्ञ दुर्निरूपण का मामला था।

(2) निरूपण मौखिक हो सकता है या चुप रहने से हो सकता है। कुछ परिस्थितियों में चुप रहना भावपूर्ण हो सकता है और एक निरूपण बोले गए शब्दों द्वारा किए गए बिल्कुल ठीक और वास्तविक जैसा हो सकता है।

किन्तु चुप्पी का प्रत्येक मामला बोलने के समान नहीं लिया जा सकता क्योंकि विधि एक व्यक्ति से, प्रत्येक अवसर पर जो उसके मन में है, को बोलने की आशा नहीं करती। विधि एक व्यक्ति से केवल जब उस पर बोलने और अपने मन को उजागर करने का कर्त्तव्य है, बोलने की अपेक्षा करती है। अन्यथा शांति स्वर्णिम है।

अत: शान्त रहने से, एक विबंधन को उठाने पर बोलने के दायित्व को अपेक्षा करनी चाहिए। मौन के प्रभाव पर विचार करने में यह देखना होता है कि क्या वहां बोलने के लिए कोई अवसर था और मौन रहने के लिए युक्तियुक्त अवसर था। अनुमान के लिए एक न्यायसंगत आधार के रूप में मौन पर विश्वास करने से पूर्व यह अवश्य करना चाहिए।

(1896) ए.सी. 231 (238)
2 बी.आर. सी.सी. 400 (419)
6 बम्बई एल.आर.

दृष्टांत - (1) विबंधन के लिए मौन आधार नहीं।

10 बम्बई एल.आर. 297

एक निर्णीत ऋणदाता ने पिता के विरुद्ध एक डिक्री प्राप्त कर ली थी। निष्पादन में सम्पत्ति कलेक्टर द्वारा व्यवस्थित की गई और उसकी आय ऋणदाता को भेजी गई। जबकि यह सब चल रहा था पिता की मृत्यु हो गई और पुत्र सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो गया। संयुक्त ऋणदाता ने पुत्र के विरुद्ध, जिसने प्रतिवाद किया था कि वह उत्तरदायी नहीं है, चूंकि ऋण अनुपयुक्त थे, डिक्री के निष्पादन के लिए न्याय देखा यह विवाद किया गया कि पुत्र विबंधित था क्योंकि उसका मौन निरूपण था कि उसने डिक्री स्वीकार कर ली थी। निर्णीत हुआ यह इसलिए नहीं था क्योंकि कोई कर्त्तव्य नहीं था।

दृष्टांत-(2) विबंधन के लिए मौन आधार।

15 आई.ए. 171

निष्पादन की कार्यवाही में, न्यायालय द्वारा विक्रय में, एक मुनादी द्वारा जिसमें निर्णीत - ऋणी के अधिकार अपूर्णतः वर्णित किए गए थे। परिणाम है कि 40,000 रु. कीमत की सम्पत्ति 20,000 रु. में बेच दी गई। संयुक्त ऋणी द्वारा विक्रय को निरस्त करने के लिए एक वादा लाया गया। विवाद था कि मौन विबंधन था निर्णीत हुआ, वह था चूंकि आगे आना और घोषणा को सही करा लेना कर्त्तव्य था।

आचरण द्वारा निरूपण हो सकता है।

1. आचरण निरूपण के समान हो सकता है या यह नहीं हो सकता है -
   (i) जहां यह निरूपण के समान होता है। 19 आई.ए. 203
   (ii) जहां यह नहीं होता है। 19 आई.ए. 221
2. आचरण या तो कर्मण्य या अकर्मण्य हैं।
   अकर्मण्य आचरण दोनों है
   (i) उदासीनता।
   (ii) मौन सम्मति।

अकर्मण्य आचरण एक विबंधन प्रस्तुत करने के लिए मौन सम्मति के समान होना चाहिए। यह उदासीनता का आचरण मात्र नहीं होना चाहिए।

मौन सम्मति का आचरण निम्नानुसार वर्णित किया जा सकता है:-

"यदि एक व्यक्ति का एक अधिकार है और दूसरे व्यक्ति को उस अधिकार पर अतिक्रमण का एक अधिकार है और एक अन्य व्यक्ति को क्रम में देखते हुए, ऐसे एक ढंग से जैसे उस कार्य को किए जाने के लिए एक व्यक्ति को वस्तुतः प्रेरित करते, चुपचाप देखता रहता है, और जो अन्यथा उससे अलहदा हो सकता था, विश्वास करने कि वह उसके किए जाने का समर्थन करता है, एक आचरण है जो मौन सम्मति के आचरण के समान होता है।"

2 बी.एच. 117 (123) 41 ई.आर. 886

इम्प 45 बम्बई आई.एल.आर. 80

14 इलाहाबाद 362 (364)

मौन सम्मति, जबकि मौन सम्मत कार्य प्रगति में है, घटित हो सकती है, या यह केवल तब जब कार्य सम्पन्न हो जाता है, के बाद घटित हो सकती है।

विबंधन के प्रयोजन के लिए यह जब अतिक्रमण प्रगति में है, घटित होनी चाहिए।

च.डी. 286 (314)

ध्यान देने के लिए विचार बिन्दु।

1. दुर्निरूपण विद्यमान तथ्यों के सम्बन्ध में होना चाहिए और केवल अभीच्छा के सम्बन्ध में नहीं।

आर.एल. केसेज 185

दृष्टांत

1. एक व्यक्ति का एक विधिक अधिकार है किन्तु उसके सृजन और उसके प्रवर्तन के प्रयास के समय के बीच, वह उसको त्यागने की अपनी अभीच्छा को प्रस्तुत कर देता है।

2. वहां विबंधन नहीं हो सकता जहां विषय की सत्यता दोनों पक्षों को भली भांति ज्ञात है।

30 कलकत्ता 539 पी.सी. मोहोरी बनाम धरमदास चोसे।

20 जुलाई, 1895 को दामोदर दास ने एक साहूकार ब्रह्मदत्त के यहां कुछ गिरवी रखा। संपूर्ण व्यवहार में ब्रह्मदत्त अनुपस्थित था और उसके मुख्तार केदारनाथ के द्वारा सारा कार्य किया गया, धन ब्रह्मदत्त के स्थानीय प्रबंधक देदराज कोठारी को दिया गया। जब कार्य किया जा रहा था तब दामोदर-दास की मां ने मुख्तार केदारनाथ को पत्र लिखा कि दामोदर-दास नाबालिग है और यदि कोई व्यक्ति धन देता है तो वह अपने जोखिम पर देगा।

गिरवी रखने के दिन केदारनाथ ने एक बड़ा घोषणा पत्र दामोदर-दास से लिया कि वह वयस्क था।

10 सितम्बर, 1895 को, इस आधार पर कि डी. नाबालिग था, मां ने एक मामला बन्धक-पत्र को समाप्त करने के लिए प्रस्तुत किया।

ब्रह्मदत्त का विवाद था कि दामोदर विबंधित था। फैसला हुआ कि वह वास्तव में तथ्य को जानना जानने के साधान होने से भिन्न होता है, नहीं था क्योंकि तथ्य ब्रह्मदत्त को ज्ञात था।

एल.आर. 20 सी.एच.डी. 1 रेडग्रेव बनाम हर्ड।

वादी ने निरूपित किया कि उसके कारोबार से 300 पाउंड वार्षिक आय होती थी और उसके 2/3 को दर्शाने वाले तीन संक्षिप्त विवरण कुछ कागजात के साथ प्रस्तुत किए जिनका प्रतिवादी ने परीक्षण नहीं किया। इस विश्वास पर वादी के कारोबार को खरीदने के लिए समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए, और जमा राशि अदा की। कारोबार को बेकार पाते हुए उसने सम्पन्न करना अस्वीकार कर दिया और वादी ने विशिष्ट निष्पादन के लिए उस पर दावा किया। वादी का विवाद था कि प्रतिवादी यह करने से विबंधित था कि वादी का निरूपण असत्य था क्योंकि उसके पास सत्य को जानने के साधन थे।

जैसल एम.आर.पी. 21

जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को तथ्य वर्णन करके, जो असत्य है, संविदा करने के लिए उकसाता है, यह संविदा के निरसन की कार्रवाई का कोई बचाव नहीं है कि जिस व्यक्ति को वर्णन किया गया था, उसके पास साधन थे अथवा उचित सम्यक से खोज की कि यह असत्य था। यह दर्शाया जाए कि उसे वर्णन के विपरीत तथ्य का ज्ञान था अथवा यह कि उसने इस संबंध में अथवा अपने आचरण द्वारा स्पष्टत: प्रदर्शित किया कि उसने वर्णन पर विश्वास नहीं किया।

II. विबंधन के नियम में द्वितीय तत्त्व, अभिप्राय है कि वादी को कथन के विश्वास पर कार्य करना चाहिए।

यह आवश्यक नहीं है कि निरूपण करने वाला पक्ष स्वयं किसी गलती पर नहीं होना चाहिए था।

यह आवश्यक नहीं है कि निरूपण करने वाले पक्ष ने निश्चित रूप से भ्रमित करने या धोखा देने के अभिप्राय से कार्य किया है।

19 आई.ए. 203

किन्तु यह आवश्यक है कि निरूपण करने वाले पक्ष का यह अभिप्राय अवश्य होना चाहिए कि उसे प्रतिवेदन पर विश्वास करके कार्य करना चाहिए।

इरादा कैसे प्रमाणित किया जाए?

अभीच्छा दो भिन्न अभिप्राय से प्रयोग की जाती है:-

(1) यह एक विधिक धारणा को इंगित करने के लिए उपयोग की जाती है। एक व्यक्ति के बारे में अनुमान लगाया जाता है कि वह अपने कार्यों के स्वाभाविक और आवश्यक परिणामों को जानता हो।

(2) अभीच्छा एक व्यक्ति की एक विशिष्ट विद्यमान मानसिक स्थिति को इंगित करने के लिए उपयोग की जाती है।

यह विशिष्ट मानसिक स्थिति किसी अन्य तथ्य की भांति एक तथ्य के रूप में अवश्य प्रमाणित की जानी चाहिए, और इसकी धारणा नहीं की जा सकती।

दृष्टांत :-

(1) धारा 225 भा.दं.सं. जो कोई इच्छा से प्रस्तुत करता है।

(2) धारा 124 भा.दं.सं. जो कोई इच्छा के साथ।

यहां अभीच्छा विधिक धारणा के रूप में उपयोग की जाती है और दूसरे भाव में प्रयुक्त नहीं की जाती।

अत: अभीच्छा को सिद्ध करना आवश्यक नहीं है कि पक्ष को एक विशिष्ट तथ्य के रूप में कार्य करना चाहिए।

यदि एक विवेकी व्यक्ति निरूपण को सत्य मानता है और विश्वास करता है कि इसका तात्पर्य था कि उसे उस पर कार्य करना चाहिए, तो जरूरत जो अभीच्छा की तरह है संतुष्ट हो जाएगी।

191 आई.ए. 203 (219)

III :-

विबंधन के नियम का तृतीय तत्त्व है कि पक्ष जिसके प्रति निरूपण किया गया था, उसको इसके विश्वास पर अवश्य कार्य करना चाहिए।

1. यह तत्त्व वस्तुतः विबंधन की विधि का आधार है और इसके मूल सिद्धांत की व्याख्या करता है। विबंधन के नियम का मूल सिद्धांत है कि निश्चिततः अनुचित अन्याय पूरक होना चाहिए, कि यदि एक व्यक्ति एकीकृत निरूपण द्वारा या निरूपण के समान हुए आचरण के द्वारा एक अन्य व्यक्ति को प्रेरित करता है जो वह अन्यथा न कर पाएगा, वह व्यक्ति जिसने निरूपण किया था उस व्यक्ति जिसने उस पर कार्य किया था, को हानि एवं क्षतिपूर्ति पूर्ववर्ती कथन के प्रभाव को अस्वीकार या खंडित करने के लिए अनुमत होना चाहिए।
2. इस नियम का कारण है कि वह व्यक्ति उस पर कार्य कर चुका है और अपनी स्थिति को परिवर्तित कर चुका है। विबंधन के समान होने के लिए कथन पर जो उस पक्ष द्वारा जिसके प्रति किया था, अवश्य ही कार्य किया जाना चाहिए।

14 बम्बई 312
13 मूआई.ए. 585 (599)

विबंधन के नियम पर सीमाबन्धन।

1. यह स्थानीय विधि को रद्द नहीं कर सकता।

(i) अवयस्क-स्वयं को वयस्क के रूप में निरूपित करता हैं - सिद्ध करने से विबंधित नहीं।

(ii) निगम - कार्य करता है जो अधिकारातीत है - सिद्ध करने से विबंधित नहीं हुआ कि वे उसके अधिकार से परे थे।

स्वीकरणों और विबंधन के बीच अन्य भिन्नताएं।

1. एक स्वीकरण, पक्ष को यह सिद्ध करने से रोकता नहीं है कि स्वीकरण असत्य है। एक विबंधन पक्ष को ऐसा करने से रोकता है।
2. एक स्वीकरण का लाभ, उस व्यक्ति जिसके प्रति वह किया गया था के अलावा अन्य कोई भी व्यक्ति ले सकता है। एक विबंधन का लाभ केवल उसी पक्ष द्वारा लिया जा सकता है जिसके लिए वह किया गया था। चूंकि एक अपरिचित के

विरुद्ध वह सत्य से इंकार कर सकता है।

5 डब्ल्यू.आर. 209

5 ए.आर. 209

वादी ने आरोप लगाया कि उसने विवादित सम्पत्ति को 10,000/- रु. में खरीदा था। धन के लिए दबाव पड़ा तो बाद में उसने अपनी मां के नाम गिरवी रख दिया। उसने एक वर्ष बाद गिरवी रखी सम्पत्ति को छुड़ा लिया और सम्पत्ति पर कब्जा कर लिया।

प्रतिवादी ने वादी की मां के विरुद्ध डिक्री प्राप्त की और डिक्री के निष्पादन और संतुष्टि के लिए सम्पत्ति को कोर्ट के क्रय-विक्रय विभाग द्वारा बेच दिया और उसे बेनामी करके वादी को बेदखल कर दिया। वादी ने सम्पत्ति को फिर से प्राप्त करने के लिए मुकदमा खड़ा किया।

प्रतिवादी ने प्रतिवाद किया कि वादी विबंधित था यह सिद्ध करने के लिए कि वह स्वामी था क्योंकि वादी ने पहले मुकदमे में स्वीकार किया था कि उसकी मां मालिक थी क्योंकि उस मामले में प्रतिवादी एक पक्ष नहीं था। निर्णीत हुआ वहां विबंधन नहीं था।

विबंधन और निर्णायक प्रमाण के बीच अंतर

1. विबंधन, उस पक्ष द्वारा जिसके पक्ष में वह लागू होता है, के द्वारा छोड़ा जा सकता है। किन्तु निर्णायक प्रमाण त्यागा नहीं जा सकता।

विबंधन और पूर्व निर्णयत्व के मध्य अंतर

पूर्व निर्णयत्व एक व्यक्ति को उसी बात को दूसरे मामलों में दोबारा प्रमाणित करने से रोकता है।

विबंधन एक व्यक्ति को एक समय पर एक बात कहने और उसके विपरीत दूसरे समय पर कहने से रोकता है।

36 बम्बई 214

विबंधन की भारतीय और आंग्ल विधि।

1. आंग्ल विधि के अंतर्गत विबंधन साधारणत: तीन शीर्षकों में वर्गीकृत किए जाते हैं।

(i) अभिलेख द्वारा विबंधन।

(ii) प्रलेख द्वारा विबंधन।

(iii) आचरण द्वारा विबंधन।

2. **अभिलेख द्वारा विबंधन** का अभिप्राय है एक समक्ष न्यायालय के निर्णय द्वारा विबन्धन।

(i) अभिलेख द्वारा विबंधन भारतीय विधि द्वारा स्वीकारा जाता है। यह इनको प्रयोग में ले जाते हैं -

(अ) सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा। धारा 11-4

(ब) साक्ष्य अधिनियम द्वारा। धारा 40-44

3. **प्रलेख द्वारा विबंधन**

1. आंग्ल विधि के अंतर्गत एक प्रलेख के प्रति एक पक्ष किसी भी तरीके से अपने और अन्य पक्ष के बीच उस प्रलेख में कथन के विपरीत नहीं कह सकता। यह नियम आंग्ल विधि में एक 'मुहर' के महत्त्व का अतिशयोक्तिपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। मोहर लगाने के लिए, न मोम और न पानी की आवश्यकता है। प्रकटतः अभिलेख पर स्याही का एक धब्बा विलेख है। यदि ऐसा सोचा जाता और यह सोच समझकर किए हुए और पहचान किए हुए हस्ताक्षरों से कहीं अधिक विधि में महत्त्व बनाता है। **साधारण हस्ताक्षरित अभिलेख के मामले में कोई विबंधन नहीं है।**
2. प्रलेख द्वारा विबंधन के दृढ़ तकनीकी मत का भारत में विद्यमान होना नहीं कहा जा सकता है।
3. किन्तु जबकि इस देश में तकनीकी मत की कोई जरूरत नहीं है लेकिन अभिलेखों में कथन, पक्षों के विरुद्ध, स्वीकरणों के रूप में, संविदा साक्ष्य है। कुछ मामलों में ऐसा एक कथन परिस्थितियों के अनुसार कुछ न कुछ साक्ष्यात्मक मूल्य का एक स्वीकरण मात्र होता है, किन्तु निर्णायक नहीं। अन्य मामलों में अर्थात् जिनमें दूसरा पक्ष, उस अभिलेख में समाहित कथन के विश्वास पर उसकी मौजूदगी वैकल्पित करने के लिए, प्रेरित किया जाता है तो ऐसा कथन या अन्य विलेख से पैदा होने वाला विबंधन, धारा 115 के अंतर्गत आचरण या दुर्निरूपण द्वारा उस विबंधन की केवल एक विशेष प्रयुक्ति है।
4. साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत एक विबंधन उद्भूत नहीं होता क्योंकि केवल एक कथन एक प्रलेख में अंतर्विष्ट होता है, जब वह धारा 115 के साथ आ सकता है तभी वह एक विबंधन का काम कर सकता है।

    I. इलाहाबाद 403

    II.बम्बई 708
5. एक प्रलेख में एक वृत्तांत परिस्थितियों के अनुसार केवल एक स्वीकरण हो सकता है या एक विबंधन हो सकता है।

विशेष विबंधन

1. धारा 115 सामान्यतः विबंधनों के प्रयोग में आती है। धारा 116 एवं 117 विशेष विबंधनों के साथ आती है।
2. धारा 115 के अंतर्गत विबंधनों और धारा 116-117 के अंतर्गत विबंधनों के मध्य भिन्नता उल्लिखित की जा सकती है।

(i) धारा 115 के अंतर्गत विबंधन किन्हीं दो पक्षों के बीच पैदा हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि वे एक विशेष विधिक दायित्व से संबंधित होने चाहिए। धारा 116-117 के अंतर्गत विबंधन केवल उन पक्षों के बीच पैदा होते हैं, जो एक विशेष संबंध से संबंधित हैं।

(ii) धारा 115 के अंतर्गत विबंधन एक पक्ष द्वारा दूसरे के प्रति तथ्यों के दुर्निरूपण के कारण उद्भूत हो सकता है। धारा 116-117 के अंतर्गत विबंधन पक्षों के बीच समझौते के कारण पैदा होते हैं, जिन्होंने अपने मध्य एक विशेष जालसाज़ी पूर्ण संबंध बना लिया है।

धारा 116 निम्न विबंधनों के मध्य कार्य करती है।

(i) भूमि-स्वामी एवं किराएदार; और

(ii) लाइसेंसधारी एवं अचल सम्पत्ति के लाइसेंसदाता के मध्य।

(i) भूस्वामी और किराएदार

1. यह विबंधन अचल सम्पत्ति के पट्टेदार के प्रति लागू होता है।
2. यह विबंधन पट्टेदार के माध्यम से दावा करने वाले के प्रति भी लागू होता है। दूसरे शब्दों में, यदि एक किराएदार अपनी सम्पत्ति को, भूस्वामी के ज्ञान या अनुमति के बिना शिकमी कर देता है, शिकमी भी यह अस्वीकार करने से विबंधित होगा कि भूस्वामी प्रारम्भ में इसका अधिकारी था।
3. यह विबंधन भूस्वामी बनने का दावा करने वाले एक व्यक्ति को लाभ पहुंचाना सुनिश्चित नहीं करता।

ऐसे दो सम्भव मामले हैं जिनमें परिसर किराए पर दिया जा सकता है:

(i) जहां वादी ने प्रतिवादी को किराए पर भूमि का कब्जा दिया है।

(ii) जब वादी स्वयं वह व्यक्ति नहीं है जिसने प्रतिवादी को किराए पर कब्जा दिया वरन् जिसने कब्जा दिया उस व्यक्ति से प्राप्त एक सत्वाधिकार के अंतर्गत है।

यह धारा प्रथम मुकदमे में प्रयुक्त होती है और किराएदार को भूस्वामी के सत्वाधिकार को अस्वीकार करने से विबंधित करती है। द्वितीय मुकदमे में यह लागू नहीं होती है जहां सत्वाधिकार भूस्वामी से प्राप्त किया जाता है, अर्थात् विक्रय, पट्टा या उत्तराधिकार द्वारा, ताकि जब वादी प्राप्त सत्वाधिकार से दावा करता है, तो प्रतिवादी यह दर्शाने से विबंधित नहीं किया जाता है, कि सत्वाधिकार वादी में नहीं वरन् किसी अन्य व्यक्ति का है। किराएदार बता सकता है कि उसने सत्वाधिकार प्राप्त नहीं किया है। यह इन शब्दों की 'भूस्वामी के द्वारा दावा करते हुए' की अनुपस्थिति का प्रभाव है।

यह विबंधन किराएदारी के प्रारंभ में सत्वाधिकार के अस्वीकरण पर प्रयुक्त होता है, ताकि एक किराएदार बता सकता है कि उसके भू-स्वामी का सत्वाधिकार समाप्त हो गया है या निर्धारित है। ऐसे मामलों में वह सत्व पर विवाद नहीं करता है और एक

घटनोत्तर विषय के द्वारा उसको स्वीकार करता है और दूर रहता है। न्याय अपेक्षा करता है कि इस अभिवचन को व्यक्त करने के लिए किराएदार को अनुमति मिलनी चाहिए। एक किराएदार उस व्यक्ति के प्रति उत्तरदायी है जिसका वास्तविक अधिकार है और उसको भुगतान करने के लिए उसका सामना किया जा सकता है, और यह अन्याय होगा यदि ऐसा उत्तरदायी होते हुए, वह बचाव के रूप में अपने भूस्वामी के सत्वाधिकार की समाप्ति या सुनिश्चितता को व्यक्त न कर सके।

4. **विबंधन का क्षेत्र** - एक किराएदार या उसके प्रतिनिधि को यह अस्वीकार करने की अनुमति नहीं दी जाएगी कि उस दिन जिस पर उसकी किराएदारी प्रारंभ हुई थी, भूस्वामी जिसने किराएदारी प्रदान की, सम्पत्ति के प्रति सत्वाधिकार रखता था।

5. **यह विबंधन किराएदार को बाध्य करता है केवल उस समय तक जब तक किराएदारी निरंतर बनी रहती है।** एक बार किराएदारी समाप्त हुई, तो वह अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है कि उसके भूस्वामी का उस दिन भी, जिस दिन किराएदारी प्रारंभ हुई उसका कोई सत्वाधिकार था।

II. अचल सम्पत्ति का लाइसेंसधारी और लाइसेंसदाता।

1. लाइसेंसधारी के रूप में नियम वही है, अर्थात् कि लाइसेंस-दाता का ऐसे कब्जे पर उस समय सत्वाधिकार था जबकि लाइसेंस दिया गया।

2. एक किराएदार और लाइसेंसधारी के बीच अंतर।

लाइसेंस का अभिप्राय है एक व्यक्ति के द्वारा एक अन्य व्यक्ति को कोई कार्य करने के लिए दी गई अनुमति, जिसे ऐसी अनुमति के बिना उसके लिए उसका करना अवैध होगा। यह एक वैयक्तिक अधिकार है, और हस्तांतरित नहीं है, वरन् उसी व्यक्ति के साथ समाप्त हो जाता है जब तक कि लाइसेंसधारी ने उसके लिए धन अदा नहीं किया है। किराएदारी भूमि में एक हित है और अंतर्णीय एवं पैतृक है।

धारा 117 में है

(1) एक विनिमय विपत्र के ग्राही के विबंधन के साथ।

(2) एक अमानतदार के विबंधन के साथ।

(3) एक लाइसेंसधारी के विबंधन के साथ।

(1) ग्राही से संबंधित विबंधन इस प्रभाव का है कि उसे यह अस्वीकार करने के लिए अनुमत नहीं करना चाहिए कि आदेशक को विपत्र को प्राप्त करने या उस पर पृष्ठांकित करने का प्राधिकार था।

इस **नियम** का कारण, विपत्र धारक और ग्राही के बीच एक सहमति में पाया जाता है।

स्वीकृति का अनुबंध क्या आरोपित करता है?

(1) कि वह प्रापक को या धारक को अदा करेगा।

(2) कि यदि वह अदा करने में असफल होता है तो वह अदा करेगा।

इसका क्या अभिप्राय है जब वह कहता है कि आदेशक अदा करेगा? इसका अभिप्राय है कि आदेशक को स्वयं को बाध्य करने का प्राधिकार और सामर्थ्य है।

प्रापक ने उसे इस सहमति के आधार पर लिया था। अतः ग्राही इस सहमति को अस्वीकार करने के लिए अनुमत नहीं किया जाता।

स्पष्टीकरण I के अधीन, वह अस्वीकार करने को अनुमत किया जाता है कि आदेशक के हस्ताक्षर जालसाजी हैं।

यह आंग्लविधि के प्रतिकूल है।

(2) एवं (3) अमानतदार और लाइसेंसधारी के संबंध में विबंधन।

अमानतदार के अमानत करते समय या लाइसेंस प्रदान करते समय लाइसेंसदाता के, प्राधिकार को वे अस्वीकार नहीं कर सकते, उस समय पर जबकि ऐसा उपनिधान या लाइसेंस प्रारंभ हो।

बिना पूर्वाग्रह के वर्णित विषय

1. इस शीर्षक के अंतर्गत एक पक्ष द्वारा किए गए स्वीकरणों के कुछ वर्ग आते हैं।

2. धारा 23 में वर्णित कुछ परिस्थितियों के अधीन यदि स्वीकरण किया जाता है, तो यह उस पक्ष जिसने इसे किया था, के विरुद्ध प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

3. **वे परिस्थितियां क्या हैं?**

(1) यदि यह इस दशा पर किया जाता है कि इसका साक्ष्य नहीं दिया जाना है।

(अ) प्रतिबंधिता व्यक्त हो सकती है, या

(ब) प्रतिबंधिता पक्षों के आचरण से उपलक्षित हो सकती है।

(2) सहमति मौखिक या लिखित हो सकती है।

4. धारा 23 की प्रयुक्ति

1. यह केवल सिविल मामलों में प्रयुक्त होती है। यह नियम फौजदारी मामलों पर लागू नहीं होता।

2. इस धारा की प्रयुक्ति न्यायिक अर्थ निर्णय द्वारा उसी के परक्राम्यता के क्रम में किए गए स्वीकरणों तक परिसीमित हो गई है।

यह एकमात्र तथ्य है जो कि एक प्रलेख "पूर्वाग्रह के बिना" लिखा गया है को

अपवर्जित नहीं करेगा। नियम जो ''पूर्वाग्रह के बिनए'' चिह्नित प्रलेखों को अपवर्जित करता है, की प्रयुक्ति नहीं है जब तक कि कोई व्यक्ति विवाद में या एक अन्य व्यक्ति के साथ परक्राम्यता में नहीं है और विवाद या परक्राम्यता के निर्धारण के लिए निबंधन प्रस्तुत नहीं किए जाते हैं।

23 बम्बई, 177 (180)

स्पष्टीकरण

जहां एक व्यक्ति उत्तर देने के लिए बाध्य किया जाता है यह धारा प्रयुक्त नहीं होती है।

विषय जो असंगत हैं

1. साक्ष्य विधि व्यक्त नहीं करती है कि कौन से विषय असंगत हैं।
2. यह जो विषय सुसंगत हैं को अभिव्यक्त करती है और जो विषय सुसंगत नहीं है उनको अपवर्जित करती है।
3. यह प्रतिवादित किया जाता है कि सुसंगतता के नियम किसी उपयोग के नहीं हैं।
4. दो समस्याएं हैं जिनके साथ न्यायाधीश का सामना होता है।
   (i) क्या और कहां तक उसका विश्वास करना चाहिए जो साक्षी कहता है?
   (ii) एक न्यायाधीश को उन तथ्यों से, जिन्हें वह प्रमाणित हो चुके हुए मानता है, क्या निष्कर्ष निकालना चाहिए?

प्रत्येक न्यायिक कार्यवाही में दो आवश्यक प्रश्न होते हैं - क्या यह सत्य है? और यदि सत्य है तब क्या हो?

5. सुसंगतता के नियम उनमें से एक पर भी प्रकाश नहीं डालते और वे व्यक्ति एक श्रेष्ठतर उत्तर दे सकते हैं जो इन नियमों से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं।
6. प्रतिवादी के उत्तर -
   (i) तर्कशास्त्र का अध्ययन किए बिना भी, लोग तर्क करते हैं, और अच्छे तर्क करते हैं। किन्तु यह अनुसरण नहीं होता कि हमको तर्कशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।
   (ii) असंगत गपशप की बाढ़ और प्रासंगिक प्रश्नों से निकले सुसंगतता के नियम, जो दृढ़तर मस्तिष्क में समाविष्ट होने और सर्वाधिक समवेत मस्तिष्क को भ्रमित करने को पर्याप्त हैं।

I. सुसंगतता का मूलभूत नियम है कि आप एक तथ्य को प्रमाणित कर सकते हैं और राय नहीं दे सकते।

तथ्य दो वर्गों में आते हैं:

वे जो इंद्रियों से अनुभव किए जा सकते हैं और वे जो अनुभव नहीं किए जा सकते। वे जो इन्द्रियों से अनुभव नहीं किए जा सकते हैं: (1) अभीच्छा, (2) छल, (3) सद्विश्वास और (4) ज्ञान।

विषय जिनके लिए विधि प्रमाण अनुमत करती है।

(1) विवाद्यक तथ्य 3, 5, 12

(2) विवाद्यक तथ्यों के सुसंगत तथ्य 3, 6, 7, 8, 9, 13-16, 52-58, 45-51

(3) तथ्य जो विवाद्यक तथ्यों के या सुसंगत तथ्यों या जो विवाद्यक तथ्यों और सुसंगत तथ्यों की संभावना को दर्शाते हैं। 34, 39-46

टिप्पणी - अपवादों के रूप में 31, 32 प्रत्यक्ष साक्ष्य के अंतर्गत जाएंगे।

(4) तथ्य जो 11 (1) के साथ असंगत हैं।

विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्यों के साथ। 17-31

या जो एक विवाद्यक विषय या सुसंगत तथ्य की असंभावना को दर्शाते हैं। 41-44, 46

विवाद्यक तथ्य

धारा 3

विवाद्यक तथ्य की दो आवश्यकताएं हैं:

1. यह एक आवश्यक तथ्य है

एक विवाद्यक तथ्य, वह तथ्य है जो एक पक्ष द्वारा एक दूसरे पक्ष पर या उसके विरुद्ध दावा किए गए अधिकार या दायित्व को आरोपित किए जाने का सही आधार है।

एक विवाद्यक तथ्य एक तथ्य है जिसका प्रमाण स्वीकृत होने वाले या आरोपित होने वाले दायित्व के लिए आवश्यक है।

दृष्टांतः-

1. मानते हुए कि जांच होनी है कि अ, ब की संपत्ति को उसके पुत्र के रूप में उत्तराधिकार में लेने का हकदार है।

निम्नलिखित तथ्य आवश्यक तथ्य होंगे :

(अ) क्या अ, ब का पुत्र है?

(ब) क्या ब मृत है?

(स) क्या संपत्ति ब की है?

वे आवश्यक तथ्य हैं क्योंकि जब तक कि वे प्रमाणित नहीं किए जाते हैं कि अ का उत्तराधिकार लेने का दावा स्वीकृत नहीं किया जा सकता। वे उसके दावे के आधार हैं।

दृष्टांत:–

(2) मानते हैं कि जांच होनी है कि:

क्या अ, ब की मृत्यु का कारण है?

निम्न तथ्य आवश्यक तथ्य होंगे:

(i) क्या अ, ब की मृत्यु का कारण है?

(ii) क्या अ की मृत्यु के कारण की इच्छा है?

2. प्रत्येक आवश्यक तथ्य विवाद्यक तथ्य नहीं है। एक आवश्यक तथ्य क्या दावे के साथ कहा जाता है या अस्वीकार किया जाता है विवाद्यक तथ्य हो जाता है।

दृष्टांत 1 व 2 में यदि कोई आवश्यक तथ्य अस्वीकार नहीं किया जाता है तो वह एक विवाद्यक तथ्य होने का आधार होगा।

3. अत: विवाद्यक तथ्य वह आवश्यक तथ्य है, जो दो पक्षों के मध्य विवाद में है।

2. तथ्य जो विवाद्यक तथ्यों के सुसंगत तथ्य है।

धारा 3

i. सुसंगत तथ्य का अभिप्राय: है, विवाद्यक तथ्य से संबंधित तथ्य।

1. संबंध देखने **योग्य** और **प्रत्यक्ष** होना चाहिए, अर्थात् **स्पष्ट** अवश्य होना चाहिए।
2. संबंध **दूरवर्ती नहीं, निकटवर्ती** अवश्य होना चाहिए।
3. संबंध को आवश्यक संबंध होने की आवश्यकता नहीं, जैसे सभी **अनुमानित** साक्ष्य, जो विवेकी हो न कि **गुप्त** या **अटकल** पच्चू वाले को बहिष्कृत करेगा।
4. क्या उसका एक संबंध है जो विधिक सहज वृत्ति या विधिक बोध का विषय है और उसे व्यवहार से अर्जित किया जाता है। कुछ उदाहरण दृष्टांत के रूप में रखे जा सकते हैं।

(अ) अ के दांडिक अन्वीक्षण पर ब साक्षी नहीं है का कथन कि वह वास्तविक अपराधी था और यह कि अ निर्दोष है, को दूरवर्ती और संबंध के अभाव में निरस्त कर दिया जाएगा चाहे वह साठगांठ और छल रचना के खतरे से अलग ही क्यों न हो!

आर बनाम ग्रे आयर सर खि 76

(ब) "अ" ने "ब" पर अपना पांच पाउंड कर्ज वसूलने के लिए एक मुकदमा लगाया। "अ" ने अपनी डायरी में लिखा कि "ब" पांच पाउंड का ऋणी है। यह मुकदमा संबंध के अभाव में निरस्त कर दिया जाएगा।

स्टॉर बनाम स्कॉट 6c & p-241

(स) अ ने ब के अभिकर्ता के रूप में विदेश में रहने वाले सौदागर स से माल खरीदा। क्रय के समय पर अ ने स को सूचित नहीं किया कि उसका प्रमुख कौन था, किन्तु

बीजक से साबित है कि माल अ द्वारा ब के लिए खरीदा गया। स ने अ पर धन को निकाला। ब ने क्रय के लिए ज्ञापन पाने और अ के द्वारा बिलों के स्वीकृत होने के बाद अ को बड़ी धनराशि भेजी। उसी समय में अ दिवालिया हो गया। स ने प्रमुख रूप से ब पर मामला दर्ज किया।

ब ने अपने लेखा-खातों का साक्ष्य देना चाहा यह दर्शाने के लिए कि उसके द्वारा प्रमुख के रूप में ब नाम लिखा गया।

निर्णय था कि साक्ष्य अमान्य था।

स्मिथ बनाम एंडर्सन 7 सी.बी. 21

II. प्रत्येक संबंधित तथ्य नहीं है जो सुसंगत है। केवल तथ्य एक विशेष विषय में संबंधित है जो सुसंगत है। साक्ष्य नियम निर्धारित करता है कि किस प्रकार एक विशेष तथ्य विवाद्यक तथ्य के साथ क्रम में संबंधित होना चाहिए कि वह एक सुसंगत तथ्य के रूप में माना जा सकता है।

6. **विवाद्यक तथ्यों में समाविष्ट उसी कार्यवाही का भाग होने वाले तथ्यों को प्रमाण माना जाता है।**

दृष्टांत (अ), (स) (द) लें।

संव्यवहार से क्या अभिप्राय है?

संव्यवहार ऐसे संयुक्त तथ्यों का एक समूह है कि वे एक नाम से चलते हैं जैसे कि एक अपराध, संविदा, विक्रय आदि।

अपराध या संविदा के साथ कोई संबंधित बात यदि वह प्रत्यक्ष एवं दृश्य है जैसे **स्पष्ट** और **निकटवर्ती**, वह उसी कार्यवाही का अंग है और सुसंगत है।

संव्यवहार में क्या शामिल है?

संव्यवहार न केवल किए गए कार्यों को वरन् संव्यवहार के क्रम में किए गए कथनों को भी शामिल करता है।

दृष्टांत:-

महिला की चीत्कार जब बलात्कार किया गया। कथन उसी संव्यवहार के भाग होने चाहिए और साथ-साथ चलने चाहिए।

उसी संव्यवहार से क्या तात्पर्य है?

1. वैसा ही का तात्पर्य समान नहीं होता है। समान संव्यवहार की शृंखला का साक्ष्य असंगत है।
2. वैसे ही संव्यवहार का अभिप्राय उस संव्यवहार से नहीं है जो उसी समय और उसी स्थान पर घटित हुआ है, इसका घटना के समय और स्थान की समकालिकता के साथ कुछ भी लेना-देना नहीं है।

दृष्टांत:-

डकैती, जनवरी में एक स्थान पर पड़ सकती है, चुराया गया माल फरवरी में एक दूसरे स्थान पर प्राप्तकर्ता को सौंपा जा सकता है और मार्च में एक तीसरे स्थान पर बेच दिया जा सकता है। यह सब उसी संव्यवहार के भाग होंगे।

3. उसी संव्यवहार से अभिप्राय है एक संयुक्त संव्यवहार उसी कार्य के भाग।

वाद विधि : कॉकलेस पृष्ठ 66-68

53 कलकत्ता 372

सिद्धांत :-

1. ऐसा साक्ष्य अनुमत किया जाता है क्योंकि वह घटनाओं को बोधगम्य कराता है। वह संदर्भ प्रदान करता है।
2. एक तथ्य जो एक विवाद्यक तथ्य या एक सुसंगत तथ्य के लिए अवसर, कारण, प्रभाव, या मौके को दर्शाता है का प्रमाण अनुमत है।
    1. एक पुरुष चोरी का अभियुक्त है। यदि उसके कब्जे से धन नहीं पाया जाता है, तो संभावना है कि उसने चोरी नहीं की। हर एक कारण का एक प्रभाव होता है। यदि कोई प्रभाव नहीं था तो कारण नहीं।
    2. एक पुरुष आक्रमण का अभियुक्त है। - कि वहां एक झगड़ा था, दर्शाना प्रमाणित किया जा सकता है कि वहां अवसर या कारण था।
    3. एक पुरुष अपनी पत्नी को जहर देने का अभियुक्त है। - यह दर्शाने को कि वहां उसे ऐसा करने के लिए मौका नहीं था। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि परिचारिका हमेशा उपस्थित थी।
    4. अ ब की हत्या करने का अभियुक्त है - यह दर्शाने को कि हत्या करने का कारण था, प्रमाणित किया जा सकता है कि ब जानता था कि अ ने स से विवाह किया था और वह अ से मुहभराई चाहता था।

8/3 तथ्य जो विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य के लिए प्रेरक हेतु, तैयारी को दर्शाते हैं, का प्रमाण अनुमत किया जाता है।

प्रेरक - दृष्टांत (अ) (ब) प्रेरक हेतु के बिना कोई विवेकी व्यक्ति कार्य नहीं करता है।

तैयारी-दृष्टांत (स) (द) तैयारी के बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता है।

वाद विधि -

1. 61 कलकत्ता 54 - प्रेरक - अभीच्छा-तैयारी-प्रयास-कार्य
2. आर. बनाम पॉलमेर-कॉकल पी. ने रसोइए को मार दिया
   आर्थिक परेशानी, उसका जहर खरीदना

अपमृत्यु - विचारणा का परिहार करना।

3. आर. बनाम लिलीमेंन - कॉकल पी. (1896) 2 क्यू.बी. 167

4. एक तथ्य का प्रमाण अनुमत किया जाता है जो एक पक्ष, जो किसी वाद का आचरण दिखाता है, बाद का जो ऐसे वाद से संदर्भित होता है या जो कि किसी विवाद्यक तथ्य या किसी सुसंगत तथ्य का संदर्भ रखता है। उसी प्रकार एक तथ्य जो एक अभियुक्त के आचरण को दर्शाता है यदि ऐसा आचरण किसी विवाद्यक तथ्य द्वारा या किसी सुसंगत तथ्य द्वारा प्रभावित होता है और प्रभावित करता है।

1. व्यक्तियों का सामान्यतः आचरण

दृष्टांत - ई वसीयत का किया जाना। वसीयत किए जाने से कुछ समय पूर्व मृतक ने पूछताछ की और सुसंगत प्रारूप बनाए।

अभियुक्त का आचरणः

दृष्टांत-(ई) साक्षियों से झूठे साक्ष्य दिलाना।

दृष्टांत(ह) फरार हो जाना।

दृष्टांत-(ह) वस्तुओं (या तथ्यों) को छुपाना।

स्पष्टीकरण :-

1. आचरण कथन को तब तक शामिल नहीं करता है, जब तक कि कथन आचरण के साथ नहीं होता है और आचरण का स्पष्टीकरण नहीं करता है।

2. यदि आचरण सुसंगत है तब

एक कथन जो आचरण को प्रभावित करता है सुसंगत है यदि वह व्यक्ति से या उसकी उपस्थिति और सुनवाई में किया गया था।

दृष्टांत :-

(ग) प्रश्न है क्या अ 10,000 रु. के लिए ब का ऋणी है। अ ने स से धन उधार देने को कहा और द ने अ की उपस्थिति और सुनवाई में कहा, "मैं आपको सलाह देता हूं कि अ पर विश्वास न करना, क्योंकि वह 10,000 रु. का देनदार है" और अ कोई उत्तर दिए बिना चला गया **सुसंगत** है।

वाद विधि

इम्प. 34 ओ. एम. एंड आर. 1087

इम्प. 7 इलाहाबाद 385 एफ.ई.

कॉकल्स-पृ. 75 ब्राइट बनाम फोयबी ताथम।

5. तथ्य जो एक विवाद्यक तथ्य या एक सुसंगत तथ्य को स्पष्ट करने या सन्निविष्ट

करने के लिए आवश्यक है? के प्रमाण अनुमत किए जाते हैं।

दृष्टांत:-

(द) अपराध के लिए अभियोग पत्र पर यह आरोपित था कि अभियुक्त पलायन कर रहा था।

साक्ष्य दिया जा सकता है यह दर्शाने के लिए कि उसको अत्यावश्यक कार्य था।

(फ) अ उपद्रव में आक्रमण करने या पुलिस अधिकारी पर हावी होने के लिए विचारणीय है और एक भीड़ के आगे संचालन करता हुआ प्रमाणित है। कार्य की प्रकृति का स्पष्टीकरण करने के लिए भीड़ के नारों का साक्ष्य दिया जा सकता है।

(ब) मानहानि के मुकदमे में - अपमानजनक आचरण का अभ्यारोपण करते हुए विवाद्यक विषय के परिचायक के रूप में नित-समय पर लेख प्रकाशित था, पक्षों के अवस्थिति और संबंधों का साक्ष्य दिया जा सकता है। इसके अधीन साक्ष्य दिया जा सकता हैं।

(1) एक व्यक्ति या वस्तु की पहचान, जिसकी पहचान प्रश्नगत है।

(2) ठीक समय एवं स्थान का जिस पर एक विवाद्यक तथ्य अथवा सुसंगत तथ्य घटित हुआ।

(3) विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य के पक्षों के सम्बन्ध का।

4. किसी मनोदशा के अस्तित्व को दर्शाते हुए तथ्यों का प्रमाण अनुमत किया जाता है।

1. इसके अन्तर्गत, तथ्यों को प्रमाणित किया जा सकता है, जो अभिच्छा ज्ञान, सद्विश्वास, असावधानी, दुरेच्छा या शुभेच्छा को दर्शाते हैं।

2. इसके अंतर्गत पूर्ववर्ती दृढ़ धारणा का साक्ष्य दिया जा सकता है।

दृष्टांत (ब)

3. धारा के उपयोग पर **सीमाबन्धन**।

(1) मनोदशा जिसका साक्ष्य दिया जाता है, सामान्य मनोदशा नहीं है - सामान्य चित्तवृत्ति - लेकिन यह मनोदशा जो प्रश्नगत मामले के प्रति संदर्भ रखती है।

(2) प्रश्नगत विशेष मामले के संबंध में उसकी मनोदशा को दर्शाने के लिए पूर्ववर्ती अपराधकरण का साक्ष्य होना चाहिए और किसी अन्य प्रयोजन के लिए नहीं।

15. तथ्यों का प्रमाण यह दर्शाने को अनुमत किया जाता है कि किया गया क्रमबद्ध कार्य उसी प्रकार के कार्यों की श्रृंखला का एक अंग था, वह दर्शाने के लिए कि प्रश्नगत कार्य जानबूझ कर किया गया था और अचानक नहीं।

दृष्टांत

(अ) (ब)

1. साधारणत: उसी प्रकार के कार्यों का साक्ष्य सुसंगत नहीं है क्योंकि यदि एक

व्यक्ति ने एक कार्य किया है, वह यह अनुवर्तन नहीं करता कि उसने प्रश्नगत विशेष कार्य किया ही हो।

16. यदि एक कार्य विशेष किया गया या नहीं, का प्रश्न है तो एक कार्य के क्रम, जिसके अनुसार वह स्वाभाविकतः होगा, को दर्शाने वाले तथ्यों का प्रमाण अनुमत किया जाता है।

दृष्टांत - (अ) (ब)

यह संभावना को दर्शाता है।

प्रश्न है क्या एक पत्र विशेष अ को मिला या नहीं? पत्र डाक में दिया गया था और मृतपत्र कार्यालय द्वारा वापस नहीं किया गया था, प्रमाणित किया जा सकता है।

13. **कार्यों और दृष्टांतों के साक्ष्य-अधिकारों और प्रथाओं के प्रमाण में।**

1. शब्द अधिकार का क्षेत्र।

(अ) यहां तीन प्रकार के अधिकार हैं:

निजी - जैसे एक मार्ग का निजी अधिकार।

सामान्य - व्यक्तियों के एक विचारणीय वर्ग के लिए सामान्य एक अधिकार अर्थात् कूप विशेष के पानी का उपयोग करने को एक ग्राम विशेष के ग्रामीणों का अधिकार। धारा 48 दृष्टांत

लोक - यह अधिनियम में परिभाषित नहीं है। हर एक लोकाधिकार पूर्ववर्ती सामान्य अधिकार की परिभाषा के अर्थ में यह एक सामान्य है, यद्यपि (आंग्लविधि द्वारा किए गए प्रभेद के अनुसार) प्रत्येक सामान्य अधिकार एक लोकाधिकार नहीं है।

यह धारा, शब्द **कोई** के कारण सभी अधिकारों चाहें वे निजी, सामान्य या लोक के हों, पर प्रयुक्त होती है।

(ब) क्या धारा सभी प्रकार के अधिकारों पर प्रयुक्त होती है? यह प्रश्न शब्द **प्रत्येक** की अनुपस्थिति के कारण उद्भूत होता है।

एक बार इस प्रश्न पर निर्णयों का एक विवाद था। एक दृष्टिकोण था जो सभी अधिकारों को शामिल करता था। दूसरा दृष्टिकोण था कि वह केवल अभौतिक अधिकारों को शामिल करता है।

अब यह दृष्टिकोण प्रतीत होता है कि यह शब्द सभी अधिकारों को शामिल करता है।

2. शब्द प्रथा का क्षेत्र।

एक प्रथा प्राचीन रूढ़ि तक ही सीमित नहीं है वह आचार-व्यवहार को अंतर्विष्ट करती है। व्यवहार, जिसे लोग एक स्थान विशेष में अभी या हाल ही में करने के स्वभाव में हैं सम्मिलित करेंगे। यह तो हो सकता है कि विशेष स्वभाव का बहुत ही जल्दी में उद्भव हो या एक दीर्घकाल से अस्तित्व में चला आ रहा हो। यदि यह ऐसा

है जो साधारणतः प्रयोग में आता है तो वह व्यवहार है।

बी. प्रथा हो सकती है।

(i) निजी प्रथा – पारिवारिक प्रथा।

(ii) सामान्य प्रथा – लोगों के विशेष वर्ग की सामान्य प्रथा हो सकती है।

(अ) स्थानीय

(ब) जातीय या वर्गीय

(स) व्यापारिक प्रथा या व्यावहारिक प्रथा

(iii) लोक – अपरिभाषित।

सी. यह धारा सभी प्रथाओं और सभी रिवाजों पर प्रयुक्त होती है।

3. एक साक्ष्य, साक्ष्य है यदि वह कार्यों या दृष्टांतों जिनमें अधिकार या प्रथा उद्‌भूत हुई के लिए दिया जाता है।

अ. **संव्यवहार** एवं **दृष्टांत** का अभिप्राय।

(1) कोई व्यापार या संव्यवहार जो दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य किया गया।

(2) दृष्टांत – वाद घटित होना – एक विशेष ढंग में वैयक्तिक कार्यवाही।

ब. कार्यवाहियों के पक्षों के मध्य वादों में पूर्ववर्ती कार्यों के प्रति प्रमाण प्रतिबंधित नहीं है। शब्द **कोई** का प्रयोग दर्शाता है कि वाद के पक्षों के मध्य इसके होने की आवश्यकता नहीं है। यह अजनबियों के मध्य हो सकता है या वाद के पक्ष और अजनबी के मध्य हो सकता है।

स. शब्द कार्य एवं दृष्टांत ने एक परेशानी पैदा कर दी है और प्रश्न उठा दिया है कि क्या यह एक निर्णीत डिक्री एवं वाद है जिसमें वे उन्हीं पक्षों के मध्य न होने वाले और एक लोक प्रकृति के न होने से घोषित किए गए थे को, एक कार्य या दृष्टांत के साक्ष्य के रूप में घोषित करता है।

गज्जूलाल बनाम फतेहलाल 6 कलकत्ता 171, में इस प्रश्न पर विचार किया गया था।

3. वह तथ्य, जो विवाद्यक तथ्यों या सुसंगत तथ्यों के साथ संगत है या जो एक विवाद्यक तथ्य या एक सुसंगत तथ्य बनाते हैं, अत्यधिक संभावित है।

1. धारा निःसन्देह इतने प्रशर्तों एवं इतने विस्तीर्ण शब्दों में व्याख्यायित है कि कोई भी तथ्य जो एक अन्य तथ्य के साथ तर्कों की शृंखलाओं के द्वारा संबंध में लाया जा सकता है ताकि एक विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य पर प्रभावी होने से संभवतः ग्रहण करने योग्य हो सकता है।
2. यह कि विधायिका द्वारा ऐसा व्यापक अभिप्राय अभिच्छित नहीं था, यह शब्द अत्यधिक स्पष्ट है। शब्द 'अत्यधिक संभावना' इंगित करते हैं कि विवाद्यक

तथ्यों एवं प्रमाणित होने वाले तथ्यों के बीच संबंधन अत्यधिक संभाव्य और सह अस्तित्व प्रकट करने जैसा मध्यवर्ती होना चाहिए।

6 कलकत्ता 665 (662)

3. इस धारा के अन्तर्गत ग्राह्य एक सहवर्ती तथ्य प्रकट करने के लिए यह (अ) उचित निर्णायक साक्ष्य द्वारा प्रस्थापित होना चाहिए और (ब) जब स्थापित हों, तब विवादित विषय के संबंध में एक समुचित धारणा या अनुमान प्रदान करें।

6 बम्बई एल.आर. 983

4. इस धारा के निबंधन यद्यपि बहुत व्यापक हैं, अतः अधिनियम की अन्य धाराओं के अधीन पढ़े जाने चाहिए।

दृष्टांत:-

1. रामानुजन बनाम किंग एम्परर।

58 मद्रास 523 एफ.बी.

रामानुजन सीताअम्मल की हत्या करने के लिए आरोपित किया गया था।

तथ्य पृ. 526 पर दिए गए हैं।

हत्या का कोई प्रत्यक्ष साक्षी नहीं था। अभियोजन ने निम्नानुसार तथ्यों का साक्ष्य प्रस्तुत किया:

1. कि सीताअम्मल ने जब अपने पति का घर छोड़ दिया, अपने जेवर एवं चांदी के बर्तन ले जाकर कैदियों के साथ रहने लगी।
2. कि सीताअम्मल और अभियुक्त अलग-अलग कई पतों (स्थानों) पर एक साथ रहे।
3. कि वे 24 पेड्डुनायकन स्ट्रीट पर 11 जनवरी को अंतिम बार देखे गए थे।
4. 12 की सुबह जब दूधवाली गई तो कमरा बंद था।
5. कि लगभग 13 जनवरी को उसने सीताअम्मल से संबंधित कुछ गहनों को बंधक किया।
6. कि उसने एक ऐसी चटाई खरीदी जिसमें शव लपेटा जाना था।

2. एक आरोपित ऋण के भुगतान को प्रमाणित करने की मांग की दीर्घ निरन्तर अनुपस्थिति।

3. एक भरण-पोषण के मामले में पितृत्व को प्रमाणित करने के लिए प्रतिवादी से बच्चे की समरूपता।

11 (2) तथ्य जो विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य के साथ असंगत हैं या जो उनको अत्यधिक असंभावित बनाते हैं।

दृष्टांत :-

(1) ऋण दिए गए धन के एक मामले में, कथित ऋणदाता की गरीबी सुसंगत

है और ऋण देने के साथ असंगत है।

(2) कि एक साक्षी या अभियुक्त की अपराध के दृश्य पर तथाकथित उपस्थिति असंगत रूप में है और एक अन्य स्थान पर सुसंगत थी।

(3) एक मामले में, इस प्रश्न के निर्धारण को शामिल करते हुए कि क्या निशान अंगूठा उस अ का है या नहीं। एक अन्य अभिलेख पर उसके अंगूठे के निशान का साक्ष्य दिया जा सकता है यदि उनकी असमरूपता अंगूठे के निशान की कहानी को असंभावित बनाती है।

52-55 चाल चलन से संबंधित तथ्यों का प्रमाण

1. चाल चलन के साक्ष्य से संबंधित नियम दो वर्गों में आते हैं।

(i) वे जो साक्षियों के चाल-चलन से संबंधित हैं।

(ii) वे जो पक्षों के चाल चलन से संबंधित हैं।

साक्षियों के चाल-चलन।

1. उसकी विश्वसनीयता प्रभावित करने के रूप में साक्षी का चाल-चलन हमेशा सारभूत है। साक्षी की विश्वसनीयता सदा विवाद्यक है क्योंकि साक्षीगण माध्यम हैं जिनके द्वारा न्यायालय को प्रस्तुत किए गए मामलों पर निष्कर्षों तक पहुंचना होता है। वह सर्वदा सारभूत एवं महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि यह निश्चित करने कि ऐसे माध्यम विश्वसनीय हैं और एक परीक्षण के रूप में, प्रश्नों, मर्मस्पर्शी चाल-चलन के मामले में साक्षियों को प्रस्तुत किया जाना अनुमत है।

धाराएं 145-153

एक पक्ष का चाल-चलन

1. एक पक्ष के चाल-चलन के संबंध में प्रभेदों को निकालना चाहिए, मामले जहां पक्ष का चरित्र विवाद्यक है और जहां यह विवाद्यक नहीं है।

जहां पक्ष का चरित्र विवाद्यक है, वहां, बिना ध्यान दिए इस प्रश्न का; कि क्या कार्यवाहियां सिविल या दांडिक हैं, चरित्र से संबंधित तथ्यों का प्रमाण अनुमत किया जाता है। धारा 52

दृष्टान्तः-

I. एक सिविल के मामले में विवाद्यक है, "धात्री या अध्यापिका जबकि अपने मालिक की सेवा में थी, शालीन एवं सद् मनोभाषी और सक्षम थी", साक्षीगण उसकी सामान्य सक्षमता, सद्व्यवहार या मनःस्थिति का समर्थन करने या खंडन करने के लिए अनुमत किए जा सकते हैं।

II. एक दांडिक कार्यवाही में, सामूहिक ढंग के व्यवसाय को चलाने के षड्यंत्र के लिए, अभियुक्त के सामान्य चरित्र का समर्थन या खंडन करने के लिए साक्षीगण अनुमत किए जा सकते हैं।

जब पक्ष का सामान्य चरित्र विवाद्यक नहीं है, चरित्र का प्रमाण विधि द्वारा अनुज्ञात नहीं किया जाता। धारा 52

इस नियम के दो अपवाद हैं, जिनके अंतर्गत चरित्र का साक्ष्य अनुमत किया जाता है, हालांकि चरित्र विवाद्यक नहीं है।

(i) सिविल कार्यवाहियों में, चरित्र से संबंधित तथ्यों का प्रमाण अनुमत किया जाता है यदि वे क्षति के भाग को प्रभावित करते हैं। धारा 55

(ii) फौजदारी के मामलों में।

(i) अभियुक्त के सद्चरित्र को दर्शाने वाले तथ्यों का प्रमाण हमेशा अनुमत किया जाता है। धारा 53

(ii) अभियुक्त के दुश्चरित्र को दर्शाने वाले तथ्यों का प्रमाण अनुमत नहीं किया जाता है, निम्नलिखित मामलों के अतिरिक्त जहां अभियुक्त ने साक्ष्य दिया है कि वह सच्चरित्र है।

कारण है, क्योंकि सिविल एवं दंड कार्यवाहियों में यह अन्तर स्पष्ट है।

(1) दुश्चरित्र अभियुक्त के विरुद्ध केवल पूर्व धारणा बनती है। यह अभियुक्त के विरुद्ध विषय को प्रमाणित नहीं करती है। यह असंगत है जब तक कि अभियुक्त इसे एक विवाद्यक विषय नहीं बनाता है, अपने सद्चरित्र का साक्ष्य देने के द्वारा, तब निस्संदेह दुष्चरित्र का साक्ष्य दिया जा सकता है।

(2) सद्चरित्र, अभियुक्त की निर्दोषिता को सुदृढ़ करता है और मानवीय आधार पर अनुमत किया जाना चाहिए।

दो बातें ध्यान देने की हैं।

1. चरित्र शब्द में क्या सम्मिलित है?

धारा 55

चरित्र शब्द **ख्याति** और **मनोवृत्ति** दोनों को सम्मिलित करता है। यह आंग्ल विधि से पृथक है, जिसमें केवल चरित्र ख्याति तक सीमित है।

ख्याति और स्वभाव में एक प्रभेद है। ख्याति का अभिप्राय है एक व्यक्ति के विषय में दूसरों के द्वारा जो सोचा जाता है और वह लोकमत से बनी होती है। वह सामान्य शाखा है जिसे एक व्यक्ति उस मत से प्राप्त करता है।

मनोवृत्ति कार्य के स्रोतों एवं प्रेरकों को सम्मिलित करती है, जो व्यवस्थित एवं स्थायी होती है और मस्तिष्क की सम्पूर्ण मनोदशा एवं स्वभाव से संबंध रखती है।

2. चरित्र को कैसे प्रमाणित किया जाए?

एक व्यक्ति के चरित्र को प्रमाणित करन के दो उपाय हैं। एक उपाय है सामान्य ख्याति और सामान्य स्वभाव का साक्ष्य देना। दूसरा उपाय है विशेष कार्य, जो ख्याति एवं स्वभाव के अनुमान के आधार हो सकते हैं, का साक्ष्य देना।

55 व्याख्या -

साक्ष्य अधिनियम केवल सामान्य ख्याति और सामान्य मनोवृत्ति का साक्ष्य देना अनुज्ञात करता है।

55 व्याख्या -

केवल एक अपवाद है जिसके अंतर्गत दुश्चरित्र के साक्ष्य के बारे में पहले का अपराध जो सिद्ध हो चुका है के बारे में साक्ष्य दिया जा सकता है।

धारा 45-51

मतों का प्रमाण

1. न्यायालय को मामले के तथ्यों के बारे में सूचना देना साक्षियों का उपयोग है। स्वयं अपना अभिमत बनाना यह न्यायालय का कर्त्तव्य है।
2. जो साक्षी ने सोचा या विश्वास किया वह दिखाना दो आधारों से आपत्तिजनक होगा, (1) वह कुछ भी नहीं दिखा सकता है और (2) वह न्यायाधीश के कार्यक्षेत्र की घेराबन्दी होगी।
3. नियम है कि साक्षी अभिमतों को नहीं, तथ्यों को बताए। एक कठोर प्रयुक्ति दो कठिनाइयां उत्पन्न करेगी।

(1)**एक तीसरा व्यक्ति** (अर्थात् कोई व्यक्ति जो न तो वादी है, न प्रतिवादी है और न एक बन्दी है) किसी प्रश्नगत विषय के बारे में क्या सोचता या विश्वास करता है, सारभूत नहीं है। यदि ऐसा तीसरा व्यक्ति साक्षी के रूप में बुलाया जाता है, उसको नियमानुसार, केवल तथ्यों को व्यक्त करना चाहिए, उसका वैयक्तिक मत साक्ष्य नहीं है। किन्तु एक पक्ष जो सोचता या विश्वास करता है उस समय वह सारभूत कार्य करता है, वह दण्ड एवं सिविल कार्यवाहियों दोनों में प्राय: एक विवाद्यक विषय है।

दृष्टांत:- कार्टर बनाम बोइहिन कॉकल पृ.

प्रश्न था, क्या एक बीमा पॉलिसी को उन तथ्यों के छुपाने के आधार पर रद्द कर दिया गया था, जो अधो लेखकों को बताए नहीं गए थे। एक दलाल ने तथ्यों की सारभूतता का साक्ष्य दिया। उससे पूछा गया क्या वह यह संविदा करता यदि ये तथ्य प्रत्यक्ष कर दिए जाते। उसका उत्तर कि वह नहीं करता, अस्वीकार्य किया गया था, चूंकि वह अभिमत का विषय था। किन्तु यदि वह प्रश्न पक्ष से पूछा गया होता तब उसका अभिमत मान्य हुआ होता।

(2)इस नियम की कठोर प्रयुक्ति अवश्य ही कठिनाइयां उत्पन्न करती है। उन वादों में जहां न्यायालय से एक अभिमत बनाने की अपेक्षा की जाती है, न्यायालय एक अभिमत बनाने के लिए सक्षम नहीं हो सकता। न्यायालय को एक सत्य अभिमत बनाने से पूर्व विशेष अनुभव या विशेष अभ्यास आवश्यक है। ऐसे मामले में उन लोगों की राय या मत जिन्हें विशेष अनुभव या विशेष प्रशिक्षण हैं को कोई भी सही निर्णय से

पूर्व कोर्ट के सामने आना चाहिए।

(3) कुछ ऐसे मामले हैं जहां किसी साक्षी के लिए निश्चयपूर्वक बोलना स्वाभाविक रूप से असंभव है, ऐसे मामले जहां, यदि उसके अभिमत या विश्वास का जरा भी संबंध है, उसे अवश्य बोलना चाहिए, अभिमत के मामले इतने जटिल या अनिश्चित होते हैं, जिनके प्रति वह अभिकथन करता है कि न्यायाधीश उसके अभिमत को उसका जो महत्त्व है, स्वीकार करने को बाध्य है। पूर्ववर्ती विज्ञान कला अथवा कौशल के प्रश्नों को शामिल करने वाले मामले हैं जिनके लिए आवश्यकतः विशेषज्ञों के अभिमत की अपेक्षा की जाती है। परवर्ती मामलों के वर्ग में संस्कारों के प्रश्न को शामिल करने वाले मामले हैं जो विशेषज्ञों के नहीं हो सकते।

(4) अतः साक्ष्य अधिनियम सामान्य नियम के निम्नोक्त अपवाद बनाता है जिसमें एक साक्षी का अभिमत ग्राह्य नहीं है।

धारा 45

(1) **दक्ष** या **वैज्ञानिक साक्षियों** (विशेषज्ञों) के अभिमत ग्राह्य साक्ष्य हैं, उन मामलों को स्पष्ट करने के लिए जो निश्चिततः एक व्यावसायिक या वैज्ञानिक प्रकार है। उदाहरण के लिए -

(i) विदेश-विधि का प्रश्न।

(ii) विज्ञान या कला का प्रश्न (एक मशीनगन का कार्य)।

(iii) हस्तलेखन या अंगुलियों की छाप की पहचान से संबंधित प्रश्न।

धारा 47

(2) एक व्यक्ति जिसके द्वारा प्रलेख लिखा गया या हस्ताक्षरित था, की पहचान के प्रश्न पर उस हस्तलेख के साथ परिचित व्यक्ति का अभिमत सुसंगत है।

धारा 48

(3) जहां न्यायालय को, किसी सामान्य परंपरा या संबंध में एक अभिमत बनाना है उसके अस्तित्व को जानने के प्रति व्यक्तियों का अभिमत सुसंगत है।

धारा 49

(4) जब न्यायालय को एक अभिमत बनाना है, जैसे कि :-

1. परिवार या मनुष्यों के किसी व्यक्ति के सिद्धांत और रीति-रिवाज।
2. विशेष जनपदों या लोगों के विशेष वर्गों में उपयोगी शब्दों या पदों के अर्थ।
3. उन पर ज्ञान के विशेष साधन रखने वाले व्यक्तियों के अभिमत सुसंगत तथ्य हैं।

धारा 50

(5) जब न्यायालय को दो व्यक्तियों के बीच नातेदारी के संबंध में एक अभिमत बनाना है, तो विषय पर ज्ञान के विशेष साधन रखने वाले और पक्षों के आचरण पर

आधारित व्यक्तियों के अभिमत सुसंगत तथ्य हैं।

दृष्टांत - (अ) (ब)

परन्तुक :

ऐसा अभिमत, भारतीय वैवाहिक विच्छेद अधिनियम के अंतर्गत विवाह या भारतीय दंड संहिता की धारा 494, 495, 497, 498 के अधीन अभियोगों को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।

प्रमाण के लिए अपेक्षित साक्ष्य का स्वरूप

विधि का संक्षिप्त विवरण

(i) सर्वोत्तम साक्ष्य का नियम।

(ii) सर्वोत्तम साक्ष्य नियम की अपेक्षाएं।

(i) सर्वोत्तम साक्ष्य का नियम अपेक्षा करता है।

(अ) यह कि यदि साक्ष्य मौखिक है, तब यह प्रत्यक्ष होना चाहिए।

(ब) अपवाद

(ii) सर्वोत्तम साक्ष्य का नियम अपेक्षा करता है कि यदि साक्ष्य प्रलेखी है तब।

(i) यह मौलिक होना चाहिए।

(अ) अपवाद

(ii) यह अनन्य हो।

(अ) अपवाद।

सर्वोत्तम साक्ष्य का नियम

1. विधि की यह अखंडनीय प्रस्थापना है कि वह पक्ष जिसको कोई तथ्य प्रमाणित करना है उसको वह सर्वोत्तम साक्ष्य द्वारा करना चाहिए जो मामले की नैसर्गिकता के योग्य है।
2. यह नियम वस्तुतः कहा जाए, तो समग्र साक्ष्य विधि का आधार होता है।
    (i) यह इस नियम के कारण है कि विधि-साक्ष्य की ग्राह्यता के लिए एक पूर्वगामी मिसाल के रूप में अपेक्षा करती है कि मुख्य और साक्ष्य तथ्यों के मध्य एक खुला एवं देखने योग्य संबंध होना चाहिए।
    (ii) यह इसी नियम के कारण है कि विधि अपेक्षा करती है कि साक्ष्य ग्राह्य होने के क्रम में, उपयुक्त उपकरणों के द्वारा आना चाहिए।
    (iii) यह इसी नियम के कारण है कि विधि अपेक्षा करती है कि साक्ष्य ग्राह्य होने के लिए नकली नहीं, मौलिक होना चाहिए।
3. एक समय सर्वोत्तम साक्ष्य का नियम बहुत कठोरतः लागू किया जाता था किन्तु अब इसका प्रयोग अत्यंत सरल हो गया है और एक समय जो ग्राह्यता के प्रतिवाद थे अब मात्र भार की पर्याप्तता हो गई।

4. किन्तु नियम अभी तक विद्यमान है और मौखिक और प्रलेख साक्ष्य के संबंध में साक्ष्य विधि की अपेक्षाओं के द्वारा दृष्टांत किया जाता है।

मौखिक साक्ष्यः-

1. सर्वोत्तम साक्ष्य का नियम अपेक्षा करता है कि यदि साक्ष्य मौखिक है तब वह स्पष्ट होना चाहिए।
2. यह नियम साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में उल्लिखित है।
3. स्पष्ट साक्ष्य से क्या तात्पर्य है?
4. उत्तर जो सामान्यतः दिया जाता है वह यह है कि मौखिक साक्ष्य श्रुति साक्ष्य नहीं होना चाहिए। यह श्रुति साक्ष्य के विचार की ओर ले जाता है।

यह नियम जनश्रुति के अलावा अपवादों के तीन मुख्य वर्गो के अधीन है:-

(i) ग्रहण और अपराध स्वीकरणः पक्ष की उपस्थिति में किए गए कथन।

(ii) मृत होते समय व्यक्तियों द्वारा दिए गए कथन।

(iii) लोक अभिलेखों में दिए गए कथन।

श्रुति साक्ष्य क्या है:-

1. श्रुति साक्ष्य बहुत भिन्न-भिन्न तरीकों से परिभाषित किया जाता है:-

(i) संपूर्ण साक्ष्य जो अपना मूल्य पूर्णतः स्वयं साक्षी को दिए गए साक्ष्य से उत्पन्न नहीं है बल्कि जो अंशों में भी किसी अन्य व्यक्ति की सत्यवादिता एवं सक्षमता पर निर्भर करता है।

(ii) जबकि न्यायालय में परीक्षण के अंतर्गत एक साक्षी के द्वारा किया गया एक कथन या एक तथ्य जिसके अस्तित्व या अनस्तित्व के संबंध में जांच की जा रही है, साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

2. श्रुति साक्ष्य है जो गैर साक्षियों के द्वारा किए गए अभिकथनों के साक्षियों द्वारा प्रतिवेदित है।

श्रुति साक्ष्य क्यों अपवर्जित किया जाता है?

1. जब अ, न्यायालय में शपथ लेकर किसी बात का विवरण करता है, जिसको उसने अपनी आंखों से प्रत्यक्षतः नहीं देखा वरन् जिसको उसने ब के माध्यम से सुना था, वह साक्ष्य के लिए अपने शारीरिक भावों की अभिव्यंजना नहीं कर रहा था, वरन् संचार का एक माध्यम है जो तीसरे अशपथित व्यक्ति के सिवाए उसने देखा हुआ कहा है। वह जन्म का साक्ष्य ला रहा है प्राव्रजन्म वर्णन एक धात्री के साथ थे, और एक पक्ष जो न्यायालय के समक्ष नहीं है की सूचना को संचारित करने के लिए चालक-पाइप या एक माध्यम मात्र है। अ सर्वाधिक ठीक और सत्यतः ...... प्रतिवेदित करता है, जो उसको बताया गया है, किन्तु उस पर भी यह प्रकट है कि मौलिक कथन का वास्तविक तथ्य ऐसी परिस्थितियों में परीक्षित नहीं किया जा सकता है। सूचना का उत्पन्नकर्ता

एक शपथ या प्रति परीक्षण के अधीन नहीं है अनामित व्यक्ति वरन् वह व्यर्थतः या उपहास्यतः कहा गया हो सकता है और जो वह साधारण बातचीत में कहने में नहीं हिचका उसे शपथपूर्वक कहने का अनिच्छुक होगा। अनभिव्यक्ति के बहाने इच्छापूर्वक एक कहानी नहीं गढ़ी हो या किसी से प्रवंचित गया हो उससे भी आगे दृश्य में छिपा हो या कि यद्यपि अभिच्छा के संबंध में पूर्णतः सत्यनिष्ठ हो, वह अपने दोषपूर्ण प्रभाव या अनस्थिर स्मृति का शिकार हुआ हो, और इतना बुरी तरह टूट चुका हो कि केवल प्रतिपरीक्षण की परीक्षा में वह अनावृत्त हो जाता। अस्तु विधि निर्धारित करती है कि ऐसा साक्ष्य ग्राह्य नहीं होगा, कि यदि पक्ष के लिए अ को बुलाना उन तथ्यों को प्रस्थापित करने के लिए, जिनको उसने ब से सुना है, महत्त्वपूर्ण है, स्वयं ब को प्रस्तुत किया जाएगा, न्यायालय में कथन करेगा, दो परीक्षणों शपथ और प्रतिपरीक्षण के अधीन किया जाएगा और भ्रामक साक्ष्य का शायद ही कम भयंकर संसूचक प्रेक्षण जिसके लिए एक न्यायाधीश, न्यायालय व्यवहार का अनुभवी और मानवीय प्रकृति के ज्ञान में उसे प्रभावित करता है आचरण, क्षेत्र व्यवहार, प्रत्येक साक्षी को जो उसके समक्ष आता है।

क्या अपवर्जन का नियम सभी श्रुति साक्ष्य पर लागू होता है?

1. जनश्रुति एक व्यक्ति का कथन है जो न्यायालय में साक्षी नहीं है और जिसका साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाना, एक दूसरे व्यक्ति के द्वारा होता है, जो एक साक्षी के रूप में आता है।
2. प्रश्न है, क्या अपवर्जन का नियम, एक व्यक्ति, जो न्यायालय में एक साक्षी नहीं है, के सभी कथनों पर लागू होता है।
3. इस प्रश्न को समझने के लिए यह अनुभव करना आवश्यक है कि एक कथन साक्ष्य में प्रस्तुत किया जाता है उसके दो पक्ष (पहलू) होते हैं। **एक कथन, एक तथ्य है और यह एक तथ्य का कथन भी है।**

दृष्टांतः–

जब अ साक्ष्य देता है कि ब ने यह या वह कहा था।

(i) एक तथ्य के रूप में लिए जाने पर प्रश्न है, क्या ऐसा कहा या उसने नहीं कहा।

(ii) एक तथ्य के कथन के रूप में लिए जाने पर प्रश्न है, क्या जो कहा सत्य या असत्य है।

4. एक व्यक्ति जो साक्षी नहीं है के द्वारा कथन का साक्ष्य दो प्रयोजनों के लिए दिया जा सकता हैः

   (i) प्रमाणित करने के लिए कि ऐसा एक कथन दिया गया था।

   (ii) प्रमाणित करने के लिए कि एक दिया गया कथन, एक सत्य कथन है।

अपने पूर्ववर्ती पक्ष में वह एक विवाद्यक तथ्य है। अपने परवर्ती पक्ष में वह कथित

विषय के सत्य को प्रमाणित करने के लिए एक दृढ़ कथन है।

5. क्या एक गैर–साक्षी के द्वारा कथन किए गए कथन को साक्ष्य में प्रस्तुत किए जाने के लिए व्यवस्थित किया जाता है और उसकी ग्राह्ययता प्रश्नांकित है, मात्र एक विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और विषय के सत्य को प्रमाणित करने के लिए एक अनुसमर्थन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और उस प्रयोजन, जिसके लिए प्रस्तुत किया जाता है पर निर्भर करता है वह परीक्षण प्रयोजन है।
6. जनश्रुति के अपवर्जन का नियम एक संकुचित भाव साथ ही एक विस्तृत भाव में भी कहा जाता है। उसके संकुचित भाव में वह अभिकथित लक्ष्य के सत्य को प्रमाणित करने के लिए अशपथित कथनों तक परिबद्ध किया जाता है। उसके विस्तृत भाव में वह किसी भी प्रयोजन के लिए प्रस्तुत अशपथित साक्षियों के सभी कथनों को अन्तर्विष्ट करने के लिए उपयोग किया जाता है। अर्थात् अन्तर्विष्ट कथनों को मात्र तथ्यों की तरह प्रयोग किया जाता है।

साक्ष्य अधिनियम में अंगीकृत नियम

1. भारतीय साक्ष्य अधिनियम इस नियम को मान्यता प्रदान नहीं करता कि एक तथ्य के अस्तित्व या अनस्तित्व के सम्बन्ध में, जिसकी जांच की जा रही है, और न्यायालय में परीक्षणाधीन हो साक्षी द्वारा किया गया कोई कथन साक्ष्य के रूप में उपयोग किया जा सकता है। – "मार्कबी"
2. भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत गैर–साक्षियों के कथन ग्राह्य है, जहां कथन करने में उसकी यथार्थता सारभूत प्रश्न नहीं है।
3. अतः
   (i) कथन, जो मामले से संबद्ध तथ्य के अंग हैं क्या एक विवाद्यक तथ्य या उसके संलग्नित होने वाले को वस्तुतः संघटित करते हैं।
   (ii) स्वामित्व के कार्यों के समान होने वाले कथन जैसे पट्टे, अनुज्ञप्तियां और अनुदान (धारा 13)
   (iii) कथन, जो साक्षी के साक्ष्य (कथन) का समर्थन या खंडन करते हैं (धारा 155, 157, 158) ग्राह्य हैं हालांकि वे गैर–साक्षियों के कथन हैं।
4. जनश्रुति के अपवर्जन का नियम केवल गैर–साक्षियों द्वारा किए गए कथनों पर प्रयुक्त होता है, जो कहे गए तथ्यों के सत्य को प्रमाणित करने के लिए उपयोग किए जाते हैं।

4. इस नियम के अपवाद क्या हैं?

(1) साक्ष्य अधिनियम में उल्लिखित साक्ष्य के नियम के अंतर्गत उसमें व्यक्त तथ्यों

की सत्यता को प्रमाणित करने वाले एक गैर-साक्षी का कथन अमान्य है।

2. इस नियम के अपवाद हैं।

अपवाद धारा 32 में अंतर्विष्ट हैं

1. जब एक व्यक्ति मृत है, या पाया नहीं जा सका है, या साक्ष्य देने लायक नहीं है या जिसकी उपस्थिति बिना विलम्ब या व्यय के प्राप्त नहीं की जा सकती है, ऐसे व्यक्ति के द्वारा किए गए लिखित या मौखिक कथन प्रमाणित किए जा सकते हैं यदि कथन धारा 32 में वर्णित 8 संवर्गों में से किसी एक के अंतर्गत आते हैं।

   (i) जब वह उसकी मृत्यु के कारण के संबंध में हो (अ)

   (ii) जब वह व्यवसाय के क्रम में किया जाता है। (ब) (ज)

   (iii) जब वह कथन वाले के आर्थिक या संपत्ति के हित के विरुद्ध है या जो यदि सत्य हो तो उसको दंड अभियोजन या क्षतिपूर्ति वाले मामले के लिए आरोपित कर देगा। दृष्टा (ई) (फ)

   (iv) जब वक्तव्य सामान्य हित के मामले या परंपरा या लोकाधिकार के संबंध में अपनी राय देता है, बशर्ते कि ऐसा अभिमत विवाद उठने से पूर्व दिया गया हो। दृष्टा (ज)

   (v) जब वह कथन संबंध रक्त, विवाह या दत्तक से संबंधित है और उस व्यक्ति को विशेष ज्ञान था और विवाद के पूर्व दिया गया कथन था।

   (vi) जब वह कथन मृतक व्यक्तियों के संबंध के अस्तितव से संबंधित है और किसी वसीयत, पारिवारिक कार्यों से संबंधित विलेख, पारिवारिक वंशावली, किसी समाधि के पत्थर पर और परिवार चित्रावली आदि, में किया गया है और विवाद से पूर्व किया गया है।

   (vii) जब वह कथन किसी विलेख, वसीयत या अन्य प्रलेख जो किन्हीं कार्यवाहियों, जैसे धारा 13, खण्ड (अ) में वर्णित हैं, से संबंधित है।

   (viii) जब वह कथन प्रभावों या भावनाओं को व्यक्त करने वाले अनेक व्यक्तियों द्वारा किया गया है। दृष्टांत: -

धारा 33 में अंतर्विष्ट अपवाद

1. जब एक व्यक्ति मृत है, या पाया नहीं जा सकता है, या साक्ष्य देने के लिए अयोग्य है या विरोधी पक्ष द्वारा मिलने से अलग कर दिया गया है, या यदि उसकी उपस्थिति, व्यय करने पर बिना युक्तियुक्त विलम्ब के उपलब्ध नहीं की जा सकती है तब

ऐसे व्यक्ति द्वारा एक साक्षी के रूप में एक पूर्ववर्ती न्यायिक कार्यवाही में या उसे लेने के लिए प्राधिकारित किसी व्यक्ति के समक्ष दिया गया साक्ष्य

एक तदनन्तर न्यायिक कार्यवाहियों में या उसी न्यायिक कार्यवाही के एक पूर्ववर्ती चरण में, उसमें व्यक्त तथ्यों के सत्य को प्रमाणित करने के लिए, प्रस्तुत किया जा सकता है।

परन्तु

(i) कि कार्यवाही उन्हीं पक्षों या उनके हितैषियों के मध्य थी।

(ii) कि प्रथम कार्यवाही में विरोधी पक्ष को प्रतिपरीक्षण का अधिकार और सुयोग था।

(iii) कि प्रथम कार्यवाही में वही वास्तविक विवाद्यक प्रश्न थे जैसे कि द्वितीय कार्यवाही में, (आगे अंश सुलभ नहीं – संपादक)

35. किसी पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख में प्रविष्टियां

1. ग्राह्यता की शर्तें

(i) धारा में प्रविष्टियों के दो वर्ग अपेक्षित हैं। (अ) लोक सेवक द्वारा और (ब) लोक सेवकों से पृथक व्यक्तियों के द्वारा। यदि वह लोकसेवक द्वारा है तब वह उसके कर्त्तव्य निर्वहन करने के समय होना चाहिए। यदि वह उन व्यक्तियों के द्वारा है, जो लोक सेवक नहीं है, तब प्रविष्टि करने का कर्त्तव्य विशेषत: विधि द्वारा व्यादेशित होना चाहिए। पहला चर्चा का विषय है। बाद का निर्देशन का विषय है।

(ii) पुस्तक, पंजी, अभिलेख या तो जनसाधारण का हो या शासकीय हो।

शासकीय का अभिप्राय कार्यालय के प्रयोग के लिए नहीं वरन् इसका अभिप्राय है कि राज्य द्वारा व्यक्त जो किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा व्यक्त वस्तु से भिन्न है।

जनसाधारण का अभिप्राय है जनता के उपयोग के लिए। जनता का अभिप्राय प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुला नहीं है। इसका अभिप्राय है व्यक्ति के लिए जो इससे संबंधित है।

18 कलकत्ता 584

(iii) पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख किसी पुस्तक में हो सकता है, पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख किसी देश मे रखा हो, भारत में आवश्यक नहीं बशर्ते कि इसने प्रतिबंधिताओं को संतुष्ट किया हो। किसी बाह्य देश की एक पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख में एक इंदराज प्रमाणित की जा सकती है।

ध्यान देने योग्य बिंदु

(1) इंदराज साक्ष्य है, यद्यपि व्यक्ति जिसने उसको किया जीवित है और एक साक्ष्य के रूप में बुलाया नहीं गया है – लोक एवं शासकीय प्रलेखों के प्रमाण के लिए, देखें धारा 76–78

(2) वह धारा पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख को यह दर्शाने के लिए साक्ष्य नहीं बनाती कि एक विशेष इंदराज है –

10 कलकत्ता 1024, 25 इलाहाबाद 90

(3) धारा मामलों के वर्ग तक परिबद्ध नहीं है जहां लोकाधिकारी को एक रजिस्टर या अन्य पुस्तक में किसी वास्तविक तथ्य जो उसकी जानकारी में है इंदराज करना है –

20 कलकत्ता 940

(4) यद्यपि एक लोक–सेवक द्वारा अपने शासकीय कर्त्तव्य के निर्वहन में इंदराज कर दी गई है या विधि द्वारा विशेषतः आदेशित एक कर्त्तव्य के सम्पादन में की गई हो, किंतु यह ऐसी एक इंदराज नहीं होनी चाहिए, जिसे एक लोक–सेवक द्वारा करने की अपेक्षा की जाती है या अनुज्ञात की जाती है, या जिसके लिए अपने कर्त्तव्यों की अनभिज्ञता, सनक से या अन्यथा एक व्यक्ति जिसे प्रविष्टि में व्यक्त तथ्यों के सत्य का ज्ञान था, के आज्ञापन (डिक्टेंशन) पर किया जाना चुना जा सकता है।

25 इलाहाबाद 90 एफ.बी. 101

2. यह आवश्यक नहीं है कि इंदराज रोजाना किया जाए या (जैसे बैंकों में) घंटे–घंटे में जैसे कार्यवाही की जानी चाहिए। समय जब इंदराज की जाती है आवश्यक नहीं है। जो आवश्यक है वह यह है कि वे निश्चित क्रम में नियमित रूप से की जानी चाहिए। प्रविष्टि में विलम्ब उसके मान को प्रभावित कर सकता है, किंतु उसकी मान्यता को प्रभावित नहीं कर सकता है।

27 कलकत्ता 118 (पी.सी.), 13 सी.एल.जे. 139

3. यद्यपि व्यवसाय के क्रम में नियमित रूप से रखे गए लेखों की पुस्तकों में वास्तविक प्रविष्टियां सुसंगत हैं, पुस्तक स्वतः

उससे संबंधित किसी प्रविष्टि की अनुपस्थिति द्वारा एक अभिकथित कार्यवाही को अप्रमाणित करने के लिए, सुसंगत नहीं है।

टिप्पणी: वह धारा 9 के अंतर्गत और 11–19 सी.एन. 1024 ग्राह्य हो सकती है। इंदराज के बिना निकाले गए अनुमानों के लिए।

30 कलकत्ता 231 (247) पी.सी.

4. इंदराज पुस्तक रजिस्टर या अभिलेख में होनी चाहिए। इंदराज पत्राचार को अंतर्विष्ट नहीं करती है।

7 एम.एल.आई. 117

दृष्टांत:–

(1) जन्म–मरण रजिस्टरों में इंदराज।

(2) जन्म और राजस्व रजिस्टरों में इंदराज।

(3) जन्म और विवाह रजिस्टरों में इंदराज।

35. विवाद्यक तथ्यों या सुसंगत तथ्यों के मानचित्रों एवं लेख चित्रों में किए गए अभिकथन।

1. ग्राह्यता की शर्तें

धारा मानचित्रों और कार्यप्रणाली के दो वर्गों को संदर्भित करती है।

(अ) वे सामान्यत: लोक-विक्रय के लिए अर्पित किए जाते हैं, और

(ब) मानचित्रों या कार्यप्रणाली को शासन के प्राधिकारी के अधीन निर्मित किया जाए।

(अ) की ग्राह्यता के लिए कारण:-

प्रकाशन समग्र समुदाय के लिए सुगम्य होने और सभी संभावनाओं की आलोचनाओं के लिए खुला होना और उपाहूत या अनावृत्त होती हुई अयथार्थता के पक्ष में है।

(ब) की ग्राह्यता के लिए कारण:-

सरकार के प्राधिकार के अधीन बनाए गए और प्रकाशित किए गए और उनको सक्षम व्यक्तियों द्वारा अध्ययन एवं जांचों के परिणाम होना मानना चाहिए।

37. किसी अधिनियम में तथ्यकथन में किया गया कथन या राजपत्र में प्रकाशित हुई सरकार की अधिसूचना।

कारण:-

1. गजट और अधिनियम ग्राह्य हैं क्योंकि वे एक शासकीय कर्त्तव्य के क्रम में सरकारी कर्मचारियों द्वारा बनाए जाते हैं और राजकीय प्राधिकारी के अधीन प्रकाशित किए जाते हैं और उनमें व्यक्त तथ्य जनता की प्रकृति एवं ख्याति हैं।
2. उनमें व्यक्त तथ्य लोक प्रकृति के हैं और सशपथ साक्षियों द्वारा उन्हें प्रमाणित करना प्राय: कठिन होगा।
    1. यदि न्यायालय को एक लोक प्रकृति के किसी तथ्य के अस्तित्व के रूप में एक अभिमत बनाना है तो यह सुसंगत है।
    2. लोक-प्रकृति। (व्याख्यायित नहीं - संपादक)
    3. धारा संसद के सार्वजनिक एवं असार्वजनिक अधिनियम के मध्य कोई भेद नहीं करती। वह मात्र अपेक्षा करती है कि दोनों में से किसी एक में वर्णित तथ्य लोक प्रकृति का होना चाहिए।
    4. जहां तक साक्ष्य अधिनियम का संबंध है वृत्तांत निश्चायक नहीं है। तो भी वे स्पष्टत: निश्चायक होने वाले घोषित किए जा सकते हैं।
    5. एक तथ्य के अस्तित्व को दर्शाने के लिए एक वृत्तांत को प्रमाणित करना है। यह कोई साक्ष्य नहीं है कि विशेष व्यक्ति उसके अस्तित्व को जताना हो।

एक तथ्य का ज्ञान यद्यपि वह लोक-प्रकृति का हो गजट में एक अधिसूचना से निश्चित रूप से अनुमति नहीं होना है। यह दर्शाना चाहिए कि सूचना से प्रभावित पक्ष ने उसे पढ़ लिया है।

धारा 38

1. किसी भी देश की विधि विवरण में।

(अ) ऐसे देश की सरकार के प्राधिकारी के अधीन मुद्रित या प्रकाशित होने वाली और किसी ऐसी विधि को अंतर्विष्ट करने वाली होने वाली और किसी ऐसी विधि को अंतर्विष्ट करने वाली समझे जाने वाली पुस्तक में।

2. ऐसे निर्णीत नियमों का एक प्रतिवेदन होने का समर्थन करने वाली एक पुस्तक में अंतर्विष्ट ऐसे देश के न्यायालय के एक निर्णीत नियम का प्रतिवेदन हो।

यह वहां लागू होता है जहां न्यायालय को, किसी देश की एक विधि के संबंध में एक अभिमत बनाना होता है।

तथ्यों, जो विवाद्यक तथ्यों या सुसंगत तथ्यों के साथ असंगत हैं या जो उन्हें अत्यधिक असंभावनीय बनाते हैं, के विशेष उदाहरणः-

वे हैं (1) ग्राह्य, (2) अपराध-स्वीकरण, और (3) निर्णय।

ग्राह्य

धारा 21

1. ग्राह्य उस व्यक्ति के विरुद्ध और उसके प्रतिनिधि के विरुद्ध और हित में प्रकाशित किया जा सकता है जो इसको बनाता है।

2. प्रश्न है कि ग्राह्य क्या है? उससे पहले उस ग्राह्य की सुसंगतता के संबंध में कुछ बातों को ध्यान में रख लेना चाहिए।

(1)ग्राह्य एक व्यक्ति के विरुद्ध प्रमाणित किया जा सकता है।

ग्राह्य एक व्यक्ति के पक्ष में उसके द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। एक वादी प्रतिवादी द्वारा किए गए ग्राह्य को प्रमाणित कर सकता है यदि इस वाद के लिए वह आवश्यक है। एक प्रतिवादी, वादी द्वारा किए गए ग्राह्य को प्रमाणित कर सकता है यदि वह उसके मामले के लिए आवश्यक है। किंतु एक वादी उसके द्वारा किए गए ग्राह्य को कितना भी सहायक हो सकता हो उसके मामले के लिए, प्रमाणित नहीं कर सकता है। उसी प्रकार एक प्रतिवादी उसके द्वारा किए गए ग्राह्य को वह उसके मामले में कितना भी सहायक हो, प्रमाणित नहीं कर सकता।

कारण है कि एक पक्ष को उसके अपने पक्ष में साक्ष्य सृजित करने को अनुमत नहीं किया जा सकता।

इस नियम के तीन अपवाद हैं जिनके अंतर्गत एक पक्ष उसके अपने पक्ष में एक ग्राह्य का साक्ष्य देने के लिए अनुज्ञात किया जाता है।

(अ) यदि ग्राह्य धारा 32 के अंतर्गत सुसंगत है।

(ब) यदि ग्राह्य मनोदशा या शरीर से संबंधित है समय पर किया गया और आचरण के साथ चलता है।

(स) यदि ग्राह्य सुसंगत है तो वह ग्राह्य है।

दृष्टांत:- (द) और (इ)

धारा 23

(2)इन तीन मामलों को छोड़कर, एक ग्राह्य, यदि उसे प्रमाणित करना है तो केवल एक पक्ष के विरुद्ध प्रमाणित किया जा सकता है। किंतु एक मामला है जिसमें प्रमाण नहीं दिया जा सकता है। यह एक मामला जहां ग्राह्य स्पष्ट शर्त पर किया गया था कि ग्राह्य का प्रमाण नहीं दिया जाएगा।

धारा 31

(3)जो मामले दाखिल हो चुके हैं उनका दाखिल हो जाना एक निश्चायक प्रमाण नहीं है। एक ग्रहण एक विबंधन हो सकता है यदि विबंधन के लिए आवश्यक तत्त्व विद्यमान है जिस मामले में एक पक्ष जिसके विरुद्ध वह प्रमाणित करने हेतु चाहा जाता है, उसे अप्रमाणित करने या उसे व्याख्यायित करने के लिए साक्ष्य नहीं दे सकता है। किंतु यदि वह एक पक्ष द्वारा एक विबंधन नहीं है, जिसके विरुद्ध वह प्रमाणित किया जाता है, उसे अप्रमाणित करने या उसकी व्याख्या करने के लिए साक्ष्य दिया जा सकता है।

3. ग्रहण केवल उस पक्ष के विरुद्ध प्रमाणित किए जाते हैं जो उनको करता है किंतु वे हित में उसके प्रतिनिधि के भी विरुद्ध प्रमाणित किए जाते हैं।

हित में एक प्रतिनिधि कौन है?

(i) अधिनियम में इस पारिभाषिक शब्द की कोई परिभाषा नहीं है।

(ii) यह विधिक प्रतिनिधि जो दंड संहिता के अनुसार एक व्यक्ति जो मृतक व्यक्ति की संपदा का विधि में प्रतिनिधित्व करता है, से बहुत बड़ा माना जाता है।

(iii) वह न केवल विधिक प्रतिनिधि को अंतर्विष्ट करता है वरन् एक व्यक्ति के संबंधियों को भी अंतर्विष्ट करता है।

(iv) एक व्यक्ति के संबंधी हैं:-

(i) रक्त-संबंधी जैसे कि पूर्वज एवं उत्तराधिकारी।

(ii) विधिक संबंधी, जैसे कि एक वसीयत-कर्ता का निष्पादक या एक अवसीयत का प्रशासक।

(iii) संपदा या हित में संबंधी, जैसे कि विक्रेता एवं क्रेता

अनुदाता एवं अनुदानिति, दाता एवं आदाती, पट्टाकर्ता एवं अधिभारी ताकि एक

ग्रहण:

(1) पिता द्वारा किया गया, पुत्र के विरुद्ध प्रमाणित किया जा सकता है।

(2) मृतक द्वारा किया गया निष्पादक या प्रशासक के विरुद्ध।

(3) विक्रेता द्वारा किया गया क्रेता के विरुद्ध।

17-20 ग्रहण क्या है?

ग्रहण (1) औपचारिक अथवा (2) अनौपचारिक है।

1. अनौपचारिक ग्रहण है:

(i) अभिकथनों में अंतर्विष्ट ग्रहण।

(ii) प्रश्नावलियों के उत्तर में ग्रहण।

(iii) ग्रहीत तथ्यों की सूचना पर ग्रहण।

(iv) ग्रहीत प्रलेखों की सूचना पर ग्रहण।

(v) वादेक्षकों द्वारा ग्रहण।

(vi) वकीलों द्वारा ग्रहण।

2. अनौपचारिक ग्रहण हैं:

(i) कथनों द्वारा

(ii) आचरण द्वारा

(1) कार्य या विलोपन

(2) मौन

(3) मौन समनुमति

4. ग्रहण जिनका प्रमाण धारा 21 द्वारा अनुमत किया जाता है औपचारिक ग्रहण नहीं है। धारा 21 अनौपचारिक ग्रहण मात्र के साथ संबंध रखती है। वह आचरण द्वारा अनौपचारिक ग्रहण के साथ संबंध नहीं रखती है। वह केवल कथन में अंतर्विष्ट अनौपचारिक ग्रहणों के साथ संबंध रखती है। यह कार्यों के साथ नहीं समर्थनों के साथ संबंध रखती है।

5. एक ग्रहण की परिभाषा जैसी धारा 21 में उपयोगी है, धारा 17-20 तक भी फैली हुई है।

एक ग्रहण एक अभिकथन है, मौखिक या प्रलेख्य, जो धाराओं 18, 19, 20 में उल्लिखित एक व्यक्ति द्वारा बनाए गए किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य के संबंध में एक अनुमान सुझाता है।

दो बातें आवश्यक हैं।

अभिकथन विवाद्यक तथ्य या एक सुसंगत तथ्य से सीधा संपर्क करने वाला नहीं हो। वह पर्याप्त है यदि वह विवाद्यक तथ्य या सुसंगत की अभिस्वीकृति में एक अनुमान को सुझाता है।

दृष्टांत:-

अ एक्स पर दावा करता है कि क के जानवरों द्वारा अ की फसल की क्षतिपूर्ति के लिए एक्स द्वारा एक कथन को दिखाने के प्रयोजन के लिए कि उसके जानवर क्षति करने के कारण थे। एक्स ब का साक्ष्य प्रस्तुत करता है इस प्रभाव से कि एक्स ने कहा कि क्षति को पूरा करने के लिए उसने कुछ धन देने का प्रस्ताव रखा था।

यह एक अभिकथन है जो अनुमान की पुष्टि कर सकता है कि एक्स मानता है कि उसके जानवर ने ही क्षति की थी।

दृष्टांत:-

अ अपनी भेड़ों की हानि के लिए एक्स पर आरोप लगाते हुए कहता है कि एक्स के कुत्ते ने उनको मार डाला था। प्रमाण के रूप में उसने साक्ष्य प्रस्तुत किया कि एक्स ने उस समय कहते हुए कि वह कोई और भेड़ नहीं मारेगा, अपने कुत्ते को मार दिया है।

क्या यह एक ग्रहण है?

II. वह धारा 18-20 में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए।

1. धारा 18-20 इस भेद को दर्शाता है कि कारण उल्लिखित संवर्गों में आते हैं।

(1) वह व्यक्ति जो कार्यवाहियों में एक पक्ष है, और

(2) वह व्यक्ति जो कार्यवाहियों में पक्ष नहीं है - अजनबी।

व्यक्ति जो कार्यवाही में एक पक्ष में है वह यह है:

(1) पक्षगण

(2) पक्षों के अभिकर्त्तागण

(3) कार्यवाही की विषय वस्तु में संयुक्त हितधारी व्यक्ति, अर्थात् भागीदार, संयुक्त संविदाकर्त्ता।

(1) अजनबी

जहां एक व्यक्ति जो अजनबी है और धारा 18 में उल्लिखित कार्यवाही के एक पक्ष से किसी प्रकार संबंधित नहीं है, का अभिकथन एक पक्ष द्वारा ग्रहण माना जा सकता है।

दो मामले

(1)अभिकथन उस रेफ्री का है - धारा 20

II. जब उस अजनबी का दायित्व या अवस्थिति कार्यवाही की विषय वस्तु है। और

(2)जब **अजनबी** का अभिकथन और उसके दायित्व का उसके द्वारा ग्रहण के समान जैसा हो, अर्थात् वह धारा 17-18 के अंतर्गत आना चाहिए।

दृष्टांत - धारा से - दायित्व का।

दृष्टांत – 5 मद्रास 239 – अवस्थिति का।

अ और ब संयुक्त रूप से एक धन-राशि के लिए स के प्रति उत्तरदायी है, जो अकेले अ के विरुद्ध एक वाद लाता है।

अ प्रतिवाद करता है कि वह अकेला ही या पृथकतः उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है बल्कि ब सह प्रतिवादी के रूप में संयुक्त रूप से उत्तरदायी होना चाहिए।

ब के द्वारा द से एक स्वीकृति उसके संयुक्त दायित्व के संबंध में अ और स के मध्य में सुसंगत है और प्रमाणित की जा सकती है।

उसको द प्रमाणित कर सकता है यद्यपि ब को बुलाया नहीं जाता है।

अपराध-स्वीकरणः

1. एक अपराध-स्वीकरण का साक्ष्य दिया जा सकता है बशर्ते वह स्पष्ट रूप से अपवर्जित न हो चाहे वह एक निजी व्यक्ति या एक मजिस्ट्रेट से किया गया था।

2. यह कि, अपराध-स्वीकरण किया गया था, एक तथ्य है जो किसी अन्य तथ्य की भांति प्रमाणित होना चाहिए।

9 मद्रास 224 (240)
5 लाहौर 140
4 इलाहाबाद 46 (94)
8 डब्ल्यू.आर. 28

3. **दो प्रश्न उठते हैं:**

I. अपराध-स्वीकरण क्या है?

II. वे मामले क्या हैं जिनसे अपराध-स्वीकरण का साक्ष्य अलग किया जाता है?

I. अपराध-स्वीकरण क्या है?

1. अधिनियम में अपराध-स्वीकरण की कोई परिभाषा अंतर्विष्ट नहीं है।
2. अतः शब्द की परिभाषा न्यायिक अर्थ निर्णय का विषय है।
3. अपराध-स्वीकरण एक अभिकथन है। एक स्वीकृति भी एक अभिकथन है, यद्यपि यह एक अभियुक्त द्वारा एक अभिकथन है, जबकि स्वीकृति एक पक्ष द्वारा अभिकथन हो सकता है। दो प्रश्न उठते हैं:

   (1) अपराध-स्वीकरण एवं स्वीकृति के मध्य यथातथ्य अन्तर क्या है?

   (2) कब एक अभियुक्त द्वारा एक अभिकथन एक अपराध-स्वीकरण है और कब वह एक स्वीकृति है?

1. एक अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किया गया अभिकथन एक वर्ग से संबंध रखता है, जिसको साक्ष्य अधिनियम 'स्वीकृति' कहता है, (धारा 17, 18) और .... वे करने वाले के विरुद्ध साक्ष्य है किन्तु उसके पक्ष में नहीं।
2. अपराध-स्वीकरण "अभिकथनों" का एक उप-वर्ग है और यह स्वीकृति का

एक वर्ग है।

3. निम्नोक्त चित्र सारिणी संबंध निदर्शित करती है।

अभिकथन

वे जो स्वीकृति के अंतर्गत आते हैं	वे जो स्वीकृति के अंतर्गत नहीं आते
स्वीकृति जो अपराध-स्वीकरण के समान है	स्वीकृति जो अपराध-स्वीकरण के समान नहीं है

4. अपराध-स्वीकरण एवं स्वीकृति में समान लक्षण हैं और वे दोनों में हैं और कार्यवाहियों में एक पक्ष द्वारा किए गए अभिकथन हैं।

5. दो प्रश्न उठते हैं।

(1) एक अभिकथन एक स्वीकृति है तथापि वह स्वयं पक्ष द्वारा नहीं किया गया है। यदि वह धारा 18-20 में परिभाषित एक व्यक्ति द्वारा किया गया है, वह एक स्वीकृति होगा। क्या एक अभिकथन एक स्वीकृति जैसी श्रेणी का है? यदि वह स्वयं अभियुक्त के द्वारा नहीं किया जाता है, वरन् धारा 18-20 में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

1. एक अपराध-स्वीकरण होने के लिए, वह स्वयं अभियुक्त द्वारा होना चाहिए। यदि वह अभियुक्त द्वारा नहीं है, वह अपराध-स्वीकरण नहीं है।
2. अभियुक्त द्वारा एक दोषायुक्त अभिकथन, जो उसको शामिल करता है किन्तु उसको अभिशस्त नहीं करता है, अपराध-स्वीकरण नहीं है।
3. एक दोषयुक्त अभिकथन जो न केवल शामिल करता है वरन् अभिशस्त (दोष लगाता) करता है, एक अपराध स्वीकरण है।

ध्यान देने वाले विचार (बिंदु) -

1. अभिशासन प्रत्यक्ष हो सकता है या अनुमान द्वारा हो सकता है। एक अभिकथन जो स्वतः ही दोषसिद्धि का आधार हो सकता है, एक अपराध-स्वीकरण है।

2. अभिकथन अभियुक्त द्वारा स्वयं को निरपराध घोषित करने के लिए हो सकता है, किन्तु वह एक अभिशप्त करने वाली परिस्थिति का अभिकथन हो सकता है, जिस विषय में वह एक अपराध-स्वीकरण के समान होगा।

अपराध-स्वीकरण के दो प्रकार

1. अपराध-स्वीकरण या तो न्यायिक या न्यायेतर हो।

(i) न्यायिक अपराध-स्वीकरण वे हैं जो एक मजिस्ट्रेट के समक्ष किए जाते हैं या विधिक कार्यवाहियों के निर्धारित क्रम में न्यायालय में।

(ii) न्यायेत्तर अपराध-स्वीकरण वे हैं जो मजिस्ट्रेट के समक्ष या न्यायालय से कहीं अन्य जगह पक्ष द्वारा किए जाते हैं।

वे मामले क्या हैं जिनमें अपराध-स्वीकरण का साक्ष्य वर्जित किया जाता है:

1. साक्ष्य अधिनियम ने तीन संभव मामलों को विचारित किया है।

(i) पुलिस-अधिकारी से किया गया अपराध-स्वीकरण।

(ii) जब पुलिस के अधिरक्षण में अपराध-स्वीकरण किया जाता है।

(iii) अपराध-स्वीकरण जो एक व्यक्ति से किया जाता है जो एक पुलिस अधिकारी नहीं है और जो जबकि पुलिस के अधिरक्षण में नहीं किया जाता है।

(प्रथम) के संबंध में

वह धारा 25 द्वारा वर्जित है।

(द्वितीय) के संबंध में

वह धारा 25, 26 द्वारा वर्जित है।

धारा 27 का प्रभाव

6 इलाहाबाद 509 (एफ.बी.)

प्रश्न - क्या धारा 27 केवल धारा 26 का अपवाद है और धारा 25 का नहीं?

या

संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम।

अंशदान

1. मान लो कि दो संपत्तियां बंधक की रखी गई हैं और वे दो भिन्न व्यक्तियों से संबंधित हैं। मान लो कि बंधक धन को वसूल करने के लिए मात्र एक संपत्ति को बेच दिया जाता है और विक्रय धन, बंधक धन की अदायगी के लिए पर्याप्त पाया जाता है। परिणामस्वरूप एक बंधक कर्त्ता अपनी संपत्ति गंवा देता है जबकि दूसरा बिना कुछ दिए उसे वापस प्राप्त करता है।

यह घोर अन्याय है। इस अन्याय के प्रतिकार हेतु साम्या (इक्विटी) ने एक समाधान आविष्कृत किया, अंशदान का सिद्धांत, जो धारा 82 में सम्मिलित है।

2. इस धारा के अनुसार विभिन्न स्वामी, बंधक द्वारा प्रतिभूत ऋण के शोधन में अनुपातत: अंशदान करने के दायी हैं।

3. वह दर जिसके आधार पर हर एक को अंशदान करना चाहिए, को निर्धारित करने के लिए, बंधक धन को घटाकर बंधक की तारीख को मूल्य के रूप में रखा जाएगा, यदि कोई है, जिसके अधीन वह उस तारीख को था।

1. अंशदान के लिए दावा केवल तभी उत्पन्न होता है जबकि बंधक ऋण पूर्ण रूप से चुकता हो चुका - 26 इलाहाबाद 407 (426, 27) टी.बी.

2. अंशदान का अधिकार क्रम-बंधन के नियम के अधीन है। अर्थात् जहां क्रम-बंधन अंशदान से टकराता है, वहां क्रमबंधन का नियम अविभावी होगा – यह धारा 82 के अंतिम पैरा का अभिप्राय है।

बंधककर्ता के अधिकारों का कौन दावा कर सकता है

धारा 91

* * * * *

बंधकदार के अधिकारों का दावा कौन कर सकता है,

धारा 92

बंधककर्ता से अन्य कोई व्यक्ति जो बंधकदार को अदा करता है, बंधकदार के अधिकारों का हकदार हो जाता है।

ऐसे व्यक्ति हैं –

1. पश्चात्वर्ती बंधकदार
2. प्रतिभू
3. संपत्ति में हित रखनेवाला कोई व्यक्ति
4. सह-बंधककर्ता
5. कोई अन्य व्यक्ति जिसके धन से बंधक मुक्त किया गया है,यदि बंधककर्त्ता पंजीकृत विलेख द्वारा सहमत हो गया है।

यह प्रत्यासन का नियम कहलाता है

II. (द्वितीय) क्या विक्रय-विधि हस्तांतरण का कोई विशेष ढंग निर्धारित करती है?

1. अचल संपत्ति की विक्रय-विधि अन्तरण का एक ढंग निर्धारित करती ही है। अन्तरण का ढंग या तो पंजीकरण या कब्जे को प्रदान करता है।
2. क्या अन्तरण का समुचित ढंग किसी विशेष विषय में पंजीकरण या कब्जे का करना है, जो दो बातों पर निर्भर करता है–
   (i) क्या अचल संपत्ति साकार भूत या अभूत है।
   (ii) क्या अचल संपत्ति 100/- रु. से अधिक मूल्य की है या 100 रु. से कम मूल्य की है।
3. यदि संपत्ति अभूत है तब अन्तरण केवल पंजीकरण द्वारा हो सकता है। कोई बात महत्त्वपूर्ण नहीं कि संपत्ति का मूल्य क्या है।
4. **यदि संपत्ति भूत है तब**
   (i) यदि वह 100/- रु. से अधिक मूल्य की है तो अंतरण पंजीकरण द्वारा होना चाहिए।

(ii) यदि संपत्ति 100/- रु. से कम मूल्य की है, तब अंतरण या तो पंजीकरण द्वारा या कब्जा परिदान करके हो सकता है।

5. यह स्पष्ट है कि एक के सिवाए सभी मामलों में विक्रय को प्रभावी करने की विधि केवल पंजीकरण ही है। वह मामला जहां या तो पंजीकरण करने या कब्जा प्रदान किए जाने का विकल्प दिया गया है वह मामला है जहां संपत्ति भूत है और मूल्य में 100/- रु.से कम है।

6. पंजीकरण एवं परिदान मानक लिपि विधा पूर्ण ढंग के रूप में - इस संबंध में निम्नोक्त मुद्दे ध्यान में रखे जा सकते हैं -

(i) जहां पंजीकरण अन्तरण के एकमात्र ढंग के रूप में निर्धारित है, वहां कब्जा प्रदान करना न तो आवश्यक है न विक्रय संव्यवहार को पूर्ण करने के लिए काफी ही है।

(ii) जहां कब्जा परिदान करना निर्धारित है, वहां विक्रय के पूर्ण होने के लिए पंजीकरण आवश्यक नहीं है। तथापि बिना परिदान के पंजीकरण विक्रय को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त होगा।

7. अंतरण का कोई अन्य ढंग नहीं .... अंतरण के ढंगों के प्रावधान नि:शेषी हैं और विक्रय किसी अन्य युक्ति से प्रभावित नहीं हो सकता है। हकी स्वीकरण विलेख में विवरण देने या अधिकारियों को याचिकाओं से या अधिकार अभिलेखों में प्रविष्टि से संक्रान्त नहीं हो सकता है। यह स्वीकरण की भूमि बेच दी गई है, विबंधन के रूप में लागू नहीं होगी। इस प्रकार एक पंजीकृत हस्तांतरण या परिदान के लिए विक्रय से छुटकारा मिल जाए।

43 कलकत्ता 790

8. अन्तरण के निर्धारित ढंगों का पालन करना आवश्यक है:-

(i) स्वामित्व निर्धारि रूप में अन्तरण के सिवाए संक्रान्त नहीं होता है।

(ii) एक अपंजीकृत विलेख पर्याप्त नहीं है।

(अ) उन मामले में जहां पंजीकरण अनिवार्य है।

(ब) उन मामलों में भी जहां मूल्य 100/- रु. से कम है और अंतरण परिदान द्वारा नहीं किया गया है।

9. मूर्त एवं अमूर्त का अर्थ -

(i) अचल संपत्ति या तो मूर्त होती है या अमूर्त।

(ii) मूर्त एवं अमूर्त के बीच भिन्नता अंग्रजी विधि में वर्णित मूर्त भूसंपत्ति एवं अमूर्त भूसंपत्ति के बीच भिन्नता एक समरूप है।

(iii) मूर्त भूसंपत्ति भूमि के कब्जे में हित है अर्थात् भूमि के कब्जे का उपभोग करने के लिए वर्तमान अधिकार। अभौतिक दायित्व एक अन्य व्यक्ति के

कब्जे में भूमि पर एक अधिकार है, जो कब्जे के लिए भावी अधिकार है या एक अन्य के कब्जे में भूमि को किसी विशेष प्रयोजन के लिए प्रयोग करने के लिए अधिकार। अर्थात् एक युक्तियाधिकार।

(iv) मूर्त एवं अमूर्त के बीच संविदा, उसकी संपदा जो अभूमि मूर्त पर काबिज और उस व्यक्ति की संपदा की बीच संविदा है जो एक अमूर्त वस्तु अर्थात् मात्र अधिकार रखता है, अमूर्त किसी मूर्त वस्तु पर कब्जा नहीं रखता।

(v) मूर्त वस्तु होने के लिए वह निश्चित वास्तविक प्रदान करने योग्य हो।

सुलेमान सी.जे. 50 इलाहाबाद 986

10. *कब्जा परिदान करने का अर्थ*

(i) परिदान तब घटित होता है जब विक्रेता क्रेता या ऐसे अन्य व्यक्ति को जिसे वह निर्देशित करता है, संपत्ति का कब्जा देता है।

(ii) परिदान वह कृत्य है जो क्रेता को संपत्ति पर काबिज बना देता है।

(iii) कब्जा किसका होता है? प्रश्न अनुत्तरित रहता है। क्या वह वास्तविक कब्जा है? या क्या वह प्रतीकात्मक कब्जा है?

(iv) एक दृष्टिकोण यह है कि चूंकि केवल प्रत्यक्ष संपत्ति का कब्जा प्रदान करना निर्धारित है जो कि विधान मंडल का आशय था ही वास्तविक कब्जा है।

(v) दूसरा दृष्टिकोण है कि यह सामान्य एवं व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है क्योंकि बहुसंख्यक मामलों में भूमि एक असामी के अधिकार में होती है या क्रेता के और इसीलिए भौतिक परिदान असंभव है।

(vi) परवर्ती दृष्टिकोण सामान्यतः स्वीकृत दृष्टिकोण है, ताकि भौतिक परिदान है जबकि स्वामी क्रेता को भूमि के ऐसे संबंध में रखता है और उसको वास्तविक अधिभोगी के रूप में रखता है जैसा कि वह स्वयं अधिभोग करता था।

II. ***स्वामित्व जब अंतरित होता है।***

(i) स्वामित्व परिदान या पंजीकरण पर संक्रांत होता है।

(ii) पंजीकरण के संबंध में निम्नोक्त बिंदु ध्यान में रखने चाहिए:-

(अ) पंजीकरण एक बार प्रभावी हो जाने पर, हक निष्पादन के दिनांक से ही संबद्ध हो जाता है।

(ब) पंजीकृत विलेख किसी दूसरे विलेख से जो पंजीकृत भले ही पूर्वतर हो किन्तु निष्पादित बाद में हो, विफल नहीं किया जा सकता।

(स) अन्तरण लंबित वाद के अधीन नहीं होगा यदि निष्पादन वाद के पूर्व हुआ था किंतु पंजीकरण वाद के बाद में।

(द) यद्यपि यह सत्य है कि संपत्ति अंतरित नहीं होती अर्थात् जब तक पंजीकरण प्रभावी नहीं होता स्वामित्व अंतरित नहीं होता है, यह कहना सत्य नहीं है कि संपत्ति जैसे ही विलेख पंजीकृत हो जाता है वैसे ही अंतरित हो जाती है, क्योंकि पक्षों की अभीच्छा ही सही कसौटी है।

III. **धारा 55 (3) - हक विलेखों का परिदान करना**

1. हक विलेख संपदा के उपसाधन है। वे बिना नाम ही हस्तांतरण के साथ अंतरित होते हैं।
2. इसमें *सभी* विलेख संपत्ति संबंधित कब्जे में हस्तांतरित होने के साथ ही अधिकार में जाते हैं।
3. हक प्रदान करने के दायितव में उनको उपलब्ध करने के व्यय को वहन करना भी शामिल है।
4. हक विलेख एवं काबूलियत संपत्ति के उपसाधन हक विलेख हैं।
5. समकक्षी पट्टे प्रदान करने का कर्त्तव्य हस्तांतरण की पूर्णता पर निर्भर नहीं करता। यह कर्त्तव्य तब तक उद्भूत नहीं होता जब तक कि मूल्य अदा नहीं कर दिया जाता।

अपवादः-

(i) जब विक्रेता विलेखों में समाहित संपत्ति के अंश अपने पास रखता है, वह विलेखों को रोके रख सकता है, किन्तु वह उनकी सुरक्षित अभिरक्षा के लिए और जब अपेक्षित हो तो उन्हें प्रस्तुत करने या सत्य प्रतिलिपि देने के लिए एक बाध्यता के अधीन है।

(ii) जब संपत्ति विभिन्न भागों में बेची जाती है - सबसे बड़े भाग का क्रेता विलेखों के लिए हकदार है - उपरोक्त जैसे दायित्वों के अधीन।

एक स्पष्ट समझौते द्वारा, वह सबसे बड़े भाग अर्थात् क्षेत्रफल के क्रेता को दिया जा सकता है।

6. उपधारा यह व्यक्त नहीं करती कि यदि विक्रय विभिन्न समयों पर किए गए हैं तो क्या होगा।

क्रेता के दायित्व

हस्तांतरित से पूर्व

1. *धारा 55 (5) (अ) - भौतिक मूल्य बढ़ाने वाली संपत्ति में क्रेता के हित से संबंधित तथ्यों का प्रकटीकरण*

1. हरेक क्रेता बाध्य है और सद्भाव बरतने के लिए आबद्ध है, उन सबमें जो वह संविदा के संबंध में कहता है या करता है और सभी धोखों से, चाहे

सत्य को दबाकर या असत्यता का सुझाव देकर उसे अलग रहना है।

2. किन्तु फिर भी जैसे विक्रेता अप्रकट दोषों को प्रकट करने के लिए हैं, क्रेता अप्रकट लाभों को प्रकट करने के अधीन नहीं है।

3. हक के मामले इस नियम के अपवाद हैं। यद्यपि विक्रेता का हक साधारणतः उसके संज्ञान में अनन्य विषय है, तथापि ऐसे मामले हो सकते हैं जहां क्रेता को वह जानकारी है जो विक्रेता के पास नहीं है। ऐसे मामले में वह उसका अनुचित उपयोग न करे।

उदाहरण 1 – समर्स बनाम गिफ्रिथ्स

एक वृद्ध महिला ने संपत्ति यह विश्वास करते हुए कि उसका हक उस पर ठीक नहीं बनता है कम मूल्य पर बेची, जबकि क्रेता जानता था कि वह उसे ठीक कर सकती थी। विक्रय निरस्त कर दिया गया।

उदाहरण 2 – *एलार्ड बनाम लेंडॉफ* (लार्ड)

पट्टेदार ने, पुराने पट्टे के एक समर्पण को यह तथ्य छिपाते हुए कि वह व्यक्ति जिसके जीवन पर पुराना पट्टा निर्भर करता था अपनी मृत्यु शैय्या पर था, पट्टे का नवीनीकरण करा लिया।

2. *धारा 55 (6) – मूल्य अदा करना*

1. क्रेता उस संपूर्ण हित के जो उसने खरीदा है स्वयं को पूर्णतया हस्तांतरित होने के सिवाए मूल्य अदा करने के लिए बाध्य नहीं है।

2. यदि संपत्ति सभी अधिभारों से मुक्त बेची जाती है, और ये हस्तांतरण के समय उन्मोचित नहीं किए जाते हैं तो, क्रेता मूल्य अदा करने को बाध्य नहीं है।

3. अधिभारों से मुक्त हो जाने के लिए उसके पास उपचार हैं:–

(i) विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 18 (ग) के अधीन विक्रेता को उनका उन्मोचन करने को बाध्य करना।

(ii) वह उसे स्वयं उन्मोचित कर सकता है, और उस धन को क्रय-धन से मुजराई कर सकता है।

(iii) विक्रेता के विरुद्ध पश्चात्वर्ती वाद के द्वारा वसूल कर सकता है।

4. संपत्ति पर – धारा 55 (4) (ब) द्वारा अधिरोपित दायित्व से पृथक यह उपधारा क्रेता पर एक वैयक्तिक दायित्व डालती है – 52 इलाहाबाद 901

क्रेता के दायित्व

II. हस्तांतरण के पश्चात्

1. धारा 55 (5) (ग) हानि आदि को वहन करना

1. धारा 55 (1) (ग) के अधीन विक्रेता को संविदा एवं हस्तांतरण के मध्य हुई हानि को वहन करना है।
2. हस्तांतरण के बाद क्रेता मालिक है और संपत्ति उसकी जोखिम पर है। अतः उसे ही क्षति वहन करनी पड़ेगी।
3. यह 'इंग्लिश विधि' से भिन्न है, जिसके अधीन विक्रय की संविदा एक साम्यापूर्ण संपदा है और उसके साथ ही हानि या विनाश के दायित्व को हस्तांतरित करता है।
4. विक्रेता क्षय के लिए उत्तरदायी है और यदि विक्रेता ने संपत्ति का बीमा करा दिया है तो क्रेता उसको उसके पुनः स्थापन के लिए आवेदन करने को बाध्य कर सकता है।

2. *धारा 55 (5) (घ) - देयों को अदा करना*

1. हस्तांतरण से पूर्व यह दायित्व विक्रेता का होता है - धारा 55 (1) (छ) हस्तांतरण के पश्चात् यह क्रेता का हो जाता है - लोक शुल्क किराया, ब्याज एवं विल्लंगम।
2. दायित्व विधिक है और मात्र संविदा आधारित नहीं है, इसीलिए, एक अवयस्क विक्रेता, जिसकी ओर से संपत्ति बेची जाती है, पर भी बाध्य करते हैं। 46 मद्रास एल.जे. 464
3. यदि संपत्ति विल्लंगमों से मुक्त बेची जाती है तो, विक्रेता को उसे निश्चित ही उन्मोचित करना चाहिए। यदि विल्लंगमों के अधीन बेची जाती है, तो क्रेता द्वारा विल्लगमों पर विक्रयों तक का ब्याज अदा किया जाना चाहिए। - 26 बम्बई एस.आर. 942

क्रेता एवं विक्रेता के अधिकार

विक्रेता के अधिकार

I. हस्तांतरण के पूर्व

1. धारा 55(4) (अ) - किराया एवं लाभ लेना

1. हस्तांतरण तक विक्रेता मालिक बना रहता है। अतः उसका संपत्ति के किरायों एवं लाभों को लेने का अधिकार है।

II. हस्तांतरण के पश्चात्

1. धारा 55(4) (ब) - असंदत्त मूल्य के लिए संपत्ति पर भार का दावा करना।

1. यदि विक्रय हस्तांतरण द्वारा पूर्ण हो जाता है और मूल्य या उसका कोई भाग अदा नहीं हुआ है तो इस उपधारा के अधीन विक्रेता मूल्य या शेष के लिए भार का

अधिकार रखता है।

2. भार एक कब्जा-निषेध भार है अर्थात् यह कब्जा रोके रखने का अधिकार नहीं देता है। चूंकि दायित्व दिया जा चुका है, भार विक्रेता को कब्जे को अस्वीकार करने का अधिकार नहीं देता - 30 मद्रास 524, 43 मद्रास 712, 23 बम्बई 525, 34 मद्रास 543
3. संपत्ति पर भार होने से कोई फर्क नहीं पड़ता, यदि कई क्रेता हैं, जो आपस में एक निश्चित अनुपात में अदा करने को सहमत हो गए हैं।
4. असंदत्त मूल्य के लिए भार के लिए दावा, न केवल भूल करेगा को बनाता है वरन् यह बिना प्रतिफल हस्तांतरिती या असंदाय की सूचना के साथ हस्तांतरिती को भी उपलब्ध है।
5. भार केवल क्रयधन के लिए ही नहीं वरन् क्रय-धन पर ब्याज के लिए भी होता है।
6. ब्याज के लिए भार का अधिकार केवल उस दिनांक से आरम्भ होता है जिस दिन से कब्जा प्रदान कर दिया गया है। संपत्ति पर भार के प्रयोजनों के लिए ब्याज शामिल करने का अधिकार कब्जा दिया जा चुकने से पूर्व, साम्याओं एवं वाद की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

दृष्टांत :-

यदि क्रेता, विक्रेता के लिए विल्लंगम उन्मोचन की प्रतिभूति के रूप में क्रय-धन का एक भाग रोके रखता है तो वह ब्याज के लिए दायी नहीं है।

7. आंग्ल एवं भारतीय विधि।

(i) आंग्ल-विधि के अधीन विक्रेता का संविदा के दिनांक से धारणाधिकार होता है।

(ii) भारतीय विधि में भार हस्तांतरण के दिनांक से आरम्भ होता है।

(iii) इस अंतर के कारण:-

(अ) आंग्ल-विधि के अधीन, विक्रेता संविदा के परिणामस्वरूप संपत्ति से पृथक हो जाता है।

(ब) भारतीय विधि के अधीन, विक्रेता हस्तांतरण के परिणामस्वरूप पृथक होता है।

(स) परिणाम वही है, क्योंकि दोनों संपत्ति के विरुद्ध कार्यवाही का अधिकार प्रदान करती है। एकमात्र अंतर यह है कि आंग्ल-धारणाधिकार साम्यिक होते हुए साम्या द्वारा परिस्थितियों के अनुसार गढ़ा जा सकता है। जबकि भारतीय भार सांविधिक होते हुए अनम्य है और निश्चित रूप से विधि के अनुरूप होना चाहिए।

क्रेता के अधिकार

1. हस्तांतरण के पूर्व

1. *धारा 55 (6) (ब) - हस्तांतरण से पूर्व अदा किए गए क्रय धन के लिए संपत्ति पर भार का दावा करना*

1. खंड की शब्दावली से कोई अर्थ नहीं निकलता। यह दो भागों में है। यदि उपखंड "जब तक वह अनुचित रूप से परिदान से इंकार नहीं करता है" जो नकारात्मक रखा गया है, को सकारात्मक रख दिया जाए तो वह होगा "यदि वह उचित रूप से इंकार कर देता है" तब दोनों खंडों में कोई अंतर नहीं है।

2. किन्तु दोनों भागों के बीच के अंतर हैं, जो सबूत के भार से पैदा होने वाले अंतर हैं। प्रथम भाग के अधीन, क्रेता कतिपय अधिकारों का हकदार है, जिन्हें वह प्रवर्तित करा सकता है जब तक कि वह ''अनुचित रूप में परिदान को अस्वीकार नहीं करता है" जिसका अभिप्राय है कि उसका उन अधिकारों को खो देना है, यदि विक्रेता सिद्ध करता है कि वह क्रेता, परिदान को प्राप्त करने से अनुचित रूप से मना कर चुका है। खंड के द्वितीय भाग में क्रेता कतिपय अतिरिक्त अधिकार पाता है, जिनका वह दावा भी कर सकता है केवल तब जब वह दिखला दे कि "उसने उचित रूप से परिदान लेना मना किया है'' और यह दिखलाने का भार उसी पर होगा।

3. इस खंड के अधीन क्रेता को तीन बातों के लिए भार का अधिकार होता है:-

(i) उचित ढंग से अदा किए गए क्रय-धन के लिए,

(ii) बयाना यदि कोई है, के लिए,

(iii) उसे दिलवाए गए खर्च के लिए।

4. अदा किए गए क्रय-धन के लिए भार

(1) यह भार त्योंही शुरू हो जाता है ज्योंही क्रेता क्रय-धन का कोई भाग अदा कर देता है।

(2) क्रय धन के लिए भार तभी विलुप्त हो जाता है, जब विक्रेता यह सिद्ध कर दे कि क्रेता अनुचित रूप से परिदान लेने के लिए मना कर चुका है। सबूत-भार विक्रेता पर है।

5. बयान एवं खर्च के लिए भार।

(1) इन दोनों के संबंध में भार की संभावना है। किन्तु यह संभावना तभी कार्यान्वित होगी जब क्रेता सिद्ध कर दे कि उसने उचित रूप से परिदान लेना मना किया है। सबूत का भार क्रेता पर है।

6. बयाना एवं क्रय-धन की आंशिक अदायगी

(1) बयाना की बावत भार के बारे में जो ऊपर व्यक्त किया गया है वह तभी लागू

होता है जब अदाकृत धन बयाना के रूप में अदा किया जाता है।

(2) क्रेता द्वारा हस्तांतरण से पूर्व अदा किया गया धन दो प्रयोजनों में काम आता है:

(i) यह क्रय-धन की आंशिक अदायगी में जाता है, जिसके लिए इसे जमा किया जाता है।

(ii) यह संविदा की संपन्नता की प्रतिभूति है। परवर्ती दशा में यह बयाना है। पूर्ववर्ती दशा में यह किश्त है।

(3) यह भेद महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भार होगा या वैयक्तिक दायित्व होगा या नहीं होगा, इस पर निर्भर करेगा कि क्या दिया गया धन किश्त है या बयाना।

(i) यदि बयाना है, तो कोई भार नहीं है (सिवाए एक क्रेता की दशा में जो सिद्ध कर दे कि वह उचित रूप से परिदान लेना मना कर चुका है, बयाना पूर्णतः लुप्त होता है एवं न केवल कोई भार नहीं है वरन् कोई वैयक्तिक दायित्व भी नहीं है।

(ii) यदि वह आंशिक भुगतान है - तो भार है, जब तक कि विक्रेता यह दर्शा दे कि क्रेता ने अनुचित रूप से परिदान लेना मना कर दिया है। आंशिक भुगतान कभी पूर्णतः लुप्त नहीं होता है। यदि वह भार बनाने में असफल रहता है, तो यह विक्रेता के वैयक्तिक दायित्व के रूप में बना रहता है।

(4) क्या यह आंशिक अदायगी है या बयाना, यह संविदा या आशय का विषय है।

7. क्रेता का भार विक्रेता एवं उसके अधीन सभी दावा करने वालों के विरुद्ध प्रवर्तित किया जा सकता है।

8. क्रेता अपना भार खो देता है :-

(i) अपने स्वयं के पश्चात्वर्ती व्यतिक्रम से।

(ii) उसके अनुचित रूप से परिदान लेने से मना करके।

(2) बयाना राशि - बयाना के मूल में दो प्रयोजन हैं :-

(i) यह क्रय धन के आंशिक भुगतान में जाती है।

(ii) वह संविदा के अनुपालन की प्रतिभूति है। यदि संविदा पूर्ण हो जाती है, तो यह क्रय धन का अंश हो जाती है। यदि संविदा क्रेता के दोष या असफलता के कारण टूट जाती है, तो यह समपहरणित हो जाती है।

II. हस्तांतरण के पश्चात्

धारा 55(6) (अ) - संवृद्धि का दावा करना।

1. यह ऐसा ही होना चाहिए, क्योंकि हस्तांतरण के पश्चात् वही मालिक है।

(पृष्ठ खाली छूटा - संपादक)

विल्लंगामों से मुक्त विक्रय

1. जहां तक संभव है, विक्रय विल्लंगमों से निश्चय ही मुक्त होना चाहिए। विल्लंगमों से मुक्त विक्रय प्रावधानित करने के लिए संपत्ति अंतरण अधिनियम में दो धाराएं हैं, जो इसे संभव करती है। वे धारा 56 एवं धारा 57 हैं।

* * * * *

भाग - 1
बंधक की प्रकृति

I. ***परिभाषा:-***

1. धारा 58 परिभाषित करती है कि बंधक क्या है। धारा के अनुसार बंधक व्यवहार के तीन अवयव हैं :-

(i) हित का हस्तांतरण।

(ii) विशिष्ट अचल संपत्ति में।

(iii) एक ऋण के अपने अग्रिम धन की अदायगी सुनिश्चित करने के लिए।

II. *इन अवयवों की व्याख्या -*

(i) अचल संपत्ति बंधक का एक अनिवार्य अवयव नहीं है :-

(1) आंग्ल विधि के अधीन सभी प्रकार की संपत्ति, चाहे वह पूर्णस्वामिक हो या वास्तविक, बंधक का विषय हो सकती है। वास्तविक संपदा मूर्त या अमूर्त हो सकती है और वैयक्तिक संपदा कब्जे में या कार्य में हो सकती है। संपदा पूर्ण या निर्धारणीय हो सकती है अर्थात् जीवन के लिए वह वैध अथवा साम्य हो सकती है। न केवल किसी भी प्रकार की संपत्ति बंधक की विषय वस्तु हो सकती है वरन् उसमें कोई हित बंधक किया जा सकता है चाहे ऐसा हित निहित, प्रत्याशित या आकस्मिक है।

(2) संपत्ति का हस्तांतरण बंधक के संबंध में केवल अचल संपत्ति को ही व्यक्त करता है। यह यही विचार देता है कि विधि चल संपत्ति के बंधक को मान्यता प्रदान नहीं करती है। यह एक गलती होगी। संपत्ति अंतरण अधिनियम केवल संपत्ति से संबंधित विधि को परिभाषित और संशोधित करता है। यह विधि को समेकित नहीं करता।

अत: वह बंधक से संबंधित पूर्ण एवं परिपूर्ण विधि नहीं है।

(3) चल संपत्तियों के बंधक भारत में मान्य हैं।

9 सी.डब्ल्यू.एन. 14, 8 बम्बई एस.आर. 344

(4) *वह विधि जिसके द्वारा चल (संपत्तियों) के बंधक शासित होते हैं।*

संपत्ति अंतरण अधिनियम कोई प्रावधान नहीं करता: भारतीय संविदा अधिनियम कोई प्रावधान नहीं करता, फलत: ऐसे बंधकों के संदर्भ में आंग्ल विधि के सिद्धांत

लागू होंगे।

34 कलकत्ता 223 (228): 27 बम्बई एस.आर. 1449

(5) चल संपत्ति का बंधक बिना लेख के प्रभावी हो सकता है।

(6) एक व्यवहार्य दावे का बंधक-लिखित रूप में - यद्यपि चल संअ.अ. की धारा 130 के कारण - 37 बम्बई 198 (बम्बई) 198 (पी.सी.) बीमा पॉलिसी का निक्षेप।

2. हित का अंतरण:

1. इसका अर्थ है, संपत्ति के संबंध में बंधक कर्त्ता के किसी अधिकार का अंतरण।

2. स्वामित्व अधिकारों का एक समूह होता है, जैसे कि कब्जा करने के अधिकार, उपभोग, विक्रय आदि का अधिकार।

3. यह पर्याप्त है यदि इन अधिकारों में से एक अंतरित किया जाता है। अंतरित अधिकार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं:

(i) वह विक्रय करने का अधिकार हो सकता है।

(ii) वह उपभोग करने का अधिकार हो सकता है।

(iii) वह स्वामित्व रखने का अधिकार हो सकता है।

4. अंतरित अधिकार की प्रकृति किसी परिणाम का विषय नहीं है जब तक कि कोई अधिकार अंतरित किया जाता है।

III. *प्रयोजन उधार दी गई धनराशि की अदायगी को सुनिश्चित करना हो।*

1. प्रतिभूति की युक्ति से हित अंतरण है। प्रतिभूति का विचार दो बातों में निहित रहता है। एक तो ऋण या मौद्रिक दायित्व अवश्य होना चाहिए और दूसरे उस दायित्व को पूर्ण करने के लिए किसी संपत्ति का बंधक अवश्य होना चाहिए।

2. अंतरण का प्रयोजन ऋण प्राप्त करना होना चाहिए। ऋण प्राप्त करने के लिए किया गया अंतरण उस अंतरण से जिसका प्रयोजन ऋण को चुकाना है, निश्चित ही भिन्न होना चाहिए।

25 इलाहाबाद 115 आई.ए. 54:11 बम्बई 462

3. अंतरित अधिकार व्यक्ति को ऋण की वापसी के योग्य करना हो। अंतरण ऋण को निर्वापित नहीं करे। यदि अंतरण का प्रभाव ऋण का निर्वापण करने वाला है, तब यह बंधक नहीं है।

दृष्टांत:-

11 बम्बई 462 अब्दुल भाई बनाम काशी

1862 में, अ ने 150/- रु. के प्रति फलस्वरूप ब को एक लिखित कर्ज रुक्का (या ऋण नोट) दिया। (अन्य बातों के साथ-साथ) यह सिद्ध हुआ कि ब, अ से संबंधित एक निश्चित भूमि खण्ड को बीस वर्ष तक धारित एवं उपभोग करेगा कि अन्त में भूमि

मूलधन एवं ब्याज के सभी दावों से मुक्त अ को वापस मिल जाने चाहिए।

अभिनिर्धारित हुआ, बंधक नहीं है।

25 इलाहाबाद 115

संक्रामणों के अन्य रूपों से बंधक की तुलना

बंधक और विक्रय

1. विक्रय धारा 54 में परिभाषित है - यह मूल्य के लिए स्वामित्व का अंतरण है। मूल्य एक ऋण नहीं है और अंतरण हित का एक अंतरण नहीं है वरन् स्वामित्व का पूर्ण अंतरण है।
2. बंधक में अदा धन एक ऋण है और अंतरण केवल हित का अंतरण है।
3. विक्रय के संविदा-भंग में, अधिकार विक्रेता एवं क्रेता के अधिकार हैं जबकि संविदा बंधक का संविदा है तो अधिकार बंधककर्ता एवं बंधकी के होते हैं।
4. विक्रय में, संपत्ति पूर्णतः अंतरित की जाती है। बंधक में संपत्ति, ऋण की वापसी के लिए केवल एक प्रतिभूति के रूप में कार्य करती है।

बंधक और अन्य प्रकार की प्रतिभूतियां

1. प्रतिभूतियां चार प्रकार की होती हैं (1) बंधक, (2) गिरवी, (3) धारण अधिकार और (4) आडमान या भार।

बंधक एवं अन्य प्रकार की प्रतिभूतियों के मध्य अन्तर को जानना महत्त्वपूर्ण है।

1. बंधक एवं गिरवी

1. ऋण चुकाने में या वचन के पालन में प्रतिभूति के रूप में माल का उपनिधान गिरवी कहलाता है - धारा 172, भारतीय संविदा अधिनियम।
2. बंधक में, संपत्ति में सामान्य स्वामित्व बंधकी को जाता है और बंधककर्त्ता का केवल मोचन का अधिकार होता है। गिरवी में केवल एक विशेषित या विशेष संपत्ति गिरवीदार को जाती है, सामान्य स्वामित्व गिरवीकर्ता के पास रहता है।
3. निक्षेपी गिरवीदान को गिरवी संपत्ति के कब्जे का परिदान आवश्यक है। किन्तु कब्जे का परिदान एक बंधक के लिए आवश्यक नहीं है।
4. संपत्ति जो एक बार गिरवी की जाती है दूसरी बार गिरवी नहीं की जा सकती, क्योंकि, दूसरे गिरवीदार के लिए कब्जा नहीं किया जा सकता है। जबकि संपत्ति जो एक बार एक व्यक्ति को बंधक कर दी जाती है, बाद मे दूसरों को बंधक की जा सकती है।
5. गिरवी केवल वैयक्तिक संपत्ति की हो सकती है। बंधक दोनों, वैयक्तिक एवं

वास्तविक संपत्ति हो सकती है।

बंधक और धारणाधिकार

1. धारणाधिकार प्रतिभूति का एक प्रकार है जो विधि के प्रवर्तन द्वारा सृजित किया जाता है। धारणाधिकार विधि द्वारा न कि कतिपय मांगों के पूर्ण होने तक एक दूसरे से संबंधित संपत्ति के कब्जे को रोके रखने की संविदा द्वारा सृजित एक अधिकार है।
2. धारणाधिकार विषयक विधि भारतीय विधानमंडल की बहुत सी संविधिओं में बिखरी है। अर्थात् संविधान अधिनियम, धारा 170–सामान्य–171–बेंकर्स, वादेक्षक आदि, 221–अभिकर्त्ता का धारणाधिकार वस्तु–विक्रय–47, असंदत्त विक्रेता धारणाधिकार। संपत्ति अंतरण 554–55 (6) विक्रेता एवं क्रेता का धारणाधिकार।
3. धारणाधिकार सामान्य स्वामित्व सृजित नहीं करता जैसे कि बंधक करता है, यहां तक कि विशेषित संपत्ति नहीं, जैसे गिरवी में – केवल कब्जा रोके रखने का अधिकार।
4. बंधकी एवं गिरवीदार दोनो बेच सकते हैं: धारणाधिकारी नहीं बेच सकता।

बंधक एवं भार

1. भार धारा 100 में परिभाषित है। भार में दो तत्त्व हैं:
   (1) इसमें धन का दायित्व होता है।
   (2) उस धनीय दायित्व के उन्मोचन के लिए अचल संपत्ति प्रतिभूति बनाई जाती है।
2. बंधक में तीन तत्त्व होते हैं:
   (i) धनीय दायित्व है।
   (ii) उस धनीय दायित्व के उन्मोचन के लिए अचल संपत्ति को प्रतिभूति बनाया जाता है।
   (iii) लेनदार के पक्ष में उस संपत्ति में एक हित का हस्तांतरण है।
3. भार में हित का अंतरण नहीं होता। इसमें केवल भार या बोझ होता है।

35 कलकत्ता 837, 13 लाहौर, 660 टी.बी.
35 कलकत्ता 985

4. बंधक एवं भार के मध्य अंतर सारवान है।
   (1) बंधकी बंधकित संपत्ति का बधंनकर्त्ता से किसी भी अंतरिती के हाथों में, पीछा कर सकता है। जबकि भार अंतरितों के विरुद्ध सूचना के साथ प्रदर्शित किया जा सकता है।

33 कलकत्ता 985

बंधक के विभिन्न वर्ग

1. धारा बंधक के छः वर्गों का प्रगणन करती है:-

(i) सादा बंधक।

(ii) सशर्त विक्रय द्वारा बंधक।

(iii) भोगा बंधक।

(iv) अंग्रेजी बंधक।

(v) साम्यिक बंधक।

(vi) विलक्षण बंधक।

2. बंधक के विभिन्न वर्गों के लक्षण:-

(I) सादा बंधक

1. साधारण बंधक में दो बातें आती हैं:-

(i) अदा करने के लिए अभिव्यक्त अथवा विवक्षित वैयक्तिक बाध्यता।

(ii) संपत्ति को बिकवाने के अधिकार का अंतरण।

वैयक्तिक बाध्यता -

1. जब व्यक्ति ऋण को स्वीकार करता है तो अदा करने का एक वैयक्तिक दायित्व होगा, जब तक कि एक विशेष निधि से अदा करने का समझौता नहीं है।

10 कलकत्ता, 740, 22 कलकत्ता 434, 16 कलकत्ता 540, 13 मद्रास 192, 15 मद्रास 304, 27 मद्रास 526, 86

(1) ऋण प्रतिभूत ऋण या अप्रतिभूत ऋण हो सकता है।

(2) प्रत्येक अप्रतिभूत ऋण में अदा करने की वैयक्तिक बाध्यता होती है।

44 आई.ए. 87

(3) ऋण का एकमात्र मामला जिसमें अदा करने के वैयक्तिक दायित्व को नकारा जाता है, वही होता है जहां विशेष निधि में से अदा करने का समझौता हो,

मामले 10 कलकत्ता 740, 22 कलकत्ता 434, 16 कलकत्ता 540, 13 मद्रास 192, 15 मद्रास 304, 27 मद्रास 526, 86

(4) क्या ऋण में, जिसके लिए प्रतिभूति है अदा करने की वैयक्तिक बाध्यता होती है अर्थान्वयन का प्रश्न है। विधि में दो प्रतिपादन का उल्लेख किया जा सकता है।

(i) वैयक्तिक दायित्व इस तथ्य मात्र से हटाया नहीं जाता है कि ब्याज के साथ ऋण चुकाने के लिए प्रतिभूति दी जाती है।

(ii) प्रतिभूति की प्रकृति एवं शर्तें ऋणों की ओर से किसी वैयक्तिक दायित्व

को नकार सकती है।

(5) सादा बंधक में, ऋण के लिए हमेशा प्रतिभूति दी जाती है। ऋण प्रतिभूति ऋण होता है। किन्तु प्रतिभूति की प्रकृति एवं शर्तें बंधककर्ता के वैयक्तिक दायित्व को नकारात्मक निश्चित नहीं करती। अदा करने को एक वैयक्तिक समझौता अंतर्निहित है और प्रत्येक सादा बंधक का आवश्यक अंग है।

निर्णय–22 इलाहाबाद 453(461); 29, मद्रास 491; 30 इलाहाबाद 388

(6) ऐसी प्रसंविदा के अभाव में, प्रतिभूति भार मात्र होगी।

निर्णय–42 इलाहाबाद 158 (164) = 46 आई.ए. 228, 52 इलाहाबाद 901

II. संपत्ति को बिकवाने का अधिकार

1. यह एक बंधित अधिकार है यद्यपि वह न्यायालय के दखल से ही प्रवर्तित किया जा सकता है, जैसे कि बिकवाने का कारण शब्दों से इंगित होता है।

2. इस अधिकार का अंतरण अभिव्यक्त या विवक्षित हो सकता है।

(II) सशर्त विक्रय द्वारा बंधक

1. अभिलक्षण

(1) अंतरण विक्रय द्वारा है। यह स्वामित्व का अंतरण है।

(2) विक्रय एवं सशर्त विक्रय द्वारा बंधक में अंतर यह है कि विक्रय में अंतरण पूर्ण होता है जबकि सशर्त विक्रय द्वारा बंधक में, यह पूर्ण नहीं है, वरन् एक शर्त के अधीन होता है।

शर्त तीन प्रकार की हो सकती है:–

(i) यह कि बंधक–धन एक निश्चित दिन पर अदा न करने पर विक्रय पूर्ण हो जाता है।

(ii) यह कि ऐसी अदायगी किए जाने पर विक्रय शून्य हो जाएगा।

(iii) यह कि ऐसी अदायगी किए जाने पर, क्रेता ऐसी संपत्ति को विक्रेता को हस्तांतरित कर देगा।

2. सशर्त विक्रय द्वारा बंधक एवं पुन: क्रय की शर्त के साथ विक्रय में बहुत ही निकट की समरूपता है। दोनों दशाओं में, प्रति हस्तांतरण का अधिकार है:–

(1) किन्तु ये निबंधनों की प्रकृति में भिन्न है, जिन पर प्रति हस्तांतरण का अधिकार प्रयुक्त किया जा सकता है।

(2) यदि वह प्रतिक्रय की प्रति शर्त के साथ विक्रय है तब:–

(i) अधिकार वैयक्तिक है एवं हस्तांतरित नहीं किया जा सकता।

(ii) अधिकार, प्रतिक्रय को शर्त द्वारा लिखित निबंधों के साथ सुनिश्चित अनुपालन करने पर प्रवर्तित किया जा सकता है।

निर्णय:– 10 कलकत्ता 30, 6 इलाहाबाद 37, 21 बम्बई 528

(3) यदि यह शर्त विक्रय द्वारा बंधक है, तब –

(i) प्रति हस्तांतरण का अधिकार वैयक्तिक नहीं है वरन् निबंधन में अधिकार है और हस्तांतरिती के द्वारा निष्पादित किया जा सकता है।

(ii) यहां समय सार के रूप में नहीं माना जाएगा।

3. *वह क्या है जो प्रतिक्रय की शर्त के साथ विक्रय और सशर्त विक्रय द्वारा बंधक को भिन्न करता है?*

(1) सशर्त विक्रय द्वारा बंधक में, संव्यवहार रूप में होते हुए भी उधार देने एवं उधार लेने का ही संव्यवहार रहता है। भूमि का हस्तांतरण यद्यपि यह एक विक्रय के रूप में है, वस्तुतः प्रतिभूति के रूप में अंतरण है।

(2) प्रतिक्रय की शर्त के साथ विक्रय में, संव्यवहार उधार देने या उधार लेने की व्यवस्था नहीं है। यह एक हित का अंतरण नहीं है। यह सभी अधिकारों का अंतरण है। यह प्रतिभूति के रूप में अंतरण नहीं है। यह केवल प्रतिक्रय के वैयक्तिक अधिकार को आरक्षित रखते हुए, एक पूर्ण अंतरण है।

कोई संव्यवहार एक बंधक है इसका निर्धारण करने की कसौटी क्या है?

(1) कोई विशेष शब्द या हस्तांतरण का प्ररूप बंधक गठित करने के लिए आवश्यक नहीं है। सामान्य नियम के रूप में, कुछेक अपवादों के अधीन रहते हुए जहां संपदा का हस्तांतरण धन के लिए एक प्रतिभूति के रूप में *मूलतः* आशयित है, वह एक बंधक है और जहां वह इस प्रकार मूलतः आशयित नहीं है, वह बंधक नहीं है।

(2) यह पक्षों के द्वारा संविदा को दिया गया नाम नहीं है जो संव्यवहार को प्रकृति को निर्धारित करता है। क्योंकि दस्तावेज विक्रय होना माना जा सकता है, भले ही वह पक्षों द्वारा बंधक कहा जाए।

2 बम्बई 113

3. यह उसके द्वारा गठित एक विधिक संबंध है, जो यह निर्धारित करेगा कि क्या संव्यवहार बंधक है या नहीं।

4. पक्षों का आशय क्या था यह कैसे ज्ञात किया जाए?

यह ज्ञात करके कि उन्होंने उधार धन को किस प्रकार समझा है? यदि उन्होंने उसे एक ऋण के रूप में माना है, तब यह बंधक है।

न्यायालय द्वारा अपनाए गए मानदंड हैं:-

(i) ऋण का अस्तित्व।

(ii) प्रति संदाय की कालावधि, लघु कालावधि विक्रय की द्योतक होती है और दीर्घकालावधि बंधक की।

(iii) सकब्जा बंधक कर्त्ता की निरंतरता बंधक को इंगित करती है।

इन मानदंडों को प्रयुक्त करने में, न्यायालय आरोप पक्ष पर भार रखते हैं कि दृश्यमान विक्रयपत्र बंधक था, पर भार रखते हैं, और संदिग्धता के अवसर पर बंधक की रचना की ओर आलम्ब होते हैं।

5. *क्या आशय का मौखिक साक्ष्य स्वीकार्य है?*

1. भारतीय साक्ष्य अधिनियम पारित होने से पूर्व, मौखिक साक्ष्य एवं अन्य विलेख इस आशय को प्रमाणित करने के लिए अबाध रूप से स्वीकार्य किए जाते थे, किन्तु यह कार्यप्रणाली प्रीवी काउंसिल द्वारा समाप्त कर दी गई।

2. भारतीय साक्ष्य अधिनियम के पारित हो जाने के पश्चात् यह प्रश्न धारा 92 के द्वारा विनियमित होता है।

3. धारा 92, लिखित अभिलेखों का खंडन करने में, मौखिक साक्ष्य को अपवर्जित करती है। फिर भी भारतीय न्यायालय, लिंकन बनाम राइट (1859) 4 डीईजी.एवजे. 16 को प्राधिकारिता पर, पक्षों के आचार एवं व्यवहार के साक्ष्य को स्वीकार करते थे, यह दर्शाने के लिए कि एक विलेख जो एक पूर्ण अंतरण होने का आभास कराता था, बंधक के रूप में प्रवर्तित होना आशायित था।

4. 1899 में, प्रीवी काउंसिल ने किशन बनाम लेगे = 22 इलाहाबाद 149 = 27 आई.ए. 58 में निर्णय किया कि लिंकन बनाम राइट विनिर्णय भारत में लागू नहीं होता।

5. परिणाम यह है कि, न्यायालय पक्षों के आशय को सुनिश्चित करने की खातिर निश्चित रूप से अभिलेखों तक ही सीमित हैं।

प्रश्न यह नहीं है कि पक्षों का अभिप्राय क्या था वरन् यह है कि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों का अर्थ क्या है।

परन्तुक का महत्त्व

1. शर्त उसी दस्तावेज में लेखाबद्ध।

ध्यान में रखे जाने वाले विचार बिन्दु।

1. केवल अर्थ है कि इस प्रश्न को तय करने में कि क्या शर्त अन्य विलेख में है, न्यायालय आशय का निर्धारण करने में विचार में नहीं ले सकता।

2. किन्तु, यदि वह उसी विलेख में अंकित था तो भी वह अनिवार्यतः सशर्त विक्रय द्वारा बंधक है और प्रतिक्रय की शर्त के साथ विक्रय नहीं है।

3. अर्थान्वयन का प्रश्न अब भी रहता है।

(III) भोगा बंधक

1. लक्षण

(i) कब्जे का परिदान या कब्जे का परिदान करने की वचनबद्धता।

(ii) बंधक-धन अदा होने तक ऐसे कब्जे को रोके रखने का प्राधिकार।

(iii) किराया एवं लाभों को प्राप्त करने का प्राधिकार और उसको बंधक-धन की अदायगी में या ब्याज के बदले में विनियोग करना।

टिप्पणी - अदा करने का कोई वैयक्तिक दायित्व नहीं।

(IV) अंग्रेजी बंधक

1. लक्षण

(i) एक निश्चित दिन तक बंधनकर्त्ता द्वारा प्रतिसंदाय करने की वैयक्तिक बाध्यता है।

(ii) बंधकी का अंतरण पूर्ण है।

(iii) अंतरण परंतुक के अधीन है कि बंधकी अदायगी पर संपत्ति को वापस करेगा।

2. यह शर्त बंधक के काफी समरूप है।

अंतर

1. अंग्रेजी बंधक में विक्रय एकांतिक पूर्ण होता है जबकि सशर्त विक्रय द्वारा बंधक में विक्रय दृश्यमान होता है।

वह बंधक कैसे हो सकता है यदि विक्रय पूर्ण है? यह बंधक की परिभाषा के प्रतिकूल प्रतीत होता है, जो हित का अंतरण है।

व्यवहार में अंतर का अर्थ है: कि- अंग्रेजी बंधक में बंधकी तुरंत कब्जे का हकदार होता है, जबकि सशर्त विक्रय द्वारा बंधक की दशा में, कब्जा करने का अधिकार बंधक के अनुबंधों पर निर्भर करता है।

2. अंग्रेजी बंधक में, अदा करना वैयक्तिक दायित्व है। सशर्त बंधक में ऐसा कोई अधिकार नहीं होता।

हक-विलेख के निक्षेप द्वारा बंधक की अपेक्षाएं

ऋण

1. ऋण की परिभाषा अब देय किन्तु भविष्य में संदेय एवं वाद द्वारा वसूलनीय धनराशि के रूप में की गई है। -

(1922) 2 के.बी. 509 (617)

टिप्पणी - संविधि द्वारा देय ऋण एवं संविदा द्वारा देय ऋण के अंतर के बारे में (1922) 2 के.बी. 37 जब ऋण एक सांविधिक ऋण है तो धन को वसूलनीय बनाने की दृष्टि से अदा करने का वचन देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

2. ऋण वर्तमान ऋण या भावी ऋण हो सकता है। निक्षेप वर्तमान एवं भावी अग्रिमों को अदा करने को हो सकती है -

50 आई.ए. 283; 17 इलाहाबाद 252; 25 कलकत्ता 611

3. ऋण सामान्य शेष हो सकता है जो एक खाते पर देय हो

2 मद्रास 239 पी.सी.

11 हक विलेखों का निक्षेप।

(i) हक विलेख

II. इंग्लैंड में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह पर्याप्त है यदि सद्भावपूर्वक जमा किए गए विलेख संपत्ति से संबंधित हैं या हक के सारवान साक्ष्य हैं, और कि यह आवश्यक नहीं है कि सभी विलेख जमा किए जाने चाहिए।

(1872) सी.एच.एपीपी. 155

2. इन मामलों का भारत में अनुसरण किया गया है।

59 कलकत्ता 781

3. किन्तु पृष्ठ सी.एफ।। रंगून 239 एफ.बी. में अभिनिर्धारित किया गया कि न दस्तावेज केवल संपत्ति से संबंधित हो, वरन् ऐसे भी हों कि जमाकर्ता में प्रथम दृष्टि या प्रत्यक्ष हक को दर्शाते हों।
4. यदि विलेखों में हक का कोई प्रकार नहीं दर्शाया जाता है तो, कोई बंधक नहीं बनता है - कर की रसीद-नक्शा/योजना-हक/विलेख नहीं।
5. यदि विलेख लुप्त है तो प्रतिलिपियां जमा की जा सकती हैं।

(ii) यदि बंधक की युक्ति से प्रतिलिपियां पहले ही जमा कर दी गई हैं तो वे मौखिक करार से, आगे और अग्रिम धन के लिए प्रतिभूति बनाई जा सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि वे वापस दी जाए और पुनः जमा कराई जाएं।

17 इलाहाबाद 252, 25 कलकत्ता 611

III. आशय

1. यह आशय कि हक-विलेख ऋण के लिए प्रतिभूति हों, संव्यवहार का सार है।
2. इस रीति के बारे में जिससे कब्जा पैदा हुआ था बिना साक्ष्य, के कब्जा मात्र पर्याप्त नहीं है, ताकि एक संविदा का अनुमान किया जा सके।

231 आई.ए. 106, 38 बम्बई 372

I. रंगून, 545

3. यदि पक्षों के विचार को आसन्न मानकर विधिक बंधक तैयार करना है और यदि हक-विलेख केवल इसी प्रयोजन के लिए जमा किए जाते हैं, तो निक्षेप साम्यिक बंधक का सृजन नहीं करता है।
4. तथापि निक्षेप, एक विधिक बंधकपत्र की तैयारियों के प्रयोजन के लिए है, वहीं एक त्वरित प्रतिभूति देने का आशय भी हो सकता है, जिस विषय में निक्षेप एक साम्यिक बंधक सृजित करता है।
5. प्रश्न है क्या ऋण से योगित कब्जा मात्र अनुमान उत्पन्न नहीं करता है कि

यह एक बंधक है? इसमें मत–वैभिन्य है किन्तु श्रेष्ठतर मत यह प्रतीत होता है कि महाजन और ऋणी के मध्य ऋण से योगित कब्जा मात्र के रूप में बंधक के पक्ष में एक पूर्वानुमान उत्पन्न करता है।

(V) क्षेत्रीय निबंधन

1. इस प्रकार के साम्यिक बंधक केवल कुछ नगरों में ही सृजित किए जा सकते हैं।
2. प्रश्न है निबंधन किसको निर्देशित करता है? क्या उस स्थान को, जहां विलेख परिदान किए जाते हैं? या क्या उस स्थान को जहां बंधकित संपत्ति स्थित है? यह निश्चित किया जाता है कि निबंधन उस स्थान को जहां विलेख परिदान किए जाते हैं, निर्देशिता करता है, उस स्थल को नहीं, जहां बंधकित संपत्ति है।

मामले: 14 इलाहाबाद 238

23 आई.ए. 106

वर्णित नगर में संपत्ति का अवस्थित होना आवश्यक नहीं है।

(VI) विलक्षण बंधक

1. उल्लिखित से अन्य कोई बंधक विलक्षण बंधक कहलाता है। यह एक बंधक है, जो प्रगणित किए गए अन्य पांच वर्गों में से नहीं आता है।

2. विलक्षण बंधक या तो प्रथाया महाजन की स्वेच्छाचारिता द्वारा ढाले गए अनेकानेक रूप लेता है जिनमें से कुछ साधारण रूपों के संयोग हैं शेष अन्य विशेष जनपदों (क्षेत्रों) में प्रचलित रूढ़िगत बंधक हैं, और इन विशेष घटनाओं के प्रति स्थानीय लोकाचार द्वारा आसंगित हैं।

वह क्या है, जो बंधक के विभिन्न प्रकारों को प्रभेदित करता है?

यह अंतरित अधिकार की प्रकृति है, जो बंधक को प्रभेदित करती है।

1. वह हस्तांतरित अधिकार की प्रकृति है, जो बंधक को प्रभेदित करती है। संघटक अधिकार है जो स्वामित्व के समुच्चय को बनाता है।

2. एक भोगा बंधक में, जो हस्तांतरित होता है वह कब्जे का अधिकार है और भोगाधिकार का उपभोग है।

3. सशर्त बंधक और अंग्रेजी बंधक में हस्तांतरित अधिकार एक शर्त के अधीन स्वामित्व का अधिकार है।

4. सादा बंधक और अंग्रेजी बंधक में, अदा करने का वैयक्तिक दायित्व है।

5. भोगा बंधक और सशर्त विक्रय द्वारा बंधक में, अदा करने का कोई वैयक्तिक दायित्व नहीं है।

वह क्या है जो सभी बंधकों में सामान्य है?

1. बंधक, एक ऋण के प्रतिसंदाय के लिए विशिष्ट अचल संपत्ति में हित का अंतरण है।

2. अत: ऋण की विद्यमानता सामान्य लक्षण है।

3. कहा जाता है कि यहां ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि सशर्त बंधक और भोगा बंधक में अदा करने की कोई वैयक्तिक प्रसंविदा नहीं है।

4. इसका उत्तर है, ऋण का ऋण होना समाप्त नहीं होता है। ऋण के लिए वाद का उपचार विद्यमान नहीं है। ऋण की वसूली के लिए उपचार संव्यवहार के ऋण का संव्यवहार समाप्त हुए बिना भिन्न हो सकता है।

साधारण भूमि के बंधक को दो भिन्न पहलुओं से देखा जा सकता है:

(1) ऋण चुकाने के लिए ऋणी द्वारा वचन के रूप में माना गया यह एक वैयक्तिक दायित्व सृजन करने वाली संविदा है।

(2) यह एक हस्तांतरण भी है क्योंकि यह महाजन को उसको बंधकित संपत्ति में वास्तविक अधिकार देता है।

इस युगल पहलू से बहुत से प्रश्न पैदा होते हैं।

प्रश्न 1 – विदेश में स्थित भूमि के बंधक की वैधता किस विधि के द्वारा नियमित होगी?

यह अब तय है कि यह स्थानीय विधि के द्वारा विनियमित किया जाता है और वास्तविक हस्तांतरण एवं मात्र निष्पादय संविदा के मध्य कोई भेद मान्य नहीं है।

प्रश्न 2 – प्रतिभूत ऋण का अवस्थान क्या है – क्या ऋण जहां, ऋणी रहता है उस देश में अवस्थित माना जाना है या वहां जहां भूमि, जिस पर यह प्राप्त किया जाता है, अवस्थित है?

प्रीवी काउंसिल कहती है "यह कहना बेकार है कि ऋण एक प्रतिभूति से आच्छादित उसी अवस्था में एक ऋणी के वैयक्तिक दायित्व पर पूर्णत: निर्भर करने वाले एक व्यक्ति के साथ है।

III. विधिमान्य बंधक की अपेक्षाएं

यह निम्न विषयों पर विचार करने की अपेक्षा रखता है :-

(i) औपचारिकताएं जिनके साथ बंधक निष्पादित किया जाए।

(ii) बंधक की उपयुक्त विषय-वस्तु।

(iii) देने एवं बंधक स्वीकार करने की क्षमता।

(iv) बंधक–विलेख की विषय–वस्तु।

1. वे औपचारिकताएं जिनके साथ यह निष्पादित किया जाए।

धारा 59

1. हक विलेखों की निक्षेप द्वारा बंधक की दशा के सिवाए हर एक बंधक मूलधन के रूप में 100/– रु. या अधिक प्राप्त करने पर, संपत्ति अंतरण अधिनियम के अधीन बंधनकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित एवं कम से कम दो गवाहों द्वारा साक्ष्यांकित एक पंजीकृत प्रपत्र द्वारा प्रभावी होता है।

2. जहां मूलधन 100/– रु. से कम है वहां बंधक, या तो ऐसे प्रपत्र द्वारा या सादा बंधक की दशा के सिवाए बंधकित संपत्ति के कब्जे के परिदान द्वारा सृजित किया जा सकता है।

3. यदि मूलधन 100/– रु. से ऊपर है तो बंधक का संव्यवहार निश्चित रूप से लिखित में होना चाहिए अर्थात् यह निश्चित रूप से एक विलेख द्वारा होना चाहिए एवं विलेख आवश्यक होना चाहिए:–

(1) बंधककर्ता के द्वारा हस्ताक्षरित।

(2) कम से कम दो साक्षियों के द्वारा साक्ष्यांकित।

(3) पंजीकृत।

4. यदि यह 100/– रु. से कम है तो लिखना आवश्यक नहीं है। निम्नलिखित के संबंध में मौखिक करार पर्याप्त है,

(1) सादा बंधक।

(2) सशर्त बंधक।

(3) अंग्रेजी बंधक।

(4) भोग बंधक।

मौखिक करार धन कब्जे का अंतरण।

5. हमको केवल (उन) बंधकों का विचार करना है जहां मूलधन 100/– रु. से ऊपर है।

(1) हस्ताक्षर

साधारण खंड अधिनियम, 1897, धारा 3 (52)

1. हस्ताक्षर प्रतीकों के साधनों से या प्रतिकृति द्वारा किए जा सकते हैं। 25 कलकत्ता 911 ऐसा व्यक्ति नौकरों के द्वारा प्रयुक्त नाम की मुहर रखने वाला।

2. वह एक अशिक्षित व्यक्ति का चिह्न हो सकता है। 41 बम्बई 384 करार का चिह्न।

3. किन्तु एक शिक्षित व्यक्ति चिह्न बनाकर हस्ताक्षर नहीं कर सकता। अपराध स्वीकरण हस्ताक्षरित नहीं किया, अपराधी शिक्षित था।।

32 कलकत्ता, 550

यदि व्यक्ति अपना नाम लिखने में असमर्थ है, तो हस्ताक्षर के अंतर्गत 'चिह्न' भी समाहित है।

(2) अनुप्रमाणन

1. अनुप्रमाणन - अनुप्रमाणन करने का अभिप्राय साक्षी होना सत्य या असली होने की पुष्टि करना, साक्ष्यांकित, प्रमाणित करना। अनुप्रमाणन का अर्थ है, साक्षियों की उपस्थिति में हस्ताक्षर द्वारा विलेख या वसीयत के निष्पादन का सत्यापन। अनुप्रमाणन साक्षी वह साक्षी है जो सत्यापन में हस्ताक्षर करता है।

2. ऐसा होने पर, प्रश्न है, क्या अनुप्रमाणन साक्षी प्रपत्र के निष्पादन पर अवश्य उपस्थित होना चाहिए या एक साक्षी जो वाद में बंधककर्ता द्वारा निष्पादन की अभिस्वीकृति मात्र पर अपना नाम अंकित करता है, क्या अनुप्रमाणन के संबंध में विधि की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त है?

3. प्रीवी काउंसिल ने निर्धारित किया है कि अनुप्रमाणन साक्षी प्रपत्र के निष्पादन पर अवश्य ही उपस्थित होना चाहिए और मात्र अभिस्वीकृति यथेष्ट नहीं होगी। 39 आई.ए. 218; 35 मद्रास 607, जो इलाहाबाद एवं बम्बई के निर्णयों के विपरीत हैं, - 27 बम्बई 91 एवं 26 इलाहाबाद 69

पर्दानशीनों का अनुप्रमाणन

4. वही नियम लागू होता था। पर्दे में रहने वाली महिला के हस्ताक्षर निश्चित रूप से साक्षी की उपस्थिति में होने चाहिए अन्यथा वह एक अनुप्रमाणन साक्षी नहीं कहा जा सकता है।

मामले विधि

45 आई.ए. 94

100/- रु. से अधिक का बंधक-नामा जो उसके अवयस्क पुत्र की ओर से एक पर्दानशीन महिला द्वारा हस्ताक्षरित और अनुप्रमाणित होना तात्पर्यित था। साक्ष्य से यह प्रकट हुआ कि महिला पर्दे के पीछे थी जब विलेख उसके पास हस्ताक्षर के लिए ले जाया गया। साक्षियों ने उसको उस पर हस्ताक्षर करते हुए नहीं देखा, किन्तु उसका पुत्र पर्दे के बाहर आया और उनसे कहा कि उस पर उसकी मां के द्वारा हस्ताक्षर कर दिए गए हैं, इस पर उन्होंने एक साक्षी के रूप में हस्ताक्षर कर दिए:-

निर्णीत हुआ कि विलेख, सम्पत्ति अंतरण की धारा 59 के अर्थ में "अनुप्रमाणित" नहीं था।

42 आई.ए. 163

बंधक-विलेख दो पर्दानशीन महिलाओं द्वारा निष्पादित किया गया माना गया। दोनों अनुप्रमाणित साक्षियों के साक्ष्य से यह प्रकट हुआ कि उन्होंने हर एक निष्पादक के

हाथ को देखा जब उसने हस्ताक्षर किए और उन्होंने निष्पादकों के चेहरे को नहीं देखा, उनको बोलते सुना और उनकी आवाज़ों को पहचाना:-

निर्णीत हुआ कि विलेख संपत्ति अंतरण अधिनियम के अनुसार सम्यकत: अनुप्रमाणित था।

5. अब विधि परिवर्तित और निष्पादक द्वारा अपने हस्ताक्षर की अभिस्वीकृति पर अनुप्रमाणित सही है - देखिए परिभाषा अनुप्रमाणित धारा 3, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1926 में संशोधित।

(3) पंजीकृत

(पृष्ठ खाली छूटा - संपादक)

* * * * *

(प्रारंभिक अंश प्राप्त नहीं हुआ - सं.) तुरंत प्रचलित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि एक औपचारिक परिदान होना चाहिए या यहां तक कि दस्तावेज उस पक्ष के जो उसको निष्पादित करता है, कब्जे से बाहर हो जाना चाहिए।

दुष्टांत - एक्टसन बनाम स्कॉट (1833) 6 साइमन्स 31

कोई व्यक्ति दूसरे से संबंधित धनराशि पा लेने पर बिना किसी सूचना के, उसके साथ, उसके पक्ष में धनराशि के बदले एक बंधक निष्पादित करता है। बंधककर्ता ने विलेख को कई वर्षों तक अपनी अभिरक्षा में रोके रखा और तब एक दिवालिया के रूप में मर गया। उसकी मृत्यु के बाद वह अभिलेख उसके हक विलेख धारक एक तिजोरी में से खोज निकाला गया। यह दावा किया गया कि कोई बाध्यकर बंधक नहीं था, क्योंकि विलेख का परिदान नहीं किया गया था। किन्तु दावा इस आधार पर रद्द कर दिया जाता है कि यह दर्शाने को कोई साक्ष्य नहीं है कि विलेख का प्रवर्तन उसके निष्पादन के समय से आशयित नहीं था।

6. इसमें एक विचार का होना प्रतीत होता है कि यदि विलेख दूसरे पक्ष को परिदान किया जाता है तो यह निश्चित: तुरन्त प्रवर्तित होना चाहिए और इसके प्रवर्तन में विधि की दृष्टि में विलम्ब नहीं किया जा सकता। किन्तु अब यह स्थापित हो गया है कि साक्ष्य उस आचरण को दर्शाने के लिए स्वीकार्य है जिसमें विलेख किसी व्यक्ति को प्रदत्त किया जाता है, यद्यपि वह स्वयं उसके अधीन लेने वाला पक्ष है, अजनबी नहीं है।

(1897) 2 सी.एच. 608

7. जहां कोई लिखित प्रवर्तन तुरंत नहीं वरन् किसी शर्त के संपादन पर आता है वहां यह एक प्रतिबंधालम्बित लेख कहलाता है, जिसका सामान्य अभिप्राय है निलंब लेख या लेख जो जब तक एक पूर्ववर्ती शर्त पूरी नहीं की जाती है, प्रभावी नहीं होता है।

8. मात्र निष्पादन पर्याप्त नहीं है। उसको तुरंत प्रभावी करने का आशय होना चाहिए। परिदान का अभिप्राय है तुरंत प्रभावी करने का आशय। वह आशय परिदान या अपरिदान की प्रक्रिया से स्वतंत्र है।
9. जहां विलेख केवल एक या कुछ व्यक्तियों द्वारा निष्पादित होना आशयित है और अन्य इसे पूरा करना अस्वीकार करते हैं वहां प्रश्न यह है कि क्या वह उन पर बंधकारी है जिन्होंने इसको निष्पादित किया है, यह उन पक्षों का एक आशय है जिसे हर एक के तथ्यों से प्राप्त करना होगा।

विलेख में सारभूत परिवर्तन - का प्रभाव

1. विलेख में, बंधककर्त्ता की स्वीकृति के बिना और एक व्यक्ति जो उस (विलेख) पर भरोसा करता है कि अभिस्वीकृति एवं संबंध के साथ, किया गया सारभूत परिवर्तन, विलेख की प्रभावोत्पादकता को पूर्णतः विनष्ट कर देगा।
2. यदि केवल औपचारिक विषय-वस्तुओं से भरे जाने वाले रिक्त-स्थान छोड़े जाते हैं, तो बंधकी अपने अधिकारों को जोखिम में डाले बिना उनको भर सकता है।

   (1905) 2 सी.एच. 455
3. नियम के अभिप्राय में सारभूत परिवर्तन क्या है इस प्रश्न ने कुछ मत वैभिन्य उद्भूत किया है।

   10 सी.डब्ल्यू.एन. 788 (न्यायाधीश मुकर्जी जे.)

किसी लिखित में कोई परिवर्तन, जो उसे विधिक प्रभाव में भिन्न भाषा व्यक्त करने को प्रेरित करता है उससे जिसे वह मूलतः व्यक्त करता है, जो एक लिखित को या तो उसके पर्दों में या उसके पक्षों के संबंध में विधिक परिचय या लक्षण में परिवर्तन करता है, एक सारभूत परिवर्तन या तकनीकी रूप में परिवर्तन है, और ऐसा परिवर्तन लिखत को, परिवर्तन पर सम्मति न देने वाले सभी पक्षों के विरुद्ध अवधि मान्य कर देगा।

संविदा में किसी पक्ष की वृद्धि एक सारभूत परिवर्तन है।

तीन औपचारिकताओं का महत्त्व

1. तीनों औपचारिकताओं में से किसी का अभाव संव्यवहार की वैधता के लिए घातक है। शब्द है केवल।
2. औपचारिकताएं न केवल विद्यमान हो वरन् वैध भी हों अर्थात् विधि के अनुसार हों।
3. उस पर न केवल हस्ताक्षर हों वरन् हस्ताक्षर विधि मान्य हों।
4. न केवल अनुप्रमाणित होना चाहिए वरन् अनुप्रमाणन वैध भी होना चाहिए। यदि अनुप्रमाणन अवैध है तो विलेख बंधक के रूप में प्रवर्तित नहीं हो सकता है - अर्थात् निष्पादक की उपस्थिति या अभिस्वीकृति के बिना अनुप्रमाणन।
5. न केवल पंजीकरण हो वरन् पंजीकरण वैध हो।

(i) यदि संपत्ति इतनी अशुद्धता से वर्णित की जाती है कि वह पहचानी नहीं जा सकती है।

18 कलकत्ता 556/4 ब

(ii) जबकि एक विलेख सर्किल में पंजीकृत किया जाता है जिसमें संपत्ति स्थित नहीं है।

29 कलकत्ता 654

(iii) जहां विलेख पंजीकरण के लिए उपयुक्त व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो, बंधक विधिमान्य नहीं है।

औपचारिकताओं की विषय-वस्तु के संबंध में दो अन्य प्रश्नों पर विचार करना है।

1. क्या विलेख का निष्पादन बंधक को प्रभावी करने के लिए पर्याप्त है?

1. यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विलेख का निष्पादन मात्र आवश्यक नहीं है यदि वह बाध्यकर सहमति के रूप में प्रवर्तित होना आशयित नहीं है।
2. यह आंग्ल विधि में इस नियम (सूत्र) द्वारा अभिव्यक्त है कि विलेख परिदत्त किया गया हो।
3. यह तब तक स्पष्ट नहीं हो सकता है जब तक कि कोई यह नहीं समझता कि "परिदत्त" का अभिप्राय क्या है, एक विलेख जो किसी तकनीकी कार्यवाही का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, के परिदान के संबंध में कुछ भी रहस्यमय नहीं है, वरन् केवल इंगित करता है कि लिखत तुरंत प्रवर्तन में आ जाना है।
4. शेफर्ड अपनी कसौटी (टचस्टोन) में परिदान को अच्छे विलेख की अपेक्षाओं में एक रूप में व्यक्त करता है और यह भी कहता है कि ज्यूरी के लिए यह एक तथ्य का प्रश्न है।

निर्णय विधि

I. राज्य सचिव के विरुद्ध वाद

(1906) 1 के.बी. 613; 5 लखनऊ 157, 37 मद्रास 55

II. राजा (क्राउन) की स्थिति

1920 ए.सी. 508, 1932 ए.सी. 28, 1929 ए.सी. 285, 8 अपी वाद (केसेज) 767, 8 एम.आई.ए. 500, 1930 अपी. वाद 501

III. परमसत्ता

(1792) 2 वी.ई.एस. 60, 13 एम.पी.सी.सी. 22 (1906) I के.बी. 613 ब्रिटिश भारत=धारा 3 (17) साधारण खंड अधिनियम 1897। समग्र ब्रिटिश भारत=अनुसूचित जिलों (क्षेत्रों) को आवेष्टित करता है।

52 मद्रास 1

कोई नव अधिग्रहीत राज्यक्षेत्र ब्रिटिश भारत का एक अनुबंधन भाग हो जााता है – ऑन्सले बनाम प्लाउडन (1856–59), 1 बम्बई 145

किन्तु वह अपनी विधियों को तब तक बनाए रखता है जब तक कि वे सम्राट या विधानमंडल द्वारा प्रवर्तित नहीं की जाती है। 19 बम्बई 680 (686) अनुगमित 1 एम.आई.ए. 175/271

अधिनियम जैसे कि भारतीय विधान मंडल द्वारा पारित स्टॉम्प अधिनियम बहुत स्थानों के लिए लागू किया गया है, जो यद्यपि ब्रिटिश भारत के बाहर हैं (अर्थात् बेंगलोर, हैदराबाद अभ्यर्पित क्षेत्र, बड़ौदा घवनी: माउंट-आबू आदि) धाराएं 4 एवं 5 विदेशी अधिकारिता एवं प्रत्यर्पण अधिनियम 1879 और भारतीय (विदेशी अधिकारिता) परिषद आदेश 1902 के अधीन अधिसूचनाओं द्वारा ब्रिटिश प्रशासन के अधीन हैं।

बंधक लेने या देने की क्षमता

1. बंधक संपत्ति का अंतरण एवं संविदा भी है। अत: उसको निश्चित रूप से एक वैध संपत्ति के अंतरण के लिए और एक वैध संविदा के लिए निर्धारित क्षमता की अपेक्षाओं को पूरा करना चाहिए।

संपत्ति के वैध अंतरण की सामर्थ्य के संबंध में अपेक्षाएं

1. संपत्ति के अंतरण से अभिप्राय है ऐसा कार्य जिसके द्वारा एक जीवित व्यक्ति एक या एक से अधिक अन्य जीवित व्यक्तियों या स्वयं को या स्वयं एवं एक या अधिक अन्य जीवित व्यक्तियों को संपत्ति का अंतरण करता है। धारा 5
2. बंधक संपत्ति अंतरण का एक कार्य है इसलिए कार्य के पक्षों का जीवित व्यक्ति अवश्य होना चाहिए।
3. जब यह कहा जाता है कि दोनों व्यक्ति निश्चितत: जीवित होने चाहिए तो यह स्पष्ट है कि दो प्रभेद करने का आशय है:–
   (i) अंतरजीवी अंतरण एवं बिल।
   (ii) अंतरण एवं हित के सृजन के मध्य (धाराएं 13, 14, 16 एवं 20)
4. विल वसीयतकर्त्ता की मृत्यु से प्रवर्तित होती है। अत: बंधक वसयित के द्वारा सृजित नहीं हो सकता है। निश्चित रूप से उसे अंतरजीवी होना चाहिए। वसीयत दो जीवित व्यक्तियों के मध्य हस्तांतरण के रूप में प्रवर्तित नहीं होती है।
5. बंधक हित का अंतरण है। धाराएं 13, 14, 16–20 अनुमत करती हैं कि हित अंतरण के दिनांक पर अविद्यमान व्यक्ति के पक्ष में सृजित किया जा सकता है। किन्तु बंधक हित का सृजन नहीं है, वरन् यह हित का अंतरण है।

जीवित

1. जीवित शब्द का क्या अभिप्राय है? क्या इसका अभिप्राय है एक व्यक्ति जिसकी प्राकृतिक मृत्यु नहीं है या क्या इसका अभिप्राय है कि एक व्यक्ति की सिविल

मृत्यु नहीं हुई है? नैसर्गिक मृत्यु नहीं हो सकती है, यद्यपि सिविल मृत्यु हो सकती है।

दृष्टांत:–

संन्यासी – बौद्ध

जहां कोई व्यक्ति सभी सांसारिक परंपराओं को त्यागते हुए धार्मिक क्रम में प्रवेश करता है, उसका कर्म सिविल मृत्यु के समान है।

दृष्टांत :–

संन्यासी – मुल्ला पृ. 113

बौद्धभिक्षु – 7 रंगून 677 आई.बी.

2. एक व्यक्ति जो सिविल दृष्टि से मृत है, संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रयोजन के लिए मृतक नहीं है।

3. जीवित जैसा कि धारा 299 आई.पी.सी. स्पष्टीकरण 3 में परिभाषित है, इंगित करेगा कि उसके शरीर के किसी अंग को अवश्य समक्ष लाना ही चाहिए। किन्तु हिन्दू विधि में गर्भस्थ पुत्र निश्चितत: जन्में हुए पुत्र के समान है – मुल्ला पृष्ठ 319। एक व्यक्ति हिन्दू विधि के प्रयोजन के लिए जीवित हो सकता है, संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रयोजन के लिए नहीं।

16 मद्रास 76, 37 इलाहाबाद 162, 58 मद्रास 886

4. इसी प्रकार की स्थिति में एक व्यक्ति का एक अन्य मामला सिद्ध दोष का है। चूंकि सिद्ध दोष आंग्ल विधि के अधीन संविदा नहीं कर सकता या संपत्ति का निपटारा नहीं कर सकता बंधक पर धन उधार देने या उधार लेने का अधिकार नहीं रखता है, किन्तु सिद्ध–दोष का प्रशासक सिद्ध–दोष की संपत्ति के किसी भी भाग को बंधक कर सकता है।

सिद्ध–दोष धारा 6, समपहरण अधिनियम 33 एवं 34 विक.चा. 23, 1870 में परिभाषित है, जिसका अभिप्राय है कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध मृत्युदंड या कठोर श्रम कारावास किसी राजद्रोह या महापराध के आरोप पर इंग्लैंड वेल्स या आयरलैंड में सक्षम क्षेत्राधिकार के किसी न्यायालय में उद्घोषित या अभिलिखित किया गया हो।

5. भारत में सिद्ध दोष की स्थिति के बारे में क्या है।

(पांडुलिपि में पृष्ठ खाली छूटा – संपादक)

व्यक्ति

1. 'व्यक्ति' शब्द में साधारण खंड अधिनियम के अनुसार कोई कंपनी चाहे निगमित

है या नहीं, व्यक्तियों का संगम या निकाय भी शामिल है।

2. व्यक्ति शब्द में "न्यायिक व्यक्ति" भी शामिल हैं, जैसे एक निगम यह बहुत पहले प्रतिपादित दृष्टिकोण था। किन्तु अब एक विशेष परंतुक के द्वारा जो संपत्ति अंतरण अधिनियम में 1929 में धारा 5 में जोड़ा गया था, वह स्पष्ट कर दिया गया है।

3. एक निगम, जिसको भूमि अर्जित करने एवं रखने का अधिकार है, उसे बंधक करने का भी अधिकार उस उद्देश्य के लिए है जिसके लिए वह सृजित किया गया था। यहां तक कि आंग्ल विधि के अधीन गर्भस्थ शिशु पुत्र मात्र जीवित व्यक्ति समझा जाता है।

   सांविधिक निगमों के अधिकार सामान्यत: निगमन के कार्य द्वारा विनियमित किए जाते हैं, किन्तु जहां निगम के प्रयोजनों के लिए उधार लेना आवश्यक है, वही यह संपत्ति अंतरण अधिनियम द्वारा निषिद्ध नहीं किया जाता है, क्योंकि यह एक "व्यक्ति" है।

4. हिन्दू विधि द्वारा मूर्ति को संपत्ति धारण करने वाले एक न्यायिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त है।

किन्तु मूर्ति की संपत्ति का कब्जा एवं प्रबंधन शैबाइत (पुजारी) में निहित होता है। किंतु चूंकि स्वामित्व मूर्ति का होता है और चूंकि मूर्ति एक न्यायिक व्यक्ति एवं इसीलिए एक जीवित व्यक्ति है,यह बंधक का एक पक्ष हो सकती है।

संविदा की सामर्थ्य के संबंध में अपेक्षाएं

1. यह धारा 7 में वर्णित है। धारा 7 के अधीन दो बातें आवश्यक हैं:-

(i) व्यक्ति संविदा के लिए सक्षम हो।

(ii) व्यक्ति हस्तांतरणीय संपत्ति का हकदार या हस्तांतरणीय संपत्ति का व्ययन करने के लिए प्राधिकृत हो।

(i) संविदा के लिए सक्षम

1. धारा 4 व्यक्त करती है कि संपत्ति अंतरण के वे अध्याय एवं धाराएं जो संविदाओं से संबंधित हैं, भारतीय संविदा अधिनियम के भाग माने जाएंगे।

2. अत: संविदा की सक्षमता से संविदा अधिनियम के अनुसार सक्षमता अभिप्रेत होनी चाहिए।

धारा 11. प्रत्येक व्यक्ति जो विधि के अनुसार, जिसके वह अधीन है, वयस्कता की आयु का है, संविदा करने के लिए सक्षम है और जो स्वस्थचित्त है और किसी विधि

जिसके वह अधीन है के द्वारा संविदा करने से अयोग्य नहीं किया गया है।

3. एक दिवालिया की अयोग्यता।

एक दिवालिया को उसके द्वारा वाद में उपर्जित किसी संपत्ति के साथ व्यवहार करने की क्षमता के संबंध में एक बात कही जा सकती है। अब यह निर्धारित विधि है कि एक दिवालिया, जो अपना अंतिम उन्मोचन प्राप्त नहीं कर चुका है, अपने द्वारा उपार्जित अचल संपत्ति पर एक बंधक सृजित नहीं कर सकता है।

हकदार

1. प्रश्न है कि क्या हकदार का अभिप्राय एक पूर्ण स्वामी के रूप में या एक सीमित स्वामी के रूप में हकदार से है।
2. पूर्ण स्वामी की बंधक करने की क्षमता है यह स्पष्ट है। प्रश्न है कि क्या सीमित स्वामी की बंधक करने की क्षमता है।
3. बंधक करने की अभिव्यक्ति शक्ति के बिना विक्रय के लिए न्यास पर संपत्ति धारक व्यक्ति।

सामान्यतः यह निर्धारित किया जा सकता है कि पूर्ण परिवर्तन के लिए निदेश युक्त विक्रय के लिए न्यास बंधक प्राधिकृत नहीं करता है।

4. भागीदार-भागीदारी-ऋण प्रतिभूत करने के लिए भागीदारी संपत्ति को बंधक कर सकता है।
5. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन एक निष्पादक या प्रशासक अंतरण के लिए सक्षम है।
6. हिन्दू विधवा, संयुक्त हिन्दू परिवार का एक सदस्य, संयुक्त हिन्दू परिवार का कर्ता, हिन्दू धार्मिक धर्मदायों का न्यासी।
7. अंतिम दो अपनी शक्ति एवं आवश्यकता रखने वाले हैं।

अंतरणीय संपत्ति

1. व्यक्ति चाहे पूर्ण स्वामी है या सीमित स्वामी, विषय-वस्तु अंतरणीय संपत्ति होनी चाहिए।
2. अंतरणीय संपत्ति क्या है?
   (i) धारा 6 व्यक्त करती है - इस अधिनियम या किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा प्रावधानित के सिवाए किसी प्रकार की संपत्ति अंतरणीय हो सकती है। हर प्रकार की संपत्ति अंतरणीय है जब तक कि उसे अंतरण विधि द्वारा निषिद्ध नहीं किया जाता है।
   (ii) अपवाद दो शीर्षकों के अंतर्गत आते हैं:
      (अ) मात्रतः वैयक्तिक अधिकार अंतरित नहीं किए जा सकते हैं।

(ब) संपत्ति में हित जो स्वामी के लिए उपभोग में वैयक्तिक रूप से सीमित है, अंतरित नहीं किया जा सकता।

3. यह दर्शाता है कि चल संपत्ति का बंधक हो सकता है। संपत्ति अंतरण अधिनियम में इसका उल्लेख नहीं है क्योंकि संविदा अधिनियम में इसका उल्लेख एक गिरवी के रूप में है।

बंधक-विलेख की विषय-वस्तु

यह वांछनीय है कि बंधक-विलेख में कुछ निश्चित विवरण लिखे जाने चाहिए।

1. ऋण या वचनबंध, जो प्रतिभूति की विषय-वस्तु है, विलेख में विशेष रूप से उल्लिखित होनी चाहिए, अन्यथा बंधकर्त्ता एक ऋण को दूसरे में बदल सकता है।
2. अदायगी या अनुपालन के लिए समय निश्चित रूप से विलेख में विशेषतः उल्लिखित होना चाहिए।
3. विलेख में अदायगी प्रसंविदा भी होनी चाहिए, क्योंकि बंधकों के विभिन्न प्रकार हैं जिनमें कोई ऋण विवक्षित नहीं होता।
4. संपत्ति जो बंधक में दी जानी है पर्याप्ततः वर्णित होनी चाहिए। यह सत्य है, कि संपत्ति के अभिज्ञान (पहचान) के प्रयोजन के लिए बाह्य साक्ष्य स्वीकार्य है, जहां विवरण या तो अनिश्चित या वस्तुतः भ्रामक है।

प्रश्न - क्या बंधक एक व्यक्ति की संपत्ति पर सृजित किया जा सकता है, यदि ऐसी संपत्ति विशिष्टतः वर्णित नहीं की जाती है? क्या सामान्य बंधक वैध है।

प्रश्न - क्या समस्त संपत्ति की जो ऋणी के पास है, गिरवी बिना किसी आगे के विभेद के, हमारी विधि के अधीन बंधक का सृजन कर सकती है?

ऐसी लिखत जिसमें प्रतिभूति सृजित करने के लिए सुसंगत पर्याप्त शब्द है एवं ऐसी लिखत में जिसमें ऋणी मात्र सहमत होता है कि यदि धन चुकता नहीं होता है तो बाध्यताकारी ऋणी की समग्र संपत्ति से ऋण वसूल करने के लिए स्वतंत्र होगा, में अंतर अवश्य करना चाहिए।

बाद के मामले में, यदि वे अकेले रह जाते हैं, साहूकार को केवल उसके ऋणी की संपत्ति पर निष्पादन का भार डालने का साधारण अधिकार बाध्यताकारी को देते हैं और गिरवी का सृजन नहीं करते हैं।

मान लीजिए कि मामला प्रथम शीर्षक के अंतर्गत आनेवाला है, तो ऐसा आडमान एक बंधक बनाने के लिए ठीक है।

भारत में, ऐसी प्रतिभूतियों की वैधता इस आधार पर प्रश्नगत की गई है कि एक सामान्य आडमान कार्यान्वित किए जाने को बिल्कुल अनिश्चित है।

(1) यह कहा जाता है कि ऐसा आडमान इस सिद्धांत के विरुद्ध पाप करता है

कि संविदा का रूप निश्चित हो ओर धारा 29, संविदा अधिनियम एवं धारा 93, साक्ष्य अधिनियम का अवलम्ब लिया एवं रखा जाता है।

(2) अस्पष्टता एक भ्रामक शब्द है। इसका अर्थ (1) या तो यह हो सकता है कि भाषा इतनी अस्पष्ट है कि वह समझी नहीं जा सकती है, या (2) कि संपत्ति जिससे यह संबंधित है संविदा में विनिर्दिष्ट नहीं है।

(3) फिर भी अनिश्चित को प्राय: व्यापकता समझ लिया जाता है।

संविदा की विषय-वस्तु विस्तृत किन्तु निश्चित भी हो सकती है। दूसरी ओर वह विस्तृत नहीं किन्तु फिर भी अनिश्चित हो सकती है। यदि कोई व्यक्ति कहता है, "मैं अपनी समग्र भूमीय संपत्ति को बंधक करता हूं", यह विस्तृत है किन्तु निश्चित है।

यदि कोई व्यक्ति, जिसके कई मकान हैं, कहता है "मैं अपने मकानों में से एक को बंधक करता हूं" वर्णन विस्तृत नहीं है किन्तु इस पर भी यह अनिश्चित है।

(4) संपत्ति अंतरण अधिनियम में 'विनिर्दिष्ट' शब्द का प्रयोग उसे सामान्य से विशेष बनाने और जब तक कि संपत्ति विलेख में विशेष रूप से उल्लिखित नहीं की जाती है, विधि की दृष्टि में बंधक नहीं हो सकता है।

(5) सम्पत्ति विनिर्दिष्ट की जाए यद्यपि विधि में यह व्यक्त नहीं है कि वह किसी विशेष युक्ति से विनिर्दिष्ट हो।

* * * * *

भाग-2
बंधक के अधिकार एवं दायित्व

प्रस्तावना

1. संपत्ति जो बंधक की विषय-वस्तु है, बंधककर्त्ता एवं बंधकी के अधिकारों के अधीन होती है।
2. यहां दो प्रश्न विचारणीय हैं:-
   (i) बंधककर्त्ता एवं बंधकी के क्या अधिकार हैं?
   (ii) उन अधिकारों की प्रकृति क्या है?

अधिकारों की प्रकृति क्या है?

1. आंग्ल विधि विभाजित करती है:- बंधककर्त्ता के हित को साम्यिक संपदा कहा जाता है, जबकि बंधकी के हित को विधिक संपदा। भातीय विधि विधिक एवं साम्यिक संपदा के बीच इस प्रभेद को मान्यता प्रदान नहीं करती है।
(1872) आई.ए.सली. 47 (71), 30 आई.ए. 238
2. यहां तक कि संविदा अधिनियम के अधीन भी यह भेद मान्य नहीं है।
58 आई.ए. 279
3. दोनों के विधिक अधिकार हैं - विधिक के विपरीत कुछ भी साम्यिक नहीं है।

II. आंग्ल विधि के अधीन बंधकी स्वामी होता है जबकि बंधककर्त्ता प्रति हस्तांतरण मात्र का अधिकार रखता है।

1. भारतीय विधि के अधीन ठीक उल्टा है। बंधककर्त्ता स्वामी है और बंधकी केवल रि अबेना में अधिकार रखता है।

बंधककर्त्ता के अधिकार

बंधककर्त्ता के अधिकारों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है -

(i)) मोचन का अधिकार।

(ii) संपत्ति की व्यवस्था करने का अधिकार।

(iii) पुनर्हस्तांतरण प्राप्त करने का अधिकार।

मोचन का अधिकार

धारा 60

1. मोचन का अधिकार बंधककर्त्ता को बंधकी से तीन बातों की अपेक्षा करने के लिए हकदार बनाता है –
   (i) बंधक–विलेख बंधककर्त्ता को परिदान करना।
   (ii) यदि बंधकी का कब्जा है तो कब्जे का परिदान करना।
   (iii) लिखित में अभिस्वीकृति कि अधिकार का मोचन लिया गया है, को निष्पादित एवं पंजीकृत कराना।
2. मोचन के अधिकार का प्रयोग वह निम्न शर्तों पर कर सकता है:–
   (i) बंधक–धन अदा करने पर या निविदत्त करने पर।
   (ii) मूलधन देय को चुकने के पश्चात् किसी भी समय पर।
   (iii) यदि मोचन का अधिकार पक्षों के कार्यों से या न्यायालय की डिक्री द्वारा समाप्त नहीं किया जाता है।
   (iv) यदि बंधककर्त्ता समग्र को मोचित करने को तैयार है।

(i) मोचन का अधिकार:–

1. 'प्रतिकूल संविदा के अभाव में' जैसे शब्द धारा के शुरू में नहीं है।
2. मोचन का अधिकार, इसलिए, एक सांविधिक अधिकार है जो किसी भी शर्त द्वारा जो मोचन में बाधा डालती हो या निवारित करती हो सीमित नहीं किया जा सकता।

49 आई.ए. 60

3. मोचन पर अवरोध के होने के कारण ऐसी कोई भी शर्त शून्य है।

(ii). मोचन पर रोध–बंधक संव्यवहार में, बंधककर्त्ता के द्वारा मोचन को बाधित करने का, कोई भी प्रावधान शून्य है।

1. रोध के विरुद्ध नियम में अंतर्हित सिद्धांत है कि बंधक एक ऋण चुकाने के लिए एक प्रतिभूति के रूप में हस्तांतरण है। अपनी प्रतिभूति को वापस लेने में व्यक्ति पर वर्जित भी निरोध न होना चाहिए।
2. विक्रय एवं प्रतिभूति में अंतर है। यदि विक्रय है, संपत्ति को वापस लेने का कोई अधिकार नहीं है। यदि प्रतिभूति है, संपत्ति को वापस लेने का अधिकार है।
3. यह अधिकार एक संविदा के द्वारा छीना नहीं जा सकता। यदि यह होता है,

तो यह एक उपरोध माना जाएगा और प्रवर्तित नहीं किया जाएगा।

(iii) मोचन पर उपरोध के उदाहरण

1. निम्नलिखित खंड मोचन पर उपरोध हैं:-

(1) बंधककर्त्ता के जीवन काल में पुनः प्राप्त करना।

(2) उसके अपने धन से न कि किसी अन्य व्यक्ति के धन से पुनः प्राप्त करना।

(3) ऋणदेय पर अदा करके मोचन या बंधक विक्रय हो जाएगा।

(4) इस शर्त पर मोचन कि बंधककर्त्ता बंधकी को स्थायी पट्टा देगा।

II. निम्नलिखित खंड मोचन पर उपरोध नहीं समझे जाएंगे:-

(1) तब तक मोचन नहीं कराना जब तक कि पूर्ववर्ती बंधकों को मोचन नहीं हो जाता है।

(2) एक भाग बंधकी से 15 वर्ष व्यतीत होने के बाद तक मोचन नहीं करना।

(3) मोचन के बाद कब्जा लेने के अधिकार का एक समुचित एवं आवश्यक कालावधि के लिए स्थगन।

III. **उपरोक्त क्या है एवं क्या नहीं, इस संबंध में कोई पक्का नियम नहीं:-**

(1) यह तथ्य मात्र कि बंधक के निबंधन कठोर है, खंड को उपरोध नहीं बनाता है।

(2) कसौटी यह है कि क्या वह बंधककर्त्ता, मोचन के अधिकार को ऐसी रीति से बाधा पहुंचाता है कि मोचन का अधिकार उसकी पहुंच के बाहर हो जाए।

(3) यदि खंड उपरोध है, तब यह प्रवर्तित नहीं किया जाएगा, भले ही वह सम्मति द्वारा डिक्री में हो। मोचन का अधिकार सम्मति देकर अधित्यक्त कर दिया गया नहीं कहा जा सकता है।

(4) मोचन पर उपरोध का सिद्धांत केवल उन व्यवहारों के संबंध में है जो बंधक के पक्षों के बीच उस समय, जब बंधक की संविदा कर ली गई है, घटित होते हैं। यह एक-दूसरे के साथ बाद में की गई संविदा के लिए प्रयुक्त नहीं होता है।

(1) उसका अभिप्राय है कि पक्षगण उस समय जब बंधक की संविदा की जाती है, बंधककर्त्ता के मोचन करने के अधिकार को छीनने के लिए स्वतंत्र नहीं है।

(2) किन्तु वे बाद में बंधक की संविदा की शर्तों में परिवर्तन करने के

लिए स्वतंत्र है, आसैर कोई खंड जो मोचन के अधिकारों को बंधित करता है, उपरोध नहीं माना जाएगा।

V. *देय:-*

(1) संदेय से निश्चित रूप से प्रभेदित किया जाना चाहिए। धन संदेय हो सकता है, किन्तु देय नहीं।

(2) देय = मांग-योग्य

(3) यदि वह देय दिनांक पर अदा नहीं किया जाता है, तो मोचन का अधिकार लुप्त नहीं होता। बंधक-बंधक ही रहता है - केवल उसका प्रयोग किया जा सकता है।

VI. संदाय

(i) यदि एक से अधिक बंधकी हैं तो संदाय सबको किया जाए।

(ii) संदाय का ढंग-विधिक-प्रस्तुति या ऋणदाता को स्वीकार्य कोई अन्य माध्यम।

(iii) संदाय का स्थान - (पाण्डुलिपि में पृष्ठ खाली छूटा - संपादक)

मोचन एवं विकास

धारा 63 (अ)

1. मोचन पर बंधककर्त्ता प्रतिकूल संविदा के अभाव में, सुधारों के लिए हकदार है।
2. बंधककर्त्ता सुधारों के व्यय देने के लिए उत्तरदायी होगा, यदि सुधार-
   (i) संपत्ति को विनाश से बचाने के लिए आवश्यक था।
   (ii) प्रतिभूति को अपर्याप्त होने से रोकने के लिए आवश्यक था।
   (iii) लोक प्राधिकारी के वैध आदेश के अनुपालन में किया गया था।
3. यह भी प्रतिकूल संविदा के अधीन है।
4. धारा 63-अ सामान्य नियम निर्धारित करती है कि साधारणत: बंधकी सुधार करने और बंधकी पर भार डालने को स्वतंत्र नहीं है। विधि का उद्देश्य धन की एक बड़ी राशि को बनाने और उसके द्वारा उसके ऋण को उस सीमा तक बढ़ाने से पुन: प्राप्ति करने की शक्ति का लुंज (अशक्त) करने का जहां तक संबंध है से बंधकी को रोकना है। बंधकी को सुधारों के मोचन को असंभव बनाने को अनुमत नहीं किया जा सकता है - यह बंधककर्त्ता का अपनी संपदा में से सुधार करना कहलाता है।
5. बंधककर्त्ता की सुधारों के लिए सम्मति मात्र उसको उत्तरदायी बनाने के लिए

पर्याप्त नहीं है, जब तक कि वह प्रतिपूर्ति करने की प्रतिज्ञा के समान नहीं है।

मोचन का अधिकार एवं पट्टे के नवीनीकरण का फायदा -

धारा 64

पट्टे का नवीनीकरण, बंधककर्त्ता के मूल हित के अंगीकरण का एक प्रकार है।

1. यदि बंधकी पट्टे का नवीनीकरण प्राप्त करता है तो बंधककर्त्ता नवीकृत पट्टे के मोचन पर फायदा लेने का हकदार है।
2. यह प्रतिकूल संविदा के अधीन है।

बंधककर्त्ता का व्यवस्था करने का अधिकार

धारा 66

1. जब तक बंधककर्त्ता कब्जाधारी है तब तक वह बिना हिसाब-किताब के किराया एवं लाभों को प्राप्त करने के संपत्ति के साधारण अधिकारों का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है।
2. प्रश्न है कि क्या बंधककर्त्ता क्षय के लिए दायी है?
3. यह एक धारा है जो क्षय की नीति के बारे में है। क्षय या तो स्वैच्छिक है या अनुमत है। स्वैच्छिक क्षय में कुछ कार्य जो परिसर को ध्वंस की ओर ले जाता है के किए जाने को विवक्षित हैं, जैसे मकान को गिराने या जोड़ों को हटाकर या उनकी प्रकृति में परिवर्तन करके, जैसे चरागाह को कृषि योग्य में परिवर्तन या इमारतों को ढहा कर।

अनुमत क्षय में लोप विवक्षित है जिसके द्वारा परिसरों की क्षति होती है, उदाहरण के लिए मकान गिरकर ध्वस्त हो जाते हैं।

परिसरों के ध्वंस से स्वैच्छिक क्षय गठित करने के लिए ध्वंस निश्चित रूप से पूर्व विमर्शित या उपेक्षापूर्ण होना चाहिए, वह क्षय नहीं है, यदि परिसर उचित प्रयोग के दौरान ध्वस्त हो जाता है और कोई भी प्रयोग उचित है यदि वह संपत्ति को प्रकृति एवं जैसे किराएदार उसके बारे में जानता है को ध्यान में रखते हैं, के प्रयोग का ढंग एवं सीमा प्रकटतः उचित है।

4. धारा 66 के अनुसार बंधककर्त्ता अनुमत क्षय के लिए उत्तरदायी नहीं है। यह केवल स्वैच्छिक क्षय के लिए उत्तरदायी है जो प्रतिभूति को अपर्याप्त बनाता है।
5. प्रतिभूति अपर्याप्त है यदि मूल्य देय धन के 1/3 से कम है और यदि प्रतिभूति इमारतें हैं तो 1/2 से कम है।

धारा 65A के लिए पृ. 523 देखें।

बंधककर्त्ता के दायित्व

धारा 65

1. दायित्व कतिपय सांविधिक प्रसंविदाओं से बनते हैं।
2. कुछ वारंटियां होती हैं जिनके भंग के लिए बंधककर्त्ता उत्तरदायी है।

I. साधारणतया

(अ) हक के लिए प्रसंविदा

(i) अंतरित हित में बंधककर्त्ता का हक है।

(ii) यह कि उसे हस्तांतरण का अधिकार था।

प्रतिस्थापित प्रतिभूति

जहां एक संयुक्त एवं अविभक्त संपदा में एक अविभक्त भाग का स्वामी अपने अविभक्त भाग को बंधक करता है वहां वह व्यक्ति जो प्रतिभूति को लेता है अर्थात् बंधकी इन सह हिस्सेदारों के अधिकार के अधीन बंटवारे को प्रवर्तित करने जैसा है और उस समग्र का अविभक्त भाग पृथकतः धारित एक परिनिश्चत समग्र के अविभक्त भाग में परिवर्तित करता है। 11 ए 106 बंटवारे के बाद अविभक्त भाग के स्थान पर पृथक आबंटित भाग प्रतिभूति होगी। कार्यवाही आबंटित भाग के विरुद्ध मूलतः बंधकित भाग के विरुद्ध नहीं।

(अ) अस्थगित हक की प्रसंविदा।

(ब) लोक देयों को चुकाने की प्रसंविदा - यदि बंधकी कब्जाधारी नहीं है।

(स) पूर्ववर्ती भार (ऋण) उसके देय होने पर चुकाने की प्रसंविदा।

II. जबकि बंधकित संपत्ति पट्टा है

(i) यह प्रसंविदा कि बंधक के प्रारंभ होने की सभी शर्तें पूरी कर ली गई हैं।

(ii) पट्टा आरक्षित समस्त किराया देने की प्रसंविदा यदि बंधकी-कब्जाधारी नहीं है।

(iii) सभी शर्तें पूरी करने की प्रसंविदा - यदि पट्टा नवीकृत किया गया है।

ये प्रसंविदा वैयक्तिक प्रसंविदा नहीं है। वे बंधकित संपत्ति के साथ चलती है और बंधकी से हस्तान्तरिती द्वारा प्रयुक्त की जा सकती है।

बंधकी के अधिकार

1. वे दो श्रेणियों में आते हैं -

(1) बंधक धन को प्राप्त करने का अधिकार।

(2) बंधक की निरंतरता में प्रतिभूति को ठीक तरह रखने का अधिकार।

(i) बंधक धन को प्राप्त करने का अधिकार-

(1) पुरोबंध लगाने का अधिकार - 67

(2) बेचने का अधिकार - 67/69

(3) बंधक धन के लिए वाद लाने का अधिकार - 68

(4) विक्रय एवं अर्जन पर धन का दावा करने का अधिकार - 73

2. यह डिक्री प्राप्त करने के लिए वाद कि बंधककर्त्ता-बंधक संपत्ति के मोचन के अधिकार से पूर्णतः विवर्जित कर दिया जाएगा पुरोबंध के लिए वाद है।

टिप्पणी -

(1) बंधक धन का अभिप्राय संपूर्ण बंधक धन नहीं होता है। यदि बंधक किश्तों द्वारा चुकाया जाना है तो यह बंधकों के लिए मूलधन को किसी किश्त एवं ब्याज के लिए वाद लाने की छूट है। -

13 एम.एल.आई.-2

(2) एक अभिव्यक्त अनुबंध के अभाव में बंधकी किश्तों द्वारा धन प्राप्त करने को बाध्य नहीं है -

24 इलाहाबाद 461

(3) मूलधन देय होने से पूर्व भी ब्याज के लिए वाद चलने योग्य है, जब तक कि उसको (बंधकी को) ऐसा करने से वर्जित करने की प्रसंविदा नहीं है।

(4) ये तीन अधिकार हर एक बंधकी को उपलब्ध नहीं हैं।

(i) धन के लिए वाद लाने का अधिकार।

धारा 68

यह केवल वहां उपलब्ध है जहां बंधककर्त्ता स्वयं को उसे चुकाने के लिए आबद्ध करता है।

प्रश्न - यह कब कहा जा सकता है कि एक बंधककर्त्ता व्यक्तिगत तौर पर अदा करने को आबद्ध है?

इस विषय पर दो दृष्टिकोण हैं -

(अ) सभी प्रकार के बंधकों में वैयक्तिक प्रसंविदा मान ली जाती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार एकमात्र अंतर यह हो सकता है कि एक अभिव्यक्ति प्रसंविदा के अभाव में न्यायालय अन्य वाद में अपेक्षा की तुलना में अधिक स्पष्टतः विवक्षित प्रसंविदाओं की मांग कर सकता है।

13 लाह. 259

(ब) दूसरा दृष्टिकोण है कि प्रसंविदा तभी उद्‌भूत हो सकती है जहां एक स्पष्ट प्रसंविदा है, शब्द स्वयं को आबद्ध करता है। यह अनावश्यक होगा यदि वैयक्तिक प्रसंविदा सभी वादों में अंतर्निहित हो।

परिभाषा द्वारा

धारा 58

1. बंधककर्त्ता सादा बंधक में धन वापस करने के लिए स्वयं को आबद्ध करता है।
2. सशर्त विक्रय द्वारा बंधक में वह कहता है – "यदि वह अदा करता है तो वह अपनी संपत्ति की वापसी प्राप्त करेगा।"
3. भाग बंधक में यह विशेषित प्रसंविदा तक को भी करता है। अतः यह स्पष्ट है कि एक बंधककर्त्ता एक साधारण बंधक में एक धन की डिक्री के लिए वाद कर सकता है किन्तु अन्य प्रकार के बंधकों में नहीं। जब तक कि उस प्रभाव की एक अभिव्यक्त प्रसंविदा नहीं है।

अपवाद

बंधककर्त्ता बंधककर्त्ता से धन की डिक्री के लिए वाद कर सकता है किन्तु वह एक हस्तांतरिती से, बंधककर्त्ता से या उसके विधिक प्रतिनिधि से धन की डिक्री के लिए वाद नहीं कर सकता है –

अन्य मामले जिनमें वह धन की डिक्री के लिए वाद कर सकता है।

1. सामान्यतः बंधकी धन की डिक्री के लिए वाद कर सकता है जब बंधककर्त्ता द्वारा अदा करने के लिए वैयक्तिक प्रसंविदा है।
2. ऐसे मामले हैं जहां बंधकी वाद कर सकता है यद्यपि अदा करने को वैयक्तिक प्रसंविदा नहीं है।

धारा 68

(i) जहां किसी एक पक्ष के कार्य के फलस्वरूप नहीं वरन् आकस्मिक कारणों से जैसे कि आग, बाढ़, दैविक प्रकोप द्वारा संपत्ति पूर्णतः या आंशिकतः नष्ट हो जाती है या अपर्याप्त हो जाती है और बंधककर्त्ता अवसर दिए जाने पर दूसरी प्रतिभूति देने में असफल रहता है।

(ii) जहां बंधकी, बंधककर्त्ता के दोषपूर्ण आचरण द्वारा उसकी समग्र या आंशिक संपत्ति से वंचित किया जाता है।

(iii) जहां बंधकी के कब्जे के लिए हकदार होने पर बंधककर्त्ता कब्जा परिदान करने में विफल होता है या बंधकी को उसके कब्जे की सुरक्षा करने में असफल होता है।

विक्रय करने का अधिकार

1. यह अधिकार केवल निम्न से संबंधित हैं –
   (1) सादा बंधक।
   (2) अंग्रेजी बंधक।
   (3) साम्यिक बंधक।

2. वे कब्जा पाने के लिए वाद नहीं कर सकते। वे केवल विक्रय के लिए वाद कर सकते हैं। यदि न्यायालय भ्रमवश उसको कब्जा देता है तो वह कब्जा मोचन निषेध के समान नहीं होता और बंधककर्त्ता वाद में बंधक को मोचित करा सकता है।

19 मद्रास 249 (252–53) पी.सी.

विक्रय एवं मोचन निषेध के अधिकार के प्रयोग के लिए शर्तें

1. बंधक धन के देय हो जाने के बाद एवं मोचन की डिक्री बनाए जाने से पूर्व।
2. वाद निश्चिततः संपूर्ण बंधक धन के लिए होना चाहिए। बंधक संपत्ति के एक भाग के विक्रय या मोचन रोध के द्वारा बंधक धन के एक भाग की उपलब्धि के लिए वाद नहीं हो सकता।

अपवाद

यदि बंधककर्त्ता की संपत्ति से बंधकों के हितों का पृथक्करण है तो बंधकों के द्व ारा एक भाग के लिए वाद लाया जा सकता है।

धारा 67 अ

3. बंधकी जो उसी बंधककर्त्ता से बहुत से बंधकों को धारित करता है निश्चित ही उन बंधकों पर वाद ला सकता है जिनके विषय में –
   (i) उसे वाद लाने का अधकिार प्राप्त हो चुका है और
   (ii) जिनके संबंध में उसे उसी प्रकार की डिक्री लेने का अधिकार है।

धारा 65 (अ)

4. यदि बंधककर्त्ता न केवल संपत्ति की व्यवस्था कर सकता था वरन् यदि वह विधिकतः बंधकित संपत्ति का कब्जाधारी है तो उसको उसके पट्टे पर देने की शक्ति होगी, जो बंधकी के लिए बाध्यकारी होंगे।
5. बंधक के बाद संपत्ति के संबंध में बंधककर्त्ता की शक्ति सीमित है। वह सामान्य प्राधिकार जैसा कुछ नहीं रखता।
6. पट्टा करने की शक्ति कुछ शर्तों से परिसीमित है।
   (i) वह उसकी स्थानीय विधि, परम्परा या लोकाचार के अनुसार उसका पट्टा कर सकता है।
   (ii) प्रत्येक पट्टा सुरक्षित किया जाएगा जिससे किराया उपयुक्त ढंग से प्राप्त हो सके – किराया अग्रिम अदा नहीं किया जाएगा।
   (iii) पट्टे में निश्चित रूप से नवीनीकरण की प्रसंविदा नहीं होनी चाहिए।
   (iv) पट्टा जिस दिनांक पर वह किया गया था, से 6 माह के बाद की दिनांक से प्रभावी नहीं होगा।
   (v) एक इमारत के पट्टे की दशा में पट्टे की समयावधि तीन वर्ष से अधिक नहीं होगी।
7. पट्टे की सामान्य शक्ति प्रतिकूल संविदा के अधीन है। अन्य प्रावधान परिवर्तनों के अधीन है।

पुरोबंध का अधिकार – यह अधिकार

(i) सशर्त विक्रय द्वारा बंधकी से।

(ii) विलक्षण बंधक से जिसके द्वारा बंधकी के अनुसार वह पुरोबंध से संबंधित है।

बंधकी जो विक्रय के लिए या पुरोबंध के लिए वाद नहीं ला सकते –

(1) भोग–बंधकी

(2) रेल, नहर या अन्य संपर्क का बंधकी जिसके रख–रखाव में जनता हितबद्ध है।

बंधककर्त्ता का मामला बंधकी का न्यासी या निष्पादक हो सकता है या बंधकी जो बंधककर्त्ता का न्यासी या निष्पादक हो सकता है।

क्या ऐसा बंधककर्त्ता या बंधकी विक्रय को पुरोबद्ध कर सकता है?

धारा 67 का उपखंड (ख) बंधककर्त्ता जो बंधी के लिए न्यासी हो गया है के मामले का प्रावधान करता है। इस खंड के अनुसार बंधककर्त्ता न्यासी जो विक्रय के लिए दावा ला सकता है, पुरोबंध के लिए अनुमत नहीं है।

अन्य मामले में पुरोबंध इंग्लिश पद्धति के अनुसार इस सिद्धांत पर निषिद्ध है कि बंधककर्त्ता के हितों के संबंध में राय लेना न्यासी का कर्त्तव्य है और यह कि यह बंधककर्त्ता के हित के लिए है कि विक्रय हो न कि पुरोबंध हो।

न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना विक्रय की शक्ति का प्रयोग

1. नियमानुसार बंधकी न्यायालय के द्वारा ही संपत्ति का विक्रय करा सकता है।
2. धारा 69 इस नियम के अपवाद का प्रावधान करती है।
   (i) जहां बंधक एक अंग्रेजी बंधक है और या तो बंधककर्त्ता या बंधकी एक हिन्दू, मुसलमान या बौद्ध या गजट में अधिसूचित समुदाय का सदस्य है।
   (ii) जहां विलेख द्वारा विक्रय की शक्ति स्पष्टतः दी गई है और बंधक पुत्र का पुत्र है।
   (iii) जहां विलेख द्वारा विक्रय की शक्ति स्पष्टतः दी गई है और संपत्ति या उसका कोई भाग विलेख के निष्पादन के दिनांक को बम्बई आदि नगरों में स्थित था।

धारा 69 (अ)

3. बंधकी जिसको न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना विक्रय की शक्ति अधिकार से भिन्न रूप में प्राप्त है उसकी ओर से उनके स्वयं के द्वारा हस्ताक्षर करके आदाता को नियुक्त करने के लिए भी हकदार है।
4. इस विक्रय या आदाता नियुक्त करने की शक्ति का प्रयोग बंधककर्त्ता को सूचना देने पर है।

5. सूचना लिखित रूप में मूलधन के संदाय की अपेक्षा करते हुए एवं तीन माह तक के व्यतिक्रम के संबंध में हो।

धारा 73

(I) *बंधकी का विक्रय की आय पर अधिकार।*

(1) जब संपत्ति राजस्व के या अन्य लोक शुल्क की बकाया के संदाय में व्यतिक्रम के लिए बेची जाती है और ऐसा व्यतिक्रम बंधकी की चूक के द्वारा नहीं है तो बंधकी विक्रय धन के शेष का दावा करने के लिए हकदार है।

(2) इसी प्रकार यदि बंधक संपत्ति अनिवार्यत: अर्जित की जाती है तो बंधकी बंधककर्त्ता को क्षतिपूर्ति के रूप में देय धनराशि में से बंधक धन के संदाय का दावा करने के लिए हकदार है।

(3) उसका दावा पूर्ववर्ती अधिभारों के अतिरिक्त सभी के प्रति अविभावी होगा।

(4) यद्यपि बंधक धन देय नहीं हुआ है तो भी दावा प्रवर्तित कराया जा सकता है।

(II) *बंधक की निरंतरता की अवधि पर्यंत प्रतिभूति के अक्षत रखने के लिए बंधकी के अधिकार।*

(i) प्राप्ति/अभिगम्यता का अधिकार – धारा 70

(ii) पट्टा नवीकृत करने का अधिकार – धारा 71

(iii) संपत्ति का परिरक्षण करने का अधकिार – धारा 72

धारा 70

1. प्राप्ति/अभिगम्यता का अधिकार

बंधकी अपनी प्रतिभूति प्रयोजन से अभिगम्यता के लिए हकदार है यदि अनुवृद्धि बंधक के दिनांक के बाद की जाती है।

29 कलकत्ता 803

जहां भूमि पर दो बंधक निष्पादित किए गए हों जिस पर एक घर मकान हो और उसके बाद भूमि पर बंधककर्त्ता द्वारा दो नए मकान बनवाए गए हों, अभिनिर्धारित किया गया कि वे अनुवृद्धि थी जिस पर बंधक प्रतिभूति के लिए विश्वास कर सकता था।

यदि मकान बंधक से पूर्व बनाया गया था तो वह नहीं कर सकता था।

यदि वह डिक्री के बाद बनाया गया था तो यद्यपि वह नहीं कर सकता था धारा ऐसा व्यक्त नहीं करती है।

यह इसके प्रतिकूल संविदा के अधीन है।

धारा 71

2. नवीकृत पट्टे के फायदे का अधिकार

वह अपनी प्रतिभूति के प्रयोजनों के लिए नवीन पट्टे के फायदे के लिए हकदार होगा।

यह इसके प्रतिकूल संविदा के अधीन है।

धारा 72

3. संपत्ति का परिरक्षण करने का अधिकार

(1) बंधकी ऐसे धन को जैसा आवश्यक है व्यय कर सकता है।

(i) नाश या विक्रय से बंधक संपत्ति को परिरक्षित करने के लिए।

(ii) उस संपत्ति पर बंधककर्त्ता के हक के समर्थन के लिए।

(iii) उसमें स्वयं अपने हक को बंधककर्त्ता के विरुद्ध पक्का करने के लिए।

(iv) जबकि बंधकित संपत्ति पट्टे के नवीकरण के लिए नवीकरण पट्टाधारित हो।

(v) वह बीमा करा सकता है, यदि संपत्ति बीमा योग्य है और परिव्यय को मूलधन में जोड़ सकता है।

प्राथमिकता के लिए बंधक का अधिकार

(I) समय की प्राथमिकता

1. स्थावर संपत्ति में हितों के अंतरण की दशा में प्राथमिकता के संबंध में सामान्य नियम, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 48 में निर्धारित हैं।
2. वही नियम बंधकों के प्रश्नों के संबंध में लागू होता है ताकि बंधकों की प्राथमिकता उनके संरचना क्रम से दिनांकों पर निर्भर करती है और पूर्ववर्ती पश्चात्वर्ती पर अभिभावी रहती है।

56 कलकत्ता 868

3. धारा 78 इस नियम का एक अपवाद है। यह निर्धारित करती है कि न्यायालय पूर्ववर्ती बंधकों को परवर्ती बंधकों के लिए मुल्तवी करेगा जहां कि पूर्ववर्ती बंधकी छलकपट, मिथ्या निरूपण या घोर उपेक्षा के द्वारा बाद के बंधकी को बंधक संपत्ति पर प्रतिभूति पर उधार देने के लिए उत्प्रेरित करता है।

मिथ्या निरूपण :-

(1) (मिथ्या निरूपण) भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 18 में परिभाषित है।

(2) इसका अभिप्राय आवश्यकत: छलपूर्ण मिथ्या निरूपण नहीं है।

छल

घोर उपेक्षा

आंग्ल विधि और भारतीय विधि में एक अंतर है। आंग्लविधि के अनुसार घोर उपेक्षा का अभिप्राय उपेक्षा का छल के समान होना है।

भारतीय विधि के अनुसार घोर उपेक्षा छल से भिन्न है।

(II) अदायगी द्वारा प्राथमिकता

प्रश्न – क्या एक बधंकी एक पूर्वतर बंधकी के अधिकारों को क्रय करके एक मध्यवर्ती बंधकी पर प्राथमिकता ग्रहण कर सकती है?

धारा 93

1. बंधकी एक पूर्वतर बंधकी को धन चुका कर मध्यवर्ती बंधकी के ऊपर प्राथमिकता उपार्जित नहीं कर सकता चाहे वह मध्यवर्ती बंधकी के जानकारी के या बिना जानकारी चुका देता है।
2. बंधकी बंधककर्त्ता को एक पश्चात्वर्ती उधार देने से एक मध्यवर्ती बंधकी के ऊपर ऐसे पश्चात्वर्ती उधार से प्राथमिकता अर्जित नहीं करेगा भले ही वह मध्यवर्ती बधंकी की जानकारी के बिना उधार दे।

धारा 79

यह धारा द्वितीय नियम द्वारा 93 में निर्धारित के एक अपवाद स्वरूप है।

धारा 93 के अधीन पश्चात्वर्ती बंधकी पूर्ववर्ती बंधक की सूचना होते हुए किसी पश्चात्वर्ती आगम के संबंध में यदि पूर्ववर्ती बंधक उधारों के प्रतिभूत करने के लिए किया जाता है और यदि पश्चात्वर्ती उधार अधिकतम से अधिक नहीं है।

क्रमबंधन के लिए बंधकी का अधिकार

धारा 81

धारा 82

क्रम बंधन का प्रश्न

(1)यह तब उद्‌भूत होता है जब दो या अधिक संपत्तियां दो भिन्न बंधकियों को एक ऐसी युक्ति से बंधक की जाती है कि दोनों संपत्तियां एक बंधकी के बंधक अधिकारों के अधीन है जबकि केवल, एक–दूसरे के बंधक अधिकारों के अधीन है।

दृष्टांतः–

अ दो संपदाओं का स्वामी है – व्हाइटएकर एवं ब्लैकएकर। अ व्हाइटएकर और ब्लैकएकर ब को बंधक रखता है और उसके बाद ब्लैकएकर स को बंधक रखता है।

जो स्थिति उत्पन्न होती है वह यह है। ब व्हाइटएकर एवं ब्लैकएकर का बंधक रखता है। स केवल ब्लैकएकर पर एक बंधक रखता है। बंधक धन की प्राप्ति करने की दृष्टि से ब को दोनों व्हाइटएकर एवं ब्लैकएकर को विक्रय करने का अधिकार है जबकि स को केवल ब्लैकएकर को बेचने का अधिकार है।

यदि ब उसके अधिकार को बंधकी के रूप में प्रयुक्त करने को अनुमत किया गया स को परिरक्षित करने के दौरान आबंधन के सिद्धांत को साम्या में खोजा गया – इसके अधीन साम्या में ब को उस संपत्ति के विरुद्ध जो एक–दूसरे बंधकी ऋण की प्रतिभूति

की विषयवस्तु नहीं थी कार्यवाही करने को बाध्य किया। यह धारा 81 में निहित है।

टिप्पणी

बंधक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह पूर्व बंधक की इस क्रम में सूचना नहीं रखता था कि वह क्रमबंधन के फायदे का दावा कर सके।

* * * * *

8 साक्ष्य विधि

1. "साक्ष्य" शब्द का (अर्थ)

संविधियों में प्रयुक्त अधिकांश शब्दों की भांति 'साक्ष्य' शब्द का सामान्य के साथ ही तकनीकी अर्थ भी है।

सामान्य (अर्थ)

'साक्ष्य' अपने साधारण अर्थ में उसे प्रकट करता है जो प्रश्नगत विषय के सत्य को प्रत्यक्ष करता है।

4 मद्रास 393

तकनीकी (अर्थ)

यह शब्द 'साक्ष्य अधिनियम' में एक तकनीकी अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

धारा 3 उस भाव को परिभाषित करता है, जिसमें साक्ष्य शब्द "साक्ष्य अधिनियम" में प्रयोग किया जाता है। उस धारा के अनुसार साक्ष्य से अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत आते हैं:

(1)वे सभी कथन जिनके जांचाधीन तथ्य के विषयों के संबंध में न्यायालय अपने समक्ष साक्षियों द्वारा दिए जाने की आज्ञा देता है या अपेक्षा करता है।

(2)न्यायालय के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत किए गए सभी दस्तावेज।

साक्ष्य शब्द की यह परिभाषा अपूर्ण है। साक्षियों के अभिसाक्ष्य और लेख (दस्तावेज) जिनकी धारा में परिभाषा दी गई है साक्ष्य शब्द के मात्र अंतर्गत आते हैं, वे दो प्रमुख संसाधन हैं और विषय वस्तु हैं जिन पर न्यायाधीश को न्यायनिर्णित करना है, उसके सामने लाए जाते हैं। साक्षियों का परीक्षण अनिवार्य है और उसके द्वारा दस्तावेजों की विषय वस्तु के अतिरिक्त सभी तथ्य प्रमाणित किए जा सकते हें (धारा 59) क्योंकि एक लेख के प्रमाण के लिए उस व्यक्ति के द्वारा एक कथन के रूप में जिसके द्वारा वह लिखा गया अथवा तथाकथित है, मौखिक साक्ष्य की अपेक्षा की जाती है। (धारा 63-73)

"प्रमाणित" शब्द की परिभाषा के साथ तुलना किए जाने पर शब्द "साक्ष्य" की यह परिभाषा संकुचित है। प्रमाणित शब्द की परिभाषा के अनुसार,

"एक तथ्य प्रमाणित माना जाता है जब इसके सामने सभी विषयों पर विचार करने के बाद न्यायालय उसके विद्यमान होने का विश्वास करता है. . ."

इसके समक्ष विषयों की अभिव्यक्ति शब्द साक्ष्य के अंतर्गत आने से अधिक विस्तृत है।

साक्ष्य के अंतर्गत नहीं आते हैं:

1. वादी और प्रतिवादी के द्वारा दिए गए कथन।
2. गवाहों के आचरण।
3. स्थानीय निरीक्षणों के परिणाम।
4. न्यायिक लिखे हुए तथ्य।
5. कोई यथार्थ और व्यक्तिगत सामान जिसका निरीक्षण विवादित प्रश्न को निश्चित करने में सारभूत हो सकता है जैसे कि अस्त्र, औजार या चोरी का माल।
6. मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त से किए गए प्रश्न और उत्तर।

किन्तु ये सभी "उसके समक्ष विषयों" की अभिव्यक्ति के अंतर्गत हैं।

बात यह है कि साक्ष्य की परिभाषा, साक्ष्य अधिनियम में चल रहे विषयों में पूर्णत: लागू है। यह अन्य अधिनियमों में साक्ष्य के लिए प्रयुक्त नहीं होती।

2. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की उत्पत्ति।

1. भारत में साक्ष्य विधि 1872 के अधिनियम I में समाहित है।

साक्ष्य विधि की विविधता

2. 1773 में जब ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा उसके भारतीय अधिक्षेत्रों के प्रशासन को नियंत्रित किए जाने के दृष्टिकोण से ब्रिटिश संसद द्वारा रेग्यूलेटिंग अधिनियम पारित किया गया था उस समय ब्रिटिश न्यायालयों के दो समूह थे। बम्बई, मद्रास और कलकत्ता के प्रेसीडेंसी नगरों में राजसी अधिकार-पत्र द्वारा स्थापित उच्चतम न्यायालय थे। मुफस्सिल्स में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा सिविल और इंड न्यायालय बनाए गए। उच्चतम न्यायालयों द्वारा अपनाए जाने वाले साक्ष्य के नियम, मुफस्तिल न्यायालयों द्वारा अपनाए गए साक्ष्य के नियमों से भिन्न थे।
3. उच्चतम न्यायालय ऐसे साक्ष्य के नियमों का अनुसरण करतं थे जैसे कि सामान्य एवं सांविधिक विधियों, जो 1726 से पूर्व इंग्लैंड में प्रचलित थे और जो उसी वर्ष के अधिकार-पत्र द्वारा भारत में लाए गए थे। भारत के लिए स्पष्टत: विस्तृत संसद के बाद के अधिनियमों में पाए जाने वाले कुछ अन्य नियम थे, जो प्रचलन एवं प्रथा से बढ़कर प्रभावशाली नहीं थे।
4. प्रेसीडेंसी नगरों के अलावा और राजसी अधिपत्र द्वारा प्रस्थापित न्यायालयों के लिए कोई साक्ष्य के परिपूर्ण नियम कभी निर्धारित या सत्ता द्वारा स्थापित नहीं किए गए।

1793 एवं 1884 के बीच बनाए गए विनियमों में थोड़े से नियम शामिल थे। अन्य एक अस्पष्ट रूढ़िगत साक्ष्य विधि से अंशतः हेदया (निदेशों) एवं मुसलमान विधि अधिकारियों से लिए गए थे। दूसरे इंग्लिश पाठ्य पुस्तकों से लिए गए थे।

एकरूपता की ओर प्रयास

5. परिषद में वायसराय (गवर्नर जनरल) का प्रथम अधिनियम जो साक्ष्य से संबंधित था, सही अर्थ में 1835 का दशम अधिनियम था, जो ब्रिटिश भारत में सभी न्यायालयों में लागू हुआ और परिषद में वायसराय के अधिनियमों का प्रमाण था।

इसके पश्चात् अगले बीस वर्षों के समय में ग्यारह अधिनियम पारित किए गए, जिन्होंने साक्ष्य विधि के अनेक छोटे-मोटे संशोधनों को प्रभावित किया और भारत के न्यायालयों में लागू हुए तथा इंग्लैंड साक्ष्य विधि में अनेक सुधार किए गए।

1855 में, साक्ष्य-विधि में और सुधार के लिए 1855 का द्वितीय अधिनियम पारित किया गया, जिसमें ब्रिटिश भारत के सभी न्यायालयों में प्रयोग होने वाली अनेक व्यवस्थाएं थीं।

6. फिर भी एकरूपता के इस प्रयास से प्रेसीडेंसी नगरों में और उन मुफस्सिलों में लागू साक्ष्य के नियमों के बीच अत्यधिक विषमता जारी रही। यह विषमता निरंतर न्यायिक विवेचनाओं के अधीन बनी रही।

इस अवस्था को ठीक करने के लिए 1872 का प्रथम अधिनियम पारित किया गया।

अधिनियम की संरचना

1. एक अधिनियम (1) समेकित करने या (2) संशोधन करने या (3) समेकित और संशोधित करने वाला हो सकता है या वह परिभाषा करने अर्थात् संहिताबद्ध करने वाला हो सकता है। अधिनियम की रचना करना, नियम को समेकित करने और संहिताबद्ध करने से भिन्न होगा।

2. **एक संहिताबद्ध अधिनियम की संरचना**

एक संहिताबद्ध नियम के संबंध में संरचना का नियम, (1891) ए.सी. 107 (120) में निर्धारित किया गया है।

बैंक ऑफ इंग्लैंड बनाम वैगलियानो

लॉर्ड हॉल्सबरी का कथन है:

(पृष्ठ 120)

"मैं इस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए पूर्णतः अक्षम हूं कि जहां एक संविधि स्पष्टतः कानून को संहिताबद्ध करने वाली कही जाती है, आप इस प्रकार संरचित, संहिता के बाहर जाने के लिए स्वतंत्र हैं, क्योंकि उस संहिता के अस्तित्व से पहले एक

अन्य विधि प्रबल थी।"

लॉर्ड हरशैल का कथन है:

(पृष्ठ 144)

यह सही कारण है कि प्रथमत: संविधि की भाषा का परीक्षण किया जाए और पूछा जाए कि इसका स्वाभाविक अर्थ क्या है? विधि की पहले की दशा अवस्थिति से उत्पन्न विचारों से अप्रभावित हुए और यह पता लगाए बिना कि नियम पहले कैसा था। और तब यह मानते हुए कि यह संभवत: अभीष्ट था उसे अपरिवर्तित छोड़ देना और यह देखना कि इस दृष्टिकोण के साथ समानरूपता में शब्दों की एक व्याख्या करनी होगी।

3. विधि की एक विशेष शाखा के संहिताकरण का उद्देश्य है कि उसके द्वारा किसी भी बिन्दु पर विशेष रूप से प्रयोग में लाई गई ऐसी विधि संहिताबद्ध अधिनियम में खोजी जानी चाहिए जो प्रयुक्त भाषा की व्याख्या करने पर सुनिश्चित की जाती है।

4. **एक समेकन अधिनियम की संरचना** एक समेकन अधिनियम के संबंध में संरचना का नियम (1894) 2 सी.एच. 557 में लिखित किया गया है।

न्यायमूर्ति शिट्टी जे. (पृष्ठ 561) ने लॉर्ड हॉल्सबरी में एक संहिताबद्ध अधिनियम के संबंध में बैंक ऑफ इंग्लैंड बनाम वॉग्लेयानो में निर्धारित संरचना के नियम को संदर्भित करने के बाद देखा:–

किन्तु मुझे यहां विधि को संहिताबद्ध करने वाले एक संसद के अधिनियम के साथ व्यवहार नहीं करना है किन्तु विधि को संशोधित करने और समेकित करने वाले एक अधिनियम के साथ व्यवहार करना है और इसलिए मैं यह कहता हूं ये अवलोकन (लॉर्ड हॉल्सब के) लागू नहीं होते और मैं सोचता हूं विधायिका के अभिप्राय को सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए विधि की पूर्ववर्ती अवस्थिति को संदर्भित करना इस संशोधनकारी और समेकन अधिनियम की धारा के संशोधन में वैध है।"

5. समेकन का उद्देश्य विद्यमान विधि के बिखरे हुए भागों को एकत्रित करना मात्र है। यह केवल पुरानी विधि का पुनराअधिनियमिति है। यह विधि का एक नवीन अधिनियमन नहीं है। प्रथम दृष्टया इसके उपबंधों को वही प्रभाव देना ही है जैसा उन अधिनियमों को दिया गया था जिनके लिए इसे प्रतिस्थापित किया गया था।

6. भारतीय साक्ष्य अधिनियम जैसा कि प्रस्तावना में दिया गया है, साक्ष्य विधि को समेकित, परिभाषित एवं संशोधित करने वाला अधिनियम है। यह एक संविधि नहीं है, जो मात्र साक्ष्य का समेकन एवं संशोधन करती है, अर्थात् साक्ष्य विधि को संहिताबद्ध करती है। इसकी संरचनाएं बैंक ऑफ इंग्लैंड बनाम वॉग्लेयानो में निर्धारित नियमों द्वारा शासित होंगी न कि इसमें निर्धारित नियमों से।

अधिनियम का क्षेत्र और विस्तार

(1) अधिनियम का क्षेत्र धारा 2 में परिभाषित है। धारा 2 के अंतर्गत साक्ष्य विधि में है:

(i) साक्ष्य अधिनियम में तथा

(ii) अन्य अधिनियमों या संविधियों में जो साक्ष्य के विषयों पर प्रावधान करते हैं और जो स्पष्टत: निरस्त नहीं किए गए हैं।

यह धारा अपने प्रभाव में किसी भी नियम, अधिनियम या विनियम जो निरस्त नहीं हुई है के अंतर्गत किसी प्रकार के साक्ष्य को निषिद्ध करती है।

धारा 2:- निम्नलिखित विधियां निरस्त हो जाएंगी:

1. साक्ष्य के वे सभी नियम जो किसी संविधि अधिनियम या विनियम में अंतर्विष्ट नहीं है।

2. भारतीय परिषद् अधिनियम, 1861 की धारा 25 के अंतर्गत विधि को शक्ति प्राप्त किए हुए विनियम में समेकित सभी ऐसे नियम।

3. अनुसूची में उल्लिखित अधिनियमन।

(2) साक्ष्य से संबंधित साक्ष्य अधिनियम और अन्य अधिनियम

1. साक्ष्य अधिनियम, विधि को एक महत्त्वपूर्ण शाखा के साथ बरतने वाला एक पृथक विधान है और इसके उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता में समाहित प्रक्रिया के नियमों से स्वतंत्र हैं और जब तक यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं किया जाता है कि वे एक अन्य संविधि के द्वारा निरस्त या परिवर्तित नहीं किए गए उनका कार्य क्षेत्र पूर्ण रूप से कायम है।

7 लहौर 84

अधिनियम की प्रयुक्ति

धारा 1 अधिनियम की प्रयुक्ति निर्धारित करती है

(1) राज्य क्षेत्रीय प्रयुक्ति

यह संपूर्ण ब्रिटिश भारत के लिए लागू होता है और इसलिए अनुसूचित जनपदों में भी लागू होता है। यह उन स्थानों तक लागू है जहां इसका लागू होना घोषित किया गया है।

2. न्यायाधिकरणों के लिए प्रयुक्ति

यह किसी भी न्यायालय में या उसके समक्ष सभी न्यायिक कार्यवाहियों में लागू होता है।

(i) एक न्यायिक कार्यवाही का क्या तात्पर्य है? इसकी कोई परिभाषा नहीं है।

एक (जांच) न्यायिक है यदि उसका उद्देश्य, एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्तियों के या व्यक्तियों के एक समूह के मध्य या उसके एवं सामान्यत: समुदाय के मध्य न्यायिक

संबंध को निर्धारित करना है, किन्तु एक जज कभी भी एक उद्देश्य के दृष्टिकोण के बिना कार्य न्यायिक कार्यवाही नहीं करता है।

12 बम्बई 10 एम.आई.ए. 340

बम्बई भू राजस्व संहिता की धारा 32 के अंतर्गत एक (जांच) एक न्यायिक कार्यवाही नहीं है।

22 बम्बई, 936

2. अधिनियम सभी न्यायिक कार्यवाहियों के लिए लागू होता है जैसे सिविल तथा फौजदारी अदालतों में।
3. अधिनियम केवल मुकदमे एवं जांच की कार्यवाहियों की बात नहीं करता है। कार्यवाहियां एक व्यापक शब्द है दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 या 144 के अंतर्गत जांच एक परीक्षण नहीं है किन्तु यह एक कार्यवाही है। इसी प्रकार एक डिक्री का निष्पादन एक मुकदमा नहीं किन्तु एक कार्यवाही है। फलतः, अधिनियम परीक्षणों एवं मुकदमों के अतिरिक्त अन्य कार्यवाहियों पर लागू होता है।

(ii) एक न्यायालय क्या है?

1. धारा 3 जो एक व्याख्या खंड है उस अभिप्राय का उल्लेख करता है जिसमें शब्द 'न्यायालय' अधिनियम के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस धारा के अनुसार -

"न्यायालय शब्द के अंतर्गत सभी न्यायाधीश एवं दंडाधिकारी, मध्यस्थों के अतिरिक्त, साक्ष्य लेने के लिए कानूनन प्राधिकृत सभी व्यक्ति आते हैं।"

2. **यह धारा, "न्यायालय क्या है?" को परिभाषित नहीं करती** यह मात्र व्यक्त करती है कि न्यायालय शब्द के अंतर्गत क्या है अर्थात् कौन से अधिकारी एक न्यायालय के रूप में माने जाते हैं।

3. जहां एक व्याख्या खंड में एक शब्द में यह एवं वह को उल्लिखित किया जाता है, इसका अभिप्राय है कि शब्द अपने साधारण अर्थ को सुरक्षित रखता है और खंड शब्द के अभिप्राय को फैलाता है और विषयों को एकत्र करता है जिनमें साधारण अर्थ को अलग रखा जाता है।

23 ए.एल.जे. 845

4. **न्यायालय से तात्पर्य है कि मध्यस्थों के अतिरिक्त सभी व्यक्ति, जो साक्ष्य लेने के लिए कानूनन प्राधिकृत हैं।** इसलिए यह शब्द न्यायालय अर्थात् एक दीवानी न्यायालय या एक फौजदारी न्यायालय में पीठासीन व्यक्तियों तक परिसीमित होने वाला नहीं है।

पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत जांच करने एवं साक्ष्य लेने वाला एक रजिस्ट्रार, एक न्यायालय है।

15 मद्रास 138

दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश XXVI आर. 1-10 के अंतर्गत एवं फौजदारी प्रक्रिया संहिता की धारा 503-508 के अंतर्गत नियुक्त आयुक्त (कमिश्नर) साक्ष्य लेने के लिए विधिकत: अधिकृत एक व्यक्ति है और इस प्रकार वह एक न्यायालय है।

5. न्यायाधीश

इस अधिनियम में शब्द "न्यायाधीश" की परिभाषा नहीं दी गई है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(8) शब्द "न्यायाधीश" एक सिविल न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के रूप में परिभाषित करता है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 19 भी शब्द न्यायाधीश की परिभाषा करती है। इस परिभाषा के अनुसार एक न्यायाधीश, न्यायाधीश के रूप में निर्दिष्ट एक व्यक्ति है जो किसी (सिविल) या दंड विधिक कार्यवाही में निश्चायक निर्णय देने के लिए कानूनी रूप से समर्थ किया जाता है।

6. दंडाधिकारी

अधिनियम में इस शब्द की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। सामान्य दंड अधिनियम (1897 का दशम) इस शब्द की निम्नलिखित परिभाषा निर्धारित करता है:-

कुछ समय के लिए प्रवर्तित दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने वाला हर एक व्यक्ति मजिस्ट्रेट के अंतर्गत आएगा।

7. इन परिभाषाओं में विलक्षणताएं हैं कि न तो वे एकरूप हैं और न वे सह विस्तृत हैं।

   (i) सिविल प्रक्रिया संहिता में न्यायाधीश की परिभाषा का आधार अधिकारी की पीठासीनता है।

   भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत उसी शब्द की परिभाषा का आधार उसके निर्णय देने का अधिकार है। साक्ष्य के अंतर्गत परिभाषा का आधार साक्ष्य लेने की शक्ति है।

   (ii) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक न्यायाधीश की परिभाषा में एक मजिस्ट्रेट नहीं आता है। किन्तु भारतीय दंड संहिता की परिभाषा के आधार पर एक मजिस्ट्रेट न्यायाधीश होगा।

   (iii) साक्ष्य अधिनियम मध्यस्थ, चाहे न्यायाधीश हो या मजिस्ट्रेट हो को शामिल नहीं करेगा। किन्तु भारतीय दण्ड संहिता में "न्यायाधीश" की परिभाषा न्यायाधीशों, मजिस्ट्रेटों, साथ ही साथ मध्यस्थों को शामिल करेगी।

सारांश है कि साक्ष्य अधिनियम में शब्द न्यायालय की परिभाषा केवल अधिनियम के प्रयोजन के लिए की गई है और यह उसके वैध क्षेत्र के परे तक विस्तृत नहीं होगी।

कार्यवाहियां जिनमें साक्ष्य अधिनियम लागू नहीं होता

1. अधिनियम लागू नहीं होता:–
   (i) सेना अधिनियम या वायुसेना अधिनियम के अंतर्गत एक कोर्ट मार्शल में या उसके समक्ष न्यायिक कार्यवाहियों में।
   (ii) किसी न्यायालय या अधिकारी को प्रस्तुत शपथ पत्रों पर।
   (iii) एक मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाहियों में।

एक कोर्ट मार्शल के समक्ष कार्यवाहियां

1. अधिनियम, भारतीय सेना अधिनियम के अंतर्गत एक कोर्ट मार्शल की कार्यवाहियों पर लागू नहीं होता, अर्थात् स्थानीय कोर्ट मार्शल के लिए लागू होता है 1911 का सप्तम अधिनियम।
2. अधिनियम भारतीय समुद्रीय न्यायालयों के समक्ष सभी कार्यवाहियों में भी लागू होता है।

   1887 का चौदहवां अधिनियम सं. 68

   1898 का पांचवां अधिनियम

   1898 का सत्रहवां अधिनियम

   1899 का पहला अधिनियम
3. अधिनियम ब्रिटिश सेना या वायुसेना अधिनियम के अंतर्गत कोर्ट मार्शल के समक्ष की गई कार्यवाहियों में, लागू नहीं होता।

साक्ष्य से संबंधित प्रश्न एक्स लोसी कन्ट्रेक्टस द्वारा निश्चित किए हैं कि उस देश की विधि द्वारा, जहां प्रश्न उठता है, जहां पर सुधार का लागू होना देखा जाता है और उसे लागू करने के लिए न्यायालय बैठता है।

साक्ष्य विधि जो एक न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को चलाती है तात्कालिक (एक्सफोरी) होती है।

साक्ष्य अधिनियम का यह प्रावधान इस सामान्य सिद्धांत का एक अपवाद है।

II. शपथ पत्र

1. साधारणत: साक्षियों की गवाही न्यायाधीश की उपस्थिति और उसके वैयक्तिक निर्देशन तथा अधीक्षण में खुले न्यायालय में मौखिक रूप से ली जाएगी।

   (आदेश 18 आर. 1 सी.पी.सी.)
2. शपथपत्र, एक साक्ष्य है जिसमें एक शपथ या प्रतिज्ञान दिलाने को प्राधिकृत व्यक्ति के समक्ष शपथ या सत्य प्रतिज्ञान पर लिखित वक्तव्य या घोषणा पत्र में समाया है।
3. शपथपत्र से संबंधित विषय दीवानी प्रक्रिया संहिता द्वारा विनियमित किया गया साक्ष्य है।

4. **शपथ पत्र, न्यायालय के समक्ष न लिया गया और न प्रतिपरीक्षण किया गया साक्ष्य है।**
5. शपथपत्र की सत्यता के लिए दो संरक्षण हैं:

   (i) साक्षी को प्रति परीक्षण के जरिए प्रस्तुत किए जाने का प्रावधान।

   (ii) झूठी गवाही देने पर दंडविधि का प्रावधान।

III. मध्यस्थ की कार्यवाहियां

वह काम चलाऊ और फौरन न्याय देता है और साक्ष्य विधि को तकनीकियों से बाध्य नहीं किया जा सकता है।

साक्ष्य अधिनियम के अध्ययन के लिए उपयुक्त पहुंच

1. भारतीय साक्ष्य अधिनियम साक्ष्य की विषय-वस्तु को तीन भागों में विभाजित करता है:

   प्रथम भाग तथ्यों की प्रासंगिकता से संबंधित है जिन्हें किया जा सकता है।

   द्वितीय भाग प्रमाण से संबंधित है।

   तृतीय भाग साक्ष्य के प्रभाव और प्रस्तुतीकरण से संबंधित है - प्रमाण का भार।
2. यह एक तार्किक क्रम हो सकता है। यह एक वैज्ञानिक क्रम हो सकता है। किन्तु यह निश्चित रूप से एक स्वाभाविक क्रम वादकारी के दृष्टिकोणों से स्वाभाविक होना प्रकट नहीं होता।
3. प्रक्रिया के नियम मुकदमेबाजी के सामान्य व्यवहार को विनियमित करते हैं, वकालत के नियम पक्षों और न्यायालय के मार्गदर्शन के लिए प्रत्येक मुकदमे में भौतिक सारभूत तथ्यों को सुनिश्चित करने में, सहायता करते हैं। तब प्रमाण का प्रश्न उठता है अर्थात् जो कि न्यायालय को संतुष्टि के लिए उपयुक्त विधिक माध्यमों द्वारा विवादित तथ्यों का स्थापन करता है।
4. प्रथम प्रश्न है, जिसका वादकारी सामना करता है कि किसको विधिक विषय सिद्ध (प्रमाणित) करना चाहिए? तो प्रश्न कैसे और किस प्रकार के साक्ष्य द्वारा वह उन्हें प्रमाणित कर सकता है, उसके लिए यह गौण प्रश्न है। अतः हमको 'सबूत का भार' के साथ आरंभ करना चाहिए।

भाग - एक
प्रमाण का भार

(1)प्रमाण का भार का क्या अर्थ है?

विवरण लेख (पत्र) फिर परिभाषा

न्यायाधीश अथवा ज्यूरी किसी मामले को केवल पक्षों के द्वारा आरोपित एवं प्रमाणित तथ्यों की सत्यता एवं गुणवत्ता के संबंध में विचार करने पर निर्णीत करते हैं क्योंकि दोनों को साक्ष्य ज्ञात नहीं होते। वे निश्चित साक्ष्य द्वारा निर्धारित किए जाने चाहिए। तुरंत यह प्रश्न उठता है कि कौन-सा पक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करे? ऐसे साक्ष्य को जो किसी आरोप को स्थापित करेगा, प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी 'प्रमाण का भार' कहलाती है।

2. न्यायिक कार्यवाहियों में प्रयुक्त प्रमाण की विषय वस्तु के दो भाग होते हैं:

(1) एक विवाद्यक विषय को प्रमाणित करने का भार

(2) एक विशेष तथ्य को प्रमाणित करने का भार

इस विभाजन को करने की आवश्यकता

1. एक विवाद्यक विषय का प्रमाण (सबूत) अनेक तथ्यों के प्रमाण शामिल कर सकता है। जैसे कि वे केवल एक तथ्य के प्रमाण को शामिल कर सकते हैं।

दृष्टांत

1. विवाद्यक-विषय है, क्या अ ने ब की हत्या की?

2. विवाद्यक-विषय है, क्या दस्तावेज पर हस्ताक्षर उस अ के हैं?

विवाद्यक विषय है संख्या 2 मात्र एक तथ्य के प्रमाण को शामिल करता है। विवाद्यक-विषय संख्या 1 अनेक तथ्यों के प्रमाण को शामिल कर सकता है।

उदाहरणत: क्या अ उपस्थित था?

क्या स ने उसको देखा?

क्या खून से सनी कमीज उसकी ही है? आदि-आदि।

एक विवाद्यक-विषय को प्रमाणित करना।

3. **एक विवाद्यक विषय की रचना करने में एक पक्ष के द्वारा तथ्यों एवं कथन प्रस्तुति की जाती है और विरोधी-पक्ष द्वारा उसको नकारा जाता है।**

यहां दो तरीके हैं जिनके द्वारा विवाद्यक विषय निर्णीत किए जा सकते हैं:

(1)प्रमाणित करने के लिए आरोपित परिस्थितियां विद्यमान नहीं हैं या (2) प्रमाणित करने के लिए आरोपित परिस्थितियां विद्यमान हैं। प्रश्न है कि विवाद्यक विषय को सिद्ध करने के लिए दोनों विधाओं में से कौन सी को अपनाना है - स्वीकारात्मकता को सिद्ध करने की विधा या नकारात्मकता को सिद्ध करने की विधा।

4. जहां धारण रोकने के कोई कारण नहीं हैं:

(अ) और जो दावाकृत है अधिक संभाव्य है, अस्वीकृति की तुलना में।

(ब) जहां सिद्ध करने के माध्यम (साधन) दोनों पक्षों को समानतः सुलभ हैं, तब नियम यह है कि यह पक्ष जो तथ्यों की विद्यमानता को आरोपित करता है अवश्य सिद्ध करे कि वो विद्यमान है। भार उस पर है जो प्रस्ताव को स्वीकारोक्ति में व्यक्त करता है। वह जो अस्वीकार करता है (नकारता है) उसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं कि वे विद्यमान नहीं है।

यह नियम धारा 101 में निर्धारित किया गया है।

5. क्या कारण है कि नियम स्वीकारात्मकता सिद्ध करने की अपेक्षा करता है नकारात्मकता से नहीं।

(1)वह व्यक्ति जो एक अन्य को न्यायिक अधिकरण के समक्ष लाता है निश्चित रूप से अपने हक को साबित करने के प्रमाण की स्पष्टता पर विश्वास करे न कि अपने प्रतिवादी के अधिकार की कमी या प्रमाण की निर्बलता पर।

दृष्टांत

मिडलैंड रेल कं. बनाम ब्रॉम्बी - 17 सी.बी. 372

डोए बनाम लॉग्ड फील्ड - 16 एम एंड डब्ल्यू 497

17 सी.बी. 372/पृ. 380

(2)एक साधारण नकारोक्ति अपनी अनिश्चितता के कारण प्रमाण के लिए यदि असंभव नहीं है तो कठिन अवश्य है। एक व्यक्ति निश्चयपूर्वक कहता है कि कोई एक घटना घटित हुई, कब, कहां और किन परिस्थितियों में हुई। एक व्यक्ति कैसे असिद्ध कर सकता है और विश्वास दिला सकता है कि किसी समय नहीं, किसी स्थान पर नहीं और किन्हीं परिस्थितियों में नहीं, ऐसी एक घटना घटित हुई है। सर्वाधिक उदाहरणों में

जो संभवत: किया जा सकता है, वह कल्पित घटना की असंभवता होगी और इसे भी बहुत बड़ी संख्या में अनुमानित साक्ष्य की जरूरत होगी।

एक नकारात्मक प्रकथन एक सकारात्मक प्रकथन खंडन से निश्चित प्रभेदित होना चाहिए जो 'तकनीकी रूप' से प्रत्याख्यान के रूप में जाना जाता है।

दृष्टांत

दोषपूर्ण अभियोजन

दोषपूर्ण अभियोजन के लिए एक मामले में वादी दो मुख्य आरोप लगाता है:-

(1) यह कि प्रतिवादी ने उसको अभियोजित किया।

(2) यह कि प्रतिवादी के पास अभियोजन के लिए कोई युक्तियुक्त कारण नहीं था।

प्रथम स्वीकारात्मक होते हुए दूसरा एक नकारात्मक प्रकथन है। दोनों का प्रमाण-भार वादी पर है।

असावधानी

प्रतिवादी ने यथोचित और उपयुक्त सावधानी नहीं बरती।

यह नकारात्मक नहीं वरन् नकारात्मक प्रकथन है।

6. साक्ष्य के नियम के संबंध में दो बातें अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि एक प्रस्ताव स्वीकारात्मक अवश्य सिद्ध होना चाहिए।

12 मद्रास 526-15 जे.यू.आर. (जूर. 544-545)

प्रत्याख्यान क्या है?

1. यह एक विषय है जो (वकालत) की विधि से संबंधित है। न्यायाधीश से किसी प्रश्न को जो वादकारियों के मध्य विवाद में है को निर्णीत करने को निवेदन किया जाता है, यह सभी वादों में वांछनीय और सर्वाधिक वादों में आवश्यक है, कि उनके लिए प्रस्तुत किया गया विषय स्पष्टत: सुनिश्चित होना चाहिए। प्रतिवादी यह जानने के लिए अधिकृत है, यह क्या है कि जिसे वादी उसके विरुद्ध आरोपित करता है, वादी अपने बारे में जानने को अधिकृत है कि उसके दावे के प्रत्युत्तर में जो प्रतिवाद किया जाएगा। प्रतिवादी द्वारा किए गए प्रत्येक वक्तव्य पर विवाद कर सकता है या वह स्वीकार कर सकता है या अन्य तथ्यों को जो मामले में एक भिन्न जटिलता रखते हैं, को स्वीकृत एवं आरोपित कर सकता है।

इसे तकनीकी रूप में प्रस्तुत के लिए एक प्रतिवादी या तो:

(1) स्वीकृत

(2) अस्वीकृत

(3) अस्वीकृत एवं अन्य तथ्यों को आरोपित कर सकता है।

2. जब एक प्रतिवादी अदालती दावे में वादी के आरोप को अस्वीकार करता है वह उसका प्रत्याख्यान करने वाला कहा जाता है। एक प्रत्याख्यान एक प्रतिवादी की वकालत में एक तथ्य के एक आरोप का स्पष्ट प्रतिवाद है। यह सामान्यतः आरोप का ठीक शब्दों में एक खंडन है। यह नकारात्मक सांचे में बनाया गया एक नियम है, क्योंकि वह तथ्य जिसको यह अस्वीकार करता है, नियम के रूप में सकारात्मक है। यह प्रत्याख्यान सकारात्मक आरोपों के एक नकारात्मक आरोप, जो सत्यतः एक सकारात्मक आरोप है से निश्चित रूप से भिन्न होना चाहिए।

यदि एक पक्ष सकारात्मक दावे के साथ कहता है, और यह उसके द्वारा उसके मामले के लिए सिद्ध करना आवश्यक हो जाता है कि तथ्यों की एक निश्चित दशा विद्यमान (अस्तित्व में) नहीं है, या कि एक विशेष बात एक विशेष प्रयोजन के लिए अपर्याप्त है; और इसी प्रकार से - ये यद्यपि वे नकारात्मक के समान है - वास्तव में नकारात्मक नहीं हैः वे सत्यतः संभव प्रकथन है, और वह पक्ष जो उन्हें कहता है उनको प्रमाणित करने को बाध्य हैं।

वादी को अपने सकारात्मक दावे को सिद्ध करने के लिए नकारात्मक दावे को सिद्ध करना है।

एक नकारात्मक प्रकथन यदि सत्य है तो वह एक सकारात्मक प्रकथन है और वह वादी के द्वारा निश्चिततः सिद्ध होना चाहिए।

विक्रय एवं बंधक - मूल्य की उपयुक्तता। मूल्य अपर्याप्त नहीं है?

2. याद रखना है कि विवाद्यक-विषय के सकारात्मक एवं नकारात्मक का तत्त्व के रूप में और न कि मात्र उसके सकारात्मक नकारात्मक रूप में।

दृष्टांत

(1) मूडी एवं रॉबिन्सन 464 अमास बनाम हग्स।

अदालती दावे में आरोपित तथ्य

यह कि प्रतिवादी ने एक अलंकृत ढंग से केलिको प्रस्तुत नहीं किया।

लिखित कथन में आरोपित तथ्य

प्रतिवादी ने एक शिल्पी के ढंग से केलिको को उत्कीर्ण किया। भार किस पर है? यदि रूप को अकेले विचारित किया था तो भार प्रतिवादी पर होता। यदि वास्तविकता पर विचार किया गया था तो भार निश्चित रूप से वादी पर होना चाहिए। यद्यपि नकारात्मक में रखा गया तो वह प्रतिज्ञान करता है कि शिल्पी ने अशिल्पी के ढंग से केलिको को

उत्कीर्ण किया।

(2) 7 केरिंगिटन एवं पायने 612 लोवार्ड बनाम लेग्गट

वादी द्वारा आरोपित तथ्य

यह कि प्रतिवादी ने परिसर की मरम्मत नहीं की जैसा कि वह प्रसंविदा द्वारा बाध्य था।

प्रतिवादी द्वारा आरोपित तथ्य।

प्रतिवादी ने मरम्मत की थी।

रूप में भार प्रतिवादी पर है।

वास्तविकता में यह वादी पर है।

फौजदारी मुकदमे में विवाद्यक-विषय को सिद्ध करने का भार।

1. धारा 101 एक सामान्य धारा है और दीवानी और फौजदारी दोनों कार्यवाहियों में प्रयुक्त होती है।

धारा 105 एक अन्य धारा है जो एक विवाद्यक विषय को सिद्ध करने से संबंधित है, तो तथ्य को सिद्ध करने से अलग है किन्तु केवल फौजदारी कार्यवाहियों के लिए ही प्रयुक्त होती है।

2. इस धारा को समझने के लिए भारतीय दंड संहिता की रूपरेखा को जान लेना आवश्यक है। भारतीय दंड संहिता बहुत से अपराधों को परिभाषित करती है जैसे कि चोरी, हत्या, ठगी आदि। कोई 400 सब मिलाकर। परिभाषा करने का कार्य जो सही हो न तो बहुत विस्तृत हो न बहुत संकीर्ण, बहुत कठिन है और सर्वोत्तम उपाय करने के बाद भी संहिता के रचयिता सच्ची परिभाषा करने में असफल हुए हैं। तथापि वे उनको बहुत विस्तृत बनाने में गलती कर गए हैं। फलतः अपवादों के अधिनियम के द्वारा इन परिभाषाओं को सीमित करना उन्होंने आवश्यक पाया। इन अपवादों में से कुछ जैसा कि संहिता द्वारा परिभाषित हैं, सभी अपराधों के लिए सामान्य हैं। अन्य अपवाद एक विशेष अपराध के लिए उपयुक्त हैं।

दृष्टांत (1):

(1) जो कोई चोट करता है 323

(2) जो कोई चोरी करता है 379

जो कोई = कोई व्यक्ति जो करता है आदि।

कोई व्यक्ति = धारा में दी गई परिभाषा के अनुसार कोई भी व्यक्ति यहां तक कि एक वर्ष के बच्चे को भी अपराधी बना देगी। किन्तु दंड संहिता यह मान्य करती है

कि 7 वर्ष के बच्चे में मेन्सरिया = अपराधी चित्त, जो अपराध का सार है, नहीं होता। एक बच्चे को एक अपराध के दायित्व से मुक्त करने के लिए, भारतीय दंड संहिता को प्रत्येक धारा में, जो कोई 7 वर्ष से ऊपर आदि कहना आवश्यक होगा।

(1) जो कोई एक अन्य से संबंधित किसी संपत्ति को उसके कब्जे से बिना उसकी सम्मति के लेता है 378

(2) जो कोई दोष वह अनुचित रीति से बंदी बनाता है – 342

(3) जो कोई एक अन्य व्यक्ति के अधिकार की संपत्ति में दखल करता है 44

(4) जो कोई आक्रमण करता है या आपराधिक बल प्रयोग करता है 352

यह स्पष्ट है कि इन परिभाषाओं के अंतर्गत एक कारिन्दा जो उगाही करने में अपने अधिकारियों के आदेश के अनुसार जो कार्य करेगा वह धारा 378 के अनुसार चोरी का तथा धारा 441 के अनुसार अनधिकृत प्रवेश का दोषी होगा। इसी प्रकार एक पुलिस अधिकारी जिसने अपनी ड्यूटी के निर्वहन में किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया है, हमले/353 और गलत कारावास/342 का दोषी होगा।

दंड संहिता के रचयिताओं का अभिप्राय वह नहीं था। यह लोक सेवकों को उनके कर्त्तव्य के पालन में उनके किए हुए कार्यों के दांडिक परिणामों से मुक्त करने की आवश्यकता को मान्यता देती है। अपराधों की परिभाषाओं के क्षेत्र से लोक सेवकों को मुक्त करने के लिए, इन धाराओं में से हर एक में यह कहना आवश्यक होता, "जो कोई अपने कर्त्तव्य के पालन में लोक सेवक न हो।" इतनी सारी धाराओं में, जिनके लिए वे सामान्य हैं, इन सीमित करने वाले शब्दों को दोहराने के स्थान पर दंड संहिता ने उनको एक साथ परिच्छेद चार में समूहबद्ध कर दिया है, जो सामान्य अपवाद कहलाते हैं और जो धारा 76 से 106 तक को समाविष्ट करते हैं।

यहां कुछ सीमित उपबंध भी हैं जो कुछ विशिष्ट अपराधों के लिए प्रयुक्त होते हैं और वह दंड संहिता में परिभाषित हैं।

दृष्टांत

धारा 499 मानहानि

परिभाषा इतनी विस्तृत है कि उसमें अपवाद हैं।

नए अपवाद की आवश्यकता – हित का संरक्षण।

ऐसे अपवाद जो सामान्य अपवादों से अलग है।

परंतुक (प्रतिबंध)

दृष्टांत - धारा 92 भा.दं.सं.

प्रश्न है कि किसको सिद्ध करना चाहिए कि अभियुक्त का मामला सामान्य या विशेष अपवाद में आता है, अपवाद या प्रतिबंध का मामला हो सकता है, अभियोग पक्ष जो आरोपित करता है कि वह नहीं आता या अभियुक्त पक्ष आरोपित करता है कि यह आता है? उत्तर धारा 105 में दिया गया है। सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर है।

यह पूर्ववर्ती विधि से प्रत्यंतर है। उसके अंतर्गत भार अभियोग पक्ष पर है यह साबित करने का कि मामला अपवाद के अंतर्गत नहीं आता था।

दीवानी (सिविल) विधि में एक अपवाद के प्रमाण का भार

1. साक्ष्य अधिनियम में कोई विशिष्ट धारा नहीं है जो सिविल कानून में एक अपवाद के संबंध में प्रमाण को विनियमित करती हो। तथापि नियम वही है जैसा दण्ड-विधि में है। अर्थात् प्रतिवादी अवश्य सिद्ध करे कि मामला अपवाद के अंतर्गत आता है।

दृष्टांत 15 कलकत्ता 555

"मामला 1859 के एकादश बंगाल अधिनियम (राजस्व विक्रय अधिनियम) की धारा 37 से विनियमित हैं - और वह धारा भारग्रस्तता एवं समय काल के साथ कार्य करते हुए निर्धारित करती है कि नीलामी को लेने वाला तभी अधोधारणाधिकारों से बचने और कतिपय अपवादों के साथ उनके धारकों को बेदखल करने के लिए अधिकृत होगा, और तब अपवादों को नियत करने को आगे बढ़ती है। हमें यह प्रकट होता है कि अनुमान विधि के सामान्य प्रस्ताव को निर्धारित करने के पक्ष में है कि सभी अधोधारणाधिकार व्यर्थनीय है, और एक निश्चित अपवाद की वकालत उसको इसके अंतर्गत लाने के लिए बाध्य है। इसे ऐसा होने पर **इस मामले में अपवाद जिसकी वह वकालत करता है, के अंतर्गत स्वयं को लाने के लिए प्रतिवादी के लिए ही होगा।**

एक अपवाद, एक प्रतिबंध या एक समझौते में पूर्ववर्ती दशा को प्रमाणित करने का भार

1. प्रतिबंध और एक अपवाद में भिन्नता

एक प्रतिबंध उपयुक्तः कहा जाए एक प्रतिज्ञापत्र की विषय वस्तु के किसी बाह्य वस्तु का कथन है जो प्रतिज्ञा पत्र की प्रतिबंधिताओं के द्वारा विकलीकरण की युक्ति से उस प्रतिज्ञा पत्र को बर्खास्त करता है। एक अपवाद प्रतिज्ञा पत्र की विषय वस्तु के किसी भाग को उससे बाहर निकालना है।

यदि एक प्रतिबंध या अपवाद से विशेष शब्द, यथार्थ रूप जिसमें वे प्रस्तुत किए जाते हैं या एक विलेख के भाग जिसमें वे पाए जाते हैं, पर इसी प्रकार निर्भर नहीं करेंगे।

2. वकालत का नियम है कि वादी का अपने वादपत्र में प्रतिबंध करने की कभी कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु वह हमेशा एक अपवाद को अवश्य व्यक्त करे।

आगा सैयद सादुक बनाम रजो मुहम्मद जकरिया

2 इण्ड. जर. अन. एस. 308 (310)

310 मार्कबाई जे.

थर्सबाई बनाम प्लांट 1 डब्ल्यू.एम.एस. सोंड पृ. 2336 की टिप्पणी में यह निर्धारित किया गया है कि एक प्रतिबंध विफलीकरण की युक्ति से एक प्रतिज्ञापत्र की एक विषय-वस्तु के बाह्य किसी वस्तु का उपयुक्ता विषय है। एक अपवाद प्रतिज्ञापत्र में से उसकी विषय-वस्तु के किसी भाग को लेना है। ये सही परिभाषाएं होने पर एक वादी को कभी भी एक प्रतिज्ञापत्र को व्यक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु वह एक अपवाद को हमेशा व्यक्त करे।

3. यद्यपि यह एक वकालत के नियम के रूप में निर्धारित किया गया है, यह प्रमाण के भार के नियम के रूप में भी भली-भांति धारित किया गया है। इसलिए यदि एक खंड (वाक्यांश) एक प्रपत्र में जैसे कि बीमा पॉलिसी एक अपवाद होता है, वादी उसको अवश्य व्यक्त करे, किन्तु दर्शाए कि यह लागू नहीं है। यदि वह एक प्रतिज्ञा पत्र हो तो प्रतिवादी उसे अवश्य व्यक्त करे, और दर्शाए कि वह लागू होता है।

2 इण्ड.ज.एन.एस. 308, 310

2 इण्ड.ज.एन.एस. 308-1867

अ ने 24 नवम्बर, 1865 के दोपहर से 24 फरवरी 1866 के दोपहर तक और सभी बंदरगाहों और स्थानों के लिए "अलाया" जलपोत पर एक बीमा पॉलिसी पर बी एण्ड क. पर दावा किया। शब्द "सभी बंदरगाहों और स्थानों" लिखे थे, शेष मुद्रित थे। बी एण्ड कं. ने अपने प्रतिवाद पत्र (लिखित कथन) में बीमा पॉलिसी को स्वीकार किया किन्तु निम्नलिखित अपवाद को लगाया "सभी अवरोधन आदि से उत्पन्न होने वाली जोखिम या हानि या, वायु के झंझावत तूफानों या समुद्र के अन्य संकटों से भी जबकि पाइंट पालमिरास से सीलोन (श्रीलंका) और परिवेश के अंतर्गत कोरामण्डल के तट पर स्पर्श या व्यापार करते हुए 15 अक्टूबर एवं 15 दिसम्बर के मध्य एतद् द्वारा स्वीकृत की जाती हैं, जिनके दायित्व या हानि या बीमा कंपनी द्वारा न कि बीमाकर्त्ताओं के द्वारा, वहन की जानी है। यद्यपि इससे पूर्व कोई बात विरोध में उत्पन्न हो।

3. एकिक्स

4. पूर्ववर्ती प्रतिबंधिता = प्रतिबंधक

इस संबंध में साक्ष्य विधि ने तीन सिद्धांत बनाए हैं।

(i) एक तथ्य के प्रमाण का भार एक व्यक्ति पर है, जो उस तथ्य के प्रमाण के लिए साक्ष्य विधि द्वारा प्रावधानित विशेष सुविधाओं द्वारा स्वयं को लाभान्वित करना चाहता है।

धारा 104 इस सिद्धान्त का एक दृष्टांत है।

2. **एक विशेष तथ्य को प्रमाणित करने का भार।**

1. नियम वही है जैसा कि एक विवाद्यक विषय के प्रमाणित करने के भारत के विषय में है। अर्थात् एक विशेष तथ्य को प्रमाणित करने का भार उस पक्ष पर है जो तथ्य की विद्यमानता की पुष्टि करता है और न कि उस पक्ष पर जो उसे अस्वीकार करता है। यह नियम धारा 103 में समाया हुआ है और दोनों विषयों में नियम के कारण वही हैं।
2. उस पर भी कुछ तथ्य हैं जिनको प्रमाणित करने का भार विधि द्वारा एक विशेष व्यक्ति पर रखा जाता है, इस प्रश्न के होते हुए भी अगर वह उसके अस्तित्व को निश्चयपूर्वक कहता है या उसके अस्तित्व को नकारता है। धाराएं 104 से 111 तक उन मामलों का उल्लेख करती हैं, जिनमें साक्ष्य विधि विशेष व्यक्तियों पर भार डालती है।
3. इन धाराओं के आधार के सिद्धान्त और जो प्रमाण-भार से संबंधित सामान्य सिद्धांत से इस विचलन को न्यायोचित करते हैं, चार प्रतीत होते हैं।
   (i) किसी तथ्य को प्रमाणित करने का भार एक पक्ष पर होना चाहिए जो उस तथ्य के प्रमाण के लिए साक्ष्य विधि द्वारा दी गई विशेष सुविधाओं का लाभ लेना चाहता है।
   (ii) जब पक्षगण अपनी संबंधित अवस्थिति में असमान है एक विशेष तथ्य को प्रमाणित करने का भार उस पर होना चाहिए, जो तुलनात्मकतः एक श्रेष्ठतर या प्रबलतर दशा में है।
   (iii) जहां परिस्थितियां निरंतर विद्यमान रहती हैं, उनकी अनिरंतरता को प्रमाणित करने का भार उस पक्ष पर है जो अनिरंतरता को आरोपित करता है।
   (iv) जहां एक तथ्य मात्र एक अन्य तथ्य की विधिक घटना है, प्रमाणित करने का भार, जबकि घटना उस तथ्य से नहीं जोड़नी चाहिए उस पक्ष पर है जो आरोपित करता है कि वह नहीं होनी चाहिए।

प्रथम सिद्धांत की निर्देशी धाराएं

1. धारा 104 प्रथम सिद्धांत का एक निदर्शन है। यह एक तथ्य के प्रमाण-भार के साथ व्यवहार करती है, जिसका प्रमाण एक अन्य तथ्य के प्रमाण के लिए एक आवश्यक पूर्वापेक्षा है।

2. साक्ष्य-विधि हालांकि दशाओं को निर्धारित करती है, जो एक विशेष तथ्य का साक्ष्य दिए जाने से पूर्व अवश्य पूरी होनी चाहिए। इसी प्रकार साक्ष्य विधि कुछ दशाओं को निर्धारित करती है, जो एक तथ्य को प्रमाणित करने की विशेष विधा के एक विशेष तरीके के होने से पूर्व अवश्य पूरी हो जानी चाहिए।

दृष्टांत - I

कोई बात साक्ष्य नहीं है जब तक कि वह न्यायालय के समक्ष उपस्थिति होकर नहीं दी जाती है। अतः साधारणतः एक व्यक्ति द्वारा किया गया कथन, जो मृतक है, साक्ष्य नहीं है। फिर भी साक्ष्य विधि एक मृत व्यक्ति द्वारा कही गई किसी बात को साक्ष्य दिए जाने को अनुमति देती है यदि वह विवाद्यक विषय के सुसंगत है इस दशा पर कि उसकी मृत्यु का तथ्य सिद्ध हो जाता है।

दृष्टांत - II

साक्ष्य-विधि उम्मीद करती है कि एक प्रलेख का सारांश मूलप्रति की प्रस्तुति के द्वारा अवश्य सिद्ध होना चाहिए। फिर भी विधि अमौलिक साक्ष्य का दिया जाना इस प्रतिबंधिता पर अनुमत करती है कि मौलिक प्रति की अप्राप्ति प्रमाणित है।

3. प्रश्न है कौन, मृत्यु के तथ्य या मौलिक प्रलेखों को अप्राप्ति के तथ्य से प्रमाणित करे? धारा 104 उस पक्ष पर भार डालती है जो इन विशेष सुविधाओं द्वारा लाभ पाने की इच्छा करता है।

द्वितीय सिद्धांत की निर्देशी धाराएं

1. धारा 106 एवं 111 द्वितीय सिद्धांत का निर्देशन करती है।

धारा 106

1. यह धारा एक तथ्य के प्रमाण के भार के साथ विचार करती है, जो विशेषतः पक्षों में से एक पक्ष की जानकारी में है।
   - (i) यदि अ किसी तथ्य को आरोपित करता है और यदि ब उसको अस्वीकार करता है तब धारा 103 में अंतर्विष्ट नियम की क्षमता से अ उसे अवश्य प्रमाणित करे क्योंकि अ उसे निश्चयपूर्वक कहता है।
   - (ii) किन्तु यदि तथ्य विशेषतः ब की जानकारी में है तब इस धारा को क्षमता से उसके संबंध में प्रमाण का भार ब पर आता है।

2. दृष्टांत

22 कलकत्ता 164

हरधन की दो पुत्रियां थीं – लगभग एक वर्ष की जुड़वां – उनमें से एक को एक वेश्या करूना को 9 रु. में बेच दिया और 10 दिनों के अंतर्गत करूना को बेच दिया जिसको उसने उसके बचपन से लालन–पालन किया और जो उसके साथ रह रही थी और एक वेश्या का जीवन जी रही थी।

प्रश्न – धारा 372/373 के अधीन एक अभियोजन में एक नाबालिग को वेश्यावृत्ति के लिए क्रय और विक्रय के लिए प्रश्न था किसको प्रमाणित करना चाहिए कि अभीच्छा थी कि लड़की वेश्यावृत्ति के लिए प्रयोजित की जानी थी। अभियुक्त के द्वारा क्योंकि मामला उसकी जानकारी में था।

23 इला. 124

अनेक व्यक्ति, आगरा नगर के ठीक बाहर एक सड़क पर रात के 11 बजे अपने वस्त्रों के नीचे अस्त्र (बंदूकें एवं तलवारें) छुपाए हुए ले जाते हुए पाए गए। उनमें से किसी के पास अस्त्र ले जाने का लाइसेंस नहीं था और उनमें से कोई भी उस स्थान पर अपनी उपस्थिति का सही–सही स्पष्टीकरण नहीं दे सका।

धारा 402 के अधीन एक आरोप में निर्धारित किया गया कि अभीच्छा (मंशा) का भार अभियुक्त पर था।

धारा 111

1. यह धारा एक कार्य संपादन में सद्विश्वास के संबंध में प्रमाण के भार के साथ संबंध रखती है।

2. सद्विश्वास की परिभाषा।

(1) साक्ष्य अधिनियम में सद्विश्वास को परिभाषित नहीं किया गया है।

(2) यह भारतीय दंड संहिता की धारा 52 में परिभाषित किया गया है।

कुछ भी सद्विश्वास में किया गया या विश्वास किया गया नहीं कहा गया है जो सम्यक सावधानी और ध्यान के बिना किया गया या विश्वास किया गया है।

(3) यह 1897 के दशम खंड अधिनियम की धारा 3(20) में भी परिभाषित किया गया है। "एक बात सद्विश्वास में की गई समझी जाएगी जहां वह वस्तुतः सत्यता से की जाती है, चाहे लापरवाही से की जाती है या नहीं की जाती है।"

(4) दोनों परिभाषाओं में अंतर है कि दण्ड संहिता द्वारा दी गई परिभाषा के रूप में सद्विश्वास के लिए सत्यता का प्रश्न तत्त्वहीन है। किन्तु सामान्य खंड अधिनियम में दी गई परिभाषा का यह नितांत अभ्यंतर है।

(5) शब्द सद्विश्वास साक्ष्य अधिनियम में जैसा प्रयुक्त किया जाता है उसी भाव में प्रयुक्त किया जाता है जिसमें यह सामान्य खंड अधिनियम में किया जाता है।

3. **सद्विश्वास को प्रमाणित करने के भार के संबंध में सामान्य नियम।**

(i) धारित करने के लिए विधि का यह सामान्य सिद्धान्त है कि सभी व्यक्ति अपने व्यवहार में न्यायसंगत कार्य करें। कुछ भी निंदनीय या घृणास्पद किसी भी व्यक्ति पर आरोपित नहीं किया जाए। कानून द्वेष और अनाचार को आरोपित नहीं करेगा। ऐसा होने पर जो किसी व्यक्ति के आचरण को बेईमानी या अन्याय होने के लिए अभियोजित करता है। बेईमानी और अन्याय को प्रमाणित करने का भार रखता है। दूसरे शब्दों में सद्विश्वास के संबंध में प्रमाण–भार उस व्यक्ति पर है जो सद्विश्वास के अभाव को आरोपित करता है। उद्देश्य अवश्य प्रमाणित होना चाहिए।

(ii) धारा 111 इस सामान्य नियम का एक अपवाद अधिनियमित करती है और उन परिस्थितियों को निर्धारित करती है जिनमें एक व्यक्ति को सद्विश्वास के अभाव को अवश्य ही प्रमाणित करना चाहिए।

यदि दो पक्षों के मध्य कार्य सम्पादन में उनमें से किसी एक के द्वारा सद्विश्वास को प्रश्न चिह्न लगाया है और दोनों ऐसे संबंधित हैं कि एक दूसरे के लिए सक्रिय भरोसे में होता है तो सद्विश्वासक को प्रमाणित करने का भार अवश्यमेव उस व्यक्ति पर है जो सक्रिय भरोसे की स्थिति में होता है।

यह अपवाद केवल उस जगह लागू होता है जहां दो पक्ष कार्य संपादन के लिए ऐसे संबंधित हैं कि एक दूसरे के लिए एक सक्रिय भरोसे की स्थिति में होता है।

4. **"सक्रिय भरोसे की स्थिति" का अर्थ**

(i) स्थिति का अभिप्राय है विधिक संबंध।

(ii) सक्रिय भरोसे का अर्थ है राय लेने और सलाह पर कार्य करने का कर्म।

अतः सक्रिय भरोसे की स्थिति का अभिप्राय है, पक्षों के बीच ऐसे विधिक संबंध को उठाना जो कि एक पक्ष में राय लेने तथा दूसरे में उसके हित के संरक्षण के लिए स्वभाव को उद्भूत करता है और दूसरे पर यह देखने का कर्त्तव्य आरोपित करता है कि उसकी राय ऐसी है जो कि उसके हित को संरक्षित करती है।

धारा, पक्षों के बीच विधिक संबंध को ऐसे विचारित करती है कि दूसरे के हितों की रक्षा करना भरोसे में लिए गए व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जाता है।

कॉलसन बनाम ऍलीसन 2 डी.एफ. एवं जे. 581	नियम लागू होता है क्योंकि पक्ष और विपक्ष पति और पत्नी है।

	विपक्ष पति और पत्नी है।
हॅरग्रीव बनाम एवरार्ड आई.आर.सी.एच.आर. 278	नियम लागू नहीं हुआ था क्योंकि पक्ष और विपक्ष पति-पत्नी नहीं थे बल्कि प्रेमिका और प्रेमी थे।

यदि एक मामला न्यासी एवं लाभार्थी सालिसिटर एवं मुवक्किल, पिता एवं पुत्र या पति एवं पत्नी के मध्य सद्विश्वास का उठाया गया है तो इस नियम के अंतर्गत आएगा।

5. यद्यपि धारा के द्वारा यह नियम उन मामलों तक परिसीमित कर दिया गया है जहां एक व्यक्ति दूसरे के प्रति सक्रिय भरोसे की स्थिति में होता है, न्यायालय द्वारा यह नियम सभी मामलों के लिए व्यापक कर दिया गया है जहां एक व्यक्ति दूसरे पर प्रधानता रखता है और अनुपयुक्त प्रभाव डालने की स्थिति में है।

धारा 107-108

1. वे अवश्य एक साथ पढ़ने चाहिए क्योंकि धारा 108 धारा 107 में अंतर्विष्ट नियम की केवल परंतुक है।
2. यह धारा इस प्रश्न का निपटान नहीं करती कि एक व्यक्ति कब तक जीवित था।
3. यह धारा इस प्रश्न का निपटान नहीं करती कि उस समय वह किस तरह मृत हुआ।
4. यह धारा इस प्रश्न का निपटान नहीं करती कि क्या वह किसी पूर्ववर्ती दिनांक को जीवित या मृत था।
5. धारा इस प्रश्न के साथ बर्ताव करती है कि क्या एक व्यक्ति उस समय जीवित या मृत था जब प्रश्न उत्पन्न किया जाता है अर्थात् जिस दिन मामला दायर किया गया।

तृतीय सिद्धांत की विदेशी धाराएं

धारा 107, 108 और 109

धारा 107 प्रमाण-भार के बारे में बताती है जहां प्रश्न है कि एक पुरुष जीवित या मृत है।

इस धारा के अनुसार जहां यह प्रमाणित कर दिया जाता है कि प्रश्नगत व्यक्ति विगत 30 वर्षों में जीवित था तब प्रमाण का भार उस पक्ष पर है जो निश्चित रूप से कहता है कि वह मृतक है। जहां यह प्रमाणित नहीं किया जाता कि व्यक्ति पिछले 30

वर्षों में जीवित था तब प्रमाण का भार उस पक्ष पर है जो दोष लगाता है कि वह जीवित था।

धारा 108 प्रमाण के भार के बारे में बताती है जहां प्रश्न है कि क्या वह पुरुष जिसके विषय में सुना नहीं गया है वह जीवित है या मृत।

धारा के अनुसारः

(1)यदि एक व्यक्ति के विषय में सात वर्षों से नहीं सुना गया है।

और

(2)उनके द्वारा जो प्रकृतया उसके विषय में सुन चुके होते हैं, प्रमाण का भार उस पर है जो पुष्टि करता है कि वह जीवित है।

टिप्पणी/समीक्षाः-

किसी पक्ष की मृत्यु, जिसे एक बार, जीवित बताया जाता है तो यह न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाने वाला एक मामला है। चूंकि धारणा जीवन की निरंतरता के पक्ष में है तो मृत्यु प्रमाणित करने का भार उस पक्ष पर है जो उसे निश्चयपूर्वक कहता है। परंतु जीवन की निरंतरता की धारणा उस समय से 7 वर्ष व्यतीत होने पर समाप्त हो जाती है जबकि प्रश्नाधीन व्यक्ति अंतिम बार सुना या देखा गया था। और प्रमाणित करने का भार उस व्यक्ति पर है जो निश्चयपूर्वक कहता है कि वह व्यक्ति सात वर्षों के अंतर्गत जीवित था।

किन्तु न्यायालय सात वर्षों से कम से कम समय में मृत्यु के तथ्य को पा सकता है,यदि अन्य परिस्थितियां अनुकूल या सहमत हों।

Re : वाकर (1909) पृ. 115

धारा 107-108 की प्रयुक्ति

प्रश्न, जिसके लिए इन दो धाराओं में व्यवस्था की गई है वह है कि क्या एक व्यक्ति प्रश्न उठाए जाने के समय पर जीवित या मृत है। ये धाराएं वहां लागू नहीं होती हैं जहां प्रश्न है क्या वह पुरुष एक विशेष समय पर मर गया था। यदि कोई व्यक्ति मृत्यु का सही समय स्थापित करने की खोज करता है तो प्रमाण-भार उसी पर है।

धारा 109 - यह धारा प्रमाण-भार के साथ उसी तरह संबंधित है जिस तरह निरंतरता या अनिरंतरता के तीन संबंध हैं।

(1) भागीदार

(2) भूस्वामी और असामी

(3) प्रमुख और अभिकर्ता

यह धारा प्रावधान करती है कि एक बार यह दर्शाया जाता है कि दो व्यक्ति भागीदारों, भूस्वामी और आसामी या प्रमुख और अभिकर्ता के संबंध में रह चुके हैं और इसे सिद्ध (प्रमाणित) करने का भार उस पक्ष पर है जो आरोपित करता है कि वे उस संबंध में रहना समाप्त कर चुके हैं।

चतुर्थ सिद्धांत की निर्देशी धारा:-

धारा 1110 :- यह धारा संपत्ति के सत्वाधिकार के संबंध में, प्रमाण के भार के संबंध में है जब एक कब्जाधारी व्यक्ति और स्वामी (मालिक) जिसका कब्जा नहीं है के बीच विवाद है।

धारा 110 में निर्धारित नियम है कि इस प्रमाण का भार कि कब्जा रखनेवाला व्यक्ति स्वामी नहीं है, उस व्यक्ति पर है, जो आरोप लगाता है कि वह स्वामी नहीं है।

नियम के लिए कारण

स्वामित्व मुख्यत: वस्तु के एकांतिक कब्जे और उपभोग के अधिकार को द्योतित करता है। कब्जा रखने वाले को अन्य दूसरों को उसके उपभोग और कब्जे से अलग करने का अधिकार होता है, और यदि वह गलत तरीके से अपने अधिकार से वंचित किया जाता है, तो वह उसके कब्जे को पुन: प्राप्त करने के लिए अधिकृत होता है।

स्वामित्व, सम्पत्ति का निपटान, विक्रय, बंधक या दान करने की शक्ति को भी द्योतित करता है।

अत: कब्जे में रखने का अधिकार और उसका निपटान करने का अधिकार स्वामित्व के अनुषंगी हैं। जहां स्वामित्व है वहीं उसके साथ कब्जे का अधिकार और निपटान करने का अधिकार चलता है।

अत: कानून कहता है कि एक व्यक्ति संपत्ति पर कब्जा रखने वाला नहीं होगा जब तक कि वह उसका स्वामी नहीं हो जाता और उसके प्रतिपक्षी पर भार रखता है।

इस धारा का सिद्धांत निम्नलिखित मामलों में प्रयुक्त नहीं होता:-

(i) जहां कब्जा वास्तविक वर्तमान कब्जे से भिन्न मात्र न्यायिक है।

(ii) जहां कब्जा कपट या बल से प्राप्त किया गया है।

I. प्रमाण का भार

1. विधि, उस व्यक्ति से प्रमाणित करने का भार, जो उस पर रखा जाता है, को पूर्ण करने की अपेक्षा करता है।
2. प्रमाणित करने के भार को संपन्न करने में दो विचार धारणाओं के प्रति अवश्य ध्यान देना चाहिए।

(i) ऐसे विषय (मामले) हैं जिनके लिए प्रमाण की अपेक्षा नहीं की जाती है।

(ii) ऐसे विषय हैं जिनके लिए प्रमाण देने को नहीं कहा जाता है।

3. अत: हमको इन मामलों और उनको विनियमित करने वाले नियमों पर विचार करने के लिए कार्यवाही अवश्य करनी चाहिए।

1. प्रमाण का भार

(i) विषय जिनके लिए प्रमाण की अपेक्षा नहीं की जाती है तथ्य जिनके लिए प्रमाण की अपेक्षा नहीं की जाती।

1. विषय जिनके लिए प्रमाण की अपेक्षा नहीं की जाती है तीन शीर्षकों के अधीन होते हैं:

(1) न्यायिकत: अधिसूचित तथ्य

(2) पक्षों द्वारा स्वीकृत तथ्य

(3) तथ्य जिनका अस्तित्व विधि द्वारा मान लिया जाता है।

(i) न्यायिकत: अधिसूचित तथ्य

1. धारा 56 एवं 57 न्यायिकत: अधिसूचित तथ्यों के साथ व्यवहार करती हैं।

2. धारा 56 व्यक्त करती है कि कोई भी तथ्य जिसके लिए न्यायालय न्यायिक अधिसूचना लेता है उसे प्रमाणित किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

3. धारा 57 तेरह विषयों को निर्धारित करती है, जिनके लिए न्यायालय को न्यायिक सूचना की जरूरत है।

4. **धारा के सिद्धांत**

कतिपय विषय ऐसे कुख्यात हैं और इतने स्पष्टत: प्रतिष्ठित हैं कि यह आग्रह करना व्यर्थ होगा कि वे साक्ष्य द्वारा प्रमाणित होने चाहिए।

दृष्टांत:-

(1) प्रतिकूल स्थिति का आरंभ और निरंतरता।

(2) भौगोलिक विभाजन।

5. अंतिम दो पैरा महत्त्वपूर्ण हैं और धारा 56 के साथ पढ़े जाते हैं। वे उनको ठीक समझने के लिए सूत्र प्रस्तुत करते हैं। प्रभाव यह है कि जब एक विषय धारा 57 की गणना में प्रश्न के रूप में आता है तो, पक्ष जो उसके अस्तित्व को प्रतिकूल कहते हैं उन्हें अपने कथन के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं। न्यायाधीश को बिना किसी औपचारिक साक्ष्य की अपेक्षा किए, एक परिणाम पर अवश्य पहुंचना

चाहिए।

(1) न्यायाधीश का अपना ज्ञान पर्याप्त हो सकता है। यदि उसे ज्ञान नहीं है, तो उसे अवश्य मामले की खोजबीन करनी चाहिए।

(2) न्यायाधीश अपनी सहायता के लिए पक्षों के भी पास जा सकता है, यदि वह आवश्यक समझता है।

(3) न्यायाधीश इस अनुसंधान के करने में, तथ्यों, जिनको प्रमाणित करने की एक व्यक्ति से विधि अपेक्षा करती है, के अनुसंधान के लिए निर्धारित साक्ष्य के सभी नियमों से, पूर्णतः मुक्त होता है।

II. पक्षों द्वारा स्वीकृत तथ्य

धारा 58

1. दो प्रकार की स्वीकृतियां हैं जो अवश्य प्रभेदित होनी चाहिए।

(1) एक न्यायालय की कार्यवाही से संबंधित विषयों से संबंध रखने वाली औपचारिक स्वीकृतियां जो जानबूझ कर पक्षों द्वारा अपने प्रमाण को छोड़ देने के लिए की गई हों।

(2) एक पक्ष द्वारा तथाकथित की जाने वाली अनौपचारिक स्वीकृति लेकिन वह कार्यवाही के क्रम में नहीं होनी चाहिए।

धारा 58 केवल औपचारिक स्वीकृतियों के प्रति होती हैं।

औपचारिक स्वीकृतियां, पक्षों के द्वारा 6 विभिन्न रूपों से की जा सकती हैं:

(i) वकालत पर

(ii) परिप्रश्नों के उत्तर में

(iii) एक सूचना (नोटिस) में उल्लिखित तथ्यों की स्वीकृति के उत्तर में।

(iv) प्रलेखों को प्रस्तुत करने और स्वीकार करने के उत्तर में।

(v) मुकदमेबाजी के दौरान एक पक्ष के सॉलीसिटर द्वारा।

(vi) प्रत्यक्ष न्यायालय में स्वयं वादार्थी द्वारा या उसके अधिवक्ता द्वारा।

3. इस प्रकार के तथ्यों का प्रमाण व्यर्थ न होगा। न्यायालय को उन्हीं प्रश्नों का अन्वीक्षण (विचार) करना है, जिन पर पक्ष विवाद्यक हैं, उन पर नहीं जिन पर वे सहमत हैं।

4. दंड अन्वीक्षण में धारा 58 की प्रयुक्तता एक विषय है जिस पर अलग-अलग मत हैं।

(i) नॉशन कहते हैं कि यह दंड अन्वीक्षणों में प्रयुक्त नहीं होता है।

(ii) कनिंघम कहते हैं कि यह होता है।

30 बम्बई एल.आर. 646

धारा 58 दंड-अन्वीक्षण कार्यवाहियों के संबंध में अपवाद नहीं है।

39 मद्रास 449, रेट यू.एन.सी.आर.सी 769

न्यायशास्त्र के सामान्य सिद्धांतों पर धारा 58 दंड अन्वीक्षणों के लिए प्रयुक्त नहीं होनी चाहिए।

"प्रश्न है कि क्या अधिनियम के प्रावधान सर्वांग पूर्ण हैं या हम न्यायशास्त्र के सिद्धांत या आंग्ल-विधि के अधिनियम में दिए गए साक्ष्य के नियमों के पूरकों और व्याख्यायियों का आह्वान कर सकते हैं।" 12 इलाहाबाद 1. साक्ष्य के आंगल नियम प्रयुक्त होते हैं।

यह नियम एक पूर्ण नियम नहीं है। धारा प्रावधान करती है कि एक तथ्य जो स्वीकृत है, उस पक्ष के द्वारा जिस पर प्रमाण का भार है। प्रमाणित किए जाने की जज द्वारा अपेक्षा की जा सकती है।

सीधे-सादे एवं अनभिज्ञ व्यक्ति के प्रति गलतियों से रक्षा करने के लिए यह साधारण संरक्षण है।

यह संभवत: इस प्रतिबंध के अधीन है कि दंड-अन्वीक्षणों में स्वीकरण अनुमत नहीं किए जाते हैं।

तथ्य जिनका अस्तित्व विधि के द्वारा अनुमानित किया जाता है।

1. अनुमान की परिभाषा

एक अनुमान एक निश्चित तथ्य से लिया गया एक निष्कर्ष या अनुमति है।

2. अनुमान के नियम के अधीन सिद्धांत:

(1) नि:संदेह विश्व विविध तत्त्वों की रचना है और प्रेरक जो लोगों में संक्रिय हैं, अलग है।

फिर भी इसमें निश्चित मात्रा में विनियमितता और एकरूपता है।

(2) वस्तुओं के संबंध में ऋतुओं सूर्यास्त, सूर्योदय एवं आकाशीय नक्षत्रों के संचरण क्रम और परिवर्तनों में, और मौलिक तत्त्व चुम्बकत्व विशिष्ट गुरुत्वाकर्षण के ज्ञात गुण धर्मों में एक नियमितता और समरूपता दर्शाते हैं।

(3) व्यक्तियों के संबंध में स्वाभाविक गुण, शक्तियां संकाय जो सामान्य मानवीय वंश में घटनाएं हैं, अधिकांशत: समरूप हैं।

(4) मनुष्य के आचरण के संबंध में अधिकांशत: समरूपता है। वे उसी समरूपता

से प्रेरित होती हैं।

3. यह समरूपता दिए जाने पर यह कहना संभव है कि एक बात के दिए जाने पर दूसरे का अनुसरण करना कहा जा सकता है।

4. इसी सिद्धांत पर धारा 114 आधारित है।

(1) यह न्यायालय को एक तथ्य के अस्तित्व का अनुमान करने की शक्ति देता है यदि वह तथ्य एक विशेष तथ्य का एक संभाव्य परिणाम है।

(2) परीक्षण है:-

(i) स्वाभाविक घटनाओं का सामान्य गतिक्रम।

(ii) मानवीय आचरण।

(iii) सार्वजनिक एवं निजी व्यापार।

(3) यह कुछ तथ्यों के जो संभाव्य परिणाम होंगे, उनके नौ दृष्टांत देता है।

(4) स्पष्टीकरण-दृष्टांत (पांडुलिपि में नहीं दिए गए - संपादक)

(5) एक परिस्थिति में संभाव्य एक घटना एक दूसरी परिस्थिति में ठीक असंभाव्यता हो सकती है अतः न्यायालय को एक धारणा बनाने में उस विशेष मामले के तथ्यों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

दृष्टांतों का स्पष्टीकरण (पांडुलिपि में नहीं दिया गया - संपादक)

(6) अनुमानों (धारणाओं) का सामान्य वर्गीकरण नहीं हो सकता, क्योंकि संभाव्य परिणाम परिस्थितिवश भिन्न होने चाहिए।

(7) अनुमान का प्रभाव व्यक्ति को प्रमाण के भार से मुक्त करता है।

(8) विधिक अनुमान और तथ्य के अनुमान।

(9) खंडनीय और दंडनीय अनुमान।

नॉर्शन पृ. 381

II. सदृश अनुमान विधियों के सूत्र हैं। वे शब्द के लचीले रूप में अनुमान कहे जाते हैं।

1. कुछ विधि के जो अनुमापन भी कहे जाते हैं।

2. विधि-सूत्रों के दृष्टांत

(1) विधि धारणा करेगी कि प्रत्येक व्यक्ति विधि को जानता है।

(2) विधि धारणा करेगी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों के स्वाभाविक परिणामों पर विचार करता है।

(3) विधि अनुमान करेगी कि एक अभियुक्त व्यक्ति निर्दोष है।

(4) विधि अनुमान करेगी कि प्रत्येक भाव समझदारी की शक्ति से संपन्न है।

(5) विधि धारणा करेगी कि कोई व्यक्ति उदाहरणार्थ, अदेय धन को अदा करने के द्वारा अपनी संपत्ति को नहीं फेंक देगा।

(6) विधि धारणा करेगी कि एक माता-पिता द्वारा बच्चे को दिया गया धन एक ऋण के रूप में नहीं, एक उपहार के रूप में अभिप्रेत है।

(7) विधि धारणा करेगी कि एक माता-पिता अपने बच्चों को दूसरों के बच्चों से अधिक पसंद करते हैं।

ये सूत्र प्रमाण के भार से संबंधित हैं। ये भार को निश्चित करने में मदद करते हैं।

प्रलेखों के संबंध में धारणाएं -

1. प्रमाणित प्रतिलिपियों के संबंध में विशुद्धता की धारणा - 79
2. साक्ष्य के अभिलेख के रूप में प्रस्तुत विलेखों की विशुद्धता की प्रामाणिकता के संबंध में धारणा - 80
3. राजपत्रक (गजट), समाचार-पत्रों की विशुद्धता की प्रामाणिकता के संबंध में धारणा - 81
4. विलेखों के संबंध में धारणा-इंग्लैंड में सील या हस्ताक्षर के प्रमाण के बिना - 82
5. राजकीय प्राधिकारी द्वारा बनाए गए नक्शे या परियोजनाओं के संबंध में धारणा - 83
6. विधि की पुस्तकों और निर्णयों के प्रतिवेदनों (रिपोर्टों) के संबंध में धारणा - 84
7. मुख्तारी अधिकारों के संबंध में धारणाएं - 85
8. विदेशिक न्यायिक अभिलेखों की प्रामाणिक प्रतिलिपियों के संबंध में धारणाएं - 86
9. पुस्तकों, मानचित्रों और सारणियों के संबंध में धारणाएं - 87
10. तार के सन्देशों के संबंध में धारणाएं - 88
11. अप्रस्तुत प्रलेखों के प्रमाणन एवं निष्पादन के संबंध में धारणाएं - 89
12. तीस वर्ष पुराने प्रलेखों के संबंध में धारणा - 90

प्रमाण का भार

(ii) वे विषय जिनके प्रमाण अनुमत नहीं हैं।

1. विषय जिनका दावा करना पक्षों के लिए विवर्जित है। (निश्चायक साक्ष्य)
2. जिन विषयों को प्रमाणित करने से पक्षों को रोक दिया गया है। (विबन्धन)
3. बिना द्वेष के व्यक्त विषय।
4. विषय जो असंगत हैं।

विषय जिनका दावा करने से पक्ष विवर्जित किए जाते हैं:-

विषय जिनको निश्चयपूर्वक कहने से पक्ष विवर्जित किए जाते हैं, साक्ष्य अधिनियम में निर्णायक प्रमाण के रूप में या साधारणतः कहे जाने वाले अखण्डनीय अनुमान या विधिक अनुमान के रूप में अभिव्यक्त किए जाते हैं। वे धारा 41, 112 एवं 113 में व्यवहार में आते हैं।

(II) धारा 112

यह धारा इस प्रश्न से संबंधित है:

कैसे प्रमाणित किया जाए कि अ, वैध बच्चा है, ब और उसकी पत्नी स का?

2. इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए दो भिन्न संभावनाओं के अनुसार दो तरीके हैं।

(i) यदि संभावना यह है कि बच्चा विवाह की कालावधि में जन्मा है :

(अ) ब और स की विधिपूर्वक शादी प्रमाणित कीजिए।

(ब) अ के जन्म-दिन पर ब और स के बीच वैवाहिक संबंधों की विद्यमानता को सिद्ध कीजिए।

इन दो तथ्यों के आधार पर विधि-निश्चय करेगी कि अ, ब और स का वैध बच्चा है।

(ii) यदि संभावना है कि बच्चे का जन्म ब एवं स के वैवाहिक विघटन यथा या तो पिता की मृत्यु या तलाक के बाद हुआ है।

(अ) प्रमाणित कीजिए कि अ का जन्म वैवाहिक विघटन-मृत्यु या तलाक से 280 दिनों के अंतर्गत हुआ है।

(ब) सिद्ध कीजिए कि मां 280 दिनों की कालावधि में अविवाहित रही थी।

इन दो तथ्यों के प्रमाण पर विधि निश्चय करेगी कि अ, ब और स का वैध बच्चा है।

ध्यान दिए जाने वाले बिन्दु -

1. वैधता के प्रश्न में निर्णायक तत्त्व, बच्चे का गर्भाधान काल नहीं बल्कि बच्चे के जन्म का समय है। बच्चे के जन्म के समय पर जो कोई भी उस महिला का पति था, पिता है।

दृष्टांत

1. पालसिंह बनाम जागीर 7 लाहौर 368

हरनाम कौर ने हरीसिंह से विवाह किया। हरीसिंह 10 जनवरी, 1919 को मर गया। हरनाम कौर ने सोहन सिंह से 25 फरवरी, 1919 को विवाह किया। जागीर हरनाम कौर से 17 अक्टूबर 1919 अर्थात् हरीसिंह की मृत्यु के 279 दिन बाद और मोहन सिंह के विवाह के 198 दिन बाद जन्मा।

इस प्रश्न के उत्पन्न होने पर क्या जागीर, हरीसिंह का पुत्र था, निर्णीत हुआ कि वह सोहन सिंह का पुत्र था और न कि हरीसिंह का।

2. पालानी बनाम सेतु 49 मद्रास 553

पेची अम्मल ने अक्टूबर 1903 में सुब्रमन्य से विवाह किया। वह विवाह जून 1904 में विच्छेदित हो गया।

पेची ने जुलाई 1904 में तिरूमणि से विवाह किया।

पालानी सितम्बर 1904 के द्वितीय सप्ताह में जन्मा अर्थात् सुब्रमन्य के साथ पेची के विवाह के विच्छेदन के 4 माह बाद और तिरूमणि से उसके विवाह के 3 माह बाद।

पालानी किसका पुत्र है? सुब्रमन्य या तिरूमणि का।

निर्णय हुआ वह तिरूमणि का पुत्र था।

2. यह निर्णायक प्रमाण का विषय माना जाता है। यह इसलिए माना जाता है, इस कारण नहीं कि सत्य विवाद से परे हैं। यद्यपि एक महिला एक पुरुष के साथ विधिपूर्वक विवाहित होने पर भी एक अन्य व्यक्ति की देख-भाल में हो सकती है और उसके बच्चे ठीक उसके प्रेमी से हो सकते हैं। यह ऐसा माना जाता है क्योंकि लोक नीति के कारण या समाज के हित में कुछ तथ्यों की विधि में एक कृत्रिम प्रमाणक मूल्य दिया जाता है, और उस तथ्य से द्वंद्व करने के दृष्टिकोण से कोई साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने को अनुमत नहीं किया जाता है। धारा 112 के अंतर्गत निम्नलिखित तथ्यों की प्रमाणक गुणवत्ता है।

(1) विवाह का तथ्य।

(2) आगमन का तथ्य।

ताकि जहां ये दो तथ्य विद्यमान हों विधि का निष्कर्ष है कि जन्म-जात बच्च निश्चित रूप से वैध है अर्थात् यह पति से जन्मा होना ही चाहिए।

2. केवल आगमन न होने का साक्ष्य देने पर ही इस निष्कर्ष को समाप्त किया जा सकता है।

यह अवश्य सिद्ध करना चाहिए कि जब बच्चे का जन्म हो सका तब विवाहित पक्षों का आपस में कोई अभिगमन नहीं था।

अभिगमन न होने का अभिप्राय

1934, 38 बम्बई एल.आर. 394

करपया बनाम मायन्दी

अभिगमन वास्तविक या साथ-साथ रहने में प्रयुक्त नहीं होता। वह समागम के अवसर से अधिक कुछ भी नहीं।

करपया, एक मद्रासी हिन्दू, ने बर्मा में एक विचारणीय संपत्ति अर्जित की। वह 1923 में पागल हो गया।

करपया ने पहले करायापी के साथ विवाह किया और फिर नचियाया के साथ विवाह किया। करपया नचियामा के साथ तामाग्यो में रहता था जबकि करायाप्पी हॉलमीन में अपनी मां और भाई के साथ रहती थी।

1911 में उन दोनों के बीच एक समझौता किया गया (जो अधूरा रहा - संपादक)।

3. समागम की अक्षमता का साक्ष्य देने पर निष्कर्ष को समाप्त नहीं किया जा सकता।

29 आई.ए. 17/1901 नरेंद्र बनाम रामगोविन्द

उपेंद्र ने तिलोत्तमा के साथ विवाह किया। उपेंद्र 15 जुलाई को पीठ के एक फोड़े के कारण से मर गया, जिससे वह कुछ समय से पीड़ित था।

उपेंद्र की मृत्यु के बाद, तिलोत्तमा ने 18 अप्रैल 1887 को एक पुत्र नरेंद्र को जन्म दिया, अर्थात् उपेन्द्र की मृत्यु से 9 माह 10 दिन या 280 दिन बाद।

विचार किए जाने के लिए तीन प्रश्न थे:

(1) क्या नरेंद्र तिलोत्तमा-उपेंद्र का पुत्र था?

(2) क्या वह उपेंद्र की मृत्यु से 280 दिन के अंतर्गत जन्मा था?

(3) क्या वह प्रमाणित है कि उसके (उपेंद्र के) एवं उसके (तिलोत्तमा के) हर एक के साथ किसी समय पर जब अधियाचक का जन्म हो सका, कोई अभिगमन नहीं हुआ था?

अन्तिम विवाद्यक पर निम्नोक्त साक्ष्य था:-

तिलोत्तमा का विवाह हुआ जब वह एक निरीह बच्ची थी और अपने माता-पिता के साथ रहती थी। किन्तु उसकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व जुलाई 1886 में अपने पति के साथ रहने गई कितने पहले यह स्पष्ट नहीं था। कुछ साक्षियों ने कहा पांच या छः दिन पूर्व दूसरों ने कहा दस या बारह दिन पूर्व।

मामले में दो विशेष परिस्थितियां थीं:

(1) यह कि उपेंद्र फोड़े, जिससे वह 14 दिन से पीड़ित था, के प्रभाव से मरा।

(2) यह कि उपेंद्र ने 14 जुलाई, 1886 को एक वसीयत तिलोत्तमा को अपनी निष्पादिका के रूप में नियुक्त करते हुए और उसे एक बच्चा गोद लेने का निर्देशन देते हुए लिखी।

प्रतिवाद था कि यदि वह बीमार था तो वह समागम नहीं कर सका था। विवाद नकारात्मक था।

(3) समागम की अक्षमता प्रजननीय अक्षमता से भिन्न होनी चाहिए। 1935 (अखिल भारतीय प्रतिवेदक) पी.ओ. 199 (शारीरिक अक्षमता के लिए)।

प्रश्न-यदि वह नपुंसक था।

धारा, हिन्दू और मुस्लिम विधि के नियम की वैधता के संबंध का निराकरण करती है। 10 इलाहाबाद, 289

1. मुस्लिम-विधि के अनुसार शादी के छः माह बाद या पति से तलाक या मृत्यु के दो वर्षों के अंतर्गत जन्मा बच्चा उसका जायज (वैध शिशु) है।
2. हिन्दू विधि के अनुसार पति की मृत्यु या विवाह विच्छेद के बाद, यह दस माह है।

धारा, 280 दिन बाद जन्मे एक व्यक्ति को उसका वैध पुत्र प्रमाणित होने से अपवर्जित नहीं करती है। केवल प्रमाण का भार उस पर है। 24 इलाहाबाद 445 पिता की मृत्यु से 357 दिन बाद।

अब बच्चे की वैधता का प्रश्न उठता है तो पति-पत्नी के अधिगमन के विवाद्यक विषय पर उनकी क्षमता के संबंध में आंग्ल और भारतीय साक्ष्य विधि में अंतर है।

1. आंग्ल विधि के अंतर्गत वे अक्षम हैं।
2. भारतीय विधि के अंतर्गत वे सक्षम हैं।

38 मद्रास 466

28 बम्बई एल.आर. 207

धारा 113

1. धारा एक राज्यक्षेत्र के सत्तांतरण के संबंध में प्रमाण के भार के साथ व्यवहार करती है।

यह किस प्रकार सिद्ध किया जाना है कि एक राज्यक्षेत्र जो पहले ब्रिटिश भारत का एक अंग था, ब्रिटिश भारत का अंग नहीं रहा। प्रश्न केवल अकादमिक नहीं है, यह अत्यधिक व्यावहारिक महत्त्व का है। यह न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की जड़ तक जाता

है। यदि एक क्षेत्र ब्रिटिश भारत का अंग नहीं है तब वह किसी न्यायालय के अधिक्षेत्र के अधीन नहीं है।

2. धारा 113 में यह प्रावधान किया गया था। इसमें कहा गया है कि भारत के गजट में अधिसूचना है कि ब्रिटिश राज्यक्षेत्र एक स्थानिक रियासत के राजा या शासक को सत्तांतरित कर दी गई। निर्णायक प्रमाण के रूप में लेना चाहिए कि एक वैध सत्तांतरण ऐसे राज्यक्षेत्र को बताए गए दिनांक पर हुआ।

3. यह धारा प्रीवी काउंसिल के द्वारा भारतीय विधायिका के अधिकार के परे घोषित कर दी गई है और इसलिए अवैध एवं विधिक प्रभाव की नहीं है।

    1. बम्बई 367 – दामोदर गोरधान बनाम देवराम कांजी। वायसराय परिषद, 24–25 वाइस ऑर्डर 67 धारा 22 द्वारा भारत के किसी भाग पर राजा की प्रभुसत्ता या अधिराज्यीय प्रतिष्ठा के प्रति या ब्रिटिश प्रजा की आस्था के प्रति प्रत्यक्षतः विधि संरचना करने के लिए प्रतिकारित होते हुए, एक विधायी अधिनियम (अर्थात् साक्ष्य अधिनियम धारा 113) द्वारा एक राज्यक्षेत्र के सत्तांतरण, उस सत्तांतरण की प्रकृति एवं वैधता के प्रति न्यायिक परिवृच्छा को परिवर्जित करने के निश्चायक प्रमाण की राजकीय राजपत्र मे अधिसूचना करने को आशयित, नहीं कर सकता।

निश्चायक प्रमाण के रूप में निर्णय –

1. जैसे कि कुछ तथ्य कुछ अन्य तथ्यों के निश्चायक प्रमाण होने वाले समझे जाते हैं, उसी प्रकार साक्ष्य अधिनियम कुछ निर्णयों को कुछ विवाद्यक विषयों पर निश्चायक के रूप में समझता है। धारा 41

2. निर्णय जो निश्चायक होने वाले घोषित किए जाते हैं, वे हैं:–

(1)एक सक्षम न्यायालय के अंतिम निर्णय, आदेश या डिक्री के अनुपालन में–

(1) संप्रमाण के

(2) वैवाहिकों के

(3) नौ अधिकरणों के

(4) दीवालियापन के अधिक्षेत्र के।

जो एक विधिक चरित्र प्रदान करते हैं या एक विधिक चरित्र ग्रहण कर लेते हैं, या एक व्यक्ति को एक विधिक चरित्र या वस्तु का किसी उल्लिखित व्यक्ति के विरुद्ध नहीं, वरन् पूर्णतः सत्वाधिकृत घोषित करते हैं। निश्चायक प्रमाण हैं:–

(1) यह कि विधिक चरित्र लेन–देन के रूप में।

(2) यह कि वह निर्णय के दिन लेन–देन होता है।

धारा 41

यह धारा कुछ प्रश्नों क प्रमाण या अप्रमाण के लिए विधिक न्यायालयों के निर्णयों के प्रयोग करने के संबंध में कहती है।

प्रश्न है:-

क्या (1) किसी व्यक्ति का एक निश्चित प्रतिष्ठा को धारित करने का अधिकार करता है?

(2)यदि ऐसा है, तो कब?

प्रश्न है क्या:-

कोई विशेष व्यक्ति किसी एक संपत्ति के प्रति हकदार था।

धारा घोषित करती है कि कतिपय निर्णय इन तथ्यों के निश्चायक प्रमाण होंगे।

ये निर्णय क्या है:

(1) यह एक सक्षम न्यायालय का निर्णय अवश्य होना चाहिए।

(2) यह निर्णय इन अभ्यासों में अवश्य होना चाहिए।

(1) संप्रमाण

(2) वैवाहिक

(3) नौ-अधिकरण

(4) दिवालियापन में।

(1) जो किसी व्यक्ति पर या उस पर पुष्ट करने या विधिक चरित्र के लिए जाने को घोषित करता है।

(2) जो एक व्यक्ति को किसी विशिष्ट वस्तु का किसी उल्लिखित व्यक्ति के विरुद्ध नहीं, वरन् उसको पूर्णत: अधिकृत घोषित करता हो।

(3) यदि यह एक अंतिम निर्णय, आदेश या डिक्री हो।

संप्रमाण-अधिक्षेत्र

न्यायालय वसीयती एवं निर्वसीयती अधिक्षेत्र का प्रयोग करता है:

(1) भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन

(2) हिन्दू वसीयतनामा अधिनियम के अधीन

(3) संप्रमाण एवं प्रशासन अधिनियम के अधीन

वैवाहिक अधिक्षेत्र

भारतीय तलाक अधिनियम एवं विवाह एवं तलाक से संबंधित अन्य अधिनियमों के

अधीन निष्पादित।

नौ-अधिकरण अधिक्षेत्र

उच्च न्यायालय अधिकार पत्र एवं औपनिवेशिक न्यायालय नौ-अधिकरण अधिनियम, 1890।

दिवाला - अधिक्षेत्र

लाभ प्रदान करती है न्यास के सदृश्य होती है।

1. न्यास एवं दान के बीच इतनी अधिक समरूपता है कि दोनों का परिणाम स्वामित्व होता है। न्यासी एवं आदाता दोनों संपत्ति के स्वामी हो जाते हैं।
2. किन्तु दोनों के बीच भेद है। दान में आदाता संपत्ति से जैसे चाहे निपटे। न्यास में न्यासी संपत्ति का एक विशेष ढंग से विशेष प्रयोजन के लिए उपयोग करने के लिए बाध्य होता है।

न्यास संविदा से प्रभेदित

यह कि न्यास एवं संविदा के बीच प्रभेद है। न्यास एवं संविदा से संयोजित भेद करने वाले विधिक परिणामों की विद्यमानता से स्पष्ट है:-

(i) न्यास यदि निष्पादित है तो लाभग्राही द्वारा जो उसका पक्ष नहीं है, प्रवर्तित किया जा सकता है, जबकि संविदा के वास्तविक पक्ष नियमत: उस पर वाद कर सकते हैं।

(ii) निष्पादित स्वैच्छिक न्यास पूर्णत: प्रवर्तनीय है, जबकि प्रतिफल हीन संविदा नहीं है।

2. तथापि इस प्रश्न का निर्धारण, कि क्या दिया गया तथ्यों का सेट न्यास या संविदा को जन्म देता है, आसान नहीं है। कसौटी क्या है?

कीटन - पृष्ठ 5-6 (1919) ए.सी. 801

38 बम्बई एस.आर. 610

(1926) ए.सी. 108

यह आशय का प्रश्न है।

न्यास शक्ति से प्रभेदित

1. शक्ति शब्द के विस्तृततम अर्थ में किसी व्यक्ति को दिए गए प्रत्येक प्राधिकार शामिल है वह व्यक्ति शक्ति का आदाता कहा जाता है। उसको प्राधिकार देने वाले व्यक्ति (शक्ति का दाता कहा जाता है) के पक्ष में या उससे संबंधित अधिकारों के कार्यान्वयन में कार्य करने के लिए।

2. शक्तियां कई प्रकार की होती हैं -

(i) अपने मालिक के लिए कार्य करने की अभिकर्ता की शक्ति को कभी–कभी औपचारिक मुख्तारनामा द्वारा दी जाती है।

(ii) संविधिक शक्ति जैसे बंधकी को दी गई विक्रय की शक्ति।

(iii) न्यासीगण एवं निष्पादकों के पास विभिन्न अभिव्यक्ति विवाक्षित साम्यिक शक्तियां।

(iv) साम्यिक हित सृजित करने के लिए न्यासी नियुक्त करने की शक्ति।

3. नियुक्ति की शक्ति एक व्यवहार है जो न्यास के सदृश है और उसे न्यास से सुभिन्न किया जाए।

नियुक्ति शब्द का अभिप्राय है – संकेत देना, इंगित करना – विशिष्ट संपत्ति के लक्ष्य को घोषित करने के कार्य उस प्रयोजन के लिए प्रदत्त प्राधिकार का प्रमाण करते हुए किसी पद पर मनोनीत करने के कार्य का नियुक्ति की शक्तियां नामक अंतिम वर्ग का प्रयोग किया जाता है। जहां उनकी पूर्ण घोषणा को स्थगित करने के सिवाए भावी हितों के सृजन के लिए प्रावधान करना वांछित है।

इस प्रकार विवाह की व्यवस्था में पति–पत्नी को उनकी जीवनकाल में पति–पत्नी के लिए संपत्ति न्यास पर न्यासियों को दी जाती है और न्यास पर उत्तरजीवी की मृत्यु के बाद (i) उस विवाह के ऐसे बच्चों के लिए ऐसे अंशों में जैसे अंतरजीवी नियुक्त करेगा। (ii) ऐसे मामले में नियुक्त किए जाने पर वह बच्चा जिसके लिए वह किया जाता है ठीक उसी प्रकार लेता है मानों उसी आशय की परिसीमा मूल विलेख में की गई थी।

इस प्रकार की शक्ति जहां उसके उद्देश्यों पर प्रतिबंध है। (अर्थात् वे व्यक्ति जिनके पक्ष में उसका प्रयोग किया जा सकता है) नियुक्ति की विशेष शक्ति कही जाती है। किन्तु नियुक्ति की सामान्य शक्ति भी हो सकती है, जब इस प्रकार का प्रतिबंध हो। ताकि आदाता स्वयं नियुक्ति कर सके। ऐसे मामले में आदाता को वही विन्यास के रूप में माना जाता है। जो कि अधिकतर मामलों में संपत्ति का मालिक माना जाता है।

(i) कोई शक्ति मात्र विवेकाधिकार दी जा सकती है और इसीलिए न्यास से सुभिन्न है, जो बाध्यता सृजित करती है या

(ii) शक्ति विवेकाधिकार के प्रयोग की बाध्यता अधिरोपित कर सकती है।

पूर्ववर्ती मामले में कोई न्यास नहीं है। परवर्ती मामले में है। पूर्ववर्ती मात्र शक्ति कहलाती है। परवर्ती न्यास की प्रकृति की शक्ति या न्यास से संबद्ध शक्ति कहलाती है।

(iii) मामलों का एक तीसरा प्रवर्ग भी है जो न्यास संबद्ध शक्ति है।

ये वे मामले हैं जहां एक संपत्ति का न्यासी यद्यपि उसे अपने अधीन कुछ व्यक्तियों

और प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त करने के दायित्व है कि लाभ विवेक रख सकता है कि क्या वह कुछ व्यक्त कार्यों को करेगा या नहीं करेगा, या कि धनराशि किसी व्यक्ति या प्रयोजन या कि उसके प्रयोग के लिए समय एवं विधा के लिए प्रयुक्त किए जाने के लिए विवेक का प्रयोग करेगा या नहीं करेगा। ऐसे वादों में न्यायालय न्यासी को शक्ति को अनुचित रूप से प्रयोग करने से रोकेगा, वह उसको उसके विवेक के उचित प्रयोग को नियंत्रित करने के प्रयास या ऐसे कार्य करने के लिए बाध्य नहीं करेगा।

1. शक्ति न्यास के सदृश्य होती है और उससे भिन्न भी होती है।

(i) यह न्यास के सदृश लगती है जहां तक शक्ति निपटान करने का एक प्राधिकार है।

(ii) यह न्यास से भेद करती है जहां तक विवेकाधिकार है, जहां तक न्यास आज्ञात्मक होता है, न्यासी यदि स्वीकार करता है तो उस अवश्य नहीं करना चाहिए जो निदेश दे।

*VII नए न्यासीगण

(1) पद एवं संविदा की या मृत्योपरांत न्यासी की उत्तर जीविका।

(2) उत्तरजीवी के निधनोपरांत पद एवं संपदा का न्यागमन।

(3) न्यासी की सेवानिवृत्ति या उसका हटाया जाना।

(4) नए न्यासियों की नियुक्ति।

VIII न्यासिक न्यासी की नियुक्ति।

IX लोक न्यास

(1) प्रकृति एवं कृत्य।

(2) लोक-न्यासी साधारण न्यासी के रूप में नियुक्ति।

(3) लोक-न्यासी की नियुक्ति एवं हटाया जाना।

(4) अभिरक्षक न्यासी एवं प्रबंध न्यासी के कर्त्तव्य अधिकार एवं दायित्व

(5) लोक न्यासी से संबंधित विशेष नियम।

X न्यासी के अधिकार

(1) प्रतिपूर्ति एवं क्षतिपूर्ति का अधिकार।

(2) न्यासीयता की संपूर्ति पर उन्मोचन का अधिकार।

(3) न्यास निधि को न्यायालय में जमा करने का अधिकार।

---

*. पांडुलिपि में केवल शीर्षक उपलब्ध हैं, शेष पृष्ठ खाली छोड़ दिए गए है-संपादक

XI न्यासी एवं लाभग्राहियों का लोकन्यासी या न्यायालय की सहायता मांगने का अधिकार।

*(1) पदीय संपरीक्षा का अधिकार।

(2) न्यायालय का निर्देश लेने का अधिकार।

(3) न्यास को न्यायालय से प्रकाशित कराने का अधिकार।

(4) न्यायालय का निर्देश लेने का अधिकार (उपरोक्त 2 भी वही है)

(5)न्यायालय से न्यास को प्रशासित कराने का अधिकार।

XII न्यास भंग के परिणाम

1. *न्यास भंग की परिभाषा* – न्यास भंग धारा 3 में परिभाषित है, न्यासी पर अधिरोपित कोई कर्त्तव्य भंग जो तत्समय लागू किसी विधि द्वारा न्यास भंग कहलाता है।

2. अंग्रेजी विधि के अधीन – न्यासी की ओर से किसी कार्य की उपेक्षा जो न्यास विलेख की शर्तों या विधि द्वारा प्राधिकृत या क्षम्य नहीं है, न्यास भंग कहलाता है।

3. कर्त्तव्य भंग – न्यासी के कर्त्तव्य, अधिकार, शक्तियां एवं अयोग्यताएं होती हैं। केवल कर्त्तव्य भंग ही न्यास भंग है।

(1)दायित्व का भाग न्यास संपत्ति की हानि है।

(2)क्या वह ब्याज देने के लिए दायी है? केवल निम्नलिखित स्थितियों में–

(अ) जहां वह ब्याज वास्तव में प्रापत कर चुका है।

(ब) जहां लाभग्राही को न्यास का धन अदा करने में अनुचित विलंब के रूप में भंग है।

(स) जहां न्यासी को ब्याज प्राप्त कर लेना चाहिए था किन्तु उसने ऐसा नहीं किया।

(द) जहां यह स्पष्टतः मान लिया जाए कि उसने ब्याज प्राप्त कर लिया होगा।

(ई) जहां भंग में न्यास का धन निवेश करने की एवं ब्याज या लाभांश एकत्र करने की असफलता शामिल है।

(फ) जहां भंग में व्यवहार या व्यवसाय में न्यास की संपत्ति या उसके आगम के प्रयोग शामिल हैं।

3. क्या वह न्यास भंग से प्राप्त लाभ को न्यास भंग से हुई हानि के पूरा करने के लिए हकदार है?

वह ऐसा नहीं कर सकता।

* * * * *

परिसीमा विधि पर भाषणों की रूपरेखा

I. परिचायक

1. अवधि विधि की प्रकृति।
2. अवधि, विविध-उपमति एवं अतिविलंबर के बीच प्रभेद।
3. अवधि, विधि का उद्देश्य

II. अवधि विधि का क्रम-विन्यास

1. भारतीय संविधि विधि के अधीन व्ययगत समय का परिचालक।
2. अधिनियम की योजना।

III. अधिनियम का लागू होना

1. क्षेत्र के संबंध में।
2. विशेष प्रक्रिया कार्यवाहियों के संबंध में।
3. दंड कार्यवाहियों के संबंध में।
4. सिविल कार्यवाहियों के संबंध में।
5. व्यक्तियों के संबंध में।

(विशेष विधि के विरुद्ध अपठनीय)

IV. स्तंभ 3 से उद्भूत होने वाले प्रश्न

समय कब चलना आरंभ होता है।

(1) सामान्य नियम ऐसे मामले जहां वाद करने का अधिकार प्रोद्भूत होने से पूर्व परिसीमा आरंभ होती है।

(2) ऐसे मामले जहां वाद करने का अधिकार प्रोद्भूत हो चुकने पर भी परिसीमा आरंभ नहीं होती है।

(3) ऐसे मामले जहां परिसीमा का नवीन प्रारंभिक बिन्दु उद्भूत होता है।

टिप्पण:- भागों में उपभागों की संख्याएं मूल पांडुलिपि में जैसी है वैसी ही रखी

गई है - संपादक।

(2) अवक्रमित दोषों के मामलों में प्रारंभिक बिन्दु।

(3) निरंतर दोषों के मामलों में प्रारंभिक बिन्दु।

(II) समय कब चलना प्रारंभ होता है इसके विरुद्ध?

1. वादी के विरुद्ध कब।

2. प्रतिवादी के विरुद्ध कब।

V. स्तंभ-2 से उद्भूत होने वाले प्रश्न

1. समयावधि कैसे परिकलित की जाती है?

(1) कलेंडर

(2) ऐसे मामले जिनमें समय अपवर्जित किया जाता है।

(3) ऐसे मामले जिनमें लुप्त समय घटा दिया जाता है।

II. क्या समय बढ़ाया जा सकता है?

III. क्या विलंब क्षमा किया जा सकता है?

IX. परिसीमा का अर्थान्वयन

1. साधारण सिद्धांत।

2. विनिर्दिष्ट और अवशिष्ट अनुच्छेद

भाग-IV स्तंभ I से उत्पन्न होने वाले प्रश्न

खंड -1 वाद

वर्ग - प्रथम - धन के लिए वाद - 57, 64, 85

व्याख्या - (1) वर्णित लेखा/खाता - 64

(2) अपने पास का एवं प्राप्त धन - 62

(3) परस्पर, खुला एवं प्रचलित/चालू खाता - 85

(4) जमा - 60

वर्ग - द्वितीय - *परक्राम्य लिखतों पर वाद* - 69, 80

व्याख्या - किश्तों में देय धन - 75

वर्ग - तृतीय - अवयस्क द्वारा वयस्क हो जाने पर वाद - 44

व्याख्या -

वर्ग - चतुर्थ - *बंधकों पर वाद* - 132, 134, 147, 148

व्याख्या -

वर्ग - पंचम - स्थावर संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए वाद

व्याख्या -

(1) हक पर आधारित वाद।

(2) कब्जे पर आधारित वाद।

(अ) प्रतिकूल कब्जा द्वारा।

(ब) कब्जा वर्जन द्वारा।

(3) विभाजन/बंटवारा पर आधारित वाद।

वर्ग - षष्टम् - *कपटपूर्वक प्राप्त क्रियाओं या दस्तावेजों को अपास्त करने के लिए वाद।* - 91-95

व्याख्या -

वर्ग - सप्तम - न्यायालय एवं सरकारी अधिकारियों की डिक्रियों एवं आदेशों को निरस्त करने के लिए वाद - 11, 11ए, 12, 13, 14

वर्ग - अष्टम - पंजीकृत दस्तावेजों पर वाद - 116

वर्ग - नवम - *अपकृत्यों पर वाद।*

व्याख्या - द्वेषपूर्ण अभियोजना - वाद का अधिकार कब प्रारंभ होता है - 2...... .3

वर्ग - दशम - *संविदाओं पर वाद।*

खंड - II - अपील (पृष्ठ खाली)

खंड - III - आवेदन (पृष्ठ खाली)

7 - चिरभोगाधिकार - विधि (पृष्ठ खाली)

* * * * *

I. परिसीमा पर भारतीय विधि

परिचायक

परिसीमा विधि की प्रकृति क्या है?

अनेक प्रकार से काल सीमा मुकदमे की प्रक्रिया में प्रवेश होता है।

(1) वे मामले जहां विधि में अभिव्यक्त हैं कि कार्यवाही एक कथित कालावधि में ही की जाएगीः–

दृष्टांत – आदेश 6 नियम 18 – वाद पत्र का संशोधन। संशोधन करने की इजाजत पाने वाला पक्ष, न्यायालय द्वारा नियत समय के भीतर अवश्य संशोधन करे और यदि कोई समय नियत नहीं किया गया तब 14 दिन के भीतर।

(2) वे मामले जहां विधि में अभिव्यक्त है कि कार्यवाही एक निश्चित समय व्यतीत होने से पूर्व नहीं की जाएगी।

दृष्टांत – धारा 80 सी प्र. सं. (सी.पी.सी.) – राज्य सचिव के विरुद्ध वाद। परिषद् भारत के लिए विदेश मंत्री या किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध कोई वाद ऐसे लोक अधिकारी द्वारा उसकी पदीय क्षमता में कृत माने जाने वाले किसी कार्य के संबंध में लिखित नोटिस (सूचना) देने के बाद दो माह व्यतीत हो जाने तक प्रस्तुत नहीं किया जाता।

(3) वे मामले जिनमें विधि निर्धारित करती है कि एक निश्चित समय के व्यतीत हो चुकने के बाद कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।

2. यह मामलों का तृतीय वर्ग है जो सही अर्थों में परिसीमा विधि की विषय वस्तु है।

2. परिसीमा-विबंध उपमति एवं अतिविलंब में अंतर

ये सब एक व्यथित पक्ष को उसके साथ किए गए दोष के लिए उपचार से वंचित किए जाने का प्रभाव रखते हैं। ऐसा होने पर उनका परिसीमा से अंतर करना आवश्यक है।

परिसीमा एवं विबंध

1. परिसीमा द्वारा कोई व्यक्ति निर्धारित समय के बाद वाद लाने के कारण अनुतोष से रोका जा सकता है।
2. विबंध द्वारा कोई व्यक्ति अनुतोष पाने में असफल हो जाता है क्योंकि वह

अपने वाद को सिद्ध करने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत करने से विधि द्वारा रोका जाता है।

परिसीमा और उपमति

1. परिसीमा एक वादकारी को एक दोष के लिए अनुतोष प्राप्त करने के विषय में विफल करती है क्योंकि वह दोषकरण की सम्मति दे चुका है क्योंकि उसका वाद समयावधि के बाद का है।
2. उपमति एक वादकारी को एक दोष के लिए अनुतोष प्राप्त करने के विषय में विफल करती है क्योंकि वह दोषकरण की सम्मति दे चुका है।

परिसीमा एवं अतिविलंब

1. दोनों में एक सामान्य लक्षण है – अनुतोष इस एकमात्र कारण पर मना किया जाता है कि कार्यवाही समयावधि के अंतर्गत नहीं की गई है।
2. इसमें अंतर है – परिसीमा में जिस समय के अंतर्गत वाद नहीं लाया जाएगा वह विधि द्वारा निर्धारित है। अतिविलंब में कोई समय निर्धारित नहीं है और न्यायालय, इसलिए अनुतोष देने के लिए अनुचित विलम्ब के सिद्धांत पर चलता है।
3. भारत में अतिविलंब के सिद्धांत की परिसीमा विधि के कारण अधिक व्याप्ति नहीं है। जो लगभग सभी वादों के लिए एक निश्चित काल सीमा निर्धारित करती है। अतः यह कोई बात नहीं कि कोई अपना वाद विधि द्वारा निर्धारित काल के प्रथम दिन या अंतिम दिन लाता है।
4. भारत में अतिविलंब का सिद्धांत केवल निम्न वादों में लागू होता है:–

(1) जहां दिया जाने वाला अनुतोष स्वविवेकाधीन है। यह इस प्रकार है –

(i) विशिष्ट अनुतोष के अधीन आने वाले मामलों में।

(ii) वादकालीन अनुतोष के अधीन आने वाले मामलों में।

(2) जहां परिसीमा विधि लागू नहीं होती, अर्थात् वैवाहिक वाद। विलंब का अर्थ होगा कि अपराध क्षमा कर दिया गया था।

3. परिसीमा का उद्देश्य

1. सुव्यवस्थित समाज/समुदाय के लिए दो बातें आवश्यक हैं –

   (i) दोषों का अवश्य उपचार हो।

   (ii) शांति अवश्य कायम रखी जाए।

2. समाज की शांति को सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संपत्ति के हक एवं

अधिकारों के विषय में सामान्यतः निरंतर अनिश्चितता, संदेह एवं दुविधा की स्थिति नहीं रहनी चाहिए।

3. फलतः यदि वे लोग जो अपने साथ किए गए अपराध के लिए अनुतोष का दावा करने के लिए अनुमत किए जाते हैं तब उन्हें एक निश्चित समय के अंतर्गत अनुतोष पाने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को जो अपने प्रति किए दोष को एक निश्चित समय के बाद तक सहन कर चुका है, अनुतोष से वंचित करना कुछ भी अन्यायपूर्ण नहीं है।

4. परिसीमा विधि इसी सिद्धांत पर आधारित है।

5. यह अंतर्निहित सिद्धांत होने पर परिसीमा विधि अपने प्रवर्तन में एकांतिक है और पक्षों के करार या व्यवहार के अधीन नहीं है। अर्थात् निम्न के कारण अधीन नहीं है –

(i) अधित्याग

(ii) प्रथम

(iii) विबंध

(iv) पक्षों की सहमति से समय के परिवर्धन एवं न्यूनन के संबंधों में भिन्नताएं संविदा अधिनियम की धाराएं – 28 एवं 23

6. इस प्रकार परिसीमा विधि परक्राम्य लिखत से अलग है।

7. परिसीमा एवं सबूत का भार।

(1) सबूत का भार वाद पर होता है। वह सिद्ध करे कि उसका वाद समय के अंतर्गत है।

37 बम्बई एस.आर. 471 ए.आई.आर. 1935 सितम्बर

अ एक प्रजीकृत पट्टा तारीख 8 जुलाई 1922 द्वारा एक निश्चित भूमियां ब को 25 वर्षों की कालावधि के लिए किराए पर देता है। बाद में अ ब को यह आरोप लगाते हुए कि पट्टा अनुचित प्रभाव द्वारा लिया था, बेदखल कर देता है। ब अ को अपने कब्जे एवं उपभोग एवं भूमि के कब्जे के संबंध में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थगनादेश हेतु अ के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करता है।

ब की ओर से दलील दी गई कि अ पट्टे की वैधता को चुनौती देने से इस आधार पर बाधित था कि यदि उसने पट्टे को निरस्त करने के लिए वाद किया तो दावा परिसीमा द्वारा नामित था। दूसरे शब्दों में प्रश्न है – क्या प्रतिवादी परिसीमा विधि से आबद्ध है? उत्तर है – नहीं। धारा 3 वादी को निर्देश करती है और न कि प्रतिवादी को।

8. परिसीमा का अभिवचन एवं कार्यवाही का प्रक्रम।

(1) परिसीमा का अभिवचन कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर उठाया जा सकता

है – अर्थात् वह द्वितीय अपील में भी उठाया जा सकता है।

(2) वह अपील में प्रथम बार उठाया जा सकता है।

38 मद्रास 374

36 कलकत्ता 920

38 कलकत्ता 512

38 बंबई 709 (714)

(3) भले ही वह जांच न्यायालय में छोड़ दिया गया हो तब भी वह अपील में उठाया जा सकता है।

इलाहाबाद 846 (848)

(4) वह प्रीवी काउंसिल के समक्ष भी उठाया जा सकता है यद्यपि वह निचले न्यायालयों में छोड़ दिया गया था।

36 आई.ए. 210

(5) यह इस परंतुक के अधीन है कि जब यह अपील के स्तर पर उठाया जाता है तो न्यायालय उसकी अनुमति नहीं देगा। यदि उसके निर्णय के लिए विलेख में पर्याप्त तथ्य नहीं है और यदि वह तथ्यों के आगे भी जांच अंतर्ग्रस्त है।

57 कलकत्ता 114

II. भारतीय परिसीमा विधि

इसकी व्यवस्था की योजना

भारतीय संविधिक विधि में समय के व्यपगमन का प्रचालन

1. एक निश्चित कालावधि का व्यपगमन भारतीय संविधिक विधि के अधीन चार परिणाम उत्पन्न करता है:-

(1)यह दोष के लिए उपचार प्राप्त करने में धारक के अधिकार को बढ़ाता है - परिसीमा अधिनियम की धारा 3

(2)यह न केवल उसका उपचार वर्णित करता है वरन् उसके अधिकार को समाप्त करता है - परिसीमा अधिनियम की धारा 28

(3)यह प्रकाश, हवा, मार्ग, पानी के बहाव, पानी के उपयोग या सुखाचार को एक व्यक्ति को प्रदत्त करती है जो उसे एक निर्धारित कालावधि तक उपभोग कर चुका है- परिसीमा अधिनियम की धारा 26

(4)यह सुखाचार के अधिकार को समाप्त करता है - 1882 के अधिनियम सं. (5) की धारा 47

(2), (3), (4) स्थितियां ऐसी हैं जो चिरभोगाधिकार विधि के अंतर्गत आती हैं। केवल (1) परिसीमा विधि के अंतर्गत आती है। परिसीमा अधिनियम विधि के मिश्रित निकायों के बारे में है और दोनों का अध्ययन पृथक-पृथक किया जाना चाहिए।

III. भारतीय परिसीमा विधि

इसका लागू होना

1. राज्य क्षेत्र के संबंध में

1. अधिनियम का विस्तार समग्र ब्रिटिश भारत है – धारा 1 (2)
2. ब्रिटिश भारत में कार्यरत न्यायालयों में प्रस्तुत प्रत्येक वाद, अपील, दिया गया प्रार्थना पत्र प्रत्येक पर अधिनियम लागू होता है।
3. कोई बात नहीं कि वाद का कारण कहां हुआ। ब्रिटिश भारत में या ब्रिटिश भारत के बाहर, यदि ब्रिटिश भारत के किसी न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया जाता है या अपील की जाती है या प्रार्थना पत्र दिया जाता है तो जो परिसीमा विधि लागू होगी वह भारतीय परिसीमा विधि होगी विदेशी परिसीमा विधि नहीं।
4. इस नियम का एक अपवाद है जो धारा 11(2) में अधिनियमित किया गया है जो व्यक्त करता है – विदेशों में की गई एक संविदा पर ब्रिटिश भारत में वाद लाने पर विदेशी परिसीमा का नियम प्रतिरक्षित होगा यदि नियम संविदा समाप्त कर दी गई है और यह कि पक्षगण ऐसे नियम द्वारा निर्धारित समयावधि में ऐसे देश में आवास करते थे।

2. कार्यवाहियों के संबंध में

1. विशेष कार्यवाहियां

(1) मध्यस्थम कार्यवाहियां

एक समय यह संदेह किया जाता था कि क्या परिसीमा अधिनियम मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाही पर इस आधार पर कि यह केवल न्यायालय में वादों, अपीलों एवं प्रार्थनाओं पर लागू किया जाता है और यह कि विवाचक मध्यस्थ न्यायालय नहीं था। अब यह संदेह प्रीवी काउंसिल द्वारा दूर कर दिया गया है, जिसने निर्णीत किया है कि जहां व्यक्तियों ने अपने विवाद विवाचनार्थ भेजे हैं वहां मध्यस्थ को विवाद का निर्णय विद्यमान विधि के अनुसार ही करना चाहिए और उसे परिसीमा के हर प्रतिवाद को मान्य एवं प्रभावी करना चाहिए जब तक कि पक्षों के बीच सहमति/समझौते द्वारा वह प्रतिवाद विलग नहीं कर दिया गया है।

(1929) 56 आई.ए. – 128

प्रश्न – यह निर्णय तो यहां तक अति निर्धारित करता है कि पक्षगण निजी सहमति/समझौते द्वारा परिसीमा विधि में परिवर्तन कर सकते हैं। इससे तो संविदा अधिनियम की धारा 28 एवं 23 के प्रावधानों को अनदेखा किया जाना प्रतीत होता है।

2. कंपनी अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां

जब कंपनी का समापन किया जा रहा हो और समापक उस कंपनी के मामलों को निपटाने के लिए नियुक्त कर लिया जाता है, तो कंपनी अधिनियम की धारा 186 प्रावधानित करती है कि समापन एक व्यक्ति पर कंपनी के प्रति उसके देय किसी धन को अदा करने के आदेश के लिए न्यायालय को एक प्रार्थनापत्र दे सकता है। साधारणतः एकवाद होता है। किन्तु वादों की बहुलता को समाप्त करने के लिए विधि द्वारा यह विशेष प्रक्रिया अनुमत की गई है।

प्रश्न है कि क्या परिसीमा कार्यवाहियों में लागू होती हैं। यह निर्णीत किया गया है कि धारा 186 में "देय धन" का अभिप्राय देय धनों विधि द्वारा वसूलनीय है, अर्थात् धनराशियां-काल बाधित नहीं है। इसका अर्थ है कि ऐसी कार्यवाहियों में परिसीमा विधि लागू होती है।

60 आई.ए. 13 (23)

3. आयकर-अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां

भारत में सिविल न्यायालयों की लोक राजस्व के विषयों में अधिकारिता नहीं है। उनकी ऐसी अधिकारिता हो सकती है यदि कोई विशेष राजस्व अधिनियम उनको ऐसे अधिकारिता निहित करता है। उदाहरण के लिए 1922 के भारतीय आयकर की धारा 66(3) में एक प्रावधान मिल जाएगा। इस धारा के अधीन आयकर अधिकारी के कर निर्धारण के विषय में आदेश से पीड़ित एक पक्ष उससे विषय को उच्च न्यायालय को भेजने के संबंध में निवेदन कर सकता है और यदि वह अस्वीकारता है तो वह आयुक्त को वाद को व्यक्त करने और उसे उच्च न्यायालय को भेजने के लिए बाध्य करने वाले आदेश के लिए उच्च न्यायालय से आवेदन कर सकता है।

ऐसे आवेदन के लिए समय की परिसीमा है। किन्तु इसके लिए परिसीमा विधि लागू नहीं होती। समय की परिसीमा, आयकर अधिनियम द्वारा निर्धारित समय सीमा है परिसीमा विधि द्वारा नहीं।

आयुक्त के समक्ष श्रमिकों की क्षतिपूर्ति (के मुआवजे) की कार्यवाहियां श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 श्रमिकों को उनके नियोजन की कालावधि में हुई क्षतियों के लिए क्षतिपूर्ति अदा किए जाने का प्रावधान करता है - वे मामले आयुक्त द्वारा सुने जाते हैं। आयुक्त एक विशेष न्यायाधिकरण है, न्यायालय नहीं, अतः उसके समक्ष की कार्यवाहियों में परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होता।

इसका यह अर्थ नहीं कि क्षतियों के लिए क्षतिपूर्ति का दावा उसके समक्ष किसी भी समय अभियोजित किया जा सकता है। वह ऐसा हो सकता है यदि अधिनियम में काल सीमा के लिए कोई प्रावधान नहीं होता। चूंकि अधिनियम में छः माह समयावधि

के रूप प्रस्तुत किए गए हैं, इसलिए वाद उसी कालावधि में लाया जाना है।

5. रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां।

(1) अभिलेखों का प्रस्तुतीकरण - 4 माह।

(2) अभिलेखों को स्वीकार करने के लिए पक्षों की उपस्थिति-4 माह।

3. दांडिक कार्यवाहियां

(1) दांडिक कार्यवाहियां सामान्यत: सम्राट के नाम से दायर की जाती है, क्योंकि वे राज्य की शांति को भंग करती हैं।

(2) यह संवैधानिक विधि का एक सत्र है कि समय का व्ययगमन राजा के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है।

(3) ऐसा होने से परिसीमा विधि दांडिक कार्यवाहियों में लागू नहीं होती है।

(4) दो बातें सूचित हो सकती हैं-

1. बहुत से अधिनियम हैं जो उन अधिनियमों के अधीन अभियोजनों को प्रस्तुतिकरण के लिए समय सीमा का निर्धारण करते हैं।
2. परिसीमा अधिनियम यद्यपि दांडिक कार्यवाहियों के लिए किसी सामायिक परिसीमा के लिए प्रावधान ही करता है।

4. सिविल कार्यवाहियां

(i) वादों के संबंध में विभिन्न अनुच्छेदों में विभिन्न प्रकार के वाद अभिलिखित किए गए हैं। वही एक सामान्य अवशिष्ट अनुच्छेद अधिनियम सं. 120 भी है, जो प्रत्येक वाद, जिसके लिए कोई परिसीमा की समयावधि अनुसूची में कहीं भी प्रावधान नहीं है लागू होने के लिए बनाया गया है। अत: अधिनियम सभी मामलों में लागू होता है।

(ii) अपीलों के संबंध में दो न्यायालय होते हैं जिनमें भारत में अपील की जा सकती है - (1) जिला न्यायाधीश का न्यायालय एवं (2) उच्च न्यायालय। परिसीमा अधिनियम इन दोनों न्यायालयायों में अपीलों का उल्लेख करता है। अत: यह कहा जा सकता है कि परिसीमा विधि सभी अपीलों में लागू होती है।

(iii) आवेदन पत्रों के संबंध में, विभिन्न प्रकार के आवेदन पत्र अनुसूची के विभिन्न अनुच्छेदों में प्रमाणित किए गए हैं। जैसे कि वादों से संबंधित अनुच्छेदों के विषय में एक अनुच्छेद 181 भी आवेदन पत्रों के लिए है जिसके लिए कहीं भी अनुसूची में या सिविल प्रक्रिया संहिता (सीपीसी) की धारा 48 द्वारा परिसीमा की कोई कालावधि निर्धारित नहीं की गई है किन्तु उच्च न्यायालय ने निर्णीत किया है कि इस अधिनियम का लागू होना केवल सीपीसी (व्यय प्र. सं.) के अंतर्गत प्राप्त आवेदन पत्रों तक सीमित होना है। उसके ऐसा होने पर यह स्पष्ट है कि परिसीमा अधिनियम सभी आवेदन पत्रों पर लागू नहीं होता है। उदाहरणार्थ यह निम्न में लागू नहीं होता है।

(i) उत्तराधिकार (विरासत) के प्रमाण पत्रों के प्रबंधन के संप्रमाणित पत्रों की स्वीकृति के आवेदन पत्रों के संदर्भ में

(ii) उच्च न्यायालय के नियमों के अधीन पत्रों के संदर्भ में

32 बंबई 1
48 कलकत्ता 817
46 कलकत्ता 249

(iii) स्थानीय या विशेष अधिनियम (जब तक कि ऐसा अधिनियम इसके लिए प्रावधान नहीं करता है) के अधीन आवेदन पत्रों के संपर्क में।

व्यक्तियों के संबंध में

1. सामान्य नियम यह है कि परिसीमा का अभिवचन प्रत्येक वादी पर लागू होता है।

2. मूलत: परिसीमा राजा पर जब वह प्रतिवादी के रूप में है तब समय का व्ययगम राजा को प्रभावित नहीं करता है वाद करता था, लागू नहीं होती थी। संवैधानिक विधि का यह सूत्र यद्यपि दांडिक अभियोजनों पर लागू होता है, जहां तक सिविल कार्यवाहियों को राजा द्वारा का संबंध है, परिसीमा अधिनियम की धारा 149 के द्वारा नकार दिया गया है, जो सरकार द्वारा दायर हर एक प्रकार के वाद पर लागू होता है और 60 वर्ष की समयावधि निर्धारित करती है। सरकार के विरुद्ध वाद साधारणत: समयावधि में ही लाने चाहिए।

15 मद्रास 315

इसी प्रकार सरकार के माध्यम से दावा करने वाले निजी व्यक्तियों के वाद भी अधिनियम द्वारा निर्धारित साधारण समयावधि के अधीन आते हैं। यह सर्वदा का नियम है। यह किसी निर्धारित समय में एक वाद लाने के लिए सरकार के लिए सर्वदा का नियम नहीं था।

यह अब परिवर्तित कर दिया गया है। अत: यह कहा जा सकता है कि नियमत: परिसीमा विधि सभी व्यक्तियों पर चाहे वे निजी व्यक्ति हों या सरकारों के नियमित संस्थान हों लागू होती है और अवधि का अभिवचन प्रतिवादी को प्रत्येक वादी के विरुद्ध प्राप्य है चाहे वह वादी एक प्राइवेट व्यक्ति है या सरकार है।

3. परिसीमा का अभिवचन प्रत्येक प्रतिवादी के लिए उपलब्ध है। इस नियम के कुछ अपवाद हैं।

37 बंबई एस.आर. 471

धारा 10

(i) परिसीमा का अभिवचन किसी व्यक्ति, जिसमें संपत्ति किसी विशिष्ट प्रयोजन के

लिए न्यास में निहित की गई है, को उपलभ्य नहीं होगा और न ही यह उसके विधिक प्रतिनिधि या समनुदेशिती को (मूल्यवान प्रतिफल के बिना समनुदेशिती को) संपत्ति के या उसके उत्पादनों या ऐसी संपत्ति के लेखे के प्रत्यादान के एक वाद में उपलभ्य नहीं होता है। यह धारा व्यावहारिक या अन्यायिक न्यास से भिन्न अभिव्यक्त न्यास में लागू होने वाली है। एक अन्यायिक न्यास का न्यासी अवधि का प्रतिवाद ले सकता है।

अभिव्यक्त न्यास और अन्यायिक न्यास में अंतर

अतः, व्यक्तिगण जो न्यासीय पद धारण कर रहे हैं, धारा 10 के अभिप्राय में न्यासीगण नहीं है, अर्थात् अभिकर्त्ता, प्रबंधक, आढ़ती, बेनामीदार, निष्पादक या प्रशासक, महाजन (बैंकर) उत्तरजीवी, भागीदार, समवाय - कंपनी का निदेशक, कंपनी का समापक, संयुक्त हिन्दू परिवार का कर्त्ता या व्यवस्थापक।

दूसरा धारा 10 उन व्यक्तियों, जिनमें संपत्ति एक विशिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास में निहित* हो गई है, के वादों पर ही लागू होती है। 44 मद्रास 277 (281 - 2)

विशिष्ट प्रयोजन क्या है? विशिष्ट प्रयोजन ऐसा प्रयोजन है जो वस्तुतः एवं विशिष्टतः विलेख में परिभाषित है जिसके एक प्रयोजन के लिए न्यास सृजित किया जाता है। जिसको उल्लिखित शर्तों से निश्चिततः अभिपुष्ट किया जा सकता है।

49I आई.ए. 37 (43)

58I आई.ए. - I

ऐसा होने पर एक स्पष्ट न्यासी भी इस धारा के अंतर्गत आ जाएगा।

न्यासी का अर्थ है डी सनटार्ट

स्पष्टीकरण - हिन्दू, मुसलमान एसवं पूर्व विन्यास अभिव्यक्त न्यास घोषित किए जाते हैं और उनके प्रबंधक अभिव्यक्त न्यासीगण।

(iii) धारा 10 न केवल स्वयं व्यतिकर्मी न्यासी (स्वयं चूक करने वाले न्यासी) पर

---

* निहित का क्या अर्थ है? निम्नलिखित वाद अपवर्जित किए गए हैं:-

1. न्यासी को, जो वह प्राप्त कर सका है, के लिए उत्तरदायी बनाने की मांग करने वाले वाद।
2. वादी की न्यास संपत्ति की व्यवस्था करने के लिए व्यक्तिगत अधिकार को प्रवर्तित करने के वाद।
3. जहां एक अवैध न्यास है, एक प्रतिफलित न्यास के प्रवर्तन में न्यासियों से संपत्ति के प्रत्यादान के लिए एक वाद - 20 बंबई, 511
4. न्यास भंग के लिए क्षतिपूर्ति के लिए वाद - 58 आई.ए. 279 (297)

लागू होती है वरन् उसे विधिक प्रतिनिधियों एवं मूल्यवान प्रतिफल के समनुदेशितियों के सिवाए समनुदेशितियों को भी लागू होती है। व्यतिक्रमी न्यासी से मूल्य के लिए क्रेतागण रक्षित होते हैं और वे परिसीमा के लिए अभिवचन कर सकते हैं।

क्या न्यासी से क्रेता निश्चिततः उसके साथ मूल्य के लिए क्रेता होने पर न्यास की सूचना के बिना भी होना चाहिए ऐसा मुद्दा जिस पर अधिनियम मौन है। इस मुद्दे पर न्यायिक निर्णयों में भी मतवैभिन्य है। धारा 29(3) II परिसीमा अर्धानियम, भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम (चतुर्थ - 1869) के अधीन वादकारीपक्षों पर लागू नहीं होता है।

(पृष्ठ खाली छूटा - संपादक)

विशेष विधि के विरुद्ध

1. इस सामान्य परिसीमा विधि के अतिरिक्त अन्य विशेष या स्थानीय विधियां हैं जो भी वादों, अपीलों, या आवेदन पत्रों के लिए समयावधियां निर्धारित करती है। सामान्य विधि हम विशेष विधियों द्वारा नियम समयावधियों के बीच भेद होने की दशा में प्रश्न उठता है कि कौन सी विधि लागू होनी है।

2. इस प्रश्न का उत्तर धारा 29 में दिया गया है। इस धारा के अनुसार विशेष विधि, सामान्य विधि पर अभिभावी होगी।

3. धारा 29 समधविधि के रूप में सामान्य विधि एवं विशेष विधि के बीच विवाद के विषय में परिसीमा अधिनियम की अन्य धाराओं का लागू होना एवं न लागू होना भी प्रावधान करती है।

4. धारा 29 के अनुसार विवाद के विषय में धाराएं 4, 9 से 18 तक एवं 22 परिसीमा अधिनियम की लागू होंगी। जब तक कि स्पष्टतः लागू न होना नहीं किया जाता है। और शेष प्रावधान अधिनियम के लागू नहीं होंगे (जब तक कि विशेष विधि द्वारा स्पष्टतः लागू नहीं किए जाते हैं)।

परिसीमा विधि की स्कीम

1. भारतीय परिसीमा अधिनियम में 29 धाराएं और एक अनुसूची है।
2. अनुसूची तीन विभागों में विभक्त है।

   प्रथम विभाग - वादों के विषय में।

   द्वितीय विभाग - अपीलों के विषय में।

   तृतीय विभाग - आवेदन/प्रार्थना पत्रों के विषय में।
3. अनुसूची उसके प्रत्येक विभागों के संबंध में 3 स्तंभों/कालमों में बांटी गई है।

स्तंभ 1 – उस दावे, जिसके लिए वाद लाया जाता है या अपील या वाद आवेदन किया जाता है को वर्णित करता है।

वादों के 154 विभिन्न वर्गों के लिए प्रावधान किया गया है।

अपीलों के 9 विभिन्न वर्गों के लिए प्रावधान किया गया है।

आवेदन/प्रार्थना पत्रों के 26 विभिन्न वर्गों के लिए प्रावधान किया गया है।

इन प्रावधानों से प्रत्येक को क्रमशः संख्याकित किया गया है और (वह) अनुच्छेद संख्या अमुक कहलाता है। कुल मिलाकर 189 अनुच्छेद अनुसूची में हैं यद्यपि अंतिम संख्या 183 है, वह इस कारण है कि कुछ अनुच्छेदों की वही संख्या है और उसके साथ (अ) जोड़कर भिन्न किए गए हैं।

स्तंभ 2 – उस समयावधि को विनिर्दिष्ट करता है जिसके अंतर्गत वाद अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए, अपील या आवेदन/प्रार्थना पत्र अवश्य कर दिए जाने चाहिए।

स्तंभ 3 – सीमा काल के प्रारंभ के बिन्दु को विनिर्दिष्ट करता है। वाद अवश्य प्रस्तुत या अपील या आवेदन/प्रार्थना पत्र अवश्य कर दिए जाने चाहिए।

4. अधिनियम की धाराएं जहां तक कि वे निर्धारण विधि से भिन्न रूप में परिसीमा विधि के बारे में है अनुसूची के तीन स्तंभों से उद्भूत होने वाले प्रश्नों के विषय में है। अतः अनुसूची परिसीमा विधि का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है।

4. परिसीमा विधि

स्तंभ 3 से उद्भूत होने वाले प्रश्न
स्तंभ 3 की विषय वस्तु

1. स्तंभ 3 – परिसीमा के आरंभिक बिन्दु के विषय में है। दो प्रश्न उठते हैं।

(1) समय कब चलना आरंभ होता है? परिसीमा का आरंभिक बिंदु क्या है?

(2) क्या परिसीमा का केवल एक ही आरंभिक बिंदु है? या क्या परिसीमा का एक नवीन आरंभिक बिंदु हो सकता है?

1. समय कब चलना आरंभ होता है?

परिसीमा का आरंभिक बिंदु क्या है?

1. समय कब चलना आरंभ करता है इस प्रश्न का उत्तर यह है वाद अपील या आवेदन/प्रार्थना पत्र के प्रारंभ के संबंध में समय स्तंभ में वर्णित घटना के घटित होने से चलना आरंभ करता है। सर्वाधिक वादों में घटना आनुषंगिक होती है। किन्तु कुछ विषयों में यह वादी की घटना का प्रज्ञान होता है – 90-92 क्या यह घटना है या घटना का प्रज्ञान है किसी भी विषय में घटना का घटित होना स्तंभ 3 में परिसीमा के प्रारंभिक बिंदु को चिह्नित करता है।

मुकदमा करने के अधिकार एवं वादकारण के संबंध में दो प्रश्न।

(1) क्या जब वाद कारण हो तो वादी को वाद चलाना ही चाहिए।

(2) वाद तक ही सीमित रहते हुए यह कहा जा सकता है कि समय चलना आरंभ करता है जब वाद करने का अधिकार उद्भूत होता है – अनुच्छेद 120 यह प्रथम मूल नियम है।

वाद दायर करने का अधिकार कब उद्भूत होता है? यह उद्भूत होता है:

(i) जब स्तंभ 3 में अभिव्यक्त घटना घटित होती है यदि वाद अनुच्छेदों में से किसी के अधीन आता है।

(ii) जब वाद किसी विशेष अनुच्छेद के अधीन नहीं है वरन् सामान्य अनुच्छेद (120) के अधीन है तब वाद करने का अधिकार प्रोद्भूत होता है या विषयों में प्रज्ञान, कि वादकरण उद्भूत हो चुका है, वादी को हो जाता है तभी समय चलना आरंभ करता है वादकारण के घटित होने से या वादकारण की जानकारी की दिनांक से।

वादकारण तब उद्भूत होता है जब किसी पक्ष के साथ दोष किया जाता है। प्रत्येक दोष से आवश्यक नहीं है कि वादकारण उद्भूत करना आवश्यक बनाता हो।

(iii) परिसीमा के प्रारंभिक बिंदु पर मृत्यु का प्रभाव।

1. किसी व्यक्ति के विषय में जो वाद करने का अधिकार प्रोद्भूत होने से पूर्व मर जाता है, परिसीमा कब प्रारंभ होती है?

2. किसी व्यक्ति के विषय में, जो अन्य व्यक्ति के उस पर वाद करने का अधिकार पाने से पूर्व मर जाता है, परिसीमा कब आरंभ होती है?

(i) जब कोई व्यक्ति वाद करने का अधिकार प्रोद्भूत होने से पूर्व मर जाता है परिसीमा काल तब आरंभ होगा जब मृतक का विधिक प्रतिनिधि ऐसे वाद प्रस्तुत करने के लिए सक्षम होगा।

(ii) जब कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध वाद करने का अधिकार प्रोद्भूत हो चुका है ऐसे प्रोद्भवन होने से पूर्व मर जाता है परिसीमा की समयावधि उस समय से परिकलित की जाएगी जब मृतक का एक विधिक प्रतिनिधि होगा, जिसके विरुद्ध वाद लाया जा सकता है।

मूल नियम का अपवाद परिसीमा लाने का अधिकार प्रोद्भूत होने के क्षण से ही शुरू हो जाता है

1. ऐसे मामले जिनमें परिसीमा वाद करने के अधिकार के प्रोद्भूत होने से पूर्व आरंभ होती है।

(i) मांग पर देय धन एवं विपत्र पर देय धन या मांग पर कृत वचनपत्र रूक्का। इन वादों में जब तक कि देयता की मांग नहीं है एवं देयता की फलित स्वीकृत नहीं है, तो वाद लाने का अधिकार नहीं है। वाद लाने का अधिकार, देयता की अस्वीकृति के दिनांक से उद्भूत होता है। किन्तु समय अस्वीकृति के दिनांक से चलना आरंभ नहीं होता वरन् ऋण के दिनांक या विपत्र या वचन पत्र के दिनांक से चलना आरंभ होता है, अर्थात् वाद लाने के अधिकार के प्रोद्भूत हो चुकने से पूर्व। - 57-58-59-67-73

(ii) एक गिरवी का मोचन पर वाद

गिरवीदार का धरोहर की वापसी के लिए वाद लाने का अधिकार उद्भूत होता है उस दिनांक को जिसको गिरवी रखे-सामान के ऋण को उसके द्वारा चुकता कर दिया गया था किंतु समय का चलना देयता के दिनांक से नहीं वरन् धरोहर के दिनांक से आरंभ होता है, अर्थात् वाद लाने के अधिकार के प्रोद्भूत हो चुकने से पूर्व। - 145

वे मामले जिनमें परिसीमा प्रारंभ नहीं होती भले ही वाद लाने का अधिकार प्रोद्भूत हो गया हो। धारा 6, 7, 8

1. ऐसे मामले होते हैं जहां एक व्यक्ति जिसे वाद लाने का अधिकार प्रोद्भूत हो गया है, उस दिनांक को जिसको वाद लाने का अधिकार प्रोद्भूत हुआ है, निर्योग्यता ग्रस्त है।
2. इस अपवाद के अनुसार समय उस व्यक्ति के विरुद्ध नहीं चलेगा जो

निर्योग्यता से ग्रस्त है। भले ही उस वाद को लाने का अधिकार प्रोद्भूत हो चुका है।

3. मात्र तीन प्रकार की निर्योग्यताएं मान्य हैं – (1) अशक्तता, (2) पागलपन, (3) जड़ता।

4. निर्योग्यता से ग्रस्त व्यक्ति के मामले में समय तब प्रारंभ होता है जब निर्योग्यता समाप्त हो जाती है।

5. जहां ये निर्योग्यताएं समवर्ती या उत्तरवर्ती रूप से प्रवर्तनशील हैं वहां परिसीमा तब प्रारंभ होती है जब ऐसी सभी निर्योग्यताएं समाप्त हो गई हैं।

6. जहां निर्योग्यता व्यक्ति की मृत्यु तक निरंतर बनी रहती है तब समय उसके विधिक प्रतिनिधि के विरुद्ध उसकी मृत्यु की दिनांक से आरंभ होगा।

7. यदि विधिक प्रतिनिधि व्यक्ति की मृत्यु तक निर्योग्यता के अधीन है तब तो समय प्रारंभ होगा जब विधिक प्रतिनिधि की निर्योग्यता समाप्त हो जाती है।

8. उन व्यक्तियों को जो संयुक्ततः परिसीमा के प्रारंभिक बिंदु पर वाद करने के लिए हकदार है निर्योग्यता का क्या परिणाम होगा। दो मामले अवश्य प्रभेदित होने चाहिए:–

(i) जहां उनमें से केवल कुछ निर्योग्यता के अधीन है।

(ii) जहां उनमें से सभी निर्योग्यता के अधीन है।

I. जहां केवल कुछ उनमें निर्योग्यता के अधीन है:–

(i) जहां निर्योग्यता अनाधीगत के अधीन नहीं है वहां पक्ष द्वारा प्रतिवादी को पूर्ण मुक्ति या छुटकारा दिया जा सकता है। निर्योग्यता के अधीन व्यक्ति की सहमति के बिना, उन सभी के विरुद्ध वाद लाने के अधिकार के प्रोद्भूत होने के समय का चलना प्रारंभ हो जाएगा।

(ii) जहां ऐसी मुक्ति नहीं दी जा सकती है वहां समय उनमें से किसी के विरुद्ध नहीं चलेगा जब तक कि निर्योग्यता समाप्त हो जाए या जब तक निर्योग्यता के अधीन व्यक्ति विषय वस्तु में अपने हित को छोड़ देता है।

II. वे मामले जिनमें सभी व्यक्ति जो वाद करने के लिए हकदार है किसी निर्योग्यता के अधीन है:–

(i) जहां सभी निर्योग्यता के अधीन है, तो धारा 6 में निर्धारित नियम लागू होगा।

(ii) जहां उनमें से एक का निर्योग्यता से पीड़ित होना समाप्त हो जाता है तो धारा 7 लागू होगी और शासी प्रश्न होगा कि यदि वह व्यक्ति जो अपनी निर्योग्यता से

मुक्त है उनकी जो अपनी निर्योग्यता से निरंतर पीड़ित है सहमति के बिना वैध अनुमुक्ति देता है। यदि उत्तर सकारात्मक है तो समय सभी के विरुद्ध उसी क्षण से चलना आरंभ करेगा। जब से व्यक्ति की निर्योग्यता लागू होने से रुक गई है। यदि उत्तर नकारात्मक है तब समय उनमें से तब तक किसी के विरुद्ध नहीं चलेगा। जब तक उन सभी का उनकी निर्योग्यता से पीड़ित होना समाप्त नहीं हो जाता है।

9. निर्योग्यता के अवसान के दिनांक से कितने समय के अंतर्गत उस व्यक्ति के द्वारा वाद अवश्य लाया जाना चाहिए जो जब उसके लिए वाद का अधिकार प्रोद्भूत होने पर निर्योग्यता के अधीन है।

1. इस प्रश्न के तीन उत्तर हैं:-

(i) वाद करने के अधिकार के प्रोद्भवन के दिनांक से अगणित किए जाने वाले समय से निर्धारित समय के अंतर्गत यदि निर्योग्यता के अवसान के बाद छूटा हुआ काल तीन वर्षों से अधिक है।

दृष्टांत- निर्धारित समय - 12 वर्ष अर्थात् 1920 से 1932

निर्योग्यता के वर्ष - 4 वर्ष अर्थात् 1924 से 1936

छूटा हुआ काल - 9 वर्ष। वाद अवश्य 1932 से पूर्व लाना चाहिए। उद्भवन से 12 वर्षों के अंतर्गत निर्धारित समय के अंतर्गत। उसको तनिक भी लाभ नहीं मिलता है। यहां तक कि समय उसके वाद करने के अधिकार के उद्भवन से आगणित किया जाता है।

(ii) निर्योग्यता के अवसान से अगणित निर्धारित समयावधि के अंतर्गत यदि निर्धारित समय तीन वर्षों से कम है।

उसको अपनी निर्योग्यता से कोई फायदा नहीं मिलेगा। अपितु उसका समय उसकी निर्योग्यता के अवसान की दिनांक से प्रारंभ हो जाएगा।

दृष्टांत - निर्धारित समय - 1 वर्ष 1920 से 1921

निर्योग्यता के वर्ष - 4 वर्ष प्रा. वि. 1924 रोध 1925

वाद 1925 में अवश्य लाना चाहिए।

(iii) निर्योग्यता के अवसान की दिनांक से तीन वर्षों के अंतर्गत यदि निर्योग्यता के अवसान के बाद छूटा हुआ समय तीन साल से कम है और निर्धारित समय तीन वर्षों से अधिक है।

निर्धारित कालावधि - 6 वर्ष 1920 से 1926

निर्योग्यता के वर्ष - 4 वर्ष 1924 से 1930

अवसान के वाद छोड़ा गया समय है - 2 वर्ष।

वाद अवश्य 1928 में लाना चाहिए निर्योग्यता के अवसान के बाद तीन वर्षों के अंतर्गत।

10. निर्योग्यता के इस प्रश्न के संबंध में कुछ बिंदु ध्यान में रखे जाएं।

(i) धारा केवल डिक्री के निष्पादन के लिए वादों एवं आवेदन पत्रों पर लागू होती है किंतु किन्हीं अन्य आवेदन पत्रों पर नहीं, न अपीलों के लिए।

(ii) धारा केवल तभी लागू होगी जब एक व्यक्ति वाद करने के अधिकार के प्रोद्भूत होने से पहले से ही एक निर्योग्यता के अधीन था। यदि निर्योग्यता बाद में अकस्मात् होती है तब धारा लागू नहीं होती है।

(iii) वादी के विरुद्ध समय का चलना प्रारंभ हो जाएगा चाहे यहां प्रतिवादी निर्योग्यता से पीड़ित है।

मौलिक नियम है कि परिसीमा, किसी व्यक्ति के विषय में, जो निर्योग्यता से पीड़ित नहीं है, स्तंभ 3 में वर्णित घटना के घटित होने की दिनांक से प्रारंभ होती है। यदि कोई घटना स्तंभ 3 में नहीं है तब उस दिनांक से वाद कारण का उद्भूत होना कहा जाता है।

मूल नियम - 11

1. जब एक बार समय चलना आरंभ हो जाता है तो कोई पश्चात्वर्ती वाद लाने की निर्योग्यता या असमर्थता उसे रोकती नहीं है।
2. इसका अर्थ है कि परिसीमा एक बार यह आरंभ करती है तो कभी निलंबित नहीं होती है। यदि एक व्यक्ति वाद करने के अधिकार के प्रोद्भूत हो चुकने के बाद पागल हो जाता है या मर जाता है, समय उनके विरुद्ध निरंतर चलता रहेगा।

(ii) क्या परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु केवल एक ही है? या क्या परिसीमा का एक नवीन प्रारंभिक बिंदु हो सकता है?

1. एक नवीन वादकारण की घटना एवं एक नवीन प्रारंभिक बिंदु की घटना के बीच प्रभेद अवश्य किया जाना चाहिए, यदि परिसीमा उसी वाद कारण के विषय में है। हम यहां उन वादों पर विचार कर रहे हैं जहां उसी वाद कारण के संबंध में परिसीमा का नवीन प्रारंभिक बिंदु होता है।
2. परिसीमा विधि का सामान्य नियम है कि वाद लाने के अधिकार के लिए परिसीमा का केवल एक प्रारंभिक बिंदु है और वह प्रारंभिक बिंदु उस दिन दिनांकित होता है जब वाद लाने का अधिकार पैदा होता है।
3. तीन मामलों में उसी वादकारण के लिए परिसीमा का नया प्रारंभिक बिंदु होता है:–

(i) जहां अभिस्वीकृति है।

(ii) जहां आंशिक भुगतान है।

(iii) जहां वाद कारण एक संविदा के निरंतर भंग होने से उद्भूत होता है या संविदा से स्वतंत्र एक निरंतर दोष से उद्भूत होता है।

धारा - 19 - अभिस्वीकृति

1. सामान्यतया

1. अभिस्वीकृति परिसीमा की समयावधि के वास्तविक प्रवर्तित होने से पूर्व अवश्य की जानी चाहिए। समयावधि के प्रवर्तित हो चुकने के बाद की गई अभिस्वीकृति किसी उपयोग की नहीं और परिसीमा का एक नवीन प्रारंभिक बिंदु नहीं दे सकती है।
2. अभिस्वीकृति लिखित हो।
3. अभिस्वीकृति उत्तरदायी पक्ष या दायित्व की अभिस्वीकृति पर हस्ताक्षर करने के लिए उचितत: अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा हस्ताक्षरित हो।
4. अभिस्वीकृति लेनदार के प्रति होनी आवश्यक नहीं।
5. अभिस्वीकृति में विद्यमान दायित्व की स्वीकारोक्ति अवश्य हो। इसमें अदा करने के वायदे का होना आवश्यक नहीं है। वास्तव में यह अदा करने की इंकारी या मंजूरी करने के दावे के साथ जोड़ी जा सकती है।

II. धारा 21 (2) संयुक्त रूप से उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा अभिस्वीकृति

1. जब संपत्ति या अधिकार का दावा ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध किया जाता है जो संयुक्त रूप से उत्तरदायी है जैसे संयुक्त-ठेकेदार, भागीदार, निष्पादक, बंधक, बंधकियों आदि तो अभिस्वीकृति उनमें से एक या किसी एक के अभिकर्ता द्वारा शेष को प्रभार्य बना देता है।

III. धारा 21 (3) हिन्दू विधवा द्वारा अभिस्वीकृति

हिन्दू विधवा या अन्य सीमित स्वामी द्वारा अभिस्वीकृति उत्तरभोगियों पर बाध्यकारी होगी।

धारा 21 (3) हिन्दूकर्त्ता द्वारा अभिस्वीकृति।

वहां संयुक्त हिन्दू परिवार के कर्ता (या उसके अभिकर्ता) द्वारा हस्ताक्षरित जहां अभिस्वीकृति समग्र परिवार द्वारा या उसके पक्ष में उपगत दायित्व के संबंध में है, अभिस्वीकृति समग्र परिवार पर बाध्यकारी होगी।

6. ब्रिटिश भारत में दंड प्रक्रिया-विधि

1. यू.एस.ए. (संयुक्त राज्य अमरीका) के संविधान में एक खंड इस प्रकार है:-

"किसी भी नागरिक के प्राण, स्वतंत्रता एवं संपत्ति विधि की सम्यक प्रक्रिया से

वंचित नहीं किए जाएंगे।"

ऐसा खंड अन्य राज्यों के संविधान में नहीं पाया जाता है। तथापि सभी सम्य राज्य के अपने नागरिकों के प्राण, स्वतंत्रता एवं संपत्ति की अनपेक्षित आक्रमणों से रक्षा करना चाहते हैं।

इस प्रकार की प्रत्याभूति सभी राज्यों की बुनियाद है। इस उद्देश्य के साथ प्रत्येक राज्य की विधि संहिता होती है, जो अपराधों/दोषों को परिभाषित करती है। भारत में दंड संहिता और अपकृत्य विधि है।

2. दोष या तो सिविल होता है या आपराधिक।

कुछ दोष सिविल एवं आपराधिक दोनों ही होते है।, हमला मान-हानि: ये सिविल एवं आपराधिक दोनों प्रकार के दोष हैं। व्यथित पक्ष दंड-न्यायालय एवं सिविल-न्यायालय दोनों में कार्यवाही कर सकता है।

3. उपचार : यदि प्रत्येक दोष के लिए समुचित उपचार का प्रावधान किया जाए तो मात्र दोषों को, अधिनियमित करने का कोई उपयोग नहीं होगा। दूसरी ओर यह कहा जा सकता है कि विधि दोष केवल तभी अभिज्ञात करती है जब वह उसके निवारण के लिए प्रावधान कर लेती है। जब एक आपराधिक कृत्य के लिए उपचार का प्रावधान नहीं किया जाता है तो दोष का अधिनियमन निरर्थक होगा।

व्यक्ति की स्वतंत्रता और बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट

4. दंड प्रक्रिया संहिता उपचारीय विधि है। यह अपराधी द्वारा किए गए आपराधिक दोष के विरुद्ध व्यथित पक्ष के लिए उपचार का प्रावधान करती है।

यह एक सामान्य धारणा है कि विधि किसी निर्दोष व्यक्ति को दंडित करने के बजाए दस अपराधी व्यक्तियों को छोड़ना अनुमत करती है।

यह नितांत गलत है। विधि मात्र यह कहती है कि विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार अतिरिक्त किसी व्यक्ति का विचारण नहीं किया जाएगा।

5. दंड प्रक्रिया निर्धारित करती है:-

(1) दंड न्यायालयों का गठन।

(2) साधन एवं पद्धति जिसके द्वारा अभियुक्त को उसके विचारण के लिए न्यायालय के समक्ष लाया जा सके।

(3) अभियुक्त के विचारण के नियम।

(4) दंड विषयक नियम, एवं

(5) अभियुक्त के विचारण दोषसिद्ध एवं दंड में त्रुटि को ठीक करने के नियम।

* * * * *

1. दंड न्यायालयों का गठन

7. इस विषय को उचित रूप से समझने के लिए प्रेसीडेंसी नगर व्यवस्था और प्रांतीय-व्यवस्था के बीच प्रभेद को जान लेना आवश्यक है। इस प्रकार का प्रभेद भारत में अन्य विधियों के विषय में भी प्रायः किया जाता है। जैसे:

दिवाला -

(1) प्रेसीडेंसी नगर दीवाला अधिनियम।

(2) प्रांतीय दीवाला अधिनियम।

लघुवाद -

(1) प्रेसीडेंसी नगर लघुवादी न्यायालय अधिनियम।

(2) प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम।

(अ) प्रांतीय व्यवस्था

1. सेशन न्यायालय

धारा - 7 (1)

8. (1) प्रत्येक प्रांत एक सत्रीय खंड होगा या एक से अधिक सत्री खंडों में विभाजित होगा। प्रत्येक सत्रीय खंड जिला या एक से अधिक जिलों के साथ संलग्न होगा।

धारा 9 (3)

3. किसी भी सत्रीय खंड के लिए एक या अधिक *सत्रीय* न्यायालयों में अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अपर सेशन न्यायाधीश या सहायक सेशन न्यायाधीश हो सकते हैं।

धारा 9(2)

4. सेशन न्यायालय अपनी बैठक ऐसे स्थान या स्थानों पर आयोजित करेगा जिसे (एल.जी.) स्थानीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचित करे।

धारा 9(4)

5. एक खंड के सेशन न्यायाधीश को दूसरे खंड में अपर सेशन न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है, वह वहां के खंडों में वादों का निपटान करेगा।

2. मजिस्ट्रेट न्यायालय

9. 1. जिला मजिस्ट्रेट

धारा 10

(1) प्रत्येक जिले में प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट होगा जो जिला मजिस्ट्रेट

कहलाएगा।

(2)प्रथम श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट अपर जिला मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त किया जा सकता है।

2. उप-खंड मजिस्ट्रेट

धारा 8(1)

10. एक जिला उपखंड में उपविभाजित किया जा सकता है।

धारा 13(1) एवं (2)

प्रथम या द्वितीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट उपखंड का प्रभारी बनाया जा सकता है और (वह) उपखंड/परगना मजिस्ट्रेट कहलाएगा।

(3) अवर/अधीनस्थ मजिस्ट्रेट

धारा 12 (1)

11. प्रत्येक जिले में जिला मजिस्ट्रेट के अतिरिक्त प्रथम, द्वितीय या तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट आवश्यकतानुसार नियुक्त किए जा सकते हैं।

वे ऐसे स्थानीय क्षेत्र में अधिकारिता का प्रयोग करेंगे, जैसा कि प्रत्येक के संदर्भ में परिभाषित होगा।

धारा 12(2)

यदि ऐसा कोई क्षेत्र नियत नहीं किया जाता है तो उनकी अधिकारिता एवं शक्ति समग्र उप खंड/परगना में व्याप्त होंगी।

3. जिला मजिस्ट्रेट और प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट

संहिता (कोड) प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी मजिस्ट्रेट के सिवाए किसी विशिष्ट न्यायालय के जिला मजिस्ट्रेट के न्यायालय के रूप में मान्यता प्रदान नहीं करती है।

जहां अनुवीक्षण स्थानापन्न जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रारंभ किया गया, उसके समापन से पूर्व वह अपने मौलिक पद, प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के रूप में प्रत्यावर्तित कर दिया गया, वह किस हैसियत से अधिकारिता का प्रयोग उस अपराध पर करेगा, जो निर्णीत हुआः उसको अनुवीक्षण को निरंतर रखने की अधिकारिता है।

सम्राट बनाम सैयद सज्जाद हुसैन 3 ए.एल.जे. 825

11. जहां तक मौलिक अधिकारिता का संबंध है, जिलाधिकारी खंड के बाहर किए गए अपराध के संबंध में जो कुछ कर सकता था परंतु एक उपखंड मजिस्ट्रेट अपनी स्थानीय अधिकारिता में ही अनुवीक्षण करने में सक्षम होता है। 4 ए - 366

4. विशेष मजिस्ट्रेट

धारा–14(1)

12. (1) किसी भी स्थानीय क्षेत्र में लोग प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी मजिस्ट्रेट की शक्तियों से, किसी विशेष वादों या वादों की श्रेणियों के विषय में सामान्यतः वादों के संबंध में, संपन्न किए जा सकते हैं।

(2) विशेष मजिस्ट्रेट कहलाने के लिए और विशेष पद निर्धारित करने के लिए।

(3) ऐसा एक व्यक्ति उसके नियंत्रण में एक अधिकारी हो सकता है।

(4) यदि वह एक पुलिस अधिकारी है, वह सहायक जिला अधीक्षक से नीचे का नहीं होगा, और उसके लिए जो आवश्यक है उससे अधिक कोई शक्ति नहीं होगी :

(i) शांति बनाए रखना।

(ii) अपराध रोकना।

(iii) मजिस्ट्रेट के समक्ष लाने के लिए अपराधियों को खोजना।

(iv) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा उस पर अधिरोपित अन्य कर्त्तव्यों का उसके द्वारा निर्वहन।

5. न्यायपीठ मजिस्ट्रेट

धारा 15(1)

13. कोई दो या अधिक मजिस्ट्रेट न्यायपीठ के रूप में एक साथ बैठ सकते हैं और केवल ऐसे वादों या वादों के वर्गों को सुन सकते हैं जो ऐसी स्थानीय परिधियों में विधि द्वारा इसके लिए निर्धारित हों।

6. प्रांतीय व्यवस्था में विभिन्न न्यायालयों का संबंध

धारा 17(2)

14. एक उपखंड में प्रत्येक न्यायपीठ एवं प्रत्येक मजिस्ट्रेट उपखंड मजिस्ट्रेट के अधीन होगा। उपखंड में जिला मजिस्ट्रेट की अधिकारिता समन्वयात्मक है। 4 इलाहाबाद 366

वह मजिस्ट्रेट जो एक उपखंड मजिस्ट्रेट (एस.डी.एम.) के अधीन है (डी.एम.) जिला मजिस्ट्रेट के भी अधीन होगा। न्यायपीठ एवं मजिस्ट्रेट उपखंड मजिस्ट्रेट सहित सभी जिला मजिस् ट्रेट के अधीन है।

धारा 10(3)

एक अपर जिला मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट के अधीन केवल निम्न प्रयोजन के लिए होगा:–

(i) धारा 192 (1)

(ii) धारा 40 (2)

(iii) धारा 528 (2) एवं (3)

धारा 17 (3)

सभी सहायक सत्रीय न्यायाधीश, सत्रीय न्यायाधीश के अधीन है। जिसकी अधिकारिता में वे अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हैं।

15. अधीनस्थ - (1) पंक्ति में अवर

9 बंबई 100

8 मद्रास 18 (एफ.बी.)

(2) न्यायिक के साथ ही कार्यकारी शक्तियों में अवर

2 इलाहाबाद, 205 (एफ.बी.)

9 बंबई - 100 - अधीनता के बिना अवरता हो सकती है, किंतु बिना अवरता के अधीनता नहीं हो सकती, चूंकि अधीन का अभिप्राय है पंक्ति में अवर।

धारा 17 (5)

न तो जिला मजिस्ट्रेट न मजिस्ट्रेट एवं न्यायपीठ सत्रीय न्यायाधीश के अधीन होंगे सिवाए संहिता (कोड) में स्पष्ट प्रावधानों के।

सत्रीय न्यायाधीश के अधीन केवल धारा - 123, 193, 195, 408, 431, 436, 437 के प्रयोजन के लिए हैं। यदि सत्रीय न्यायाधीश नियमित करता है कि दलालों को न्यायालय में प्रवेश नहीं होने देना चाहिए, तो यह मजिस्ट्रेट वर्ग पर लागू नहीं होगा।

जहां तक कार्य के विनियमन का संबंध है अधीनस्थ का अभिप्राय मात्र अधीनस्थ नहीं है। अधीनस्थ का यह भी अर्थ है न्यायिकतः पंक्ति में अवर अर्थात् कोई न्यायालय जिस पर एक दूसरा न्यायालय धारा 435 के अधीन कार्यवाही कर सकता ळै (अभिलेख का रखरखाव करें एवं आदेश पारित करें)।

9 बंबई 100

ब - प्रेसीडेंसी नगर-व्यवस्था

1. मजिस्ट्रेट वर्ग

धारा 18(1)

16. हर एक प्रेसीडेसी नगर में प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य करने के लिए पर्याप्त संख्या में लोगों को नियुक्त किया जाएगा।

प्रत्येक नगर के लिए नियुक्त किए गए में से एक को मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया जाएगा।

कोई भी व्यक्ति अपर मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त किया जा सकेगा।

धारा - 19

17. कोई भी दो या अधिक प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट एक न्यायपीठ के रूप में एक साथ बैठ सकते हैं।

धारा - 21

2. मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के साथ प्रेसीडेंसी का संबंध

18. वह अपने अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों को नियंत्रित करने वाले जिला मजिस्ट्रेट की भांति है।

इस प्रकार की अधीनता/अवरता का परिणाम स्थानीय सरकार द्वारा घोषित किया जाएगा।

नियंत्रण:

(1) न्यायालयों में आचरण एवं कार्य पद्धति का अंतर।

(2) न्यायपीठों का गठन।

(3) समय एवं स्थान की व्यवस्था करना जहां पर न्यायपीठ बैठेगी।

(4) मतान्तरों को तय करना।

18 बंबई सरकार ने परिभाषित किया है कि प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के अधीन होगा।

1 बंबई एल.आर. 437

उच्च न्यायालय

19. इन दंड न्यायालयों के साथ-साथ हमारे यहां उच्च न्यायालय है। उच्च न्यायालयों की स्थापना 1861 में पार्लियामेंट (इंग्लैंड-संसद) द्वारा पारित अधिकार पत्र अधिनियम में निहित है।

धारा 1 द्वारा लैटर्स पेटेंट द्वारा साम्राज्ञी को बंगाल में कलकत्ता में, बंबई में बंबई के लिए और मद्रास में मद्रास के लिए उच्च न्यायालय बनाने एवं स्थापित करने के लिए शक्ति संपन्न किया गया।

धारा 9

इस अधिनियम की धारा 106 के अधीन स्थापित प्रत्येक उच्च न्यायालय ऐसे सभी सिविल, दंडिक, सागरीय न्यायाधिकार, उपसमुद्री न्यायाधिकरणीय दित्सापत्रीय/वसीयती, एवं वैवाहिक आरंभिक एवं अपीलीय अधिकारिता और सभी इस प्रकार शक्तियां एवं प्राधिकार के लिए एवं न्याय प्रशासन के संबंध में जो उस प्रेसीडेंसी में, जिसमें यह स्थापित किया जाता है, को महामहिम सम्राट प्रदान एवं निदेशित करें।

उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति

3 पट एल.जे. 581.7 बी

शिव नंदन बनाम सम्राट।

1. उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्तियां 1861 के अधिनियम की धारा 15 (धारा 107 - भारत शासन अधिनियम) अपीलीय अधिकारिता के अधीन न्यायालयों तक सीमित है।
2. किंतु जहां उच्च न्यायालय यहां तक कि एक अवर न्यायालय से किंचित रुपांतरित रूप में अधिकारिता रखता है, वह उन वादों में भी जो अपील के अधीन नहीं है उस अवर न्यायालय पर अधीक्षण रखेगा।
3. विचार करने के लिए वादों के तीन वर्ग हैं:-

(अ) जहां अवर न्यायालय उच्च न्यायालय की अपीली अधिकारिता के अधीन है वहां कुछ मामलों में मात्र अधीक्षण का अधिकार विद्यमान है और इसका निष्पादन उन वादों तक सीमित नहीं है जहां अपील का अधिकार उच्च न्यायालय को होता है। अधीक्षण की विशेष शक्ति का प्रयोग नियमित रूप से उन वादों में जहां अन्य कार्यवाहियों द्वारा उपयुक्त उपचार, जिसे अपील या पुनरीक्षण नियम के तौर पर नहीं किया जाता है।

(ब) उन वादों में जिनमें उच्च न्यायालय को अधीनस्थ के ऊपर पुनरीक्षण शक्ति प्राप्त है या उच्च न्यायालय को निर्देश करने की शक्ति विद्यमान है, किंचित रुपांतरित अपील का विद्यमान होना कहा जाता है।

(स) अधीक्षण की शक्ति उच्च न्यायालय को अधिनियम के द्वारा प्रदान की जा सकती है। धारा 15 चार्टर अधनियम से स्वतंत्रत: अवर न्यायालयों को गठित करके।

4. उच्च न्यायालय के अधीक्षण के अधीन हुए बिना भी न्यायालय स्थापित किया जा सकता है।

उच्च न्यायालय का अन्य दंड न्यायालयों से संबंध

धारा 15, 107

प्रत्येक उच्च न्यायालय को अधीक्षण की शक्ति होगी, जो उसकी अपीली अधिकारिता के अधीन हो सकती है, और उसको जवाब आदि मंगाने की शक्ति होगी।

उसकी अपीलीय अधिकारिता के अधीन कौन से न्यायालय हैं?

लैटर्स पेटेंट

उच्च न्यायालय प्रेसीडेंसी में दंड न्यायालयों के विरुद्ध अपील न्यायालय होगा।

3 पट एल.जे. 5817 – बी. शिवनंदन बनाम सम्राट

दो प्रश्न –

(1) क्या उच्च-न्यायालय को अधीक्षण की शक्ति है उसको अपील की शक्ति नहीं है बल्कि केवल पुनरीक्षण या निर्देश की शक्ति है?

(2) क्या प्रेसीडेंसी में ऐसा दंड-न्यायालय हो सकता है जो उसकी अधीक्षण शक्ति के अधीन नहीं होगा?

अधिकारिता की स्थानीय सीमाएं :-

10. (1) जिला मजिस्ट्रेट की जिला है।

11. (2) उपखंड मजिस्ट्रेट की उपखंड है।

12. (3) अवर मजिस्ट्रेट का, ऐसा क्षेत्र जैसा कि स्थानीय सरकार निर्धारित करे।

14. (4) विशेष मजिस्ट्रेट, ऐसा स्थानीय क्षेत्र जो स्थानीय सरकार निर्धारित करे।

20. (5) प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट की।

प्रत्येक प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, प्रेसीडेंसी नगर में जिसके लिए वह नियुक्त किया गया है सभी जगहों में अधिकारिता का प्रयोग करेगा और ऐसे नगर के अंदर के बंदरगाह एवं कोई नाव परिवहन के योग्य नदी या नहर वहां तक आती हुई की सीमा तक चूंकि ऐसी सीमाएं विधि में परिभाषित है।

(6) सेशन न्यायाधीश की उसके सेशन खंड में।

(7) उच्च न्यायालय।

लैटर्स पेटेंट द्वारा प्रदत्त दांडिक मामलों में क्या शक्तियां हैं?

22. लैटर्स पेटेंट निर्देशित करता है कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता निम्नानुसार

होगी:-

उच्च न्यायालय की दांडिक अधिकारिता -

असाधारण लैटर्स पेटेंट

साधारण	असाधारण	लैटर्स पैरा पेटेंट पैरा
लैटर्स पेटेंट पैरा	लैटर्स पेटेंट पैरा	27, 28, 29
22 एवं 23	24	

23. **साधारण आरंभिक दांडिक अधिकारिता :-** उच्च न्यायालय की आरंभिक दांडिक अधिकारिता स्थानीय सामान्य आरंभिक सिविल अधिकारिता की सीमाओं के अंतर्गत होगी।

24. **असाधारण आरंभिक दांडिक अधिकारिता :-** उच्च न्यायालय की असाधारण आरंभिक दांडिक अधिकारिता उसके अधीक्षण के अधीन किसी भी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर के स्थानों में होगी।

25. **अपीलीय दांडिक अधिकारिता :-** उच्च न्यायालय अपने अधीक्षण के अधीन प्रेसीडेंसी और सभी अन्य न्यायालयों के विरुद्ध अपील न्यायालय होगा और प्रवर्तन में किसी विधि के आधार पर ऐसे वादों में जो कथित उच्च न्यायालय की अपील के अधीन है, अधिकारिता का प्रयोग करेगा।

फरार बंदी दंडादेश

धारा - 396

(1)जब एक फरार बंदी पर दंडादेश पारित किया जाता है, तब ऐसा आदेश यदि मृत्यु या जुर्माना, या कोड़े लगाना हो तो इसके बाद अंकित प्रावधानों के अधीन रहते हुए तुरंत प्रभावी होगा और यदि जेल में हो तो दंडनीय अधिसेवित या कालापानी निम्न नियमानुसार प्रभावी होगा - अर्थात् -

2. यदि नवीन दंडादेश, अपनी प्रकार का उस दंडादेश से जिसके अधीन बंदी जेल भुगत रहा था, कठोर हैं, जब वह फरार हुआ था तो नवीन दंडादेश तुरंत प्रभावी होगा।

3. जब नवीन दंडादेश उस दंडादेश से जिसे ऐसा बंदी जो वह फरार हुआ था भोग रहा था कठोर नहीं है। तो नवीन दंडादेश उसकी सजा पूरी होने के बाद प्रभावी होगा; दंडनीय अधिसेविता या कालापनी, जैसी भी स्थिति हो, आगे अवधि के लिए उसके बराबर हो, जो उसके फरार के समय पर उसके पूर्व दंडादेश के व्यतीत होने में शेष रह गया था।

स्पष्टीकरण : इस धारा के प्रयोजन के लिए :-

(अ) निर्वासन या दंडनीय अधिसेविता का दंडादेश, बंदीकरण के आदेश से कठोरतर समझा जाएगा :

(ब) एकांतवास के साथ ही कारावास का आदेश, उसी वर्णन के एकांतवास के साथ कारावास के आदेश से कठोरतर समझा जाएगा; और

(स) कठोर कारावास का दंडादेश एकांतवास सहित या बिना साधारण कारावास के दंडादेश से कठोरतर समझा जाएगा।

397. पहले से ही सजा भुगत रहे व्यक्ति पर दंडादेश:-

जब कोई व्यक्ति पहले से ही कारावास के दंडनीय अधिसेवित या निर्वासन कारावास के दंड को भोग रहा है और उसे कारावास दंडनीय अधिसेवित या निर्वासन की सजा दी जाती है तो ऐसा कारावास दंडनीय अधिसेविता या निर्वासन के समाप्त होने पर प्रारंभ होगा जब तक कि न्यायालय निर्देशित न करे कि यदि वह कारावास भुगत रहा है और पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि निर्वासन के लिए है तो न्यायालय अपने सविवेकाधिकार द्वारा निर्देशित कर सकता है कि पश्चात्वर्ती दंडादेश तुरंत लागू होगा या उस कारवास की समाप्ति पर, जिसके लिए वह पूर्णत: दंडादेश तुरंत लागू होगा या उस कारावास की समाप्ति पर जिसके लिए वह पूर्णत: दंडादेशित किया गया है: शर्त यह भी है कि जहां कोई व्यक्ति धारा 123 के अधीन एक आदेश द्वारा प्रतिभूत कारावास के लिए दंडादेशित है, वह पूर्वकृत अपराध के लिए सजा भुगत रहा है, पश्चात्वर्ती दंडादेश तुरंत प्रारंभ होगा।

398-(1) धारा 396 या 397 में किसी बात से किसी व्यक्ति को, जिसके लिए वह पूर्ण की या बाद की दोषसिद्धि के लिए उत्तरदायी है, दंड का कोई भी भाग माफ नहीं किया जाएगा।

(2) 399 युवा अपराधियों का सुधार गृहों में परिरोध।

(पांडुलिपि में पृष्ठ खाली है - संपादक)

दंडादेशों का निलंबन परिहरण एवं लघुकरण

(पांडुलिपि में पृष्ठ खाली छूटा हुआ है - संपादक)

धारा 401

सपरिषद वायसराय या स्थानीय सरकार किसी दंडादेश को शर्त पर या बिना शर्त निलंबित या परिहरित कर सकता है।

(पांडुलिपि में पृष्ठ खाली छूटा हुआ है - संपादक)

धारा 402

किसी अन्य वर्णित के लिए दंडादेशों को लघुकृत करने की शक्ति।

(पांडुलिपि में पृष्ठ खाली छूटा हुआ है - संपादक)

4. शक्तियों का पुष्टिकरण, निरंतरण एवं निरस्तीकरण

धारा 39

1. इस संहिता के अधीन शक्तियों की पुष्टि करने के लिए स्थानीय सरकार आदेश द्वारा व्यक्तियों को विशेषत: नाम से या उनके पद या अधिकारियों की श्रेणियों के आधार पर सामान्यत: उनके शासकीय पदों से शक्ति संपन्न कर सकती है।

2. प्रत्येक ऐसा आदेश उस दिनांक से, जिस पर वह इस शक्ति संपन्न किए गए व्यक्ति को संसूचित किया जाता है, प्रभावी होगा।

धारा 40

जब कभी कोई व्यक्ति जो सरकारी सेवा में कोई पद धारण कर रहा है, जिसमें संहिता के अधीन किसी स्थानीय क्षेत्र में शक्तियां निहित की गई हैं, एक समान या उच्चतर उसी प्रकृति के पद पर उसी स्थानीय सरकार के अधीन एक स्थानीय क्षेत्र के अंतर्गत नियुक्त किया जाता है तो वह जब तक कि स्थानीय सरकार अन्यथा निर्देशित न करे या अन्यथा निर्देशित नहीं कर चुकी हो, उसी स्थानीय क्षेत्र में जिसमें वह इस प्रकार नियुक्त किया गया है उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करेगा।

धारा 41

1. स्थानीय सरकार इस संहिता के अधीन उसके या उसके अधीन अधिकारों द्वारा किसी व्यक्ति को प्रदत्त सभी या किसी शक्ति को वापस ले सकती है।

2. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदत्त कोई भी शक्तियां जिला मजिस्ट्रेट द्वारा वापस ली जा सकती है।

अभिसाक्ष्य में साक्षी द्वारा किया गया कथन परिवाद नहीं है।

(पांडुलिपि में पृष्ठ खाली छूटा हुआ है- संपादक)

* * * * *

भाग - 2
अपराधी का विचारण

1. अपराध का संज्ञान लेना

जब अपराध किया जा चुका हो तो ऐसी सूक्तियां हैं जिनके द्वारा मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान ले सकता है।

धारा 190

(अ) तथ्य, जो इस प्रकार के अपराध को संघिटित करते हैं, का परिवाद पाने पर।

(ब) किसी पुलिस अधिकारी द्वारा की गई ऐसे तथ्यों की रिपोर्ट पर।

(स) किसी पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति की सूचना या अपने प्रज्ञान पर या संदेह पर कि ऐसा अपराध किया गया है।

(अ) मजिस्ट्रेट को परिवाद

1. परिवाद का अभिप्राय - मजिस्ट्रेट को मौखिक या लिखित रूप में किया गया अभिकथन, दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन, उसके द्वारा वाद करने के दृष्टिकोण से कि क्या कोई व्यक्ति ज्ञात या अज्ञात अपराध कर चुका है किंतु इसमें पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट सम्मिलित नहीं है।

परिवाद में यह अवश्य अभिकथित किया जाए कि अपराध किया जा चुका है।

धारा 107 के अधीन कार्यवाही करने के लिए प्रार्थनापत्र परिवाद नहीं है।

परिवाद अवश्य मजिस्ट्रेट के समक्ष होना चाहिए : उसके द्वारा कार्यवाही करने की दृष्टि से होना चाहिए।

उसके द्वारा कोई कार्यवाही करने को कहने के आशय के बिना सूचना के तौर पर मजिस्ट्रेट से किया कथन परिवाद नहीं है।

उदाहरणार्थ, सहायक कलक्टर द्वारा एक पक्ष के विरुद्ध शिकायत करते हुए जिला मजिस्ट्रेट से मात्र आदेशार्थ प्रार्थना परिवाद नहीं थी।

40 ए.एल. 641

इस संहिता के अधीन कार्यवाही किए जाने की दृष्टि से हो।

इस संहिता के अधीन नहीं वरन् बंबई धूत अधिनियम 1887 की धारा 6 के अधीन कार्यवाही करने हेतु प्रेरित करने के उद्देश्य से मजिस्ट्रेट को दिया गया बयान इस धारा के अर्थ के अंतर्गत परिवाद नहीं है।

15 सी.आर.एल.एफ. 657

II. कौन परिवाद कर सकता है?

सामान्य नियमानुसार पीड़ित व्यक्ति परिवादी होता है।

किंतु परिवादी दांडिक कार्यवाही आरंभ करने के लिए आवश्यक पक्ष नहीं है।

मजिस्ट्रेट प्राप्त सूचना पर या अपनी जानकारी पर कार्यवाही कर सकता है।

यदि वह इस प्रकार कार्यवाही करता है तो वह धारा 491 के प्रावधानों से आबद्ध होगा।

किंतु सामान्य नियम के अपवाद हैं।

ये अपवाद धाराओं 195 से 199 में मिलेंगे।

धाार 195 निम्न के बारे में है -

(अ) लोक सेवकों को विधिक प्राधिकार की अवमानना के लिए अभियोजन।

(ब) लोक न्याय के कुछ अपराधों का अभियोजन।

(स) साम्य में दिए गए विलेखों से संबंधित कुछ अपराधों का अभियोजन।

(अ) के अधीन आने वाले मामलों में कोई न्यायालय संज्ञान नहीं लेगा, सिवाए संबंधित लोक सेवक या किसी अन्य लोक सेवक जिसके वह अधीन है, के लिखित परिवाद पर।

(ब) के अधीन आने वाले मामलों में कोई न्यायालय संज्ञान नहीं लेगा, सिवाए ऐसे न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय के जिसके वह अधीन है, लिखित परिवाद पर।

(स) के अधीन आने वाले मामलों में (कोई न्यायालय संज्ञान नहीं होगा) सिवाए ऐसे न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय के जिसके ऐसा न्यायालय अधीन है, के लिखित परिवाद पर।

धारा 196 राज्य के विरुद्ध अपराधों के लिए अभियोजन

जब तक कि सपरिषद् गवर्नर जनरल स्थानीय सरकार या सपरिषद में गवर्नर जनरल द्वारा इस हेतु शक्ति संपन्न किसी अधिकारी के आदेश द्वारा या उसके प्राधिकार से परिवाद न किए जाने पर।

धारा 196 अ

भारतीय दंड संहिता की धारा 120 ख के अधीन आने वाले आपराधिक षड्यंत्र के कुछ वर्गों के लिए अभियोजन।

यदि वे उपधारा (1) के अधीन आते हैं तब

परिवाद सपरिषद् वायसराय, स्थानीय सरकार या सपरिषद् में वायसराय द्वारा इस हेतु शक्ति संपन्न किसी अधिकारी के आदेश या उससे किसी प्राधिकार के अधीन हो।

यदि वे उपधारा (2) के अधीन आते हैं तो मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट कार्यवाहियां प्रारंभ करने के लिए लिखित आदेश द्वारा सम्मति दे दी हो।

धारा 197

अपने अभिकथित पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में काम करते हुए या तात्पर्यिक मजिस्ट्रेटों एवं लोक सेवकों का अभियोजन।

कोई न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान तभी लेगा जब स्थानीय सरकार की सम्मति ले ली गई हो। अन्यथा नहीं।

(2)ऐसी स्थानीय सरकार उस व्यक्ति को जिसके द्वारा उस पद्धति को जिसमें अपराध या अपराधों को, जिनके लिए ऐसे न्यायाधीश आदि का अभियोजन तय कर सकती है, किया जाता है और इस न्यायालय के जिसके समक्ष विचारण किया जाना है विनिर्दिष्ट कर सकती है।

धारा 198

संविदा भंग या मान हानि या विवाह के विरुद्ध अपराधों के लिए अभियोजन। कोई संज्ञान नहीं, सिवाय ऐसे अपराधों से पीड़ित किसी व्यक्ति द्वारा किए गए परिवाद पर। परंतुकः कुछ मामलों में कोई अन्य व्यक्ति न्यायालय की अनुमति के साथ उस (पु.) या उस (स्त्री) की ओर से परिवाद कर सकता है।

धारा 199

जारकर्म या एक विवाहित नारी को फुसलाने के लिए अभियोजन – कोई संज्ञान नहीं सिवाए ऐसी स्त्री के पति या उसकी अनुपस्थिति में न्यायालय की अनुमति के साथ, किसी व्यक्ति के, जो ऐसे व्यक्ति की देखरेख उस (पति) की ओर से करता था जब अपराध किया गया था के द्वारा परिवाद करने पर।

पुलिस रिपोर्ट

यह किस प्रकार प्रारंभ की जाती है।

यह तथाकथित प्रथम सूचना से प्रारंभ होती है। सूचना सामान्यतः पीड़ित पक्ष द्वारा दी जाती है। किंतु यह किसी भी पक्ष द्वारा दी जा सकती है। यहां तक कि एक पुलिस अधिकारी अपने प्रज्ञान पर आधारित ऐसी सूचना दे सकता है। यही नहीं, वरन् कुछ मामलों में, कुछ व्यक्तियों को विधि सूचना देने के लिए बाध्य करती है।

धारा 44

प्रत्येक व्यक्ति कुछ अपराधों की सूचना मजिस्ट्रेट या पुलिस को देगा।

धारा 45

पुलिस को दी गई सूचना में संज्ञेय अपराधों या असंज्ञेय अपराधों का हवाला दिया जा सकता है।

संज्ञेय अपराध वह है जिसमें पुलिस बिना वारंट के गिरफ्तार कर सकती है।

असंज्ञेय अपराध वह है जिसमें पुलिस बिना वारंट के गिरफ्तार नहीं कर सकती है।

धारा 154

संज्ञेय अपराध के संबंध में सूचना यदि थानाध्यक्ष को मौखिक दी गई तो उसके द्वारा लिपिबद्ध की जाएगी या उसके निर्देशन में लेखबद्ध की जाएगी और सूचना देने वाले को पढ़कर सुना दी जाएगी और ऐसी हर एक सूचना चाहे लिखित रूप में दी गई या पूर्वोक्ति के समान लेखबद्ध की गई हो, उसे देने वाले को दी जाएगी और उसकी अंतवस्तु एक पुस्तक में लेखबद्ध की जाएगी जो ऐसे अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में जैसा कि स्थानीय सरकार इस संबंध में निर्धारित करके रखा जाए।

धारा 155

असंज्ञेय अपराध के संबंध में सूचना

वह ऐसी सूचना के सारांश को वहां रखी हुई पुस्तक में लेखबद्ध करेगा और सूचना देने वाले को मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।

कोई पुलिस अधिकारी असंज्ञेय अपराध का, ऐसे वाद का विचारण करने या उसे विचारण के लिए सुपुर्द करने की शक्ति रखने वाले प्रथम या द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट या प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बिना अन्वेषण नहीं करेगा।

धारा 156

पुलिस थाने का कोई भी प्रभारी अधिकारी, किसी भी संज्ञेय अपराध का जिसे उस थाने के अधिक्षेत्र की सीमा के अंतर्गत मजिस्ट्रेट जांच करने की शक्ति रखता हो, के आदेश के बिना अन्वेषण कर सकता है। पुलिस प्रतिवेदन जो एक मजिस्ट्रेट द्वारा वाद का आधार हो सकता है, संज्ञेय अपराध से संबंधित सूचना पर आधारित होता है।

धारा 157

यदि प्राप्त सूचना से अर्थात् धारा 154 के अधीन अधिकारी संज्ञेय अपराध के घटित होने में संदेह का कारण रखता है :-

(1) वह इस प्रतिवेदन को उसका संज्ञान लेने की शक्ति से संपन्न मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा;

(2) मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों का अन्वेषण करने के लिए घटना स्थल पर जाएगा; और

(3) यदि आवश्यक हो तो अपराधी को खोजने एवं गिरफ्तार करने के लिए (आवश्यक) कार्यवाही करेगा।

बशर्ते

(अ) कि सूचना नामजद है और अपराध गंभीर प्रकार का नहीं है, तो अधिकारी को घटना स्थल पर अन्वेषण करने के लिए व्यक्तिशः जाने की आवश्यकता नहीं है।

(ब) कि यदि अधिकारी सोचता है कि अन्वेषण करने के लिए पर्याप्त कारण नहीं है तो वह परिवाद का अन्वेषण नहीं करेगा।

वह अपनी कथित रिपोर्ट में धारा की अपेक्षाओं का पूर्णतः पालन न करने के अपने कारणों को वर्णित करेगा।

उसे सूचना देने वाले को अधिसूचित करना चाहिए कि वह मामले या घटना की जांच नहीं करेगा या अन्वेषण करना कार्यान्वित करेगा। किंतु इस प्रकार पुलिस का हाथ खींच लेना अपराधी के अभियोजन को नहीं रोक सकता। इसके भी दो उपाय हैं।

धारा 159

1. मजिस्ट्रेट ऐसी रिपोर्ट प्राप्त होने पर अन्वेषण के लिए निर्देश कर सकता है या तुरंत कार्यवाही कर सकता है या अवर मजिस्ट्रेट से प्रारंभिक जांच करने के लिए कह सकता है या वाद द्वारा प्रदत्त ढंग से वाद को अन्यथा निपटाने का निदेश कर सकता है।

यह अन्वेषण के पूर्ण होने से पूर्व एक प्रारंभिक रिपोर्ट है। मजिस्ट्रेट धारा 159 के अधीन कार्यवाही कर सकता है। किंतु यदि रिपोर्ट अन्वेषण के बाद प्रस्तुत की जाती है तो मजिस्ट्रेट को इस धारा के अधीन कार्यवाही करने का अधिकार नहीं है।

II. पीड़ित पक्ष आवेदन कर सकता है।

यदि पुलिस कार्यवाही नहीं करती है, तब उनके पास निम्नानुसार शक्तियां हैं:-

धारा 160

(1) लिखित आदेश द्वारा साक्षियों की उपस्थिति की अपेक्षा करना।

इस धारा के अधीन साक्षियों से सत्य करने की अपेक्षा नहीं की जाती है।

यदि वे झूठा साक्ष्य देते हैं तो उनको अभियोजित नहीं किया जा सकता है।

वे इस पर हस्ताक्षर नहीं करते हैं।

यह पुलिस के समक्ष दिया जाता है।

धारा 161

पुलिस परिवाद के तथ्यों से परिचित साक्ष्यों का परीक्षण कर सकती है।

(2)ऐसे साक्षीगण, जब तक कि प्रश्न उनको अपराध में लिप्त नहीं करता है, किए जाने वाले प्रश्नों का उत्तर देने को बाध्य होंगे।

यद्यपि पुलिस साक्षियों के कथन ले सकती है, तो भी।

धारा 162

(अ) वे उनके द्वारा हस्ताक्षरित नहीं होंगे।

(ब) वे, जब कथन कहा गया था उस समय किसी अपराध के अन्वेषण के संबंध में किसी जांच या विचारण में प्रयुक्त नहीं किए जाएंगे।

बशर्ते अभियुक्त के निवेदन पर उसकी प्रतिलिपि ऐसे साक्ष्य का प्रतिरोध करने के लिए दी जाए परंतु न्यायालय उसे आवर्जित कर सकता है कि वह भाग अप्रासंगिक है या उसके प्रकटीकरण लोकहित में असमीचीन है या न्यायालय के साक्ष्य की वृद्धि नहीं करता है।

संक्षेप में साक्ष्य नहीं बनते हैं जिन्हें ग्राह्य कहा जा सके।

यदि ऐसे कथन साक्ष्य माने जाते हैं तो वे निश्चित पुलिस अधिकारी द्वारा नहीं, मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित होने चाहिए। फलतः दंड प्रक्रिया संहिता में प्रावधान किया गया है।

धारा 164

विशेषतः सशक्त कोई भी प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट एवं द्वितीय श्रेणी मजिस्ट्रेट यदि वह पुलिस अधिकारी नहीं है, तो कोई कथन या स्वीकृति के जो उसे इस परिच्छेद के अधीन अन्वेषण के दौरान में दिया गया था, अभिलिखित कर सकता है।

कथन, साक्ष्य के अभिकथन करने के लिए निर्धारित रीति से अभिलिखित किया जाएगा।

संस्वीकृति धारा 364 में प्रवधानित रीति से अभिलिखित की जानी है।

बशर्ते मजिस्ट्रेट ऐसी संस्वीकृति अभिलिखित करने से पूर्व अभियुक्त को स्पष्ट करेगा कि वह उसे देने के लिए बाध्य नहीं है और यदि वह ऐसा करता है तो वह उसके विरुद्ध साक्ष्य में प्रयुक्त किया जाएगा।

कोई मजिस्ट्रेट अभिलिखित नहीं करेगा, जब तक उसे यह विश्वास करने का कारण न हो कि वह स्वेच्छा से दिया गया है।

संस्वीकृति दर्ज करने पर मजिस्ट्रेट उसके नीचे एक ज्ञापन यह दर्शाते हुए देगा कि उसने शर्तों का पालन किया है।

तलाशी

धारा 165

(1)अन्वेषण की अवधि में एक पुलिस अधिकारी इसे आवश्यक समझ सकता है कि उसे किसी स्थान की तलाशी लेनी है।

ऐसा अधिकारी, अपने विश्वास के कारणों को अभिलिखित करने के बाद जहां तक संभव है, उस वस्तु को लिखित करते हुए जिसके लिए तलाशी करनी है, तलाशी करने के कारणों को लिखित करके कि उसके प्रभार के थाने की सीमा में तलाशी करने के कारणों को लिखित करके।

(2)पुलिस अधिकारी जहां तक संभव हैं, व्यक्तिशः तलाशी लेगा।

(3)वह अपने अधीनस्थ को, अभिलिखित उस स्थान और चीज को विनिर्दिष्ट करके जिसकी तलाशी ली जानी है, लिखित रूप में अधिकृत कर सकता है।

(4)संहिता के प्रावधान जैसे कि वारंट तलाशी और तलाशी की धारा 102 एवं 103 में अंतिम सामान्य प्रावधान लागू होंगे।

(5)तलाशी के दौरान तैयार किए गए अभिलेख की प्रतिलिपियां निकटतम मजिस्ट्रेट के पास भेजी जाएंगी और मालिक या प्रतिलिपि करने वाले को अभिलेख की एक प्रतिलिपि शुल्क अदा करने पर दी जाएगी।

धारा 166

पुलिस अधिकारी किसी अन्य थाने के क्षेत्र में तलाशी करवा सकता है।

धारा 167

(1) यदि अन्वेषण धारा 61 द्वारा निर्धारित 24 घंटों में पूर्ण नहीं किया जा सकता है और विश्वास करने के आधार है कि अभियोग की सूचना का ठोस आधार है तो पुलिस यहां इसके वाद के मामले के संबंध में निर्धारित डायरी में प्रविष्टियों की एक प्रतिलिपि तुरंत निकटतम मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा और उसी समय अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।

(2)मजिस्ट्रेट समय-समय पर ऐसे अभियुक्त की ऐसी अभिरक्षा में जैसा वह उपयुक्त समझे, 15 दिन से अनाधिक समय के लिए निरोध प्राधिकृत करेगा।

(3)मजिस्ट्रेट पुलिस अभिरक्षा में निरोध को प्राधिकृत करते हुए ऐसा करने के कारणों को अभिलिखित करेगा।

धारा 169

जब पुलिस अधिकारी पाता है कि पर्याप्त साक्ष्य नहीं है या अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने को न्यायोचित होने के लिए संदेह के समुचित आधार नहीं है तो

वह उसे उसके द्वारा जमानतियों या बिना जमानतियों के साथ एक बंधपत्र निष्पादित करने पर संज्ञान लेने को प्राधिकृत मजिस्ट्रेट के समक्ष जब अपेक्षित हो उपस्थित होने के लिए छोड़ देगा।

धारा 170

(1)जब पुलिस अधिकारी पाता है कि पर्याप्त साक्ष्य या समुचित आधार है तो ऐसा अधिकारी अभियुक्त की अधिरक्षा में संज्ञान लेने को सक्षम है।

(2)इसके साथ वह मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली वस्तुओं को भेजेगा और परिवादी एवं साक्षियों से मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने के लिए बंधपत्र निष्पादित करने की अपेक्षा करेगा।

धारा 173

पुलिस अधिकारी उन पक्षों के नामों का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट भेजेगा जो सूचना देने के लिए जिम्मेदार है।

अभियुक्त रिपोर्ट की प्रतिलिपि प्राप्त करने के लिए हकदार है।

अभियुक्त को उपस्थित होने से छूट (उन्मुक्ति)

धारा 205, 366, 424, 6 इलाहाबाद, 59: 21 कलकत्ता 588

धारा 205 – जब कभी मजिस्ट्रेट सम्मन निर्गत करता है तो यदि वह ऐसा करने के कारण देखता है तो वह अभियुक्त की वैयक्तिक उपस्थिति से छूट दे सकता है और उसको वकील द्वारा उपस्थित होने की अनुमति दे सकता है।

(2)परंतु मजिस्ट्रेट किसी भी समय अभियुक्त को बुलवा सकता है।

धारा 366 – निर्णय का समय

(निर्णय) अभियुक्त की उपस्थिति में सुनाना चाहिए जब तक कि वह अभियुक्त नहीं है और दंडादेश मात्र जुर्माने का है।

धारा 424 – अपील न्यायालय द्वारा निर्णय।

अभियुक्त को निर्णय सुनने के लिए बुलाने की आवश्यकता नहीं है।

II. न्यायालय एक विचारण में कितने अपराधों का संज्ञान कर सकता है। आरोपों का संयोजन

धारा 233, 234, 235

धारा 233

1. हर एक अपराध पर पृथक रूप से विचारण किया जाएगा।

अ एक अवसर पर चोरी का अभियुक्त है और एक अन्य अवसर पर गंभीर चोट पहुंचाने का अभियुक्त है। अ निश्चितत: दोनों अपराधों के लिए पृथकत: विचारित होना चाहिए। वह दोनों के लिए एक विचारण में विचारित नहीं किया जा सकता है। इस सामान्य प्रतिवेदन के अपवाद हैं।

धारा 234

एक ही प्रकार के तीन अपराध एक विचारण में लिए जा सकते हैं, यदि वे बहार महीनों की समयावधि के अंतर्गत किए जाते हैं। चाहे वे उसी व्यक्ति के विरुद्ध है या नहीं।

उसी प्रकार के अपराध – एक ही प्रकार के दंड (सजा) के समान दंड से भारतीय दंड संहिता या किसी विशेष या स्थानीय विधि की उसी धारा के अधीन उसी प्रकार दंडनीय अपराध एक ही प्रकार के अपराध हैं।

2. *वे तीन से अधिक न हो*, धारा 411 के अधीन तीन अपराध एवं धारा 414 के अधीन 3 अपराधों का संयोजन दोषपूर्ण है। जालसाजी के तीन अपराध और न्यास भंग के तीन अपराधों का संयोजन दोषपूर्ण है।

1. उसी प्रकार के

जारकर्म एवं द्विविवाह	समान नहीं है।
हत्या एवं चोट	समान नहीं है।

हैं जो एक विशेष संबंध में व्यक्तियों के बीच होती है जैसे –

(i) संरक्षक एवं प्रतिपाल्य।

(ii) अटर्नी एवं मुवक्किल।

(iii) चिकित्सक एवं रोगी।

(iv) पापमोचक एवं प्रायश्चिती।

पूर्ण प्रकटीकरण आवश्यक।

पक्षों के दायित्व

विक्रेता के दायित्व

1. हस्तांतरण से पूर्व

1. धारा 55 (1) (क) – तात्विक दोषों को प्रकट करना।

(1) भूमि के विक्रय के लिए एक संविदा भरपूर विश्वास का संविदा नहीं है: प्रकटीकरण का कर्त्तव्य पूर्ण नहीं है। प्रकट करने का कर्त्तव्य, अव्यक्त दावों को प्रकट करना एक दायित्व है।

(2)एक अव्यक्त दोष ऐसा दोष है जिसको क्रेता स्वयं के लिए साधारण सी सावधानी से खोज नहीं सकता था (उन) दोषों को जिनकी वास्तविक या रचनात्मक सूचना क्रेता को है प्रकट करने का कोई कर्त्तव्य नहीं है।

(3)जहां तक स्पष्ट दोषों का संबंध है जिनकी जानकारी विक्रेता को नहीं है तो सूत्र *क्रेता सावधान रहे* लागू होता है। किंतु एक परस्पर चूक जो वस्तुतः सहमति से तात्विकतः संबंधित है, करार का व्यर्थ कर देगी।

(4)एक अव्यक्त दोष चाहे संपत्ति का हो या हक का सारवान (भौतिक) अवश्य होना चाहिए। सारभूत होने के लिए दोष ऐसी प्रकृति का अवश्य हो कि उसे युक्तियुक्ततः माना जा सके कि यदि क्रेता को उसकी जानकारी होती तो वह जरा भी संविदा नहीं करता क्योंकि उसने जिसे खरीदने के लिए संविदा की थी से भिन्न वस्तु प्राप्त कर रहा होगा।

(5)क्या कोई दोष तात्विक है या नहीं हर एक वाद की परिस्थितियों पर निर्भर करता है जब एक भूमि भवन बनाने के उद्देश्य से बेची गई थी एक भूमिगत नाले को एक सारवान दोष निर्धारित किया गया था, किंतु तब नहीं जब मकान या भूमि को मुख्यतः आवास के लिए बेचा गया था।

(6)दोष संपत्ति में या हक में हो सकते हैं।

2. धारा 55 (1) (ख) हक विलेखों का प्रस्तुतीकरण

(1)बाध्यता निरीक्षण के लिए हक विलेखों को प्रस्तुत करना है और देने के लिए नहीं।

(2)निरीक्षण के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले अपेक्षित अभिलेख ही अभिलेख नहीं है जो विक्रेता के कब्जे में है वरन् वे अभिलेख भी सम्मिलित हैं जिनको प्रस्तुत करना उसकी शक्ति में है।

(3)जब तक क्रेता मांग नहीं करता है तब तक हक विलेखों को प्रस्तुत करने की बाध्यता नहीं है।

(4)फिर भी क्रेता को निरीक्षण करना निश्चिततः नहीं छोड़ना चाहिए, अन्यथा वह विषयों की रचनात्मक सूचना पाने वाला माना जाएगा, जिन्हें वह खोज लेता यदि उसने हक की छानबीन की होती।

3. धारा 55 (1) (ग) - प्रश्नों का उत्तर देना विक्रेता का कर्त्तव्य

(1) जब हक के अभिलेख प्रस्तुत कर दिए गए हों तो क्रेता उनका परीक्षण करता है और यदि वह संतुष्ट नहीं है तो मांग करता है। ये अपेक्षाएं हैं।

(i) हक से संबंधित।

(ii) अंतरण से संबंधित।

(iii) अन्य छानबीन।

(2) हक संबंधी अपेक्षाएं – ये अपेक्षाएं कि अभिलेख करार पाए गए हक को नहीं दर्शाती हैं या यह कि अभिलेख प्रभाकर नहीं है अर्थात् विधिवत अनुप्रमाणित नहीं है।

(3) अंतरण से संबंधित विषयों पर अपेक्षाएं ऐसे विषयों को निर्दिष्ट करती हैं जैसे अंतरण के पक्षों का संयोजन या सहमति।

(4) छानबीन विक्रेता की संरक्षा के लिए है और विक्रेता द्वारा प्रकटीकरण से संभव विलोपनों की ओर ध्यानाकृष्ट करना है और ऐसे विषयों जैसे सुखाधिकारों, विभाजन दीवारों एवं बीमा के बारे में सूचना खोजना।

(5) विक्रेता सभी अपेक्षाओं, जो हक से प्रासंगिक है और जो विशिष्ट है, के उत्तर देने के लिए बाध्य है।

(6) अपेक्षाओं का उत्तर देने का कर्त्तव्य, धारा 55(1) (क) के अधीन दोष के प्रकटीकरण के कर्त्तव्य से सर्वथा भिन्न है क्योंकि क्रेता के द्वारा अपेक्षा करने का विलोपन विक्रेता को निर्मुक्त नहीं करेगा यदि उसने पूर्ण प्रकटीकरण नहीं किया है।

(7) क्रेता अपेक्षाओं का अधित्याग कर सकता है। अधित्याग अभिव्यक्त हो सकता है या अंतर्निहित हो सकता है।

(8) अधित्याग आचरण में अंतर्निहित होता है।

(i) जब क्रेता की गई अपेक्षा पर दबाव नहीं डालता है।

(ii) जब क्रेता मूल्य चुकाने के लिए समय मांगता है।

(iii) जब क्रेता कब्जा ले लेता है।

(iv) जब क्रेता समग्र या आंशिक मूल्य अदा करता है।

4. धारा 55 (1) (घ) – हस्तांतरण का निष्पादन

1. निष्पादन क्रेता या ऐसे व्यक्ति के लिए हो सकता है जैसा क्रेता निर्देश करे। फलतः हस्तांतरण से पूर्व क्रेता द्वारा पुनर्विक्रय पर हस्तांतरण उपक्रेता के लिए निर्देशित किया जा सकता है। विक्रेता हस्तांतरण के लिए मूल क्रेता का पक्ष होने की अपेक्षा कर सकता है, यदि मूल्य में अंतर है, अथवा नहीं।

2. विक्रेता को उपयुक्त ड्राफ्ट देना क्रेता का कर्त्तव्य है – 31 सी.ए.एल.एल.जे. 87

3. यह क्रेता का कर्त्तव्य प्रतिकूल संविदा के अधीन है।

4. अंतरण का निष्पादन एवं मूल्य की अदायगी एक साथ किए जाने वाले पारस्परिक कर्त्तव्य हैं। वे समवर्ती वायदे हैं। यदि दोनों में से कोई पक्ष विनिर्दिष्ट पालन के लिए दावा लाता है तो उसे अवश्य दर्शाना चाहिए कि वह अपने भाग का पालन करने को तैयार और इच्छुक था।

5. निष्पादन के लिए समुचित समय :-

(i) समुचित समय के संबंध में धारा मौन है।

(ii) विक्रय संविदा द्वारा समय प्रायः नियत किया जाता है।

(iii) यदि समय निश्चित है और अनुचित विलंब होता है तो उपयुक्त रास्ता समय को संविदा का सार मानते हुए सूचना देनी है।

(iv) यदि समय नियत नहीं किया गया है तो उपयुक्त समय है जब विक्रेता अपना हक प्राप्त कर लेता है।

6. निष्पादन के लिए समुचित समय :-

(i) धारा मौन है।

(ii) चूंकि वह क्रेता ही है, जिसे विक्रेता के लिए ड्राफ्ट अंतरण करना है, निष्पादन के लिए समुचित स्थान विक्रेता का आवास था उसके सालिसिटर का कार्यालय होगा।

7. हस्तांतरण का खर्च :-

(i) धारा मौन है।

(ii) यह प्रायः संविदा की शर्तों द्वारा नियत किया जाता है।

(iii) किसी स्पष्ट शर्त के अभाव में क्रेता को टिकट (stamp) आदि का मूल्य अदा करना पड़ता है - धारा 29 (सी) भारतीय स्टाम्प अधिनियम

5. धारा 55 (1) (ग) - संपत्ति की देखभाल

1. विक्रय संविदा क्रेता को संपत्ति में कोई हित प्रदान नहीं करती है। वरन् यह विक्रेता पर संपत्ति को सावधानी से बरतने की एक व्यक्तिगत बाध्यता आरोपित करती हैं।

2. विक्रेता हक विलेखों के प्रति सावधानी भी अवश्य बरतें। हक विलेखों के खोने से संपत्ति के मूल्य का ह्रास होता है और संपदा को क्षति।

3. सावधानी बरतने का अभिप्राय है वह करना जो एक विवेकशील स्वामी को करना चाहिए और संपत्ति की उचित मरम्मत करनी चाहिए और उसे

अतिचारियों से रक्षित करना चाहिए।

4. सावधानी बरतने का दायित्व संविदा का आनुषंगिक है और हस्तांतरण में विलय नहीं होता है। सावधानी बरतने का कर्त्तव्य विक्रय की सम्पन्नता के बाद भी अविरल रहता है और क्रेता विक्रेता द्वारा कृत किसी विलोप (हानि) के लिए उत्तरदायी नहीं है। यदि विक्रेता अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करता है तो क्रेता क्रय धन में से प्रतिकर घटाने के लिए हकदार है, संपन्नता के बाद क्रेता नुकसानी वसूल कर सकता है।

6. **धारा 55 (1) (जी) जावकों का चुकाना**

(1) यह जो आंग्ल विधि में जावक कहलाते हैं उसे अदा करना विक्रेता का कर्त्तव्य है। भारत में जो सम्मिलित हैं वे हैं –

(i) लोक प्रभार

(ii) किराया

(iii) ब्याज

(iv) विल्लंगम

I. जिस पर लोक प्रभार

(i) राजकीय राजस्व

(ii) नगर पालिका कर

(iii) कानून द्वारा या तो अभिव्यततः या विवक्षिततः भूमि पर भारित संदाय जो उस भूमि पर कर द्वारा या अन्य प्रक्रिया के वसूलनीय होने के कारण है।

II. किराया – किराए की अदायगी एक प्रश्न है जो उद्भूत होता है जब बेची गई संपत्ति पट्टाघृत संपत्ति है। पट्टाघृत संपत्ति का विक्रेता, विक्रय के दिनांक तक देय होने वाले किराए को अदा करने के लिए बाध्य है।

III. ब्याज

IV. विल्लंगम

(i) विल्लंगम का अभिप्राय – दावा, धारणाधिकार या संपत्ति से संबद्ध दायित्व।

(ii) सभी विल्लंगमों से मुक्त करना विक्रेता का कर्त्तव्य है। यह निस्सार है कि क्रेता जब उसने संविदा किया था विल्लंगमों के विषय में जानकार था।

(iii) जब तक कि उस आशय का स्पष्ट प्रावधान नहीं है, विक्रय विल्लंगमों के अधीन नहीं है।

(iv) यदि विल्लंगम विक्रेता की भूमि एवं अन्य संपत्तियों पर सामान्य भार है तो क्रेता उसके अन्य संपत्तियों में से उन्मोचित किए जाने के लिए आग्रह कर सकता है।

(v) विक्रेता पर अधिरोपित यह दायित्व, संविदा का आनुषंगिक है और अंतरण के बाद भी लागू हो सकता है।

विक्रेता के दायित्व

11. हस्तांतरण के पश्चात्

धारा 55 (1) (ब) - कब्जा देना

1. यह हस्तांतरण के बाद कब्जा देना विक्रेता का कर्त्तव्य है, और क्रेता को स्वयं कब्जा लेने के लिए नहीं छोड़ना है।

2. यह दायित्व विनिर्दिष्ट पालन के बाद के द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है।

3. कब्जा देने के लिए समय -

(i) धारा यह व्यक्त नहीं करती है कि विक्रेता को कब्जा कब देना चाहिए।

(ii) धारा 55(4)(क) को देखने से पता चलता है कि कब्जा हक देना है। जब स्वामित्व क्रेता के पास जाता है। यह विक्रय विलेख के निष्पादन के समय होगा -

6 लाहौर 308

(iii) विक्रेता कब्जा देने में मना इसलिए नहीं कर सकता है कि मूल्य अदा नहीं किया गया है जब तक कि प्रतिकूल आशय न हो।

(iv) कब्जे के लिए क्रेता का अधिकार और अदा न किए गए मूल्य के लिए विक्रेता का अधिकार उसी एक वाद में प्रवर्तित किए जा सकते हैं।

4. *कब्जे की प्रकृति*

(i) कब्जे का अभिप्राय वास्तविक अधिभोग नहीं।

(ii) मूर्त संपत्ति के विषय में भौतिक कब्जा और प्रतीकात्मक कब्जे के विषय में अमूर्त संपत्ति पर्याप्त है।

(iii) उस संपत्ति के विषय में जो किराएदार या बंधकदार के कब्जे में है, प्रतीकात्मक कब्जा पर्याप्त है।

2. धारा 55(2) यह आश्वस्त करना कि हित अस्तित्व में है।

1. क्या यह विक्रेता का दायित्व ऐसा है जो हस्तांतरण के बाद या हस्तांतरण के पूर्व उद्भूत होता है इसके संबंध में दो दृष्टिकोण हैं:-

(i) कलकत्ता दृष्टिकोण। यह हक एक पूर्ण संविदा अनुध्यात करता है और अंग्रेजी हस्तांतरण में हक की प्रसंविदा के अनुरूप है।

(57 कलकत्ता 1189)

(ii) मद्रास दृष्टिकोण – यह खंड उन वादों पर विचार करती है जहां कार्य की प्रगति संविदा के चरण से आगे नहीं हुई है –

40 मद्रास 338 (350) 38 मद्रास 1171

(iii) लाहौर दृष्टिकोण – मद्रास का अनुसरण करता है –

6 लाह 308

(iv) बम्बई दृष्टिकोण – यह हस्तांतरण के वाद के दायित्व से संबंधित है –

18 बंबई एस.आर. 292 : 52 बंबई 883 : 31 बंबई एल.आर. 658

(अ) धारा 55(1) संपन्नता से पूर्व क्रेता को यह निश्चित करने के योग्य बनाती है यदि अर्पित हक उपयुक्त संदेह से मुक्त है। एक बार उसने हस्तांतरण को स्वीकार कर लिया और विक्रय पूर्ण है, उसको कपट के सिवाए उसे संविदा पर कोई उपचार नहीं है।

(ब) धारा 55(2) के द्वारा विविक्षित हक की प्रसंविदा क्रेता को अंतरण के बाद खोजे गए दोषों के वाद में एक और उपचार प्रदान की जाती है।

(v) एक अन्य दृष्टिकोण जो संभवतः सही दृष्टिकोण है।

(अ) हक के संबंध में विक्रेता का दायित्व दोहरा है।

(i) वह क्रेता को उपयुक्त संदेह से मुक्त एक सत्वाधिकार हक अवश्य अंतरित करे।

(ii) वह क्रेता को हक अवश्य हस्तांतरित करे जिसको वह हस्तांतरित करना और कुछ भी कम न हो घोषित करता है। उसको अपनी बात पूरी करनी चाहिए।

(1) के अधीन अवश्य प्रमाणित करे कि उसने अपना हक मान्य तरीकों में से एक में प्राप्त किया है : जैसे कि निर्धारण, कब्जा, विरासत, क्रय आदि।

(2) के अधीन यदि वह पूर्ण स्वामित्व के हित को अंतरित करना घोषित करता है तब अंतरित हित अवश्य ही पूर्ण मालिकाना हित हो और मात्र अधिभोगी हित न हो। जैसे भारमुक्त भूमि का विक्रय, जो भाराधीन थी: अंतरणीय भूमि का अंतरणीय के रूप में अंतरण करना।

(ब) धारा 55(1) दायित्व उपयुक्त संदेह से मुक्त हक से संबंधित है: धारा 55(2) हक जिसको उसने हस्तांतरित किया घोषित किया, के हस्तांतरित किए जाने के लिए दायित्व से संबंधित है।

2. धारा 55(2) हक के संबंध में दुर्व्यपदेशन या मिथ्या विवरण से संबंधित है। हक के मिथ्या विवरण और संपत्ति के मिथ्या विवरण के बीच एक प्रभेद अवश्य करना चाहिए।

(i) हक का मिथ्या विवरण धारा 55(2) के अधीन नुकसानी के प्रति अधिकार प्रदान करता है।

(ii) हक की प्रसंविदा का विस्तार संपत्ति के मिथ्या विवरण तक नहीं होता है अर्थात् बिक्रीत भूमि के विस्तार के संबंध में।

(iii) हक की प्रसंविदा ऐसी प्रसंविदा नहीं है कि अंतरित किए जाने हेतु तात्पर्यित भूमि विक्रय विलेख में वर्णित विस्तार की है। यह मात्र विक्रेता के हक की वैधता के क्रेता के साथ एक संविदा है। फलतः यदि क्रेता क्षेत्र में कोई कठिनाई पाता है तो उसका वाद हक की प्रसंविदा पर आधारित न हो वरन् मूल्य की आंशिक असफलता के लिए हो।

3. हक के लिए अभिव्यक्त प्रसंविदा। हर एक हस्तांतरणकर्ता की हक के लिए विवक्षित प्रसंविदा होती है। किंतु पक्षों को हक से संबंधित एक स्पष्ट समझौता अवश्य करना चाहिए। एक अभिव्यक्त प्रसंविदा के संबंध में ध्यान में रखने वाले विचारबिंदु ये हैं:–

(अ) क्या वह सभी अंतर्निहित प्रसंविदाओं पर अध्यारोही है और उनके प्रभाव को नष्ट करती है।

(ब) यद्यपि एक अभिव्यक्त प्रसंविदा अकेली पक्षों के अधिकारों को शासित कर सकती है, तो भी विवक्षित प्रसंविदा से स्पष्ट एवं असंदिग्ध अभिव्यक्ति के सिवाए छुटकारा नहीं पाया जा सकता है।

4. **प्रसंविदा के लाभों का दावा कौन कर सकता है :** हक के लिए प्रसंविदा लाभों का न केवल क्रेता एवं उसके प्रतिनिधिगण उपभोग कर सकते हैं वरन् पश्चात्वर्ती अन्य संक्रांती भी, जो क्रेता के अधीन इसे विक्रेता के विरुद्ध प्रवर्तित कर सकते हैं।

5. इस खंड के अधीन विक्रेता संपत्ति के अपने अनन्य हक की प्रत्याभूति करने वाला माना जाता है। यदि वह स्वयं अपने प्रसंविदा के बाहर संपर्क की इच्छा करता है तो ऐसा उसे स्पष्टतः आवश्यक या निहितार्थ अवश्य करना चाहिए।

6. विवक्षित प्रसंविदा हक के लिए प्रश्न के साथ कुछ नहीं करना है भले ही क्रेता को हक के दोष की सूचना है या नहीं है, और क्रेता के दोष का ज्ञान उसको नुकसानी के लिए वाद लाने के लिए अधिकार से वंचित नहीं करता है और क्रय धन की एक वापसी का दावा कर सकता है यदि वह हक दोष के कारण है।

7. हक के लिए प्रसंविदा – यह क्या समाविष्ट करता है – अंग्रेजी अंतरण में समाविष्ट हक के लिए संविदा सम्मिलित करती है :-

(i) अंतरण करने का अधिकार।

(ii) शांत उपभोग का अधिकार।

(iii) धारणाधिकार से मुक्त का अधिकार।

(iv) आगे आश्वासन का अधिकार।

आगे अतिरिक्त आश्वासन की प्रसंविदा के अधीन विक्रेता क्रेता के हक जैसे कि प्रववर्ती उपयुक्ततः अपेक्षा कर सकता है, को पूर्ण करने के ऐसे अतिरिक्त कार्य करने के लिए आबद्ध है इस प्रकार यदि विक्रेता ने विक्रय के बाद एक अप्राप्त हित के क्रय द्वारा एक अपूर्ण हक को पूर्ण किया है, इस समझौते के अधीन उसे क्रेता को अंतरित करने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

2. अंग्रेजी प्रसंविदा अधिक विस्तृत है, चूंकि उसमें शांत उपभोग के लिए भारों से उन्मुक्ति के लिए और अतिरिक्त आश्वासन की प्रसंविदा सम्मिलित है। भारतीय विधि के अनुसार वे सम्मिलित नहीं किए जाते हैं।

8. हक के लिए प्रसंविदा समझौता यथोचित संदेह से मुक्त हक के लिए प्रसंविदा है। यह प्रिवि काउंसिल अभिनिर्धारित किया गया है कि हक के लिए अनन्य समाश्वासन का क्रेता द्वारा आग्रह नहीं किया जा सकता है –

91 ए. 700 (713)

9. हक के लिए विवक्षित प्रसंविदा एक न्यासी के विषय में लागू नहीं की जा सकती।

(i) न्यास के बारे में प्रसंविदा में केवल यह समझा जाता है कि उसने कोई कार्य नहीं किया है जिसके द्वारा संपत्ति भारित है, या जिसके वह हस्तांतरण करने से रोका जाता है।

(ii) यदि एक न्यासी अपने विश्वासप्रद स्वभाव को प्रकट किए बिना हस्तांतरण करता है, निस्संदेह उससे हितकारी स्वामी के रूप में हस्तांतरित करने की अपेक्षा की जा सकती थी, इसलिए कि वह हक की सामान्य प्रसंविदाओं के अधीन हो जाए।

10. हक की विवक्षित प्रसंविदा अवयस्क की ओर से बेचने वाले संरक्षक के विषय में लागू नहीं होती है।

* * * * *

4. न्यास का कानून

प्रथम भाग – न्यास क्या है और किसके लिए अधिनियम लागू होता है?

द्वितीय भाग – अभिव्यक्त या घोषित न्यास।

(1) सर्जन

(2) समापन।

तृतीय भाग – न्यास का प्रशासन।

चतुर्थ भाग – आन्वयिक न्यास।

पंचम भाग – आन्वयिक न्यास का प्रशासन

प्रथम भाग

न्यास क्या है एवं अधिनियम किसके लिए लागू होता है?

II. किस प्रकार के न्यासों के लिए अधिनियम लागू होता है:

1. जिन विषयों में अधिनियम लागू नहीं होगा वे धारा 1 में व्यक्त हैं। वे हैं:–

(i) एक मुस्लिम के द्वारा गठित वक्फ।

(ii) किसी पारंपरिक या स्वीय विधि द्वारा निर्धारित रूप में अविभक्त परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंध।

(iii) विजेताओं के मध्य में युद्ध में ली गई लूट को विसरित करने वाले न्यास।

(iv) लोक या निजी, धार्मिक या पूर्ण विन्यास।

2. *स्पष्टीकरण*

(I) वक्फ – मुस्लिम धर्म को मानने वाले एक व्यक्ति के द्वारा मुस्लिम विधि द्वारा धार्मिक, पवित्र या पूर्त के रूप से मान्य किसी उद्देश्य के लिए किसी संपत्ति का स्थायी समर्पण।

वक्फ के दो वर्ग –

(i) जहां हित या लाभ उसके परिवार के लिए आरक्षित हों – 1913 का अधिनियम – 6 लागू होता है।

(ii) जहां किसी हित/लाभ को आरक्षित न किया जाता हो। 1923 का अधिनियम सं. 42 लागू होता है।

(II) एक अविभक्त परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंध।

दृष्टांत :–

(1) एक संयुक्त हिन्दू परिवार का कर्त्ता एवं परिवार के अन्य सदस्य।

(2) एक हिन्दू विधवा एवं एक उत्तरभोगी।

इसके संबंध न्यास अधिनियम द्वारा नियमित नहीं होते हैं। वे पारंपरिक या स्वीय विधि द्वारा नियमित होते हैं।

(III) युद्ध में की गई लूट का वितरण।

(1) लूट (प्राइज) – यह शब्द जलपोत के लिए या सागर में युद्ध पोत की समुद्रीय सेना द्वारा यौद्धिक नियमानुसार बलाधिकृति (लूट के) माल के लिए प्रयुक्त। या पत्तन में अभिगृहीत के लिए प्रयुक्त।

(2) युद्ध में लिया गया समग्र माल सामान्यतः न्यास के न्यासियों के अनुदत्त राजकीय (शाही) प्राधिकार से विजेताओं के बीच वितरित किए जाने के लिए संप्रभु राजा में निर्विष्ट होता है।

(3) लूटों को वितरित करने के उद्देश्य के लिए गठित इस प्रकार के न्यास पर न्यास अधिनियम लागू नहीं होता है।

(IV) लोक न्यास एवं प्राइवेट पूर्त विन्यास।

न्यास या तो लोक होते हैं या प्राइवेट।

(i) लोक न्यास – न्यास, लोक न्यास है, जब वह या तो आम जनता या उसके एक बड़े भाग के फायदे के लिए एक खास रूप में गठित है। लोक न्यास लोगों के एक असुनिश्चित निकाय के लिए होता है यद्यपि अभिनिश्चय के योग्य होता है।

(ii) प्राइवेट न्यास – प्राइवेट न्यास केवल निश्चित व्यक्तियों के लिए गठित न्यास है जो एक सीमित समय में ही अभिनिश्चय किए या अभिनिश्चित होने ही चाहिए।

(iii) लोक न्यास के प्रयोजन – उनके तीन शीर्षक हैं:–

(1) लोक प्रयोजन

(2) पूर्त प्रयोजन

(3) धार्मिक प्रयोजन

1. लोक प्रयोजन पद दो उपार्थों में प्रयुक्त किया जाता है:–

(अ) उसके साधारण अर्थ में – इसमें प्रयोजन शामिल हैं जैसे सड़कों की चिपचाप या मरम्मत, एक पल्ली या पल्ली वासियों के लिए पानी की आपूर्ति करना। किसी धारा या पुलिया जो पल्लों में अपेक्षित है के ऊपर पुलों का बनवाना या मरम्मत करना।

2. पूर्त प्रयोजन पद में शामिल है, दान देना, दान गृहों के भवन बनवाना, अस्पताल आदि की स्थापना।

3. धार्मिक पद – धार्मिक ग्रंथ या पूजा से संबंधित चीजें शामिल हैं – प्रयोजन

धार्मिक ग्रंथों का क्रय या वितरण। गिरजाघरों, मंदिरों आदि का रख रखाव।

यदि न्यास लोक न्यास है - न्यास अधिनियम लागू नहीं होता है।

यदि प्राइवेट न्यास ऐसा न्यास है जो केवल एक धार्मिक या पूर्त न्यास नहीं है तभी अधिनियम लागू होता है।

लोक न्यास या प्राइवेट न्यास, जो पूर्त या धार्मिक है, पर कौन सी विधि लागू होती है? विभिन्न प्रकार के अधिनियम लागू होते हैं।

(1) धारा 92 सिविल प्रक्रिया संहिता।

(2) धार्मिक पूर्त अधिनियम 1863 (द रिलीजस एंडानमेंट एक्ट 1863)

(3) धार्मिक सोसायटी अधिनियम - 1880 का अधिनियम। (द रिलीजस सोसायटी एक्ट ऑफ 1880)

(4) शासकीय न्यासी अधिनियम - 1913 का अधिनियम 11

(5) पूर्त न्यास अधिनियम 1890 का 6 (द चेरिटेबल ऐनडावमेंट्स एक्ट)

(6) पूर्त एवं धार्मिक न्यास अधिनियम 1920 का 14 (द चेरिटेबल एंड रिलीजस ट्रस्ट एक्ट)

विभिन्न प्रकार के न्यास

1. न्यास विभिन्न वर्गों में आते हैं। कोई न्यास किस वर्ग में आता है यह उस पर निर्भर करता है कि वह किस दृष्टिकोण से देखा गया है।

2. न्यास तीन दृष्टिकोणों से देखा जाता है:-

(i) उस ढंग के दृष्टिकोण से जिसमें न्यास सृजित किया जाता है।

(ii) न्यास की रचना के दृष्टिकोण से।

(iii) न्यासी पर डाले गए कर्त्तव्य की प्रकृति के दृष्टिकोण से।

3. इस ढंग के दृष्टिकोण से जिसमें न्यास संघटित सृजित किया जाता है। ये दो खंडों में होते हैं (1) अभिव्यक्ति एवं (2) आन्वयिक न्यास।

4. न्यास की रचना के दृष्टिकोण से वे दो खंडों में होते हैं (1) पूर्ण संरचित न्यास एवं (2) अपूर्ण रचित न्यास।

5. न्यासियों पर डाले गए कर्त्तव्यों की प्रकृति के दृष्टिकोण से न्यास दो खंडों (1) सादा न्यास एवं (2) विशेष न्यास में होते हैं।

1. प्रथम अभिव्यक्त एवं आन्वयिक न्यास।

1. न्यास दो तरह से उद्भूत हो सकता है।

(i) यह किसी व्यक्ति द्वारा की गई स्वैच्छिक घोषणा का परिणाम है।

(ii) यह विधि शासन का परिणाम हो सकता है।

2. जब न्यास स्वैच्छिक घोषणा का परिणाम होता है तो वह अभिव्यक्त न्यास या घोषित न्यास है। जब न्यास विधि शासन का परिणाम होता है तो वह आन्वयिक न्यास कहलाता है।

3. आन्वयिक न्यास पद एक दूसरे अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। इस अर्थ में यह ऐसे न्यास को सूचित करने के अभिप्राय से प्रयुक्त किया जाता है जो विलेख के अर्थ का परिणाम है। न्यास अभी आशय का विषय है। आशय विशिष्ट शब्दों में घोषित हो सकता है या वह न्यायालय द्वारा विलेख के उपयुक्त अर्थान्वयन पर पक्ष द्वारा इंगित पाया जा सकता है। परवर्ती दशा में न्यास कभी–कभी आन्वयिक न्यास कहलाता है।

4. इस अर्थ में प्रयुक्त आन्वयिक न्यास के संबंध में दो बातें याद रखनी हैं:

(I) इस प्रकार का आन्वयिक न्यास कभी–कभी अभिव्यक्त न्यास के प्रतिकूल हो जाता है। यह बिल्कुल गलत है। इस प्रकार का न्यास वस्तुतः एक अभिव्यक्त न्यास ही है और इसके प्रतिकूल नहीं है। फिर भी न्यास एक अभिव्यक्त न्यास है, क्योंकि व्यवस्थापक की भाषा अस्पष्ट या भद्दी है, यदि उसकी रचना के समय की भाषा से न्यायालय इस निष्कर्ष को निकाले कि न्यास आशयित किया गया होगा।

(II) जो न्यास इस अर्थ में आन्वयिक है कि विलेख का अर्थ करते समय आशय निकाला गया था तो उसकी अति आन्वयिक न्यास से नहीं की जानी चाहिए जो विधिक प्रवर्तन का परिणाम है। पूर्ववर्ती में एक न्यास रचना का आशय है और इस अर्थ में वह पक्षों के स्वैच्छिक कार्य का परिणाम है। पूर्ववर्ती में न्यास गठित करने का कोई आशय नहीं है। वह विधि की देन है। पक्षकार के कार्य का नहीं।

आन्वयिक न्यास के दो खंड हैं:–

(1) परिणामिक न्यास।

(2) अपरिणामिक न्यास।

दोनों के बीच अंतर को बाद में विचारित किया जाएगा जब आन्वियिक न्यास पर विचार किया जाएगा। उनमें एक बात सामान्य है – वह दोनों ही पक्ष के कार्य के परिणाम नहीं वरन् विधिक प्रवर्तन के परिणाम है।

(II) पूर्णतः गठित न्यास और अधूरा गठित न्यास।

(I) न्यास पूर्णतः गठित कहा जाता है जब न्यास संपत्ति न्यासियों में हिताधिकारियों के लाभ के लिए निविष्ट कर दी जाती है। जब न्यास की घोषणा मात्र है और संपत्ति न्यासी में निविष्ट नहीं की गई है तो न्यास अधूरा गठित है।

(2) यह प्रश्न कि क्या न्यास पूर्णतः गठित है या नहीं, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जहां

कोई मूल्यवान प्रतिफल उसके सृजन के लिए नहीं दिया गया है।

(3) यदि मूल्य दिया गया है तो यह निरर्थक है कि क्या न्यास पूर्ण है या नहीं क्योंकि साम्या उसको एक कृत कार्य के रूप में देखती है जिसका होना करार सम्मत है। मूल्य के लिए अपूर्ण हस्तांतरण, हस्तांतरण करने की संविदा मानी जाएगी और न्यायालय देखेगा कि वह पूर्ण है।

(4) यदि मूल्य नहीं दिया गया है तो साम्या नहीं है और न्यायालय उसके प्रवर्तन की मांग करने वाले व्यक्ति को कोई सहायता नहीं देगा।

(5) यदि संपत्ति का परिपूर्ण हस्तांतरण है, यद्यपि वह स्वैच्छिक है तथापि वस्तुतः विधिक हस्तांतरण होने पर न्यास न्यायालय द्वारा प्रवर्तित कराया जाएगा।

(6) दो विधाएं हैं जिनमें न्यास पूर्णतः गठित किया जा सकता है:-

(i) व्यवस्थापक संपत्ति न्यासियों को हस्तांतरित कर सकता है।

(ii) व्यवस्थापक स्वयं को उसका न्यासी होने की घोषणा कर सकता है।

(7) पूर्ण एवं अपूर्ण न्यास में अंतर:-

(i) एक पूर्ण गठित न्यास वह है जिसमें न्यास संपत्ति अंततः एवं पूर्णतः न्यासियों में निविष्ट नहीं किया गया है।

(ii) न्यास अपूर्णतः गठित है जब न्यास संपत्ति अंततः एवं पूर्णतः न्यासियों में निविष्ट नहीं किया गया है।

टिप्पण : विलों के अधीन उद्भूत सभी न्यास पूर्णतः गठित है यद्यपि वे या तो निष्पादित है या निष्पादेय है।

(ii) न्यास अपूर्णतः गठित है जब न्यास संपत्ति अंततः एवं पूर्णतः न्यासियों में निविष्ट नहीं किया गया है।

(iii) एक व्यवस्थापक को सभी संभव उपाय करने चाहिए कि संपत्ति को न्यासों में निविष्ट करना उसका कर्त्तव्य है। हस्तांतरण की लिखत में न्यास की घोषणा भी अवश्य अंकित होनी चाहिए यदि व्यवस्थापक का आशय विफलता से बचने का है।

(8) इस अंतर से उद्भूत होने वाले परिणाम :-

(i) एक अपूर्ण न्यास प्रवर्तित किया जाएगा यदि वह मूल्यवान प्रतिफल के लिए है। उसे प्रवर्तित नहीं किया जाएगा यदि वह स्वैच्छिक है, अर्थात् बिना मूल्यवान प्रतिफल के है।

(ii) न्यास विधि में मूल्यवान प्रतिफल जैसे कि संविदा विधि में है, मौद्रिक

– धनीय शर्तों पर निर्धारण योग्य कोई मूल्यवान वस्तु है, इस परंतुक के साथ कि विवाह और वाद लाने की प्रवृत्ति पर इसी प्रकार विचार किया जाए।

(iii) मूल्यवान प्रतिफल एवं उत्तम प्रतिफल के मध्य एक अंत विद्यमान रहता है। उत्तम प्रतिफल वाक्यांश प्रेम एवं स्नेह के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार का प्रतिफल यद्यपि उत्तम है फिर भी मूल्यवान नहीं है।

(iv) उत्तम प्रतिफल से एक अपूर्ण गठित न्यास नहीं होता जो एक स्वयंसेवक के कहने पर प्रवर्तनीय हो। वह फलित न्यास को खंडित करने का काम करता है।

(v) विवाह कहां तक प्रतिफल है?

(1) यदि विवाह पूर्ण एवं विवाह के प्रतिफल में व्यवस्थापन किया जाता है तो वह मूल्यवान प्रतिफलार्थ किया जाता है। ऐसा तब भी है यदि विवाहोपरांत किया जाता है, किंतु एक वैवाहिक पूर्ण व्यवस्था करने के करार की पूर्ति में।

(2) किंतु यदि व्यवस्थापन विवाह के बाद किया जाता है न कि विवाहपूर्व करार के अनुसरण में, तो वह स्वैच्छिक है।

(vi) वैवाहिक प्रतिफल में कौन आते हैं:–

(1) वैवाहिक प्रतिफल के अंतर्गत वास्तविक पक्ष आते हैं अर्थात् पति–पत्नी एवं उनके उस विवाह से हुए बच्चे।

(2) सभी अन्य व्यक्ति स्वयंसेवक हैं और वे व्यवस्थापक के विरुद्ध के प्रावधानों को प्रवर्तित नहीं करा सकते जहां तक संपत्ति का अंतरण अपूर्ण है – जैसे बाद में व्यवस्थित किए जाने वाला करार – अर्जित संपत्ति।

9. क्या भारतीय न्यास अधिनियम पूर्ण न्यास एवं अपूर्ण न्यास में इस अंतर को मान्यता प्रदान करता है –

साधारण एवं विशेष न्यास

1. साधारण न्यास वह न्यास है जिसमें न्यासी न्यास संपत्ति का मात्र निष्क्रिय अभिरक्षक है और करने के लिए कतई सक्रिय कर्त्तव्य नहीं करता है।

2. विशेष न्यास, वह न्यास है, जिसमें व्यवस्थापक द्वारा इंगित विशेषत: किसी योजना को पूरा करने के लिए न्यासी नियुक्त किया जाता है और व्यवस्थापक के आशा को कार्यान्वित करने के लिए सक्रियत: स्वयं को लगाने की अपेक्षा की जाती है।

3. साधारण न्यास निष्क्रिय न्यास जैसा कहा जाता है और विशेष न्यास सक्रिय न्यास कहा जाता है।

4. जहां साधारण न्यास विद्यमान रहता है वहां लाभग्राही को बशर्ते कि वह विधितः पूर्णतः हकदार है, संपत्ति पर वास्तविक कब्जा रखने का अधिकार और लाभग्राही की हिदायत के अनुसार विधिक संपदा का व्ययन करने के लिए न्यासियों को बाध्य करने का भी अधिकार रखता है।

5. विशेष न्यास – (1) अनुसचिवीय एवं वैवेकिक में विभाजित किए जाते हैं।

6. दोनों में न्यासियों के करने के लिए सकारात्मक कर्त्तव्य होते हैं।

7. अंतर का बिंदु है कि अनुसचिवीय न्यास में कर्त्तव्य ऐसे होते हैं कि न्यासी को अपना विवेक प्रयुक्त करने के लिए स्मरण नहीं करना पड़ता है जबकि वैवेकिक न्यास में न्यासी से प्रजा का प्रयोग करने की अपेक्षा की जाती है।

* * * * *

द्वितीय भाग

अभिव्यक्त या घोषित न्यास

अध्याय 1 – घोषित न्यास के दो प्रकार हैं –

(i) निष्पन्न

(ii) निष्पाद्य

अध्याय 2 – अभिव्यक्त न्यास का सृजन।

अध्याय 3 – अभिव्यक्त / घोषित न्यास का प्रतिसंहरण।

अध्याय 4 – अभिव्यक्त न्यास का निर्वापन।

अध्याय – 1

घोषित न्यास के दो प्रकार हैं

निष्पन्न एवं निष्पाद्य

घोषित न्यास या तो निष्पन्न न्यास होता है या निष्पाद्य न्यास।

(i) निष्पन्न एवं निष्पाद्य न्यास

1. निष्पन्न एवं निष्पाद्य पदों का जैसे वे संविदा के संबंध में प्रयुक्त किए जाते हैं वही अर्थ नहीं है जो तब होता है जब न्यास के संबंध में प्रयुक्त किए जाते हैं।

2. जब संविदा के संबंध में प्रयुक्त किए जाते हैं तो वे संविदा को कार्यान्वित किए जाने को निर्देशित करते हैं। जब न्यास के संबंध में प्रयुक्त किए जाते हैं तो उसके कार्यान्वित करने से प्रभिन्न रूप में न्यास को सृजित किया जाना निर्देशित करते हैं।

3. जिस अर्थ में यह शब्द संविदा में प्रयुक्त किया जाता है उसमें प्रत्येक न्यास जब तक वह खत्म न हो जाए, निष्पाद्य है। किंतु उसका यह अर्थ नहीं है जिसमें यह शब्द न्यास के संबंध में प्रयुक्त होता है।

4. जब निष्पन्न एवं निष्पाद्य शब्द न्यास के संबंध में प्रयुक्त किए जाते हैं तो उनके भिन्न अर्थ होते हैं।

(1) न्यास, निष्पन्न न्यास है जब न्यास का रचयिता न केवल उन व्यक्तियों को जो न्यास से लाभान्वित होने हैं पदानिहित करता है वरन् उन हितों को भी इंगित करता है जो न्यास संपत्ति में लेने हैं।

(2) न्यास एक निष्पाद्य न्यास कहा जाता है जब न्यास का रचयिता केवल उन व्यक्तियों को पदानिहित करता है जो न्यास से लाभान्वित होने हैं किन्तु उन हितों को इंगित नहीं करता है जो न्यास संपत्ति लेते हैं क्योंकि इसे अन्य व्यक्ति द्वारा एक अन्य विलेख के द्वारा परिभाषित करने को छोड़ दिया गया है।

दृष्टांत :- अ एवं ब के विवाह पर उनमें यह करार किया जाता है उनके बीच की निश्चित संपत्ति उनके लिए एवं उनके बच्चों के लिए न्यास में व्यवस्थित कर दी जाएगी।

टिप्पणी :- यहां वे पक्ष जो न्यास द्वारा लाभान्वित होते हैं इस प्रकार परिभाषित किए जाते हैं - अ एवं ब तथा उनके बच्चे।

(1) किंतु जो लाभ अ एवं ब तथा उनके बच्चों को लेने हैं वे परिभाषित नहीं किए गए हैं।

(2) अतः यह निष्पाद्य न्यास है।

(3) निष्पन्न न्यास एवं निष्पाद्य न्यास के बीच भिन्नता की रेखा एक पूर्णतः गठित न्यास एवं अपूर्णतः गठित न्यास के बीच की विभिन्न रेखा से भिन्न है।

(4) एक पूर्णतः गठित न्यास एवं एक अपूर्ण न्यास के बीच विभिन्न रेखा है:- पूर्ववर्ती में संपत्ति न्यास के न्यासियों में निविष्ट होती है। पश्चात्वर्ती में वह इस प्रकार निविष्ट नहीं होती है।

(5) निष्पन्न न्यास एवं निष्पाद्य न्यास के बीच विभिन्न रेखा है कि पूर्ववर्ती में लाभग्राहियों के हित परिभाषित होते हैं: पश्चात्वर्ती में इस प्रकार परिभाषित नहीं होते हैं।

(6) ऐसा होने पर निष्पाद्य न्यास पूर्णतः गठित न्यास हो सकता है।

11. न्यास के पक्षगण

1. प्रकटतः न्यास के संव्यवहार में तीन पक्ष होते हैं -
   - (i) वह पक्ष जो न्यास को बनाता है।
   - (ii) वह पक्ष जो न्यास को स्वीकार करता है।
   - (iii) वह पक्ष जिसके हित के लिए न्यास बनाया जाता है।

2. वह पक्ष जो न्यास को बनाता है, न्यास रचयिता कहा जाता है। वह पक्ष जो न्यास को स्वीकार करता है न्यासी कहलाता है। वह पक्ष जिसके हित के लिए न्यास बनाया जाता है रचयिता और न्यासी द्वारा स्वीकार किया जाता है, लाभग्राही कहलाता है।

3. क्या यह आवश्यक है कि तीनों पक्ष भिन्न एवं पृथक होने चाहिए और तीनों में से एक उनमें से दो में किसी की भूमिका में दखल नहीं कर सकता।
   - (i) न्यास रचयिता एवं लाभग्राही सुभिन्न एवं पृथक हों।
   - (ii) न्यासी एवं लाभग्राही सुभिन्न एवं पृथक हों।
   - (iii) न्यास रचयिता का न्यासी से सुभिन्न एवं पृथक होना आवश्यक नहीं है।

4. वे कारण कि कुछ पक्ष एक में दो की भूमिका में दखल कर सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते हैं, महत्त्वपूर्ण है।
   - (i) न्यास का सृजन संपत्ति में, जो न्यास की विषय वस्तु है, दो संपदाएं बनाने

में फलित होता है – विधिक और साम्यिक। न्यास, जब तक ये दोनों हित पृथक रहते हैं, बना रहता है।

(ii) यदि विधिक एवं साम्यिक संपदाएं उसी एक व्यक्ति में मिलने वाली हो जाती हैं वो विधि में समहृत हो जाने से साम्यिक सर्वदा के लिए संपत्ति हो जाती है। दूसरे शब्दों में जहां विधिक एवं साम्यिक हित समविस्तीर्ण है और एक ही व्यक्ति में निविष्ट है तो साम्यिक विधि के हित में विलीन हो जाता है जिसका अभिप्राय है कि न्यास का अंत हो जाता है।

ध्यान में रखे जाने वाले दो सिद्धांत हैं:-

(i) यदि वह एक पृथक साम्यिक हित सृजित नहीं करता है तो वह न्यास नहीं है।

(ii) यदि पृथक विधिक एवं साम्यिक हित विलय हो जाते हैं तो वह न्यास नहीं है।

5. इन दो सिद्धांतों को लागू करके हम निम्नोक्त निष्कर्षों पर पहुंचते हैं:-

(i) जब न्यास रचयिता एवं न्यासी एक ही हैं तो विलय नहीं है। अत: उन्हें भिन्न होना आवश्यक नहीं है।

(ii) जब न्यास रचयिता एवं लाभग्राही वही है तो पृथक साम्यिक हित का सृजन नहीं होता है। अत: वे अवश्य प्रभिन्न हों।

(iii) जब न्यासी एवं लाभग्राही एक ही हैं तो वहां विलयन है। अत: निश्चितत: सुभिन्न होने चाहिए।

सारांश

न्यास रचयिता एवं न्यासी एक ही व्यक्ति हो सकता है किंतु लाभग्राही सर्वदा न्यास रचयिता एवं न्यासी से पृथक एक सुभिन्न व्यक्ति होना चाहिए।

6. अब तक हमने साधारण मामलों को लिया है जहां पक्षगण अकेले व्यक्ति हैं। जब बहुगुणित पक्षगण है और जहां उनमें से कुछ दोहरी भूमिका निभाते हैं तो क्या होता है।

दृष्टांत :-

(i) अ और ब एक न्यास के लाभग्राही हैं। उनमें एक अ न्यास का न्यासी भी है। क्या इस प्रकार का न्यास विधिमान्य है?

(ii) अ और ब एक न्यास के लाभग्राही हैं। उनमें से अ न्यास का रचयिता है। क्या ऐसा न्यास विधिमान्य है?

7. प्रथम प्रश्न का उत्तर स्वीकारात्मक है। यह धारा 6 में पाया जाता है जो न्यास को परिभाषित करती है। परिभाषा दूसरे प्रश्न का उत्तर नहीं देती है। तो भी ऐसा न्यास अविधिमान्य है।

अध्याय - दो

अभिव्यक्त न्यास का सृजन

(i) विधिमान्य न्यास के सृजन के लिए शर्तें-

एक घोषित न्यास की विधिमान्यता के लिए विधि द्वारा विहित निम्न चार शर्तें अवश्य पूरी होनी चाहिए:-

धारा - 6

न्यास के आवश्यक पक्ष हों।

(2)व्यवस्थापक की भाषा ऐसी हो कि उसमें न्यायालय तथ्य के रूप में उससे निष्कर्ष निकाल सके।

(अ) न्यास के सृजन करने का आशय;

(ब) अभिनिश्चय संपत्ति का;

(स) अभिनिश्चय लाभग्राहियों के पक्ष में; और

(द) एक अभिनिश्चय प्रयोजन के लिए।

(ii) *धारा - 7-8*

न्यास संपत्ति ऐसी प्रकृति की हो कि वह न्यास में व्यवस्थित और अंतरित करने के योग्य हो।

(iii) *धारा - 4*

न्यास का उद्देश्य विधिपूर्ण हो।

अंग्रेजी न्यास विधि, न्यास के सृजन के संबंध में भारतीय न्यास विधि से भिन्न है स्नैल के अनुसार न्यास के सृजन के लिए तीन निश्चिंचतताओं की अपेक्षा की जाती है।

(1)आशय की निश्चिंचतता।

(2)न्यास संपत्ति की निश्चिंचतता।

(3)लाभग्राही की निश्चंचतता। अंडरहिल के अनुसार न्यास के सृजन के लिए चार निश्चिंचतताओं की अपेक्षा की जाती है, जो स्नैल द्वारा वर्णित है और एक और :

(iv) न्यास का प्रयोजन।

अंग्रेजी विधि में न्यास संपत्ति न्यासी को हस्तांतरण की अपेक्षा नहीं की जाती है। किंतु भारतीय विधि में की जाती है।

(II) आशा की निश्चिंचतता

(1)न्यास को सृजित करने का आशय शब्दों या कार्यों के द्वारा हो सकता है।

(II) ये दृष्टांत हैं जो दर्शाते हैं कि न्यास रचयिता के कार्यों द्वारा न्यास सृजित किया जा सकता है।

दृष्टांत :- अ पिता अपनी पुस्तक में अपने पुत्र के नाम खाता खोलकर उसमें अपने पुत्र के नाम धन जमा करता है।

बंबई 125

(II) अ उसमें अंश खरीदता है।

15 बंबई 268 : 17 कलकत्ता 620 (628)

3. शब्दों के द्वारा सृजित न्यास के उदाहरण अनावश्यक हैं। प्रश्न है कि यह दर्शाने के लिए किस प्रकार की भाषा आवश्यक है कि दर्शाने की एक निश्चिंतता है कि एक न्यास के सृजन का आशय था।

(1) न्यास के सृजन के लिए कोई तकनीकी पदों की अपेक्षा नहीं की जाती है। बात अर्थ करने की है। अतः प्रश्न यह निश्चित करना है कि क्या संपूर्ण विल या विलेख का अर्थ करने पर वसीयतकर्ता का आशय था कि वह व्यक्ति जिसको संपत्ति दी गई थी उसे मात्र एक न्यासी के रूप में लेगा या लाभतः लेगा जो कामना या बांछन के जोड़े गए पद के अधीन हो जो वसीयतकर्ता के सोच विचार में आदाता को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त होगी। किंतु जो विषय में आशयित नहीं थी और उस पर कोई बाध्यता नहीं डालती। प्रश्न है कि क्या न्यास रचयिता ने मात्र इच्छा व्यक्त की थी कि न्यासी को कार्य विशेष करना चाहिए या क्या उसने उस पर एक निश्चित कार्य करने की बाध्यता डाली है। यदि वस्तुतः बाध्यता आशयित थी तो स्पष्टतः उसका आशय न्यास सृजन का था।

(2) प्रयुक्त भाषा या तो याचनात्मक हो सकती है या आज्ञात्मक हो सकती है :-

(i) शब्द अनुरोध, अनुशंसा, कामना, आशा आदि याचनात्मक शब्द हैं।

(ii) ऐसे शब्द न्यास सृजन के आशय को इंगित करने वाले नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे न्यासी पर एक दायित्व को आरोपित किए जाने का आशय नहीं दर्शाते हैं।

(iii) अंग्रेजी विधि में ऐसे याचनात्मक शब्दों को न्यास गठित करने वाले शब्द माना गया था और न्यास, याच्य न्यास कहा जाता था किंतु आधुनिक प्रवृत्ति के विपरीत है।

(III) लाभग्राही के प्रति निश्चिंतता

1. लाभग्राही, इस प्रकार विनिर्दिष्ट या वर्णित किया जाए कि वह पहचाना जा सके।

2. अनिश्चिंतता के दृष्टांत -

(i) अ को संपदा इस निदेश के साथ दी गई कि वह उसे परिवार में रखेगा - परिवार अनिश्चित।

(ii) व्यवस्थापक के संबंधियों को - संबंधी अनिश्चित।

3. पर्याप्त वर्णन के दृष्टांत

(1) वंशज - पर्याप्त वर्णन होना ठहराया गया - अतः अनिश्चित नहीं।

3. प्रयोजन की निश्चितता

1. सपंत्ति कैसे प्रयुक्त होनी है, निश्चित उल्लेखित होना चाहिए।

2. प्रयोजन की अनिश्चितता के दृष्टांतः-

(1) कतिपय व्यक्तियों पर विचार करना।

(2) उनके प्रति कृपालु होना।

(3) उनके लिए प्रचुर प्रावधान करना।

(4) उनको याद करना।

(5) उनके साथ न्याय करना।

(6) उनके भतीजे की देखरेख करना जो भविष्य में सर्वोत्तम प्रतीत हो सके।

(7) अपने लिए अपने बच्चों के लिए और ईश्वर की चर्चा एवं गरीबों को याद करने के लिए संपत्ति प्रयोग करना।

3. न्यास के प्रयोजन का अर्थ है वह ढंग जिससे लाभग्राही लाभान्वित होंगे, वह जिस से संपत्ति प्रयुक्त होनी है।

4. न्यास संपत्ति संबंधी निश्चतता

1. संपत्ति जो न्यास की विषय वस्तु होनी है वह उचित निश्चितता के साथ इंगित हो। यह पहचान के योग्य अवश्य विनिर्दिष्ट या पर्याप्त वर्णित की गई हो।

दृष्टांतः- (i) अ किसी संपत्ति की वसीयत ब के लिए करता है और निदेश है कि उसका अधिकांश स के बच्चों में वितरित किया जाए। यह न्यास का सृजन नहीं है क्योंकि संपत्ति एक उचित निश्चितता के साथ इंगित नहीं की गई है।

(ii) अ अपनी संपत्ति अपनी पत्नी के लिए न्यास में देता है और निदेश करता है कि उसका ऐसा भाग जो कि उसके द्वारा अपेक्षित नहीं हो उसकी मृत्यु के बाद उसके बच्चों के लिए न्यास में रखा जाएगा।

(iii) अ संपत्ति अपने नौकरों के लिए इस निदेश के साथ न्यास में देता है कि मेरी संपदा के ऐसे भागों में से जो कि उसके द्वारा बेचे या निपटाए नहीं जाएं, उनके अपसरण के अनुसार उन्हें पुरस्कृत किया जाए।

निष्कर्षः-

(1) इस प्रकार यह अवश्य स्पष्ट होना चाहिए कि व्यवस्थापक का आशय निश्चित

संपत्ति पर निश्चित न्यास निश्चित व्यक्तियों के लिए सृजित करने की अभिच्छा थी। कोई भी न्यास निश्चित लाभग्राहियों को निश्चित अधिकारों को देने के लिए निश्चित दायित्व सृजिश करने के आशय के अभाव में उद्भूत नहीं हो सकता है।

(2) इस पर भी यह ध्यान देने योग्य होगा कि एक निश्चित व्यक्ति को न्यासी के रूप में मनोनीत करने की विफलता न्यास को अवैध नहीं होने देती है। जहां एक न्यास स्पष्टत: आशयित है तो (स्वैच्छिक न्यास के नियमाधीन) न्यासी नियुक्त करने की मात्र अवहेलना न्यास को अवैध नहीं होने देगी : क्योंकि साम्या न्यासी की कमी के लिए न्यास का विफल होना कभी अनुमत नहीं करेगी। अतएव यदि कोई न्यासी नियुक्त नहीं किया जाता है या नियुक्त न्यासी, या तो मृत्यु के या परित्याग, या अक्षमता या अन्य कारण से विफल हो जाता है तो न्यास विफल नहीं होता है, वरन् किसी भी व्यक्ति (बिना सूचना के मूल्य पर क्रेता से अन्य) जिसके हाथों में संपत्ति आती है अंत:करण पर दृढ़ हो जाता है और ऐसा व्यक्ति उसे निष्क्रिय न्यासी के रूप में रखता है जिसका कर्त्तव्य केवल यह है कि वह उसे नए न्यासियों को, जैसे ही एवं जब उचित रूप से नियुक्त हो जाएं हस्तांतरित करे।

(3) संपत्ति, लाभग्राही या न्यास के प्रयोजन की अनिश्चितता का प्रभाव भिन्न-भिन्न है:-

(i) जहां न्यास संपत्ति संबंधी अनिश्चितता से प्रभावित है वहां न्यास शून्य है। चूंकि पहचान योग्य कोई संपत्ति नहीं है इसलिए वाद करने के लिए कुछ भी नहीं है।

(ii) जहां न्यास लाभग्राही या प्रयोजन संबधी अनिश्चितता से प्रभावित है वहां न्यास शून्य है। चूंकि कोई व्यक्ति लाभग्राही के रूप में नामित नहीं किया जाता है इसलिए कोई भी व्यक्ति उसे प्रवर्तित कराने के लिए आगे नहीं आ सकता।

(iii) जहां संपत्ति पर्याप्त निश्चितता के साथ वर्णित है, और वस्तुत: प्रयुक्त शब्द या विद्यमान परिस्थितियां स्पष्ट करती हैं कि यद्यपि दाता ने पर्याप्तत: विनिर्दिष्ट नहीं किया है उसके दान का उद्देश्य या वह तरीका जिसमें संपत्ति संबंधी कार्यवाही की जानी थी तो भी उसका तात्पर्य न्यासी द्वारा समग्र लाभप्रद हित लेने का नहीं था, विधि द्वारा दाता या उसके प्रतिनिधि के पक्ष में फलित न्यास विवक्षित करती है।

(II) न्यास संपत्ति अंतरण के योग्य हो।

1. कौन-सी संपत्ति अंतरण के योग्य है?

2. इस प्रश्न का उत्तर संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 6 में मिलता है।

3. वह संपत्ति जो अंतरित होनी है, न्यास की विषय-वस्तु हो सकती है।

4. किंतु एक अस्तित्वयुक्त न्यास के अधीन लाभप्रद हित का कोई न्यास नहीं हो सकता है। लाभग्राही न्यास में अपने हित का न्यास सृजित नहीं कर सकता उसका हित अंतरणीय है किंतु वह उसका न्यास सृजित नहीं कर सकता है।

5. यह अंग्रेजी न्यास विधि एवं भारतीय न्यास विधि के बीच एक महत्त्वपूर्ण अंतर दर्शाता है।

6. अंग्रेजी विधि के अंतर्गत लाभग्राही अपनी साम्यिक संपत्ति का न्यास सृजित कर सकता है।

7. कारण यह है कि भारतीय विधि न्यास में विधिक एवं साम्यिक संपदाओं के बीच अंतर नहीं मानती।

धारा 11 - न्यास उचित रूप से सृजित हो सकता है और फिर भी अप्रवर्तनीय हो सकता है।

1. न्यास उचित रूप से सृजित हो सकता है किंतु प्रवर्तनीय नहीं हो सकता है। प्रवर्तनीय होने के लिए न्यास को दो अन्य शर्तें पूरी करनी चाहिए:-

(1) न्यास का उद्देश्य अविधिपूर्ण न हो।

(2) न्यास के सृजन की औपचारिकताएं पूरी कर दी गई हों।

न्यास का उद्देश्य

धारा 4

1. न्यास का उद्देश्य विधिपूर्ण हो।

2. विधिपूर्ण उद्देश्य क्या है?

(1) प्रयोजन विधि द्वारा वर्जित न रहा हो।

(2) प्रयोजन ऐसा न हो जो यदि अनुज्ञात हो तो किसी अन्य विधि के प्रावधानों को विफल करेगा।

अविधिपूर्ण उद्देश्य क्या है?

(1) प्रयोजन जो कपटपूर्ण है।

(2) वह प्रयोजन जो उस व्यक्ति या अन्य व्यक्ति की संपत्ति की क्षति को अंतर्ग्रस्त या विवक्षित करता है।

(3) वह प्रयोजन जो अनैतिक है या लोक नीति के विपरीत है।

दृष्टांत:-

(1) न्यास जो वेश्याओं के रूप में प्रशिक्षित किए जाने वाली महिला परित्यक्ताओं की देखरेख के लिए हैं।

(2) न्यास, तस्करी का कार्य करने वाला हो और उसके लाभों से उसे बनाए रखने वाला है।

(3) न्यास जो दिवालिया परिस्थितियों में व्यक्ति द्वारा लेनदारों को विफल करने के लिए है।

(4) न्यास जो जारज बच्चों के लिए है।

(5) न्यास जो शाश्वतता के सृजन के लिए है।

(6) न्यास जो पति पत्नी के भविष्य में पृथकत्व को प्रभावित करने के लिए है।

3. क्या न्यास विधिपूर्ण या अविधिपूर्ण है स्थावर संपत्ति की दशा में उस विधि द्वारा निश्चित किया जाता है जहां संपत्ति अवस्थित है।

4. वह न्यास जो अविधिपूर्ण है, शून्य है।

5. जहां किसी न्यास के दो प्रयोजन होते हैं, जिनमें से एक विधिपूर्ण है और दूसरा अविधिपूर्ण। वहां न्यास की विधिमान्यता दोनों की पृथकरणीयता पर निर्भर करती है। यदि वे पृथक किए जा सकते हैं तो विधिपूर्ण प्रयोजन से एक विधिपूर्ण है और एक अविधिपूर्ण। प्रयोजन से शून्य होगा। यदि वे पृथक नहीं किए जा सकते तो संपूर्ण शून्य होगा।

6. अविधिपूर्ण न्यास के सृजन के व्यवस्थापक के परिणाम –

(i) न्यायालय उसे उसके द्वारा लाभान्वित होने के लिए आशयित व्यक्ति के पक्ष में प्रवर्तित नहीं करेगा।

(ii) न्यायालय संपदा का वसूली करने में व्यवस्थापक की सहायता नहीं करेगा।

विधिमान्य न्यास की औपचारिकताएं

धारा 5

1. न्यास, स्थावर संपत्ति का न्यास हो सकता है या चल संपत्ति का न्यास हो सकता है। न्यास की विधिमान्यता के लिए विधि द्वारा निर्धारित औपचारिकताएं, संपत्ति स्थावर है या जंगम, उसके अनुसार भिन्न–भिन्न होती है।

2. *स्थावर संपत्ति की दशा में औपचारिकताएं*

इस प्रकार का न्यास दो युक्तियों से बनाया जा सकता है –

(i) या तो न्यास रचयिता के द्वारा या न्यासी द्वारा हस्ताक्षरित एक निरवसीयती विलेख के द्वारा या;

(ii) न्यास रचयिता की विल द्वारा।

3. जंगम संपत्ति की दशा में न्यास की औपचारिकताएं तीन युक्तियों द्वारा यह किया जा सकता है –

(i) एक निरवसीयती विलेख के द्वारा न्यास रचयिता या न्यासी द्वारा हस्ताक्षरित।

(ii) न्यास रचयिता या न्यासी द्वारा हस्ताक्षरित वसीयती लिखत के द्वारा।

(iii) न्यासी को संपत्ति स्वामित्व के अंतरण के द्वारा।

4. न्याय की घोषणा और सृजन के बीच अंतर (पांडुलिपि में व्याख्या नहीं दी गई है – संपादक)।

5. न्याय संपत्ति का अंतरण

1. जब तक न्यास रचयिता ने न्यास संपत्ति पर से अधिकार नहीं छोड़ा है, कोई न्यास सृजित नहीं किया जाता है। इसका अर्थ है कि उसने संपत्ति का अंतरण न्यासी को निश्चित कर दिया है।
2. जहां न्यासी रचयिता स्वयं न्यासी है वहां यह लागू नहीं होता है। केवल यह दर्शाना आवश्यक है कि उसने वह स्वरूप बदल दिया है जिसमें उसे धारण करता है।
3. जब न्यास वसीयत (विल) द्वारा सृजित किया जाता है तब यह लागू नहीं होता है। विल उसकी मृत्यु के बाद लागू होती है और तब न्यासी कब्जा लेते हैं।

खंड II – एक न्यास विधिमान्य हो सकता है फिर भी महाभियोज्य हो सकता है

1. एक विधिमान्य न्यस निम्न आधारों पर निम्न व्यक्तियों द्वारा महाभियोजित किया जा सकता है।

(अ) व्यवस्थापक या उसके उत्तराधिकारी द्वारा इस आधार पर

(i) पक्षों की अक्षमता।

(ii) उसके सृजन पर व्यवस्थापक द्वारा की गई भूल या उसके साथ किया गया कपट।

(ब) व्यवस्थापक के साहूकारों द्वारा उनको विफल या विलंबित करने के कपटपूर्ण आशय से या इसलिए कि वह दिवाला अधिनियम के प्रावधानों का अतिक्रमण करता है।

(स) सूचना के बिना व्यवस्थापक से न्यास की संपत्ति के भावी क्रेता के द्वारा जहां न्यास संपत्ति भूमि है और यह कि व्यवस्थापक द्वारा भावी क्रेता के दावे को

विफल करने का आशयित था।

1. न्यास के पक्षों की अक्षमता

न्यास रचयिता की क्षमता

ऐसा व्यक्ति जो संविदा करने के लिए सक्षम हो अर्थात्

(i) वह वयस्क हो, और

(ii) वह स्वस्थ चित्त हो।

2. यद्यपि वह अवयस्क को न्यास सृजन से निवारित करना है फिर भी विधि अवयस्क के लिए न्यास बनाने को प्रावधानित करती है, यदि विधि के अधीन निर्धारित प्रति शर्तों का पालन किया जाता है तो न्यास बनाया जा सकता है, परंतु यह आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय की अनुमति से किया जाता है।

आरंभिक अधिकारिता का प्रमुख न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुसार जिला न्यायालय है।

3. न्यास रचयिता की न्यास सृजन की यह सामर्थ्य दो तरह से सीमित है:-

(i) संपत्ति जो न्यास की विषय-वस्तु है अंतरणीय अवश्य हो।

(ii) वह उसे मात्र उस समय पर प्रवर्तित विधि द्वारा अनुमत सीमा तक अंतरित कर सकता है। वह न्यास वैध नहीं है यदि रचयिता को संपत्ति के व्यय की शक्ति नहीं है।

4. कौन-सी संपत्ति अंतरणीय है और कौन-सी संपत्ति अंतरणीय नहीं है, यह संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 6 में परिभाषित है।

5. संपत्ति के व्ययन का प्राधिकार और उस शक्ति का विस्तार विधि पर निर्भर करता है।

दृष्टांत :-

(i) एक हिंदू पिता पैतृक संपत्ति का व्ययन नहीं कर सकता है। अत: वह उसका न्यास सृजित नहीं कर सकता है।

(ii) एक हिंदू विधवा अपने पति से उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति का व्ययन नहीं कर सकती है। वह उसमें केवल आजीवन संपदा रखने वाली है - अत: वह उसका न्यास की युक्ति से व्ययन नहीं कर सकती है।

(iii) एक मुसलमान ऋणों की अदायगी एवं दफनयावी व्यय के बाद अपनी संपत्ति के 1/3 से अधिक का व्ययन नहीं कर सकता - अत: वह न्यासोक्ति से 1/3 से अधिक का व्ययन नहीं कर सकता।

एक न्यासी होने की सामर्थ्य

धारा 10

1. संपत्ति धारण करने योग्य प्रत्येक व्यक्ति न्यासी होने के लिए सक्षम है।
2. *संपत्ति धारण करने के योग्य कौन है?*

   प्रत्येक जीवित व्यक्ति संपत्ति लेने एवं धारण करने के योग्य है। अतः प्रत्येक जीवित व्यक्ति चाहे अवयस्क या विक्षिप्त (पागल) हो न्यासी होने के लिए सक्षम है।
3. संविदा करने की क्षमता और संपत्ति लेने एवं धारण करने की क्षमता में अंतर है। प्रत्येक जीवित व्यक्ति में संविदा करने की क्षमता नहीं होती है, वरन् प्रत्येक जीवित व्यक्ति को संपत्ति लेने एवं धारण की क्षमता होती है।
4. यह अंतर करना आवश्यक है एवं दिमाग में रखना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि एक व्यक्ति की संविदा करने की क्षमता नहीं हो सकती है तो भी वह न्यासी होने के लिए सक्षम है, बशर्ते उसकी संपत्ति धारण करने एवं लेने की क्षमता है, भौतिकतः मृत न हो इसके लिए वह सिसिल दृष्टि से मृत नहीं हो।

   (1) काले पानी के लिए दंड देशित व्यक्ति, सिविल दृष्टि से मृतक नहीं है।
5. एक और भी अंतर है जो ध्यान में रखना है। साधारणतः जो व्यक्ति न्यासी होने के लिए सक्षम है वह न्यास के निष्पादन के लिए भी सक्षम है। किंतु यदि न्यास में विवेक का प्रयोग करना हो तो वह व्यक्ति जो न्यासी होने के लिए सक्षम हैं, आवश्यक नहीं है कि न्यास का निष्पादन करने के लिए सक्षम हो।
6. जहां न्यास ऐसा है कि उसमें विवेक का प्रयोग नहीं करना है वहां न्यास को निपन्न करने की क्षमता की अपेक्षा वही है जो न्यासी होने के लिए है, अर्थात् संपत्ति धारण करने एवं लेने की क्षमता।
7. जहां न्यास होता है कि उसके निष्पदन में विवेक का प्रयोग अंतर्ग्रस्त है वहां न्यासी में संविदा करने की क्षमता होनी ही चाहिए।

लाभग्राही होने की सामर्थ्य

धारा 9

1. प्रत्येक व्यक्ति जो संपत्ति धारण के योग्य है लाभग्राही हो सकता है।
2. लाभग्राही होने के लिए अपेक्षा वही है जो एक न्यासी होने के लिए है।

3. अर्थात् प्रत्येक जीवित व्यक्ति लाभग्राही हो सकता है। अर्थात् प्रत्येक जीवित व्यक्ति के हित में न्यास सृजित किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि लाभग्राही की संविधिक क्षमता हो। इस संबंध में उसकी स्थिति उन्हीं प्रावधानों से विनियमित होती है जो न्यासी के लिए है।

अध्याय - 3

अभिव्यक्त/घोषित न्यास का प्रतिसंहरण

धारा 78

1. क्या न्यास प्रतिसंहरित किया जा सकता है या इस पर निर्भर करता है कि न्यास कैसे सृजित किया जाता है।

   (i) यदि न्यास विल द्वारा सृजित किया जाता है तो वसीयतकर्ता द्वारा उसकी इच्छा पर प्रतिसंहरित किया जा सकता है। यह इसलिए है कि विल मृत्यु तक प्रभावी नहीं होती है। प्रभावी होने से पहले ही उसे प्रतिसंहरित किया जा सकता है।

2. यदि न्यास विल से अन्यथा सृजित किया जाता है तब अर्थात् वसीयती विलेख द्वारा या मौखिक शब्दों द्वारा तब वह केवल निम्न परिस्थितियों में ही प्रतिसंहरित किया जा सकता है -

   (i) यदि प्रतिसंहरण का शक्ति न्यास रचयिता के लिए अभिव्यक्ततः आरक्षित की गई है।

   (ii) यदि लाभग्राही सहमत है बशर्ते कि उनमें से सभी संविदा करने के लिए सक्षम है।

अध्याय - 4

अभिव्यक्त न्यास का निर्वापन

धारा 77

1. न्यास निम्नलिखित दशाओं में समाप्त हो जाता है :-

(i) जब प्रयोजन पूर्णतः संपन्न हो गया है।

(ii) जब इसका प्रयोजन अविधिपूर्ण हो जाता है।

(iii) जब इसका पालन असंभव हो जाता है।

(iv) जब न्यास के प्रतिसंहरणीय होने पर अभिव्यक्ततः प्रतिसंहरित किया जाता है।

(v) यदि मात्र एक लाभग्राही है या अनेक लाभग्राही है। (चाहे वे साथ-साथ हकदार हों या उत्तरोत्तर) और वे किसी अयोग्यताधीन है या नहीं है जैसे, विक्षिप्त न्यास उनके द्वारा व्यवस्थापक या न्यासियां की इच्छाओं के संदर्भ के बिना निर्वापित किया जा सकता है।

2. न्यास के अवसान की शर्ते वही हैं जो संविदा के अवसान की हैं।

(1) विचार करने के लिए दो प्रश्न रह जाते हैं:-

(i) न्यास कब प्रशासनीय हो जाता है?

(ii) न्यासी एवं लाभग्राही न्यास में क्या संपदा रखते हैं?

(2) ये प्रश्न प्रारंभिकतः न्यास के प्रशासन के प्रश्न के हैं।

(i) न्यास कब कार्य करना आरंभ करता है?

एक न्यास प्रशासनीय हो जाता ळै जब वह न्यासी एवं लाभग्राही द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है -

(i) यद्यपि न्यास रचयिता एक व्यक्ति को न्यासी के रूप में नियुक्त कर सकता है किंतु नियुक्त व्यक्ति ऐसी नियुक्ति को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है।

(ii) न्यासी के पद पर नियुक्त व्यक्ति पद को स्वीकार कर सकता है या वह उसे अस्वीकार कर सकता है।

3. पद का स्वीकरण अभिव्यक्ततः या आचरण से इंगित किया जा सकता है। यदि वह आचरण से है तो उसे ऐसे स्वीकरण को समुचित निश्चितता के साथ अवश्य इंगित करना चाहिए।

दृष्टांतः- अ अपनी विल द्वारा कतिपय संपत्तियां ब एवं स न्यासियों को द के लिए प्रदान करता है। ब एवं स अ की विल को प्रमाणित करते हैं। यह प्रश्न उठाए जाने पर कि क्या ब एवं स ने न्यासी का पद स्वीकार कर लिया था, धृत किया कि उनका विल को प्रमाणित करने का व्यवहार पद के स्वीकरण के समान था।

4. आचरण द्वारा स्वीकरण के अन्य दृष्टांत है:-
   (i) मौन सम्मति द्वारा स्वीकरण - उसके नाम से न्यास संपत्ति के संबंध में लाए गए वाद को अनुतम करना।
   (ii) न्यास संपत्ति पर अधिपत्य निष्पादित करके स्वीकरण - किराएदार को नोटिस देना।
   (iii) संपत्ति से व्यवहार करके स्वीकरण - जब तक कि व्यवहार स्पष्टतया किसी अन्य आधार के प्रति निर्देशय नहीं हैं।
   (iv) न्यास के नोटिस के साथ लंबी चुप्पी के द्वारा (स्वीकरण) एवं चुप्पी के संतोषजनक स्पष्टीकरण के अभाव में स्वीकरण।
   (v) न्यास के एक भाग का स्वीकरण, समग्र का स्वीकरण है, भाग के किसी प्रयासित अस्वीकरण के होते हुए भी।
5. विधि में व्यक्त नहीं है कि कैसे न्यासी द्वारा जो पद को स्वीकार करने का इच्छुक नहीं है, अस्वीकरण किया जाता है। वह केवल व्यक्त करती है कि अस्वीकरण समुचित समय में अवश्य किया जाए।
6. यद्यपि विधि इस विषय में शांत है, निम्नोक्त अस्वीकरण से संबंधित बिन्दु न्यायिक निर्णयों द्वारा तय किए गए हैं।
   (i) अस्वीकरण, स्वीकरण से पहले होना चाहिए। एक बार न्यासी ने पद स्वीकार कर लिया है तो वह धारा 46 में वर्णित परिस्थितियों में केवल उसे अस्वीकार कर सकता है।
   (ii) एक व्यक्ति न्यास को अस्वीकार कर सकता है, यद्यपि वह, व्यवस्थापक के जीवनकाल में न्यासी के रूप में कार्य करने के लिए स्वीकृति दे चुका है।
   (iii) एक व्यक्ति न्यास के एक भाग के लिए पद को अस्वीकार और शेष के लिए स्वीकार नहीं कर सकता।
   (iv) अस्वीकरण शब्दों द्वारा या व्यवहार द्वारा हो सकता है।
7. **अस्वीकरण दावा त्याग का प्रभाव**
   (i) यदि मात्र एक ही न्यासी है तो अस्वीकरण न्यास संपत्ति को उसमें निर्विष्ट होने को निरुद्ध करता है।
   (ii) यदि दो (या) अधिक न्यासी हैं और उनमें से एक अस्वीकार करता है तो ऐसा अस्वीकरण करता न्यास संपत्ति को दूसरे या अन्य में निर्विष्ट करता है या उसे या उन्हें न्यास के सृजन के दिनांक से, अनन्य न्यासी या न्यासीगण बनता है।
8. जब मात्र एक न्यासी है और वह अस्वीकार करता है तो क्या होता है, दो बातें हो सकती हैं:-

(i) धारा 73 के अधीन एक नया न्यासी नियुक्त किया जा सकता है –

(अ) न्यासों में व्यक्त एक व्यक्ति के द्वारा।

(ब) यदि ऐसा कोई न हो तो व्यवस्थापक द्वारा यदि वह जीवित है और संविदा करने के लिए सक्षम है।

(ii) यदि, जो स्वीकार कर चुका है, उसके स्थान पर कोई न्यासी नियुक्त नहीं किया जाता है तो संपत्ति व्यवस्थापक या उसके प्रतिनिधि, यदि वह मृत है, को अवक्रमित हो जाती है।

9. **संपत्ति का क्या होता है? क्या वह न्यास से मुक्त हो जाती है? क्या वह न्यास के अधीन रहती है?**

उत्तर है कि न्यास समाप्त नहीं होता है। व्यवस्थापक यदि वह जीवित नहीं है तो उसका प्रतिनिधि उसे न्यास में लाभग्राही के लिए धारित करता है। दूसरे शब्दों में व्यवस्थापक या उसका प्रतिनिधि उस न्यासी, जो अस्वीकार कर चुका है, के स्थान पर एक न्यासी हो जाता है।

नियम है कि न्यास न्यासी की कमी के कारण कभी विफल नहीं होगा। जहां कहीं भी न्यास विद्यमान है और उसे निष्पन्न करने के लिए कोई न्यासी नहीं है वह व्यक्ति जिसमें विधिक संपदा निर्विष्ट होती है, संपत्ति को एक न्यासी के रूप में धारित करता है। यह नियम लाभग्राही की रक्षा हेतु आशयित है।

मैलाट बनाम विल्सन (1903) 2 सी.एच. 494

II. लाभग्राही द्वारा अस्वीकरण (दावालागू) एवं स्वीकरण।

धारा 9

1. लाभग्राही न्यास को स्वीकार करने को बाध्य नहीं है। वह उसे स्वीकार कर सकता है या उसे अस्वीकार कर सकता है।
2. उसका अस्वीकरण, न्यास के अधीन उसके हितों के परित्याग के समान होता है।
3. यदि वह अस्वीकार करने की इच्छा करता है तो ऐसा वह दो युक्तियों से कर सकता है –

   (i) न्यासी को प्रेषित अस्वीकरण पत्र द्वारा या

   (ii) न्यास के अभिज्ञान के साथ न्यास के अतर्गत दावा स्थापित करके।
4. न्यास के असंगत दावा ऐसा दावा होगा जैसे न्यास संपत्ति का स्वामित्व।

जब लाभग्राही अस्वीकार करता है तो न्यास का क्या होता है?

(III) न्यास के अधीन न्यासी की संपदा। (पृष्ठ खाली छूटे हुए हैं)।

(IV) एक न्यास के अधीन लाभग्राही की संपदा (पृष्ठ खाली छूटे हुए हैं)

भाग - III

न्यास का प्रशासन

भाग - III

न्यास का प्रशासन

न्यास के संबंध में न्यासी के निम्नलिखित होते हैं:-

(i) कर्त्तव्य - धाराएं 12-30

(ii) दायित्व - धाराएं 23-30

(iii) अधिकार - धाराएं 31-36

(iv) शक्तियां - धाराएं 37-45

(v) अयोग्यताएं - धाराएं 46-54

उसी प्रकार लाभग्राहियों के होते हैं -

(i) अधिकार - धाराएं 55-67

(ii) दायित्व - धारा 68

I. न्यासी के कर्त्तव्य

धाराएं 12-20

V (2) न्यास (न्यास विलेख में) लिखित निर्देशों का पालन करने के कर्त्तव्य।

IV (3) लाभग्राहियों के बीच निष्पक्षत: कार्य करने का कर्त्तव्य।

IV (4) क्षीण होती हुई और प्रत्यवर्ती संपत्ति को बेचने का कर्त्तव्य।

IV (5) जावक फसलों के आदेय (अदायगी) और आय के संबंध में कर्त्तव्य।

IV (6) उचित सावधानी बरतने का कर्त्तव्य।

IV (7) न्यास निधियों के निवेश के संबंध में कर्त्तव्य।

IV (8) सम्यक व्यक्तियों को न्यास धन अदा करने का कर्त्तव्य।

IV (9) कर्त्तव्य एवं शक्तियों के प्रत्यायोजन के संबंध में कर्त्तव्य।

IV (10) जब एक से अधिक न्यासी हों तो संयुक्तत: कार्य करने का कर्त्तव्य।

IV (11) पर व्यक्ति का अधिकार स्थापित न करने का कर्त्तव्य।

IV (12) अनुग्रहपूर्वक कार्य करने का कर्त्तव्य।

IV (13) न्यास संपत्ति में अवैध व्यापार न करने का कर्त्तव्य।

IV (14) लेखे-जोखे के साथ तत्पर रहने का कर्त्तव्य।

---

* प्रत्येक पृष्ठ पर केवल शीर्षक हैं, विवरण नहीं।

V. न्यासी की शक्तियां
धाराएं 37-45

V (0) न्यासी की शक्तियां

V (1) न्यासी की सामान्य शक्तियां।

V (2) न्यास संपत्ति का विक्रय या बंधक करने की शक्तियां।

V (3) विक्रयों के संचालन की शक्ति।

V (4) रसीद देने की शक्तियां

V (5) विवादों को शमन एवं तय करने की शक्ति।

V (6) अवयस्कों के भरण-पोषण को अनुमत करने की शक्ति।

V (7) लाभग्राही का खर्च अदा करने की न्यासियों की शक्ति।

V (8) प्रशासनिक कार्रवाई द्वारा न्यासी की शक्तियों का निलंबन।

VI. लाभग्राहियों की शक्तियां

*VI (1) एकमात्र लाभग्राही की शक्ति।

VI (2) अनेक लाभग्राहियों में से एक की शक्ति।

(25) क्या एक न्यासी अपने पूर्वन्यासी के द्वारा न्यास के उल्लंघन के लिए उत्तरदायी है? नहीं है।

(26) क्या एक न्यासी अपने सह न्यासी द्वारा कृत न्यास के उल्लंघन के लिए उत्तरदायी है? नहीं है।

वह निम्न दशाओं में अपवाद नहीं है :-

(i) जहां उसने अपने सह न्यासी को न्यास संपत्ति उसके समुचित प्रयोग को बिना देखे हुए दी है।

(ii) जहां वह अपने सह न्यासी को न्यास संपत्ति को ग्रहण करने की अनुमति देता है और सहन्यासी को उसके साथ अवसरों के बारे में सम्यक छानबीन करने में विफल हो जाता है या उसको उसे परिस्थितियों में समुचिततः वांछित से अधिक दीर्घकाल तक रखने देता है।

(iii) जहां वह सह न्यासी द्वारा उल्लंघन के बारे में जान जाता है और उसे छिपाता है या संपत्ति की रक्षा करने के लिए उपयुक्त प्रयास नहीं करता है।

27. सह न्यासियों द्वारा संयुक्ततः किया गया न्यास भंग

प्रत्येक का दायित्व क्या है? क्या वह समग्र के लिए है?

---

* प्रत्येक पृष्ठ पर केवल शीर्षक हैं, विवरण नहीं।

प्रत्येक लाभग्राही के प्रति समग्र का दायी है। शेष लोगों से अंशदान लेने का अधिकार होगा।

28. एक व्यक्ति, जो वह व्यक्ति नहीं है जिसमें लाभग्राही का हित निहित नहीं है, को न्यासी द्वारा अदायगी का दायित्व।

न्यासी दायित्वाधीन नहीं है, बशर्ते कि –

(i) उसको सूचना नहीं थी कि हित एक अन्य व्यक्ति में निहित था।

(ii) कि वह व्यक्ति जिसको अदायगी की गई है, अदायगी के लिए हकदार था।

XIII. न्यासियों को संरक्षण

*(1) सामान्य संरक्षण।

*XIII (2) परिसीमा – कानून।

XIII (3) लाभग्राही की सहमति या उसके द्वारा अधित्यजन या निरमुक्ति।

XIII (4) सह न्यासियों के कार्यों के प्रति संरक्षण।

XIII (5) सह न्यासियों के बीच अंशदान का अधिकार या क्षतिपूर्ण।

XIV (6) तीसरे पक्षों एवं लाभग्राहियों का दायित्व।

*(i) तीसरे पक्षों एवं लाभग्राहियों का दायित्व जो न्यास भंग के पक्ष में है।

*(ii) निम्न न्यास संपत्ति तीसरे पक्षों के हाथों में जाने के पश्चात्।

---

*. प्रत्येक पृष्ठ पर केवल शीर्षक हैं, विवरण नहीं।

भाग - IV

आन्वयिक न्यास

भाग - 4
आन्वयिक न्यास

(1)आन्वयिक न्यास की चौदह स्थितियां हैं जो न्यास अधिनियम में प्रमाणित की गई है।

2. वे पांच शीर्षों में आती हैं:-

(1) अंतरणों से उद्‌भूत होने वाले आन्वयिक न्यास - धाराएं 81, 82, 84, 85

(2) एक व्यक्ति के विपरीत एक व्यक्ति द्वारा अनुचित लाभ लेने से उद्‌भूत होने वाले आन्वयिक न्यास - धाराएं - 85, 88, 89, 90, 93

(3) कृत संविदा से उद्‌भूत होने वाले आन्वयिक न्यास - धाराएं 86, 91, 92

(4) आन्वयिक न्यास - धारा 87

(5) विगत न्यास से उद्‌भूत होने वाले न्यास - धारा 83

1. संपत्ति का अंतरण या वसीयत

(i) धारा 81

1. कुछ मामलों में संपत्ति का अंतरण या वसीयत अंतरिणी या (वसीयतदार) पर स्वामी या उसके प्रतिनिधि के पक्ष में एक न्यास की प्रकृति में दायित्व डालकर करता है।

साधारणत: अंतरणकर्त्ता या वसीयतकार संपत्ति को पूर्णत: ऐसे किसी दायित्व के बिना लेगा।

2. यह कब अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अंतरिती या वसीयतदार उसे एक दायित्व के अधीन लेता है? वह उसको एक दायित्व के अधीन लेता है जब स्वामी का आशय अंतरिती या वसीयतकार की संपत्ति के लाभदायी हित का व्ययन नहीं है।

3. आशय किस प्रकार अवधारित किया जाता है? मामले की परिस्थिति के प्रकाश में। यह परिस्थितियां ही हैं जो स्वामी के आशय को जान लेने के लिए अवश्य ढूंढी जानी चाहिए।

(ii) धारा 82

1. दूसरा मामला जहां संपत्ति अंतरण, अंतरिती पर न्यास की प्रकृति के एक दायित्व का आरोपण करता है, ऐसा मामला है जहां एक व्यक्ति को अंतरिती बनाया जाता है और दूसरे व्यक्ति द्वारा मूल्य चुकाया जाता है - ऐसे एक मामले में अंतरिती उसे न्यास में रखते है। उस व्यक्ति के लिए जिसने मूल्य चुकाया था।

साधारणत: अंतरिती विधिक दृष्टि से स्वामी होगा, अंतरक उसको द्वारा संपत्ति अंतरित किए जाने पर।

2. यह नियम की अंतरिती जिसने मूल्य अदा नहीं किया है, उसे उस व्यक्ति के लिए

न्यास में धारण करता है जिसने मूल्य चुकाया है, एक मामले के सिवाए सामान्यतः लागू होता है।

3. अपवादः-

यह नियम वहां लागू नहीं होता है जहां उस व्यक्ति के मन में लाभग्राही को लाभ देने का आशय है, जो मूल्य चुकाता है।

4. आशय का सबूत

(iii) अविधिक प्रयोजन के लिए अंतरण।

धारा 84

1. साधारणतः जब अंतरण अविधिक प्रयोजन के लिए है तो न्यायालय न तो संपादन को अंतरिती के पक्ष में प्रवर्तित करेगा न अंतरणकर्ता की संपदा, यदि वह उसको दे चुका है, की वापसी में सहायता करेगा।
2. किंतु यह नियम सभी परिस्थितियों में लागू नहीं होता है। परंतु यह नियम कुछ परिस्थितियों में अवश्य लागू होता है।
3. वे परिस्थितियां क्या हैं जिनमें नियम लागू नहीं होता है?

वे परिस्थितियां जिनमें नियम लागू नहीं होता है ये हैं:-

(i) यदि प्रयोजन निष्पादित नहीं किया जाता है।

(ii) यदि अंतरक ऐसा दोषी नहीं जैसा अंतरिती है।

(iii) यदि अंतरिती को संपत्ति के प्रति धारण के लिए अनुमत करना किसी विधि के प्रावधानों को विफल करना हो सकता है।

4. इन मामलों में न्यायालय अंतरक की सहायता करेगा और अंतरिती पर एक दायित्व, अंतरक के लाभार्थ संपत्ति को धारण करने पर, आरोपित करेगा।

(iv) अवैध प्रयोजन के लिए न्यास पर वसीयत।

धारा - 85

1. अवैध प्रयोजन के लिए अंतरणों की स्थिति अवैध प्रयोजन के लिए न्यास के समान होती है।
2. अर्थात् न्यायालय न तो अनुलाभित होने के लिए आशयित पक्षों के पक्ष में न्यास प्रवर्तन करेगा न वह व्यवस्थापक की संपदा के प्रत्युद्धरण करने में सहायता करेगा यदि उसने उसे अलग कर दिया है।

9 बी.ओ.एम.एस.आर. 542

3. धारा 85 न्यास को मान्यता प्रदान करती है भले ही प्रयोजन अवैध है, यह संविदा अधिनियम की धारा 4 में प्रतिपादित सामान्य सिद्धांत के विपरीत है। अतः कुछ व्याख्या की अपेक्षा है।

4. अवैध न्यास के पक्षों के अधिकारों को अधिशासित करने वाले सामान्य सिद्धांतों और उन सिद्धांतों के अपवाद निम्नानुसार निरूपित किए जा सकते हैं :-

I. जहां न्यास एक अविधिपूर्ण एवं कपटपूर्ण प्रयोजन के लिए सृजित किया जाता है वहां न्यायालय न तो लाभान्वित होने वाले के लिए आशयित पक्षों के हित में न्यास को प्रवर्तित करेगा न वह व्यवस्थापक की संपदा के प्रत्युद्धरण करने में सहायता करेगा। (एक स्थिति के सिवाए)

प्रश्न – उसे प्रवर्तित करने के लिए लाभग्राही को क्यों अनुमत नहीं किया जाता है?

उत्तर – क्योंकि यह एक अविधिपूर्ण प्रयोजन को प्रभावी बनाएगा।

प्रश्न – रचयिता को संपदा के प्रत्युद्धरण के लिए क्यों अनुमत नहीं किया जाता है यदि वह उसे छोड़ चुका है?

उत्तर – क्योंकि वह उसके अपने कपट का लाभ लेने में सहायता करेगा।

II. एक मामला जिसमें व्यवस्थापक संपत्ति का प्रत्युद्धरण करने के लिए अनुमत किया गया यद्यपि न्यास अविधिपूर्ण प्रयोजन के लिए है, वह मामला है जिसमें अविधिपूर्ण प्रयोजन प्रभावी होने में विफल हो चुका है।

प्रश्न – यह अपवाद क्यों बनाया गया है?

उत्तर – इसके दो कारण हैं:-

(i) प्रयोजन अविधिपूर्ण होने पर कोई न्यास नहीं उद्‌भूत हुआ, क्योंकि प्रारंभ से ही शून्य था।

(ii) न्यासी मूल्य न अदा करने पर संपत्ति में कोई लाभकर हित रखने का अधिकार नहीं रखता है जो इसलिए व्यवस्थापक को अवश्य वापस होनी चाहिए।

III. अविधिपूर्ण न्यास के रचयिता से जुड़ी अयोग्यताएं उसके विधिक प्रतिनिधियों पर लागू नहीं होती।

प्रश्न – क्यों?

उत्तर – क्योंकि वे संव्यवहार पक्ष नहीं है।

5. धारा 85 विधिक प्रतिनिधियों के पक्ष में न्यास को मान्यता क्यों प्रदान करती है। इसका कारण है क्योंकि वे अनभिज्ञ पक्ष है उनका अविधिपूर्ण न्यास से कोई सरोकार नहीं है।

2. अनुचित लाभ से उद्‌भूत होने वाले आन्वयिक न्यास

I. *धारा 85*

1. इस शीर्ष के अंतर्गत प्रथम मामला वहां उद्‌भूत होता है जहां किसी विल के अधीन संपत्ति वसीयत की जाती है और विलकर्ता अपने जीवनकाल में विल का प्रतिसंहरण करना चाहता है और वह उसका प्रतिसंहरण करने से प्रपीडन द्वारा रोका जाता है।
2. ऐसी परिस्थितियों के अंतर्गत वसीयतदार संपत्ति को उसके एक हितकारी स्वामी

के रूप में नहीं लेता वरन् वसीयतकर्ता के विधिक प्रतिनिधियों के लिए। उसे एक न्यासी के रूप में धारण करता है।

3. कारण है कि वसीयतदार ने अनुचित साधनों से अनुचित लाभ लिया है। वह इसलिए ऐसे लाभ को रखने के लिए अनुमत नहीं किया जा सकता है।

II. *धारा 88*

1. दूसरा मामला तब उद्भूत होता है जब कोई व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति के हित को उसके साथ अपने विश्वासप्रद संबंध के कारण संरक्षित करने के लिए बाध्य है।

2. वे व्यक्ति जो इस संवर्ग में आते हैं इस प्रकार हैं :-

(i) अभिकर्ता एवं मालिक।

(ii) फर्म के भागीदार।

(iii) संरक्षक एवं संरक्षित।

(iv) न्यासी एवं लाभग्राही।

(v) निष्पादक एवं वसीयतदार।

3. धारा में व्यक्त हैं -

(i) कि ऐसा व्यक्ति जो स्वयं अपनी विश्वस्तता का लाभ उठाते हुए धनीय लाभ लेता है।

(ii) किसी व्यवहार में उन परिस्थितियों में प्रवेश करता है जिनमें उसके अपने हित, उस व्यक्ति के जिसको वह संरक्षित करने के लिए बाध्य है, हितों के प्रतिकूल है और एतद्द्वारा स्वयं के लिए धनीय लाभ लेता है। तब वह इस प्रकार प्राप्त लाभ को उस व्यक्ति के लिए धारण करे जिसके हित को संरक्षित करने के लिए वह बाध्य था।

4. **दृष्टांत :-**

(i) कोई भागीदार अपनी फर्म से संबंधि निधि से अपने नाम में एक भूमि खरीदता है, वह भागीदारों के लाभ के लिए अवश्य धारण करे।

(ii) कोई न्यासी, अपने न्यास से अपने सहन्यासी द्वारा उसको दी गई घूस के प्रतिफल में सेवानिवृत्त होता है। न्यासी निश्चित ही उस धनराशि को न्यासी के लाभ के लिए धारण करे।

(iii) कोई अभिकर्ता अ द्वारा एक निश्चित संपत्ति को ब से पट्टे पर उपलब्ध करने हेतु नियुक्त किया जाता है। अभिकर्त्ता ने अपने लिए एक पट्टा प्राप्त किया। अभिकर्ता निश्चित रूप से उसे बके लाभ के लिए धारण करे।

(iv) कोई संरक्षक अपने संरक्षित की संपत्ति पर अधिभारों को कम मूल्य पर खरीदता है। वह संरक्षित से केवल अधिभारों के लिए वास्तविक अदा किए गए मूल्यों को ले सकता है।

III. *धारा 89*

1. तीसरा मामला वहां उद्‌भूत होता है, जहां अनुचित प्रभाव डालकर किसी अन्य व्यक्ति के मूल्य पर लाभ प्राप्त किया जाता है।
2. यह धारा 89 में है। धारा 99 में व्यक्त है कि ऐसा व्यक्ति निश्चितता से लाभ को उस व्यक्ति के लाभ के लिए धारण करे जो अनुचित प्रभाव का शिकार है।
3. यह दो परिसीमाओं के अधीन है –
   (i) लाभ बिना प्रतिफल के लिया गया है। या
   (ii) उस व्यक्ति को अनुचित प्रभाव से लिए गए लाभ की सूचना हो।

धारा – 90

1. चौथा मामला वहां उद्‌भूत होता है, जहां एक योग्य स्वामी के द्वारा संपत्ति में हितबद्ध अन्य व्यक्तियों के अधिकारों के अल्पीकरण में अपनी स्थिति को लाभ उठा कर प्राप्त किया जाता है।
2. इसका उल्लेख धारा 90 में किया गया था। धारा 90 में व्यक्त है कि जिसने उसे उपलब्ध किया था के लाभ के लिए नहीं।
3. यह दो परिसीमाओं के अधीन है –
   (i) अन्य लोग ऐसे लाभ को प्राप्त किए जाने के लिए उचित रूप से किए गए व्यय के अपने अंश अदा करें
   (ii) अन्य लोग ऐसे लाभ को उठाने के लिए उपयुक्तत: संविदागत अपने दायित्वों के अनुपातिक भाग को अवश्य सहन करें।
4. इसमें सह किराएदारों, संयुक्त परिवार के सदस्यों, बंधकदारों आदि के मामले आते हैं।

धारा – 93

1. पांचवां मामला वहां उद्‌भूत होता है जहां साहूकार द्वारा गुप्त रूप से फायदा उठाया गया है।
2. ऐसा मामला सामान्यत: तब उद्‌भूत होता है, जब साहूकार देनदार से एक रचना स्वीकार करता है, जो अपने ऋणों को पूर्ण रूपेण अदा करने अयोग्य है।
3. यदि यह पाया जाता है कि लेनदारों में से एक जो रचना में एक पक्ष है, अन्य देनदारों के लिए अनजान देनदार के साथ व्यवस्था द्वारा स्वयं के लिए श्रेष्ठतर शर्तें प्राप्त करता है, वह जो अन्य लेनदारों के लिए ईर्ष्या करके ऐसी श्रेष्ठतर शर्तों के कारण उसके द्वारा प्राप्त लाभ को रखने के लिए हकदार नहीं होगा।
4. जहां तक उसके द्वारा प्राप्त लाभ का संबंध है, विधि उसको अन्य लेनदारों के एक न्यासी के रूप में मानेगी।

3. संविदाओं से उद्भूत होने वाले आन्वयिक न्यास

I. *धारा 86*

1. इस शीर्ष के अंतर्गत संविदा अधिनियम में विचारित प्रथम मामला संपत्ति के अंतरण की संविदा से संबंधित है।
2. यह धारा 86 में आता है। धारा 86 ऐसी संविदा का हवाला देती है जिसके अनुसरण में संपत्ति अंतरित की जाती है और जहां संविदा का स्वरूप ऐसा है कि –
   (i) वह समर्पण के दायित्वाधीन है या
   (ii) वह कपट या भूल से उत्प्रेरित है।
3. संपत्ति का अंतरिती ऐसी संविदा के अधीन संपत्ति को अंतरक से लाभ के लिए धारण करेगा।
4. यह दायित्व कुछ परिस्थितियों में आता है और वह पूर्ण नहीं है।
   (i) दायित्व केवल अंतरक की सूचना प्राप्त करने पर ही उद्भूत होता है कि संविदा समर्पण के दायित्वाधीन है या यह कपट या भूल से उत्प्रेरित किया गया है।
   (ii) दायित्व केवल अंतरिती के द्वारा वस्तुतः अदा किए गए मूल्य की अंतरक द्वारा अदायगी पर प्रवर्तित किया जाएगा।

II. *धारा 91*

1. सूचना के साथ संपत्ति को प्राप्त करना, अर्थात् किसी अन्य व्यक्ति के साथ संविदा के अधीन।
2. ऐसे मामले में वह व्यक्ति जो संपत्ति को प्राप्त करता है और उस व्यक्ति के लिए धारण करे जो उसमें संविदागत अधिकारों को रखता था।
3. यह बाध्यता अपने विस्तार में सीमित है। संविदा को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक सीमा तक ही प्रवर्तित किया जाता है।
4. यह बाध्यता उस संपत्ति जो एक संविदा के अधीन है कि हर प्रापण के मामले में उद्भूत नहीं होती है। यह केवल ऐसी संविदा की दशा में ही लागू होता है जो विशिष्टतः कराया जा सकता था।

III. *धारा – 92*

1. संपत्ति कुछ व्यक्तियों के लिए विश्वास पर धारण करने के लिए खरीदी गई।
2. अ एक संपत्ति ब से क्रय करने के लिए संविदा करता है और ब से अभिवेदन करता है कि उसके खरीदने का प्रयोजन संपत्ति को स के लिए न्यास पर धारण करना है।

3. अ की संपत्ति को अवश्य स के लिए धारण करना चाहिए।
4. यह दायित्व भी इसी हद तक सीमित है – यह केवल संविदा को प्रभावी बनाने की आवश्यकता की हद तक ही प्रवर्तित किया जाता है।
5. संविदा स के लिए संपत्ति का कोई भाग न्यास पर धारण करने के लिए हो सकता है। उस मामले में दायित्व केवल उस संपत्ति की सीमा तक ही प्रवर्तित किया जाएगा।

4. किसी व्यक्ति में दो निजी संपत्तियों के विलय से उद्भूत होने वाले आन्वयिक न्यास

I. *धारा – 87*

1. यह दोहरे व्यक्तित्व की स्थिति के लिए उपबंध करती है – आदमी एक लेकिन व्यक्ति दो।
2. प्रत्येक संविदा, ऋण, दायित्व या समनुदेशन दो व्यक्तियों की अपेक्षा करता है।
3. किंतु ये दो व्यक्ति एक ही मानव हो सकते हैं।
4. ऐसे सभी मामलों में यदि वह दोहरे व्यक्तित्व की मान्यता के लिए नहीं था, तो दायित्व या अधिभार विलय के द्वारा नष्ट हो जाएगा।
5. क्योंकि कोई व्यक्ति अपने स्वयं के अधिकार से स्वयं किसी बाध्यता के अधीन नहीं हो सकता है।
6. किंतु दोहरे व्यक्तित्व की मान्यता से यह संभव है।
7. वास्तव में यह आवश्यक है।
8. **दृष्टांतः**– ऋणी, निष्पाद होकर।
   विधि की दृष्टि से निष्पादक स्वामी है।
   विलय ऋण की समाप्ति।
9. धारा व्यक्त करती है, नहीं।

* * * * *

भाग V

आन्वयिक न्यास का प्रशासन

भाग V

आन्वयिक न्यास का प्रशासन

भारतीय न्यास अधिनियम

1. न्यास से संबंधित विधि 1882 के अधिनियम - 11 में समाविष्ट है।
2. यह ऐसा अधिनियम है जो परिभाषित और संशोधित करता है - जिसका अर्थ है कि यह कोई नया सिद्धांत नहीं करता है।
3. अधिनियम विधि को समेकित नहीं करता है - जिसका अर्थ है कि यह सर्वांगपूर्ण संहिता नहीं है।
4. अधिनियमित का उद्देश्य न्यासों के संबंधित विधिक प्रावधानों को अधिनियमित कर एक समूह में रखना था। 1882 के अधिनियम से पूर्व न्यास से संविधिक विधि, 29 सी.ए.आर. (कार) 11 सी.-31 धाराएं 7-11 में समाविष्ट थीं।

   1886 का अधिनियम - XXVII

   1866 का अधिनियम - XXVIII

दंड संहिता विनिर्दिष्ट अनुतोष सिविल प्रक्रिया संहिता, स्टाम्प अधिनियम परिसीमा, राजकीय प्रतिभूतियों का अधिनियम, कंपनी अधिनियम, प्रेसीडेंसी बैंक अधिनियम में यत्र-तत्र बिखरे हुए कुछ एकाकी प्रावधान भी थे।

5. जैसा कि मूल रूप से प्रतिपादित किया गया था अधिनियम समग्र ब्रिटिश भारत पर लागू नहीं था। उदाहरण के लिए वह बंबई में लागू नहीं होता था, किंतु यह प्रावधान स्थानीय सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा इसका विस्तार करने के लिए किया गया था।
6. यहां यह विवेचना करना अनावश्यक है कि क्या हिंदू विधि एवं मुस्लिम विधि न्यास को जैसा कि वह न्यास अधिनियम में परिभाषित है, मान्यता प्रदान करती थी। इस पर अन्य लोगों द्वारा विचार किया जा सकता है।

न्यास की प्रकृति

1. न्यास धारा 3 में परिभाषित है। न्यास में तीन बातें होती हैं :-

   (1) एक व्यक्ति जो किसी संपत्ति का स्वामी है।

   (2) स्वामित्व एक बाध्यता के साथ भारित।

   (3) संपत्ति का अन्य व्यक्तियों या अन्य एवं स्वयं के लाभ के लिए उपयोग करने की बाध्यता।

2. यह लाभकारी उपयोग रहित स्वामित्व है। इसमें स्वामित्व एवं लाभकारी उपभोग अंतर्गस्त हैं।

3. न्यासी स्वामी में विश्वास रखने एवं उसके द्वारा स्वीकार करने पर उद्‌भूत होता है।

4. स्वामी विधि की दृष्टि से न्यासी है। न्यास के सृजन के बाद न्यास रचयिता संपत्ति का स्वामी नहीं रहता है।

1. न्यास क्या है

1. न्यास शब्द एवं न्यासी शब्द भारतीय विधान मंडल के बहुत से अधिनियमों में परिभाषित किए गए हैं।

(I) 1877 के अधिनियम सं. 1 विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम में परिभाषा।

धारा 3

(1) बाध्यता के अंतर्गत विधि के द्वारा प्रवर्तनीय प्रत्येक कर्त्तव्य है।

(2) न्यास में प्रत्येक प्रकार के अभिव्यक्त विवक्षित या आन्वयिक विवाक्षित स्वामित्व सम्मिलित है।

(3) न्यासी में अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से या आन्वयिक रूप से वैश्वासिक स्वामित्व को धारण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति सम्मिलित है।

(II) भारतीय न्यासी 1866 के अधिनियम सं. XXVII में परिभाषा।

धारा 2

"न्यास का अभिप्राय बंधक के द्वारा हस्तांतरित संपदा के आनुषंगिक कर्त्तव्य नहीं होगा किंतु इस अपवाद के साथ न्यास एवं न्यासी शब्द का विस्तार में विवक्षित एवं आन्वयिक न्यासों तक होगा एवं वे इनमें सम्मिलित होंगे और एक मृत व्यक्ति के निष्पादक या प्रशासक पद के आनुषंगिक कर्त्तव्यों तक होगा एवं इनमें सम्मिलित होंगे।"

(III) परिभाषा परिसीमा 1908 के अधिनियम सं. IX

धारा 2 (II)

न्यासी में बेनामीदार बंधकी बंधक चुकता हो जा कब्जा या बिना हक के सकब्जा दोषी सम्मिलित नहीं है।

(4) भारतीय न्यास 1872 के अधिनियम सं. II

(1) धारा 3 न्यास, संपत्ति के स्वामित्व से उपाबद्ध एवं बाध्यता है।

(2) न्यास के अवयव

(i) बाध्यता में न्यास।

(ii) दायित्व संपत्ति के स्वामित्व से अवश्य जुड़ा हो।

(iii) स्वामित्य, स्वामी में रखे गए एवं स्वीकृत विश्वास से अवश्य उद्भूत होना चाहिए।

(iv) स्वामित्व एक अन्य व्यक्ति के लाभ के लिए अर्थात् स्वामी से भिन्न व्यक्ति या एक अन्य व्यक्ति एवं स्वामी के लिए हो।

शब्दों (वायदों) का स्पष्टीकरण

I. बाध्यता अवश्य होनी चाहिए।

II. बाध्यता अवश्य स्वामित्व की संपत्ति से जुड़ी होनी चाहिए।

(1) बाध्यता ऐसी हो सकती है जिसके अधीन कोई व्यक्ति है यद्यपि कोई संपत्ति नहीं है जिससे वह संबद्ध है।

(2) संपत्ति उससे संबद्ध किसी बाध्यता के बिना भी हो सकती है। जैसे भरपूर एवं पूर्ण स्वामित्व - संपत्ति का विक्रय।

III. संपत्ति का स्वामित्व विश्वास में पाया जा सकता है या नहीं पाया जा सकता है।

दृष्टांत :-

कोई व्यक्ति स्वामित्व को संपत्ति के उपभोग करने के अधिकार को उसे देने के आशय के साथ अंतरित करता है।

कोई एक व्यक्ति स्वामित्व को संपत्ति के उपभोग करने के अधिकार को उसे दिए बिना अंतरित कर सकता है।

विश्वास में आधारित स्वामित्व और विश्वास में आधारित स्वामित्व के बीच अंतर होता है-

(i) परवर्ती में जसइबरी (एक वस्तु के प्रति पूरा एवं पूर्ण अधिकार) या जस एंड रेम (एक अपक्व एवं अपूर्ण अधिकार)

(ii) पूर्ववर्ती में नहीं है।

जैसे उपनिधान।

3. न्यास की प्रकृति न्यास के सदृश अन्य संव्यवहारों के साथ उसे उसकी तुलना करके अधिक अच्छी तरह समझी जा सकती है।

न्यास अभिकरण से प्रभेदित

1. जहां न्यास है, न्यास संपत्ति का स्वामित्व न्यासी का होता है। न्यासी द्वारा न्यास

से संदर्भित की गई सभी संविदाओं के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है, यद्यपि उसका न्यास निधि या लाभग्राही के प्रति उपाश्रय का अधिकार हो सकता है।

2. एक अभिकर्त्ता को सौंपे गए माल में विधि के अनुसार कोई स्वामित्व नहीं होता है। यदि अभिकर्ता कोई संविदा अभिकर्त्ता के रूप में करता है तो, वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं है। संविदा स्वामी के साथ होती है।

न्यास शर्त से प्रभेदित

1. शर्त के मामले न्यास के मामलों से दो बातों में भिन्न होते हैं –

(i) न्यास संपत्तिकार स्वामी के सिवाए किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सृजित नहीं किया जा सकता है। किंतु अ अपनी संपत्ति ब को एक अभिव्यक्त या विवक्षित शर्त पर दे सकता है कि ब उस संपत्ति का अ के द्वारा सूचित एक विशेष तरीके से व्ययन करेगा।

(ii) शर्तारोपित व्यक्ति की बाध्यता, प्राप्त संपत्ति के मूल्य से सीमित नहीं होती है। अर्थात् यदि अ एक वसीयत ब के लिए इस शर्त पर करता है कि ब को अ के ऋण चुकाने हैं और ब उस दान को स्वीकार करता है तो वह साम्या में ऋणों को उन्मोचित करने के लिए बाध्य किया जाएगा यद्यपि वह संपत्ति के मूल्य से अधिक है।

2. किंतु शर्त पर शब्द एक वास्तविक न्यास सृजित कर सकते हैं। इस प्रकार ब को किराए एवं लाभ अदा करने की शर्त पर अ को संपदा का उत्तर दान गठित करता है। क्योंकि यह स्पष्ट है कि कोई लाभकारी हित अ में रहना आशयित नहीं था।

अ अपनी संपत्ति ब को अभिव्यक्त या विवाक्षित शर्त पर देता है कि अपनी संपत्ति स को देगा। यहां स के पक्ष में शर्त है।

क्या यह न्यास है?

न्यास उपनिधान से प्रभेदित

1. उपनिधान चल संपत्ति की धरोहर है और इस अर्थ में यह न्यास की एक किस्म के रूप में वर्णित की जा सकती है। किंतु उपनिधान एवं न्यास के बीच भारी अंतर है कि सामान्य संपत्ति न्यास की विषय स्थिति में न्यासी पर होती है, जबकि उपनिहती केवल विशेष संपत्ति रखता है, सामान्य संपत्ति उपनिधाता में बंटती है।

2. इस अंतर का परिणाम है कि न्यासी द्वारा एक अनधिकृत विक्रय सद्भाव क्रेता जो न्यास की सूचना के बिना विधिक हित उपार्जित करता है, सम्यक हक प्रदान करेगा, जबकि उपनिहिती के द्वारा ऐसा विक्रय नियमतः उपनिधान में हक प्रदान नहीं करता।

3. उपनिहिती उपनिधान के परिणामस्वरूप संपत्ति का स्वामी नहीं हो जाता। किंतु एक न्यासी विधिकतः स्वामी अवश्य हो जाता है। न्यास के परिणामस्वरूप संपत्ति का जिस पर भी वह एक निश्चित विशेष वर्णित ढंग से संपत्ति के साथ व्यवहार करने के एक दायित्व के अधोगत है।

न्यास दान से प्रभेदित

साधारण संविदा न्यास से भिन्न होती है। संविदा जो एक तीसरे पक्ष को *

2. ऐसा होने पर यदि आदाता को चुनाव की स्थिति में रखने की दाता अभिच्छा न हो तो चुनाव नहीं होता।

I. पालन

1. **समस्या :-** अ कोई कार्य करने के लिए ब के साथ प्रसंविदा करता है। अ एक कार्य करता है जो पूर्णतः या अंशतः उसी प्रयोजन को प्रभावी कर सकता है, अर्थात् प्रसंविदा के अंतर्गत उद्भूत होने वाले कर्त्तव्य के पालन के लिए उपलब्ध है किंतु कार्य को प्रसंविदा से संबद्ध नहीं करता है। प्रश्न है इस कृत्य का क्या अर्थ किया जाए? क्या यह अर्थ समझा जाए कि वह एक स्वतंत्र कार्य है। प्रसंविदा कर्त्तव्य पालन करने का था। साम्या का उत्तर है कि प्रसंविदा के अंतर्गत कर्त्तव्य पालन न करना आशक्ति अवश्य माना जाना चाहिए।

2. **सिद्धांत :-** पालन की विचारधारा में अंतर्निहित सिद्धांत है कि साम्या उपधारित करती है कि प्रत्येक मनुष्य का अपनी बाध्यता का पालन करने का आशय होता है और जब वह कार्य करता है जो उसी कार्य के अनुरूप है, जिसे करने का उसने वायदा किया था, तब साम्या उस आशय को प्रभावी रूप प्रदान करती है।

3. यदि इस सिद्धांत को मान्यता प्रदान नहीं की गई तो जो कठिनाइयां उत्पन्न होंगी वे हैं -

दृष्टांत :-

अ ने अपने विवाह पर प्रति वर्ष 200 पाउंड के मूल्य की भूमि क्रय करने और अपनी पत्नी का स्त्रीधन निर्धारित करने के लिए और विवाह की असफलताओं में प्रथम एवं अन्य पुत्रों के लिए निर्धारित करने की प्रसंविदा की।

अ ने उसी मूल्य की भूमि खरीदी किंतु व्यवस्थापन नहीं किया जिससे उसकी मृत्यु पर भूमि उसके ज्येष्ठतम पुत्र को उत्तराधिकार में मिली।

ज्येष्ठ पुत्र, अपने पिता के वैवाहिक अनुच्छेदों पर आधारित 200 पाउंड मूल्य की भमि पिता की व्यक्तिगत संपदा में से प्रति वर्ष खरीद करने की साम्यिक वसीयत कर लाया और वैवाहिक अनुच्छेदों के प्रयोजनार्थ व्यवस्था की। किंतु पालन के सिद्धांत के सिवाए मनुष्य दोनों को प्राप्त करेगा।

II. वाद जिनमें पालन के प्रश्न उद्भूत होते हैं, वर्गों में होते हैं:

(1) जहां भूमियों को खरीदने, व्यवस्थित करने की प्रसंविदा है और वास्तव में क्रय किया जाता है।

(2) जहां पर्सनेलिटी संपत्ति को किसी व्यक्ति के लिए छोड़ देने की प्रसंविदा है और प्रसंवेदक से वसीयती मर जाता है और एतद् द्वारा संपत्ति वास्तव में उस व्यक्ति के पास आ जाती है।

III. प्रथम वर्ग में उद्भूत होने वाले वाद

(i) *दृष्टांत:–* पहले ही दिया जा चुका है।

महत्त्वपूर्ण बिंदु:–

(i) जहां क्रीत भूमियां प्रसंविदित भूमियों से कम मूल्य की हैं, वे संविदा के आंशिक पालन में क्रीत मानी जाएगी।

(ii) जहां प्रसंविदा भूमियों के भावी क्रय की ओर इंगित करता है, वे भूमियां जिनका प्रसंवेदक प्रसंविदा के समय पहले ही पर्यवासित है। आंशिक निष्पादन में नहीं ली जानी है।

(iii) उस प्रसंविदित (भूमि) की प्रकृति से भिन्न प्रकृति की संपत्ति जो प्रसंवेदक द्वारा क्रय की जाने वाली थी, पालन के सिद्धांत के अधीन नहीं है।

IV. वाद जो द्वितीय वर्ग के अंतर्गत आते हैं:

(1) प्रसंविदा कुछ धन छोड़ जाने का है।

अ ने अपने विवाह के पूर्व अपनी पत्नी के लिए 620 पाउंड छोड़ जाने की प्रसंविदा की। उसने विवाह किया और वसीयत विहीन मर गया। वसीयत विहीनता के अंतर्गत उसकी पत्नी का अंश 620 पाउंड से कम था। पत्नी ने प्रसंविदा के पालन के लिए वाद फाइल किया। प्रश्न था वसीयत विहीनता पर 620 पाउंड प्राप्त करना। क्या वह प्रसंविदा का पालन नहीं था। यह अभिनिर्धारित किया गया था ताकि विधवा पत्नी वसीयत विहीनता पर अपने अंश का 620 पाउंड के ऊपर संविदा के अधीन ऋण के रूप में दावा न कर सके।

(2) *इस वाद में प्रसंविदा का पूर्णत: पालन हुआ*, तथापि प्रसंविदा के अंतर्गत देय धन से प्राप्त हुआ धन कम था, पालन का सिद्धांत लागू होगा और प्रसंविदा उस सीमा तक पालन की गई अभिनिर्धारित की जाती।

(3) *ध्यान में रखे जाने वाले दो बिंदु:*

(i) जहां प्रसंवेदक की मृत्यु उस समय पर या उससे पूर्व होती है जब बाध्यता उत्पन्न होती है, वहां पालन होता है।

(ii) जहां प्रसंवेदक की मृत्यु बाध्यता के देय पर उद्भूत हो चुकने के बाद धारित होती है वहां पालन नहीं है।

तुष्टि

1. समस्याः- अ ब के प्रति बाध्यता के अधीन है। अ ब को एक दान देता है। प्रश्न हैः क्या ब को प्रदत्त दान एक दान के रूप में ही लिया जाना है। या ब को प्रदत्त दान अ के ब के प्रति बाध्यता की तुष्टि के रूप में लिया जाना है?

II. ये तुष्टि और पालन के बीच समरूपता है। पर दोनों में मूलभूत प्रभेद है।

(1) पालन में कृत कार्य बाध्यता के उन्मोचन के लिए प्राप्त है, किंतु बाध्यताकारी के प्रति विशिष्ट शब्दों में संबंध नहीं है। तुष्टि में यह बाध्यताकारी से संबंधित है किंतु बाध्यता के उन्मोचन से नहीं है।

(2) पालन में, प्रसंविदा का पालन कर दिया गया है, यह निर्भर करता है, आशय पर नहीं वरन् बात पर कि क्या वह कर दिया गया है जिस को किए जाने का करार किया गया था। प्रश्न दान बाध्यता की तुष्टि करता है या नहीं यह दाता के आशय पर निर्भर करता है।

(3) यदि बाध्यता का उसकी शर्तों के अनुसार पालन किया गया है, तो दाता उन्मोचित हो जाता है। यदि बाध्यताधारी अपने दायित्व की तुष्टि में विल के द्वारा दान देता है तो यह उस दान को स्वीकार करे या उसे अस्वीकार करे यह बाध्यताकारी पर निर्भर करता है। यदि वह उसे स्वीकार करता है तो वह अपनी बाध्यता को प्रवृत्त करने के अधिकार से वंचित हो जाता है, यदि वह उसे अस्वीकार करता है तो वह अपने प्रारंभिक अधिकारों को बनाए रखता है।

II. आशय है कि दान पूर्ववर्ती की तुष्टि में है।

III. वाद जिनमें तुष्टि का प्रश्न उद्भूत होता है दो वर्गों में आती है :-

(1) वाद जिनमें पूर्ववर्ती बाध्यता भेंट के कृत्य से उद्भूत होती है।

(2) वाद, जिनमें पूर्ववर्ती बाध्यता ऋण की प्रकृति की होती है।

IV. वाद जिनमें पूर्ववर्ती बाध्यता बाउंटी के कृत्य से उद्भूत होती हैः-

इस वर्ग में दो प्रकार के वाद आते हैंः-

(अ) प्रभाग के द्वारा वसीयती संपत्ति की तुष्टि।

(ब) वसीयती संपत्ति द्वारा देय भाग की तुष्टि।

(अ) प्रभाग द्वारा वसीयती संपत्ति की तुष्टि :-

प्रभाग एक व्यक्ति की संपदा का वह भाग जो एक बच्चे या दिया य छोड़ा जाता है।

दृष्टांतः-

1. अ के तीन पुत्र हैं। ब स द। वह एक विल रचता है ओर उस विल में प्रत्येक

पुत्र को एक संपत्ति देता है। विल करने के बाद एक निश्चित रकम का धन उधार दे देता है।

2. यहां एक वसीयती संपत्ति है और उसके बाद एक प्रभाग। क्या वे समुच्चयी है या अनुकल्पिक है? क्या बच्चा जिसको एक भाग मिला है, उस भाग को पाने के लिए हकदार भी है? या क्या वसीयती संपत्ति का दावा पिता द्वारा प्रदत्त पश्चात्वर्ती प्रभाग से तुष्ट हो जाता है?

3. साम्या का उत्तर है कि बच्चा वसीयती संपत्ति और एक भाग दोनों को नहीं ले सकता। वसीयती संपत्ति का दावा पश्चात्वर्ती भाग के अनुदान से तुष्ट हुआ ठहराया जाएगा। यह दोहरे भाग का नियम कहलाता है।

II. वसीयती संपत्तियों द्वारा प्रभाग की तुष्टि

(1) यह प्रथम के विपरीत है। वादों के प्रथम वर्ग में प्रथम वसीयती संपत्ति है तब दाय भाग है। दूसरे में दाय भाग प्रथम है तब वसीयती संपत्ति है।

(2) पूर्ववाद में प्रश्न था कि क्या वसीयत द्वारा वसीयती संपत्ति बाद के दाय भाग द्वारा तुष्ट की गई थी। इसमें प्रश्न है, आयादाय भाग देने का दायित्व बाद की वसीयती संपत्ति द्वारा तुष्ट हो जाता है।

(3) उत्तर वही है जैसा कि पूर्ववाद में था। वही नियम दोहरे भाग के विपरीत लागू होता है ताकि एक दाय भाग वसीयती संपत्ति से तुष्ट हो जाएगा।

(4) जब विल व्यवस्थापन से पूर्व होती है तो केवल व्यय स्थापन को इसी प्रकार पढ़ना आवश्यक है। मानो प्रावधान करने वाले व्यक्ति ने कहा था, "मेरा अभिप्राय है, जो मैं अपनी विल द्वारा दे चुका हूं यह उसके बाद में होना है।

किंतु यदि व्यवस्थापन विल से पूर्व होता है तो वसीयतकर्ता को इस प्रकार समझा जाए कि वह ऐसे कहता है, "जिसे देने के लिए मैं पहले ही आबद्ध हूं उसके बदले यह देता हूं यदि वे जिनसे मैं इस प्रकार आबद्ध हूं इसे स्वीकार करेंगे।"

5. वही नियम, एक दाय भाग द्वारा अनुसारित दाय भाग के मामले में लागू होता है।

II. दोहरे दाय भाग के नियम की परिसीमाएं:

1. नियम लागू नहीं होता है :-

(1) एक वसीयती संपत्ति और एक भाग के वाद में - जहां वसीयती संपत्ति एक विशेष प्रयोजन कै लिए दी जानी अभिव्यक्त और वाद में उधार दिया भाग उसी प्रयोजन के लिए है।

(2) दाय भाग और वसीयती संपत्ति के वाद में और दाय भाग और दाय

भाग के वाद में – जहां संपत्ति वास्तव में बच्चे को हस्तांतरित कर दी जाती है और तब या तो एक वसीयत या दाय भाग के द्वारा एक प्रावधान किया जाता है – संक्षेप में यह केवल जहां प्रथम दाय भाग मात्र एक ऋण है, लागू होता है।

(3) व्यक्ति, जो प्रावधान करता है, माता पिता या उनके स्थान पर व्यक्ति है – अतः यदि कोई व्यक्ति किसी बाहरी व्यक्ति को एक वसीयती संपत्ति देता है और तदन्तर बाहरी व्यक्ति पर व्यवस्थापन करता है या वह प्रतिकूल है तो बाहरी व्यक्ति दोनों को ले सकता है, दोहरे भाग का नियम उसके लिए लागू नहीं होता :-

(i) अधर्मज बच्चा एक बाहरी व्यक्ति (या अजनबी है)

(ii) प्रपौत्र भी एक बाहरी व्यक्ति है।

(iii) बाहरी व्यक्ति एक बच्चे के अंश की तुष्टि का लाभ नहीं ले सकता।

III. उसी विल या एक विल एवं कोडियल द्वारा प्रदत्त दो वसीयती संपत्ति के वाद :-

(i) प्रश्न है कि क्या द्वितीय संपत्ति प्रथम की अतिरिक्त या मात्र पुनरावृत्ति होनी आशयित है।

(ii) निदर्शक वाद है हूबी बनाम हाटोन। बी.आर.ओ.सी.सी. 390 एन

(iii) प्रथकतः विचारणीय वादों के दो वर्ग:-

(1) जहां वसीयत की विषय-वस्तु एक वस्तु है।

(2) जहां वसीयत की विषय-वस्तु धन है।

(iv) जहां वसीयत की विषय-वस्तु एक वस्तु है:-

नियम – जहां वही वस्तु दो बार दी जाती है – अतिरिक्त नहीं वरन् पुनरावृत्ति है।

(v) जहां वसीयत संपत्तियां धनीय संपत्तियां हैं:-

(1) जैसे कि दान उसी लिखित में अंकित है या विभिन्न लिखितों में उसी के अनुसार नियम बदल जाता है।

(2) उसी लिखित में दो (धनीय) वसीयत संपत्तियां।

नियम –

(i) यदि समान (बराबर) – पुनरावृत्ति।

(ii) यदि असमान (समुच्चयी)।

(3) भिन्न-भिन्न लिखितों में दो धनीय वसीयत संपत्तियां।

नियम – वे समुच्चयी है।

अपवाद:- यदि दोनों के लिए एक ही हेतु व्यक्त किया जाता है और उतना

ही धन दिया जाता है तब पुनरावृत्ति।

ब वाद जिनमें पूर्ववर्ती बाध्यता एक ऋण की प्रकृति की है –

1. ऐसे वाद दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं:–

(1) वसीयत संपत्ति द्वारा ऋण की तुष्टि।

(2) एक दाय भाग के द्वारा ऋण की तुष्टि।

वसीयत संपत्ति द्वारा ऋण की तुष्टि

1. यह वाद वहां उद्भूत होता है जहां एक ऋणी की सूचना के बिना वसीयत संपत्ति के जरिए एक धनराशि की वसीयत अपने महाजन के हक में करता है। प्रश्न है: क्या वसीयत संपत्ति ऋण का निस्तारण करने वाली के रूप में ली जानी है या साहूकार वसीयत संपत्ति और ऋण के लिए भी हकदार है?

2. *नियम* – वसीयत संपत्ति ऋण की तुष्टि करने वाली मानी जाएगी।

3. *नियम की सीमाएं* – यह नियम निम्न दशाओं में लागू नहीं होता है:–

(i) जहां वसीयत संपत्ति ऋण से कम धनराशि की है कोई तुष्टि उस सीमा तक नहीं।

(ii) जहां वसीयत संपत्ति आकस्मिकता पर दी जाती है।

(iii) जहां वसीयत संपत्ति अनिश्चित धनराशि की होती है जैसे अवशेष

(iv) जहां वसीयत संपत्ति की अदायगी के लिए नियम समय उससे जिस पर ऋण देय हो जाता है से भिन्न है – इस प्रकार कि साहूकार के लिए समानत: लाभदायक हो।

(v) जहां वसीयत संपत्ति की विषय–वस्तु ऋण से भिन्न है जैसे भूमि।

2. दाय भाग द्वारा ऋण की निष्तारण तुष्टि:

(1) इस प्रकार का वाद वहां उद्भूत होता है जहां पिता अपने बच्चे का ऋणी हो जाता है और तब एक दाय भाग अपने जीवनकाल में उसके लिए अग्रिम के रूप में देता है। प्रश्न है : क्या बच्चा दोनों का दावा कर सकता है – ऋण एवं दाय भाग? या दाय भाग द्वारा ऋण की तुष्टि हो जाती है?

(2) नियम–दाय भाग के द्वारा ऋण की तुष्टि हो जाती है।

(3) यह नियम उन्हीं सीमाओं के अधीन है।

(5) पालन और तुष्टि में अंतर (आगे के टिप्पण उपलब्ध नहीं हैं – संपादक)

* * * * *

2. डोमिनियन प्रस्थिति पर टिप्पणी

डोमिनियन प्रस्थिति

1. स्टेटयूट ऑफ वैस्ट मिनिस्टर कुछ हद तक उस विधि को अधिरूपित और संहिताबद्ध करता है जो ब्रिटिश साम्राज्य के ब्रिटिश राष्ट्रमंडल (ब्रिटिश कॉमनवेल्थ) के नाम से जाना जाता है; इनके संवैधानिक संबंधों को विनियमित करता है।

2. स्टेटयूट ऑफ वैस्ट मिनिस्टर डोमिनियनों पर लागू होती है और उनके लिए तथाकथित डोमिनियन प्रस्थिति की स्थापना करती है। हमारी विवेचना का उद्देश्य डोमिनियन प्रस्थिति के अभिप्राय को समझने का है।

1. डोमिनियन क्या है?

(1) एक अधिराज्य, एक उपनिवेश है जो स्टेटयूट ऑफ वैस्ट मिनिस्टर द्वारा डोमिनियन घोषित किया जाता है।

(2) उपनिवेश क्या है?

उपनिवेश, यूनाइटेड किंगडम एवं भारत से भिन्न एक ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र है।

(3) ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र क्या है?

ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र यू.के. को छोड़कर ब्रिटिश साम्राज्य का हर एक भाग है जिस पर ब्रिटिश सम्राट की संप्रभुता है।

(4) ब्रिटिश साम्राज्य क्या है?

(ब्रिटिश साम्राज्य) समग्र अधिक्षेत्रों को ज्ञापित करता है, जिन पर ब्रिटिश साम्राज्य की प्रभुसत्ता है या प्रभुसत्तात्मक नियंत्रण है। अतः इसमें सम्राट के सभी राज्य जिन पर वह संप्रभु है, एवं संरक्षित राज्य एवं सुरक्षित राज्य, सम्मिलित हैं, जिनके विदेशों से संबंध सम्राट द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं। इसमें अधिदेशित राज्य क्षेत्र भी सम्मिलित हैं।

2. डोमिनियन प्रस्थिति क्या है?

(1) यह विषय और भी भली प्रकार समझा जा सकेगा यदि हम स्टेटयूट ऑफ वैस्ट मिनिस्टर द्वारा प्रारंभित शासन व्यवस्था की तुलना, उस शासन व्यवस्था से करें जो इसके लागू होने से पूर्व प्रवर्तित थी।

(2) जो व्यवस्था प्रवर्तन में थी, वह उत्तरदायी शासन के रूप में जानी जाती थी। अतः हमको प्रथम चरण में उत्तरदायी शासन के अभिलक्षणों को निश्चित समझ लेना चाहिए।

(3) उत्तरदायी शासन कुछ उपनिवेशों में ही क्यों आया और वह अन्यों में क्यों नहीं आया?

(4) किसी उपनिवेश का शासन उस उपनिवेश की प्रकृति के अनुसार प्रभेदित था?

(5) उपनिवेश दो वर्गों में आते हैं:-

(1) व्यवस्थापन से उपनिवेश।

(2) विजय या समर्पण से उपनिवेश।

1. व्यवस्थापन से उपनिवेश:-

(1) इस प्रकार व्यवस्थापन उपनिवेश में, एक अनुत्तरदायी कार्यपालिका और प्रतिनिधित्वशील विधायिका के बीच अपरिहार्य विवाद, अधिदेशों का विवाद, उभर कर आया।

(2) इन उपनिवेशों में, इस विवाद को दूर करने के लिए व्यवस्थापन द्वारा उत्तरदायी शासन पुनसर्थापित करना पड़ा।

(3) उत्तरदायी शासन की प्रकृति व्यवस्थापित उपनिवेशों में सम्राट की स्थिति, विजित उपनिवेशों में सम्राट की स्थिति से भिन्न थी।

व्यवस्थापन से अर्जित अधिक्षेत्रों में सम्राट की स्थिति यूनाइटेड किंगडम में उसकी प्रस्थिति के अनुरूप होती है। 10 ए.पी.पी. कॉल्स 692 (744) वह कार्यपालिका शक्ति रखता है और न्यायालयों को स्थापित करने का प्राधिकार रखता है, किंतु धर्म संबंधी न्यायालयों का नहीं। (3 एम.ओ.ओ. पी.सी. 115, 1865; 1 एम.ओ.ओ.पी.आई.सी.सी. - 411, 1863) किंतु विधायन नहीं कर सकता और यदि विधियां पारित करनी हों तो यह:-

(1) यू.के.के. अनुरूप प्रतिनिधिस्वरूप विधायी निकाय द्वारा किया जाना चाहिए।

(2) जहां विधान द्वारा यह कार्यान्वित किया जाना कठिन हो तो भिन्न प्रकार के संघटन को स्थापन प्राधिकृत करने वाला संसदीय प्राधिकार अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

2. विजित उपनिवेश

इनमें सम्राट, ऐसी कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका, जैसी वह उपयुक्त समझे, स्थापित करने की पूर्ण शक्ति रखता है जो केवल इस शर्त के अधीन होती है कि वे सभी ब्रिटिश अधिक्षेत्रों में लागू होने वाले किसी संसदीय अधिनियम का उल्लंघन न करें।

किंतु यह अधिकार, जब तक कि वह पूर्णत: या अंशत: सुस्पष्टत: प्रतिधारित न किया गया हो, प्रतिनिधि विधान मंडल की स्वीकृति से समाप्त हो जाता है। यदि इस प्रकार प्रति धृत नहीं किया जाता है तो संविधान के बारे में या सामान्यत: विधान बनाने की शक्ति केवल संसद के अधिनियम के प्राधिकार के अधीन पुन: प्राप्य की जा सकती

है। 1835, 2 के यू ए पी पी 130 (152) जेसन बनाम प्यूरा : 1932 ए सी 260

1. स्टेटयूट ऑफ वैस्ट मिनिस्टर निम्नलिखित पर लागू होता है:-

(1) कनाडा डोमिनियन

(2) आस्ट्रेलिया राष्ट्रमंडल

(3) न्यूजीलैंड डोमिनियन

(4) दक्षिण अफ्रीका संघ

(5) आयरिश स्वतंत्र राज्य

(6) न्यू फाउंडलैंड

2. इस संविधि में इन उपनिवेशों को डोमिनियन कहा जाता है और उन्हें तथाकथित डोमिनियन प्रस्थिति दी गई है।

3. मिनिस्टर से पूर्व इन उपनिवेशों में उत्तरदायी शासन था।

उत्तरदायी शासन एवं डोमिनियन प्रस्थिति में क्या अंतर है?

उत्तरदायी शासन की तंत्र रचना

(1)उपनिवेश द्वारा उन विषयों में जो उनको प्रभावित करते थे, औपनिवेशिक स्वयत्तता का दावा।

(2)साम्राज्यीय संसद द्वारा असीमित प्रभुसत्ता का दावा।

ये दोनों दावे विरोधाभासी हैं। एक स्वयं शासन करने वाला उपनिवेश स्पष्टतया एक असंगति है। इस प्रश्न के हल में दो प्रश्न अंतर्ग्रस्त हैं:-

(1)औपनिवेशिक एवं साम्राज्यीय शासनों के बीच प्राधिकार का विभाजन कैसे घटित होना था।

(2)प्रत्येक को दी गई शक्तियों का प्रयोग प्रत्येक के द्वारा कैसे होना था।

प्रस्तावित विभाजन साम्राज्यीय एवं औपनिवेशिक विधायी सक्षमता के अनुरूप नहीं था जो औपनिवेशिक विधियों द्वारा प्रतिबंधित था उसे उसके अतिरिक्त समग्र विधायन औपनिवेशिक क्षमता में ही होना था, किंतु उसका कुछ अंश साम्राज्यीय निषेधादेश के प्रति उत्तरदायी इस आधार पर नहीं था कि वह औपनिवेशिक विधान मंडल की क्षमता के परे था वरन् उसने साम्राज्यीय कुछ हितों को प्रभावित किया था।

साम्राज्यीय परिधि के विषय प्रमणन द्वारा लिखे नहीं गए थे। साम्राज्यीय शासन विनिश्चय करने को स्वतंत्र था कि क्या कोई विशेष विषय साम्राज्यिक परिधि का था या नहीं।

निम्नलिखित प्रावधान इन उपनिवेशों के संविधान की विशेषताएं थीं।

(1)साम्राज्यिक मंत्रिमंडल सलाह से सम्राट द्वारा गवर्नर जनरल की नियुक्ति।

(2)अपने मंत्रियों की सलाह से अन्यथा कार्य करने का गवर्नर जनरल का अधिकार।

(3)साम्राज्यीय शासन की सलाह पर सम्राट की खुशी के लिए विधेयक को सुरक्षित करने की गवर्नर की शक्ति।

(4)साम्राज्यीय शासन की सलाह पर सम्राट द्वारा अस्वीकृति की शक्ति।

वैस्ट मिनिस्टर स्टेटयूट के नियम

I. यह ब्रिटिश संसद द्वारा पारित विधियों के अध्यारोही प्रभाव से डोमिनियन विधान मंडल को मुक्त करता है।

(1) यह औपनिवेशिक विधि वैधता अधिनियम (कालोनियल लॉ वैलिडिटी एक अधिनियम) को निराकृत करता है।

(2) यह डोमिनियन विधानमंडल को किसी भी संयुक्त इंग्लिश राज्य अधिनियम का जहां तक वह अधिराज्य का अंग है, निरसन करना प्रदान करता है।

II. यह ब्रिटिश संसद की विधायी प्रभुसत्ता की सीमाएं निर्धारित करता है।

(1) 11 दिसंबर, 1931 के बाद पारित संसद का कोई भी अधिनियम एक अधिराज्य को विधि के एक अंग के रूप में लागू हुआ नहीं समझा जाएगा जब तक कि अधिनियम में स्पष्टतः न घोषित किया जाता है कि अधिराज्य ने उसके धारण के लिए विनती और स्वीकृति की है।

(2) राज्य सिंहासन के आरोहण, राजसीय पदान्वय एवं उपाधियों को स्पर्श करने की विधि में किसी भी परिवर्तन के लिए अधिराज्य की साथ ही साथ संयुक्त इंग्लिश राज्य के संसदों की अनुमति की अपेक्षा करता है।

III. यह स्टेटयूट अन्य प्रावधानों में परिवर्तन नहीं करताः-

(1) गवर्नर जनरल की नियुक्ति।

(2) विधेयकों का आरक्षण।

(3) विधेयकों की अस्वीकृति।

किंतु इन शक्तियों के प्रयोग में भारी परिवर्तन हुआ है।

सम्राट को सलाह देने का अधिकार है।

* * * * *

डोमिनियन प्रस्थिति का अभिप्राय प्रभुसत्ता नहीं।

* * * * *

(2) संयुक्त इंग्लिश राज्य के गठन पर विचार किया गया है।

(3) भारत के बारे में यहां विचार नहीं किया जाएगा। इसी प्रकार संरक्षित राज्य एवं अधिदेशित क्षेत्र पर भी विचार नहीं होगा।

(4) केवल उपनिवेशों को संवैधानिक संगठनों पर विचार करना।

(5) उपनिवेशों का संवैधानिक संगठन उपनिवेश के अधिग्रहण की विधा के अनुसार भिन्न होते हैं।

(6) **दो पद्धतियां:-**

(1) व्यवस्थापन

(2) विजय या समर्पण

संयुक्त इंग्लिश राज्य ब्रिटिश अधिक्षेत्र अधीनक्षेत्र उपनिवेश बस्ती साम्राज्यिक उपनिवेश अधिराज्य (डोमिनियन) अधिराज्य

महामहिम के अधिराज्य

1. औपनिवेशिक कार्यालय से अधिराज्यों के कार्य का प्रबंध ग्रहण करने के लिए 1925 में अधिराज्य कार्यालय स्थापित किया गया था।

2. पहले अधिराज्यों एवं उपनिवेशों के सचिवत्व के लिए एक ही मंत्री होता था। किंतु 1930 में एक अधिराज्य के लिए एक प्रथम विदेश मंत्री नियुक्त किया गया।

3. अधिराज्य कार्यालय, दक्षिणी रोडेशिया दक्षिणी, अफ्रीका उच्चायोग (अर्थात् बासुटोलेंड, बेनलैंड, अधिक्षेत्र स्वाजीलैंड) समुद्र पार बस्तियां अधिराज्यों के कार्य और साम्राज्यीय सम्मेलनों के कार्यों से संबंधित कार्य करता है। देखिए -

सर जी वी फिडस - डोमिनियनस एंड कोलोनियन आफिसेज

ओल्ड हेल्सबरी (i) पी (पृष्ठ) 303

662 राजा के अधिराज्य में निम्नलिखित सम्मिलित हैं -

(अ) संयुक्त इंग्लिश राज्य (यू के) और हर एक उपनिवेश रोपित क्षेत्र, द्वीप, अधिक्षेत्र या सनिवेशन महामहिम के अधिराज्यों में न कि संयुक्त इंग्लिश राज्य के।

(नेचुरलाइजेशन एक्ट 1870, 33 एन.ई.सी. 14 एस. 17)

(ब) एक राजकुमार/राजा जो इंग्लैंड के सम्राट के अधीन है, के अधिक्षेत्र स्थित स्थान, ऐसे अधिक्षेत्रों के संबंध में।

(क्रो एंड रामसे) (1670) वॉघ 281

(स) ब्रिटिश युद्ध पोत एवं अन्य लोक पोत। (पार्लियामेंट बनाम वेव्ज) (1880) 5 पी डी 197

(द) ब्रिटिश मर्चेंट मैन ऑन द हाई सीज़ (1870 एस.आर. 6 क्यू.बी. 31, मार्शल बनाम मुरगाटरोयड) और सम्भवत: किसी अन्य देश के जल क्षेत्रों में भी कम्पेपर आर बनाम कार एण्ड विकसन (1882) 10 क्यू.बी.डी. 76

हैल्सबरी (दशम) पृ. 503, पैरा 856

(1) ब्रिटिश अधिक्षेत्र का अभिप्राय है, संयुक्त इंग्लिश राज्य को छोड़कर महामहिम के अधिराज्यों का कोई भाग और जहां ऐसे अधिराज्यों के भाग केंद्रीय एवं स्थानीय दोनों विधायिका के अंतर्गत है वहां केंद्रीय विधायिका के अधीन सभी भाग ब्रिटिश अधिक्षेत्र समझे जाते हैं। (इंटरप्रटेशन एक्ट 1889) 52 एवं 53 विक्ट सी. 63) एस. 18 (2)

(2) ब्रिटिश द्वीप समूह एवं ब्रिटिश भारत को छोड़कर महामहिम के अधिराज्यों का कोई भाग, एक उपनिवेश है और जहां ऐसे अधिराज्यों के भाग दोनों केंद्रीय एवं स्थानीय विधायिका के अधीन होते हैं वहां केंद्रीय विधायिका के अधीन सभी भाग उपनिवेश समझे जाते हैं। [वही एस. 18(3)]

(3) एक ब्रिटिश बस्ती से अभिप्रेत है कोई ब्रिटिश अधिक्षेत्र जो समर्पण या विजय द्वारा अधिग्रहीत नहीं किया गया है और तत्समय किसी भी ब्रिटिश अधिक्षेत्र की विधायिका के क्षेत्राधिकार में नहीं है। (ब्रिटिश सैटलमेंट्स एक्ट 1887 [50-51 विक. सी. 54 (एस 6)]

(4) अभिभूत देश, शब्द उन स्थानों को जो औपचारिकत: अधिराज्यों में संलग्न नहीं किए गए हैं, संज्ञापित करने के लिए प्रयोग किया जाता है, अतएव सही अर्थों में विदेशी राज्य क्षेत्र हैं, किंतु जो व्यावहारिकत: ग्रेट ब्रिटेन द्वारा शासित है और किसी भी संबंध में जो दूसरे देशों की ओर उद्भूत हों उसके द्वारा प्रतिनिधित्व पाते हैं। उनमें सर्वाधिक संरक्षित राज्य हैं अर्थात् ब्रिटिश संप्रभु के संरक्षण में सामान्यत: उनके देशीज शासकों या प्रमुखों के साथ संधि द्वारा संरक्षित राज्य क्षेत्र। साइप्रस और ही ई बी ग्रेट ब्रिटेन द्वारा उनके अलग-अलग संप्रभुओं के साथ विशेष करारों के अधीन धारित विदेशी राज्य क्षेत्र हैं, किंतु फॉरेन जूरिसडिक्शन एक्ट 1890 (53-54 विक. सी. 37) के अधीन उसी साम्राज्य रीति से प्रशासित होते हैं जैसे संरक्षित राज्य। तद्देशीय राज्य और साम्राज्य की निश्चित ब्रिटिश राज्य क्षेत्र दोनों सहित भारत, हमारा महान आश्रित निदेश बार-बार कहा जाता है।

(5) सम्राट उपनिवेश वे हैं जिनमें शासन को संचालित करने वाले लोकाधिकारियों पर सम्राट पूर्ण नियंत्रण रखता है और विधायन शक्ति या तो शासन (एस.एस. जिब्राल्टर, अशायटी वर्जिन आइलैंड्स, सेंट हैलेना एवं बासुटोलैंड) को प्रशासित करने वाले अधिकारियों को प्रत्याजित कर दी जाती है या विधान परिषद जो सम्राट द्वारा या तो समग्रत: या अंशत: मनोनीत की जाती है दूसरा निर्वाचित होती है, के द्वारा प्रयुक्त की

जाती है। इन उपनिवेशों में सात अपवादों के साथ सम्राट ने विधानयन करने की शक्ति संपरिषद् आदेश द्वारा स्वयं में आरक्षित की हुई है।

संरक्षित राज्य यद्यपि महामहिम के अधिराज्यों के अंग नहीं हैं फिर भी अधिकांशतः उसी ढंग से प्रशासित किए जाते हैं जैसे सम्राट उपनिवेश।

अधिराज्य वे उपनिवेश हैं जहाँ निर्वाचित विधायी का जिसके प्रति कार्यपालका का उत्तरदायी है। संयुक्त इंग्लिश राज्य की भांति है। केवल गवर्नर जनरल ही अधिकारी है जिन्हें सम्राट नियुक्त और नियंत्रित करता है।

हाल्सबरी (दशम) पृष्ठ 521

885 संरक्षित राज्य पद की कोई यूनानी या प्रामाणिक परिभाषा नहीं है, यद्यपि हाल ही के दो संविधियों में वह प्रकट होती है, संरक्षित राज्य सुनिश्चित अर्थ में ब्रिटिश राज्य क्षेत्र नहीं है, किंतु यह समझा जाता है कि कोई अन्य सभ्य शक्ति उनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। वे फॉरेन जूरिसडिक्शन एक्ट (विदेशी अधिकारिता अधिनियम) 1890 द्वारा महामहिम को प्रदत्त या अन्यथा महामहिम में निहित शक्तियों के आधार पर निर्गत संपरिषद् आदेश के प्रावधानों के अधीन प्रशासित होते हैं। जिस पश्चात् कथित वाक्यांश का आशय राजसी परमादेश के किसी भी प्रयोग व्यवहार को सहायतार्थ, लाना माना जा सकता है जो महामहिम की कानूनी शक्तियों की अनुपूरक स्वरूप आवश्यक हों।

हाल्सबरी (चतुर्दश) पृष्ठ 420

अधिराज्यों के अर्थ की हाल की विवेचना के लिए देखिए आर बनाम क्रीव सम्राट 1910 एस के बी 576, 607, 622

हाल्सबरी (नवम) पृष्ठ 16

सम्राट या प्राधिकार उसकी एकल प्रजा पर जहां कहीं भी वे हो लागू होता है और उन सभी विदेशियों पर भी जो राज्य में है। तो भी आंग्ल विधिक न्यायालयों की अधिकारिता प्रथम अधिनियमों, जिनके द्वारा स्कॉटलैंड एवं आयरलैंड राज्य संयुक्त आंग्ल राज्य में सम्मिलित किए गए थे, में अंकित अनुबंधों द्वारा सीमित है। दूसरे विशेष उपनिवेशों को प्रभावित करने वाले न्यायिक अधिकार पत्र एक स्व-पत्रों एवं संविधियों द्वारा और तीसरे विचार-विमर्श द्वारा सीमित है कि कोई भी आंग्ल न्यायालय किसी प्रश्न का जिसमें उसे अपनी की को प्रवर्तित करने की शक्ति नहीं है, विनियम नहीं करेगा।

हर एक विशेष न्यायालय की अधिकारिता वही है जो राजा ने उसके लिए प्रत्यायोजित की और वह प्रत्यायोजित पूर्ण है, क्योंकि राजा अपनी समस्त अभियोजन शक्ति विभिन्न न्यायालयों में वितरित कर चुका है।

* * * * *

डोमिनियन (अधिराज्यीय) प्रस्थिति का विकास

1. सबसे पहले साम्राज्यिक संसद एवं शासन द्वारा असीमित प्रभुसत्ता का दावा है जिसका उल्लेख लॉर्ड जोन रसेल द्वारा तार्किक परिपूर्णता में किया गया है।

2. दूसरे औपनिवेशिक स्वायत्तता का दावा जो एक प्रभावी भाग है कि अपने हित के विषयों में उपनिवेशों को अपना काम काज चलाना चाहिए।

3. तीसरे दोनों के बीच असंगति। एक स्वशासी आश्रित राजा के पदों में विरोधाभास।

समाधान

एक ओर साम्राज्यिक संसद एक उपनिवेश को क्रियाकलाप का एक क्षेत्र प्रदान करती है जिसमें औपनिवेशिक विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका को शासनिक शक्ति का प्रयोग करने का प्राधिकार होता था। इस क्षेत्र में उपनिवेश संप्रभु होता था।

दूसरी ओर, साम्राज्यिक संसद को जब कभी वह ठीक समझती थी। विहित की शक्ति को प्रायोगित करने के उपनिवेश के अधिकारों को या तो उस उपनिवेश में कांस्टीट्यूट एक्ट का निरसन या संशोधन करके, अथवा उपनिवेश की अधिकारिता के अंतर्गत किसी प्रजा पर स्पष्टत: लागू होने वाले साम्राज्यिक अधिनियम को पारित करके वापस करने या सीमित करने को पूर्ण विधिक शक्ति और प्राधिकार था।

दो प्रश्न: (1) औपनिवेशिक एवं साम्राज्यिक प्राधिकारों के बीच प्राधिकार का विभाजन कैसे होना था? (2) प्रत्येक को दी गई शक्तियों के प्रयोग करने की पद्धति।

(1) प्रस्तावित विभाजन साम्राज्यिक एवं औपनिवेशिक विधायी क्षमता के अनुकूल नहीं था।

एकल विद्यमान औपनिवेशिक क्षमता में होना था किंतु उनमें से कोई साम्राज्यिक प्राधिकारी द्वारा निषेधादेश के प्रति उत्तरदायी इस आधार पर नहीं होगा कि वह औपनिवेशिक विधायी क्षमता के बाहर था, वरन् इसलिए वह किसी विनिर्दिष्ट साम्राज्यिक हित को प्रभावित करता था।

(2) यह वकालत की जाती थी कि साम्राज्यिक चिंता के संभव विषयों उन विषयों को जो साम्राज्यिक चिंता के समझे जाते थे प्रमाणित करके लेखबद्ध होने चाहिए। ब्रिटिश शासन ने विशेषत: इस तरीके से स्वयं को आबद्ध करना अस्वीकार कर दिया और वे प्रावधान ऑस्ट्रेलियन विधेयक में रखे जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किए।

(3) औपनिवेशिक एवं साम्राज्यिक प्राधिकारियों के क्रियाकलाप किस प्रकार समायोजित एवं समन्वित होने थे ताकि विभ्रम, अति व्याप्ति एवं मतभेद से बचाया जा सके। इसका समाधान निम्नलिखित में पाया गया था :-

(1) आरक्षणों की शक्तियां।

(2) अस्वीकृति की शक्तियां।

(3) गवर्नर जनरल की नियुक्ति।

(4) उपनिवेशों में उत्तरदायी शासन की प्रकृति।

(5) ब्रिटिश शासन का सम्राट को परामर्श देने का अधिकार।

(6) कालोनियल लॉ वेलिडिटी एक्ट 1865 ।

4. उपनिवेशों में उत्तरदायी शासन की प्रकृति

कार्यपालक शासन गवर्नर में निहित था जो अपनी कार्यकारिणी परिषद् में उन व्यक्तियों को जिन्हें वह उपयुक्त समझता था उनके अतिरिक्त यदि कोई थे जो विधि द्वारा उसके सदस्य थे नियुक्त करने के लिए सशक्त था जबकि एक या दो मामलों में यह अनुबंधित किया गया था कि कार्यकारी परिषद् के मंत्रीगण ही सदस्य होने थे या कि कार्यकारी परिषद् के सदस्यों को विधानमंडल के एक या दूसरे सदन का सदस्य एक दिए गए समय में होना था। किसी भी दशा में, कार्यकारी परिषद् की रचना केवल मंत्रियों के द्वारा होनी विधि द्वारा अपेक्षित नहीं थी।

कार्यकारी परिषद् में मंत्री भी सम्मिलित होते हैं किंतु अनिवार्यत: केवल मंत्रियों से ही नहीं बनती कुछ मामलों में तो कार्यकारी परिषद् के सदस्यों को विधानमंडल के दो में से किसी भी सदन का सदस्य होने की विधिवत आवश्यकता नहीं है।

अधिनियम ने क्रियाकलाप का एक क्षेत्र विहित किया था जिसमें औपनिवेशिक विधायिका उपनिवेश में शांति, व्यवस्था एवं अच्छे शासन के लिए विधि पारित करने की शक्ति थी। इस प्रकार इतनी संविधि।

गवर्नर के लिए अनुदेशों ने उसे एक कार्यकारी परिषद् के साथ शासन करने के लिए अधिकृत सशक्त था जिसकी सलाह को यदि वह ठीक समझता तो अवहेलना कर सकता था।

उत्तरदायी शासन, सम्राट के विश्वास पर न कि सांविधिक आधार पर आधारित था।

अंतर्साम्राज्यिक संबंधों का स्वरूप

राष्ट्रमंडल वाणिज्यिक पोत परिवहन करार में संविदाकारी राज्यों की उस समानता से तुलनीय अधिराज्य पूर्ण समानता की स्थिति में प्रतीत होते हैं और करार से उद्भूत विभिन्नताएं, साम्राज्यिक सम्मेलन 1930 द्वारा अनुध्यात अंतर्साम्राज्यिक विधिकरण को निर्देश हेतु उपयुक्त प्रतीत होते हैं। सी.एम.डी. 3994 भाग – 7 (सात)

किंतु संबंध अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा शासित नहीं होते हैं। इसका 1924 में स्पष्टतः प्राख्यान किया गया था, जब आयरिश स्वतंत्र राज्य ने 6 दिसंबर, 1921 की संधि के लिए ये करार अनुच्छेद राष्ट्र संघ के सचिवालय में (वाद) इस आधार पर रजिस्टर कराया था कि वह राष्ट्र संघ के प्रसंविदा के अनुच्छेद 18 के अर्थान्तर्गत एक संधि थी और ब्रिटिश शासन का आग्रह था कि राष्ट्र संघ के तत्त्वाधान में संपन्न न तो प्रसंविदा न परम्परा द्वारा राष्ट्रमंडल के भागों में अपनी संबंधों को विनियमित करना आशयित था। (कीथ आर जी - II - 884, 855)

साम्राज्यिक सम्मेलन 1926 ने यही मत अपनाया और यह माना कि आयुद्ध व्यापार सम्मेलन 1925 की विधिक समिति द्वारा यह इस अर्थ में निश्चित किया गया था। आयरिश स्वतंत्र राज्य के साथ ही साथ संयुक्त राज्य इंग्लैंड के अलावा अधिराज्यों ने अंतर्राष्ट्रीय न्याय के स्थाई न्यायालय में जब 1929 में न्यायालय की संविधि के वैकल्पिक खंडों को स्वीकार कराते हुए (सी.एम.डी. 3452 पृष्ठ 415) और उसी प्रकार जब अंतर्राष्ट्रीय विवादों के प्रशांत निपटान के लिए साधारण अधिनियम, 1928 को स्वीकार करते हुए प्रस्ताव किए जाने वाले उन वादों में से अंतर्साम्राज्यिक विवादों को अपवर्जित कर दिया था। सी.एम.डी. 3930, पृष्ठ 14-15

अंतर्साम्राज्यिक अधिमान एक आंतरिक मुद्दा है जिस पर विदेशी राज्यों के साथ अत्यंत प्रिय राष्ट्र संधि खंड लागू नहीं होते।

राजनिष्ठा

सामान्य राजनिष्ठा का बंधन जिसमें ब्रिटिश प्रजा के रूप में एक सामान्य प्रस्थिति अंतर्वर्णित है, ऐसा बंधन है किसी भी भाग की एकपक्षीय कार्रवाई से टूट नहीं सकता, जैसा कि स्टेट्यूट ऑफ वैस्ट मिनिस्टर की उद्देशिका में औपचारिक घोषणा का अभिप्राय है कि चूंकि सम्राट ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्यों के स्वतंत्र संगम की प्रतीक है और चूंकि वे एक सामान्य निष्ठा से एकीकृत है इसलिए सिंहासन आरोहण या राजसी नाम और उपाधि से संबंधित विधि में कोई परिवर्तन डोमिनियनों (अधिराज्यों) की संसदों एवं यूनाइटेड किंगडम की संसद की अनुमति से ही किया जा सकता है।

जबकि उद्देशिका विधि की रचना नहीं करती यह संविधान की कन्वेशन को व्यक्त करती है जिससे सम्राट या उसके प्रतिनिधि के लिए एक ही भाग द्वारा पारित विधेयक पर अनुमति देना बहुत कठिन हो जाएगा जो समान प्रस्थिति के आधार पर ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की एकता के सिद्धांत का उल्लंघन है।

टिप्पणः- 1929 के सम्मेलन की रिपोर्ट का अनुमोदन करते हुए संघ संसद ने लेखबद्ध किया था कि प्रस्तावित उद्देशिका "ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के किसी सदस्य के उससे टूटने के अधिकार को निराकृत करने वाली नहीं मानी जाएगी।"

साम्राज्य की संसद की पत्रिका

XI. 797 800

किंतु यह दृष्टिकोण साम्राज्यिक सम्मेलन द्वारा औपचारिकत: कभी नहीं अपनाया गया।

अधिराज्यों एवं संयुक्त राज्य इंग्लैंड (यू के) की प्रस्थिति को समता ने साम्राज्यिक विवादों का विनिश्चय करके पद के ढंग पर विचार करना आवश्यक बनाया है। (सी. एम.डी. 3479 पृष्ठ 41)

इस उद्देश्य के लिए साम्राज्यिक सम्मेलन 1930 ने विनिश्चय किया कि ऐसे विवाद तदर्थ मध्यस्थता की कार्य पद्धति से स्वैच्छिक आधार पर निपटाए जाने चाहिए। यह प्रक्रिया सरकारों में मतभेद तक जो न्याय हो सीमित होनी चाहिए।

प्रत्येक विवाद के लिए तदर्थ प्राधिकरण गठित करना होता है, पांच सदस्य होते हैं, कोई भी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के बाहर से नहीं लिया जाता है।

प्रत्येक पक्ष, राष्ट्रमंडल के सदस्य राज्यों में एक का चयन करेगा, विवाद में पक्षों में से नहीं, होने वाले व्यक्ति जो उच्च न्यायिक पद पर रह चुके हैं या हैं या विशिष्ट न्यायविद और एक चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता के साथ। सभापति (चेयरमैन) इन चार निर्धारकों द्वारा चुना जाएगा जो नियोजित हो सकता है यदि पक्ष व्यय को बराबर-बराबर वहन करने के इच्छुक हों। प्रत्येक पार्टी अपने पक्ष का सुनने का खर्च वहन करेगी।

डोमिनियनों (अधिराज्यों) की बाह्य संप्रभुता उनकी स्वयं सत्ता है। किंतु प्रस्थिति नहीं। उनकी समारोहात्मक प्रस्थिति है किंतु विधिक नहीं। तक्ष्यत: है किंतु विधिकत: नहीं। बहुत से उद्देश्यों के लिए अधिराज्य, संयुक्त राज्य (इंग्लैंड) से स्वतंत्र एक पर्याप्त मात्रा में अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व संपन्न है। किंतु सामान्य निष्ठा सामान्य सम्राट, मात्र एक व्यक्तिगत संघ से संबद्ध एक अभिन्न संप्रभु राज्य होने के प्रत्येक अधिराज्य की धारणा में हस्तक्षेप करते हैं।

जैसे कि युद्ध तटस्थता की संभावना संबंधी मुद्दे का विवेचन किया जा चुका है, किंतु केवल दक्षिण अफ्रीका में राष्ट्रवादी शासन द्वारा दावा किया गया है। (कर्थ डी जी. II 867-868, 71, 72 सावरेनिटी ऑफ डोमिनियन्स (अधिराज्यों की संप्रभुता) डी 300, 304, 463 - 471)

यह गंभीर संशय के लिए खुली बात है कि क्या राजा युद्ध में अधिराज्यों को स्वत: लिप्त किए बिना युद्ध की घोषणा कर सकता था।

अधिराज्यीय प्रस्थिति की विशेषताएं

1. क्या इससे संप्रभु प्रस्थिति विवस्थित है?

ये संप्रभु के कार्य करते हैं। किंतु उनकी संप्रभुता राज्य की प्रस्थिति नहीं है।

2. क्या संबंध विच्छेद करने का अधिकार विवस्थित है?

* * * * *

लॉ कार्टरली रिव्यू

(विधि त्रैमासिक) समीक्षा

खंड - 6

ब्रिटिश राज्य क्षेत्र में विदेशियों को प्रवेश करने का अधिकार पृष्ठ 27

विषय : राज्य छोड़ने की बाध्यता - पृष्ठ 388

नागरिकता एक राजनिष्ठा

खंड - पृष्ठ - 270

खंड - पृष्ठ - 49

प्रंटिस वैबस्टर कृत

लॉ ऑफ सिटिजनशिप इन द युनाइटेड स्टेट्स

अलबनी - 1891

वैबस्टर

''नागरिकों अर्थात् राजनीतिक प्रभुसत्ता के संघटक सदस्यों और उस प्रभुसत्ता की प्रजा के बीच अंतर जो इसलिए नागरिक नहीं है, लोक विधि की सर्वोत्तम नजीरों में मान्य है। यह प्रभेद सत्य है। अगला प्रश्न है कि नागरिक कौन है एवं कौन नहीं है, उसकी कठिनाई है। स्वदेश में समान अधिकारों और विशेषाधिकारों की और विदेशों में समान सुरक्षा प्राप्त करने की नागरिकता की परिभाषा स्वीकार करो और इस दृष्टिकोण से प्रश्न पर विचार करो जिससे, किया ही जाना चाहिए, क्योंकि हमारे पास यू एस ए संयुक्त राज्य अमरीका में कोई विधि नहीं है जो हमारे नागरिकों को वर्गों में विभाजित करती है या उनके बीच कोई भी भेदभाव करती है। तब हम उस महत्त्व को खोज पाते हैं कि नागरिकों के समान अधिकार जब स्वदेश में हो कायम रखने चाहिए। क्योंकि नागरिकता संबंधी प्रश्न राष्ट्रों की विधि की अधीनता में नगर विधि (या स्थानीय विधि) द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। अतः नागरिकता का महत्त्व कम आकलित नहीं करना चाहिए।''

वैबस्टर

रोमन विधि का दृष्टिकोण

1. मनुष्य के द्वारा ही शासनतंत्र संस्था संगठित की गई थी और संगठन में अपने साथी मानवों के साथ प्रवेश करते हुए मनुष्य ने अपने नैसर्गिक अधिकारों के प्रयोग

का अनुसरण किया और उस समाज का एक अंग बन गया जिसका यह दूसरों के साथ सदस्य हो गया।

2. मनुष्य का और मनुष्य के द्वारा बने संगठन द्वारा मनुष्य शासनतंत्र संस्था में इतना सामाजिक था कि वह विलग न हो सका।

3. यद्यपि रोम के प्रारंभिक दिनों में केवल वे ही स्वयं को रोमन नागरिक कह सकते थे जो स्वतंत्र जन्मे थे और रोम में जन्मे थे। तो भी उसके बाद बहुत शीघ्र ही विधायी ने संस्था को प्राधिकार से विदेशियों को नागरिकता दे दी गई। बाद में जैसे–जैसे रोम अपने पड़ोसी देशों पर विजय करते हुए आगे बढ़ा तो विधायी प्राधिकारियों ने उन राज्यों को आदेश पत्र जारी किए जिनके द्वारा ऐसे राज्यों के नागरिक रोमन नागरिकता में ले लिए गए और उनकी पूर्व नागरिकता समाप्त कर दी गई।

4. सिसरो ने नियम बनाया कि "हर मनुष्य एक समाज की सदस्यता के अपने अधिकारों को रखने या त्याग करने के योग्य अवश्य हो।" और आगे कहा कि यह स्वतंत्रता की दृढ़तम आधारशिला है। "इसके अंतर्गत रोमनों ने जिस सभा को अपनाया और किसी को अपने साथ रहने को बाध्य नहीं किया।

5. रोमन विधि का यह दृष्टिकोण नैसर्गिक विधि पर आधारित था।

आक्रमण का प्रभाव

6. रोम के पतन के बाद नैसर्गिक विधि के इस सिद्धांत का स्थान आक्रामकों द्वारा चालू किए गए सामंतवादी सिद्धांतों ने ले लिया।

7. आक्रामकों ने लोगों और उनकी भूमियों दोनों को जीतते हुए एक राजा जो प्रजा सर्व शक्तिमान था के रूप में अपनी सरकार संगठित की। संबंध, जैसे मनुष्य एवं मनुष्य के बीच और उसका संबंध शासन के प्रति अनैच्छिक और बलात् था। मनुष्य के नैसर्गिक अधिकार जैसे मनुष्य के होते हैं अस्वीकृत कर दिए गए थे।

* * * * *

3. विनिर्दिष्ट अनुतोष विधि

(प्रारंभिक अंश अप्राप्य – संपादक)

* * * * *

प्रकृति जिसका विनिर्दिष्ट पालन विधि द्वारा अनुज्ञात है।

(ii) जहां वादी एक व्यक्ति है जिसके पक्ष में विनिर्दिष्ट पालन प्रदान किया जा सकता है।

(iii) जहां प्रतिवादी एक व्यक्ति है जिसके विरुद्ध विनिर्दिष्ट पालन प्रदान किया जा

सकता है।

प्रश्न है : क्या ऐसे वादों में न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन प्रदान करने के लिए आबद्ध है?

इस प्रश्न का उत्तर धारा 22 में अंकित है।

(अ) धारा 22 सामान्य नियम निर्धारित करती है।

(1) यह कहती है कि विनिर्दिष्ट पालन विवेकाधीन है। न्यायालय इसको दे सकता है या देने से इंकार कर सकता है। न्यायालय इसे प्रदान करने को मात्र इसलिए बाध्य नहीं है कि यह विधिपूर्ण है।

(2) न्यायालय का विवेक अमनमाना ठोस और युक्तियुक्त तथा न्यायिक सिद्धांतों से मार्गदर्शित होता है।

(ब) धारा 22 वादों को विनिर्दिष्ट करती है जिनमें न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन मंजूर न करने के लिए और वादों को विनिर्दिष्ट करती है जिनमें न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन मंजूर करने के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है।

वे वाद जिनमें न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन मंजूर न करने के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है

(i) जहां विनिर्दिष्ट पालन प्रतिवादी के ऊपर अनुचित लाभ देगा।

(ii) जहां विनिर्दिष्ट पालन के प्रतिवादी को किसी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा जिसे पहले नहीं देखा था और अनुपालन से वादी को ऐसी कठिनाई भोगनी होगी।

वे वाद जिनमें न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुपालन मंजूर करने के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है

जहां वादी ने विनिर्दिष्ट पालन योग्य संविदा के परिणामस्वरूप सारवान कार्य किए हैं या नुकसान उठाए हैं।

नुकसानी एवं विनिर्दिष्ट पालन

धारा 19, 20, 29

उल्लंघन के लिए दो उपचार: क्या वे परस्पर अपवर्जक हैं या क्या वे पूरक हैं? क्या एक-दूसरे को वर्जित करता है।

ये प्रश्न हैं जिन पर धारा 19, 20, 29 में विचार किया गया है। इन तीनों धाराओं में अंतर्विष्ट नियमों का सारांश निम्न प्रकार दिया जा सकता है:-

19.(1) एक ही वाद में वादी दोनों अभिवृद्धि में या प्रतिस्थापन में दोनों मांग कर सकता है।

(2)किसी वाद में जहां न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन मंजूर न करने का निर्णय करता है, न्यायालय वादी को यदि वह हकदार है, प्रतिकार दे सकता है।

(3)एक वाद में न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन के साथ-साथ प्रतिकार प्रदान कर सकता है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विनिर्दिष्ट पालन पर्याप्त नहीं है।

20 (5) यह तथ्य कि निर्धारित नुकसानी करार पाई गई है विनिर्दिष्ट पालन के लिए वर्जन नहीं है।

29 (6) यदि किसी वाद में विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री हो गई है, तो यह नुकसानी के वाद के हित वर्जन होगी।

* * * * *

भाग 1
परिचयात्मक

I. **प्रारंभिक - वह अधिनियम जो विनिर्दिष्ट अनुतोष को परिभाषित करता है**

1. विनिर्दिष्ट अनुतोष विजयक विधि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1877 में अंतर्विष्ट है।

2. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम पारित होने से पूर्व विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए विधि सिविल प्रक्रिया संहिता (अधिनियम VIII) की धारा 15 और 192 में अंकित थी।

3. विधि खंडात्मक थी। धारा 15 घोषणात्मक डिक्रियों के संबंध में थी।

4. अधिनियम का उद्देश्य सिविल न्यायालय में प्राप्य विनिर्दिष्ट अनुतोष से संबंधित विधि को परिभाषित और संशोधित करना है।

II. विनिर्दिष्ट अनुतोष विधि की प्रकृति :-

1. यह विधि तीन वर्गों में आती है:-

(1) वह जो अधिकारों को परिभाषित करती है।

(2) वह जो प्रति उपचारों को परिभाषित करती है।

(3) वह जो प्रक्रिया परिभाषित करती है।

2. **दृष्टांत :-** (स्थान रिक्त छोड़ दिया गया - संपादक)

3. विनिर्दिष्ट अनुतोष विधि द्वितीय वर्ग से संबंधित है। यह विधि उपचारों के बारे में है।

4. 'अनुतोष' उपचार के लिए एक दूसरा शब्द है जो न्यायालय वादकर्ताओं को प्रदान करने के लिए विधि द्वारा अनुज्ञात है।

III. विनिर्दिष्ट अनुतोष से क्या अभिप्रेत है?

1. विनिर्दिष्ट अनुतोष विधि द्वारा मान्यता प्राप्त एक प्रकार का उपचार है। इसकी प्रकृति, विभिन्न प्रति उपचारों को जिनको विधि, किसी व्यक्ति को जिसका अधिकार पर

अतिक्रमण किया गया है, को अनुपज्ञात करती है, प्रभेदित करने से भली प्रकार समझा जा सकता है।

2. कोई अधिकार तभी हो सकता है जब उसके साथ कोई उपचार भी हो। कोई अधिकार संरक्षण नहीं दे सकता यदि उसके प्रति समर्थन के लिए किसी उपचार का उपबंध नहीं है। अत: अधिकार के उल्लंघन के लिए विधि अतिकर्मत: उपचार का उपबंध करती है।

3. अधिकार के उल्लंघन के लिए विधि द्वारा उपबंधित सामान्य उपचार धनीय क्षतिपूर्ति है जिसे प्रतिकार या नुकसानी कहते हैं।

4. धनीय क्षतिपूर्ति का उपचार सभी वादों में एक यथेष्ट उपचार नहीं है। किसी वस्तु की हानि, धन देकर पूरी नहीं हो सकती है। अन्यों की हानि की धन से पूर्ति नहीं हो सकती है। उनकी हानि ठीक उसी वस्तु की वापसी से पूरी हो सकती है। उसी प्रकार किसी बाध्यता का पालन करने में इंकारी धन से पूरी हो सकती है। अन्य वादों में मात्र यथेष्ट उपचार ठीक उसी बाध्यता के पालन को बाध्य करना है।

5. इस प्रकार विधि में दो प्रकार के उपचार उपबंधित हैं:-

(अ) वे जिनके अंतर्गत वादकर्ता को ठीक वहीं चीजें मंजूर की जाती हैं जिनके लिए वह उस अधिकार के कारण हकदार है वह अपने विरोध के विरुद्ध अर्जित कर चुका है, और

(ब) वे जिनके अंतर्गत वादकर्ता को ठीक वही वस्तु प्रदान नहीं की जाती जिसके लिए वह हकदार था, वरन् उसके बदले में धनीय प्रतिकार या नुकसानी।

6. विनिर्दिष्ट अनुतोष प्रथम प्रकार के उपचार का नाम है।

7. अनुतोष विनिर्दिष्ट कहा जाता है क्योंकि यह विशिष्ट वस्तुओं में अनुतोष है अर्थात् उसी वस्तु के रूप में जिसके लिए वादकर्ता हकदार है।

IV. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम में क्या-क्या विनिर्दिष्ट अनुतोष उपबंधित हैं

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम में उपबंधित विनिर्दिष्ट अनुतोषों के रूप चार खंडों में आते हैं:-

(1) संपत्ति को कब्जे में लेना और उसे दावेदार को देना जो कब्जे से बाहर है।

(2) संविदा के पालन की अपेक्षा करना।

(3) संविधिक कर्त्तव्य के पालन को बाध्य करना।

(4) अविधिक कार्य को किए जाने से रोकना।

2. चौथे वर्ग के उपखंड हैं:-

(i) विलेख का परिशोधन।

(ii) विलेख का विखंडन।

(iii) विलेख का रद्दकरण।

(iv) प्रस्थिति की घोषणा।

(v) आदाताओं (रिसीवरों) की नियुक्ति।

(vi) आदेश।

V. विनिर्दिष्ट अनुतोष को परिभाषित करने वाली अन्य विधियां

1. भारत में न्यायालयों द्वारा प्रशासित विनिर्दिष्ट अनुतोष मात्र ही नहीं है। भारतीय विधि द्वारा मान्य अन्य विनिर्दिष्ट अनुतोष है जो भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तित कराए जाते हैं।

2. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के बाहर से विनिर्दिष्ट उपचार ये हैं

(i) मृतक व्यक्ति की संपत्ति के लेखाओं को लेना और उनकी व्यवस्था करना।

(ii) एक न्यास के लेखाओं को लेना और न्यास संपत्ति की व्यवस्था करना।

(iii) बंधक कृत संपत्ति का विमोचन एवं प्रति हस्तांतरण।

(iv) बंधक कृत संपत्ति के मोचन या विक्रय के अधिकार का प्रबंध।

(v) भागीदारी का विघटन भागीदारी के लेखाओं का ग्रहण अरिस्तयों को वसूल करना, भागीदारी के ऋणों का उपमोचन आदि-आदि।

3. हमारा इनसे कोई संबंध नहीं है।

* * * * *

भाग - 2
अधिनियम द्वारा मान्य

विभिन्न प्रकार के विनिर्दिष्ट अनुतोषों का विचार

खंड - 1

संपत्ति के कब्जे का प्रत्युद्धरण

धारा 8, 9, 10 एवं 11

1. स्थावर संपत्ति के कब्जे का प्रत्युद्धरण - धारा 8, 9

2. जंगम संपत्ति के कब्जे का प्रत्युद्धरण धारा 10, 11

स्थावर संपत्ति के कब्जे का प्रत्युद्धरण

1. प्रश्न है -

कब किसी व्यक्ति को जो एक स्थावर संपत्ति के कब्जे संबंधित हो चुका है और उसके कब्जे को प्रत्युद्धरण के लिए वाद प्रस्तुत करता है कब्जे के संविमुख रहने के लिए नुकसानी या प्रतिकार के बजाए उसका कब्जा दिया जा सकता है।

2. जोर अनुतोष की प्रकृति पर है - अर्थात् संपत्ति को वह खास खंड वापस पाना जिसको कब्जा दिया गया है। नुकसानी प्रतिकार के द्वारा अनुतोष सामान्य विधि के अंतर्गत हमेशा स्पष्ट है। प्रश्न है कब एक व्यक्ति, संपत्ति की वापसी के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए आग्रह कर सकता है।

3. वाद जिनमें एक व्यक्ति स्थावर संपत्ति का कब्जा खो चुका है, दो वर्गों में आते हैं:-

(i) ऐसे व्यक्ति का वाद जो कब्जे के लिए हकदार है किंतु जो कब्जा खो चुका है।

(ii) ऐसे व्यक्ति का वाद जिसका कब्जा था किंतु कब्जा खो चुका है।

4. कब्जे के लिए हकदार होने में और कब्जे में होने में अंतर होता है।

5. धारा 8 एवं 9 में ये दो स्थितियां हैं। दोनों में उपबंध हैं कि प्रत्येक वाद में वादी संपत्ति के प्रत्युद्धरण के माध्यम से विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए हकदार होगा।

6. धारा 8 की अपेक्षाएं -

(i) सिद्ध करो कि तुम कब्जे के लिए हकदार हो और आप विनिर्दिष्ट अनुतोष के माध्यम से कब्जे के प्रत्युद्धरण में सफल होंगे।

7. धारा 9 की अपेक्षाएं –

(i) सिद्ध करो कि आप वाद के दिनांक से पूर्व 6 मास के अंतर्गत कब्जा रखते थे।

(ii) सिद्ध करो कि आप विधि में देय लेख अंतराल से अपनी सम्मति बिना य अन्यथा कब्जा वंचित किए गए थे।

अ का कब्जा है उसे ब द्वारा बेकब्जा किया जाता है।

I. अ हकमुक्त है, ब द्वारा बेकब्जा किया जाता है हकरहित है।

II. हकरहित है, ब द्वारा कब्जा किया जाता है हकयुक्त है।

III. हकरहित है, ब द्वारा कब्जा किया जाता है हकरहित है।

(1) सभी तीनों दशाओं में अ कब्जे का प्रत्युद्धरण कर सकता है। यदि वह धारा 9 के अंतर्गत अर्थात् छः माह के हक के प्रश्न के होते हुए भी वाद लाता है।

(2) यदि वह छः माह के बाद वाद लाता है तो वह हक पर अवश्य भरोसा करे ताकि अ कब्जे का प्रत्युद्धरण कर सके।

(I) क्योंकि उसका हक है।

(III) क्योंकि उसका सकब्जा हक है

किंतु वह II में प्रत्यादान प्रत्युद्धरण नहीं कर सकता क्योंकि ब का हक है अ का नहीं।

धारा 10 के अधीन कौन वाद चला सकता है।

1. धारा 10 के अनुसार केवल संपत्ति के कब्जे के लिए हकदार व्यक्ति वाद ला सकता है।

2. 'कब्जे का हकदार' का अभिप्राय।

3. कब्जे का हक उद्भूत हो सकता है।

(i) स्वामित्व के परिणामस्वरूप या

(ii) स्वामित्व से स्वतंत्र वर्तमान कब्जे के स्थाई या विशेष अधिकार के रूप में।

4. स्वामित्व के परिणामस्वरूप कब्जे का हक।

(i) स्वामित्व मात्र विधिक स्वामित्व हो सकता है या वह लाभकारी हित विधिक स्वामित्व हो सकता है।

(ii) यह आवश्यक नहीं है कि विधिक स्वामी के पास धारा 10 के अधीन वाद चलाने का अधिकार रखने के लिए संपत्ति में लाभकारी हित भी अवश्य हो।

(iii) प्रथम स्पष्टीकरण में यह स्पष्ट कर दिया गया है, जहां एक न्यासी न्यास संपत्ति कब्जे के लिए वाद करने के लिए अनुज्ञात है यद्यपि उसमें उसका कोई लाभकारी हित नहीं है।

5. स्वामित्व के स्वतंत्र कब्जे का हक।

स्वामित्व से स्वतंत्र कब्जे का हक दो प्रकार से उद्भूत हो सकता है:

(i) स्वामी के कार्य द्वारा।

(ii) स्वामी के कार्य से अन्यथा।

(iii) स्वामी के कार्य द्वारा कब्जे का हक –

(i) स्वामी अपने कार्य द्वारा दूसरे व्यक्ति में एक वस्तु का जो स्वामी के रूप में उससे संबंधित है कब्जा लेने का अधिकार सृजित कर सकता है।

(ii) ऐसे कब्जे के अधिकार के दृष्टांत उपनिधान एवं धारणाधिक में पाए जाते हैं –

(1) साधारण उपनिधान में ये मामले आते हैं –

(i) ऋण

(ii) अभिरक्षा

(iii) वहन

(iv) अभिकरण

(2) अन्य उपनिधान

(i) धरोहर

(ii) भाड़ा

2. साधारण उपनिधान एवं धरोहर या भाड़े के अन्य उपनिधानों में अंतर:–

(i) साधारण उपनिधान में स्वामी (उपनिधाता) का कब्जे का अधिकार होता है और उपनिहिती का विधिक कब्जा होता है। उपनिहिती कब्जे का हक होते हुए कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए वाद चला सकता है। उपनिधाता भी कब्जे का अधिकार रखते हुए उपनिहिती से भिन्न किसी व्यक्ति के विरुद्ध कब्जे की प्राप्ति के लिए वाद चला सकता है।

(ii) धरोहर या भाड़े अन्य उपनिधानों में – उपनिधाता को कब्जे का अधिकार नहीं होता है। कब्जे का अधिकार उपनिधान काल में धरोहरदार अनक्रेता में

सन्निविष्ट होता है और वह केवल उपनिहिती धरोहरदार अनक्रेता ही है, जो कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए वाद चला सकता है।

3. **धारणाधिकार, स्वामी के कार्य से उद्‌भूत कब्जे के अधिकार का एक दृष्टांत है –**

(1) धारणाधिकार वस्तु के कब्जे का अधिकार है जो स्वामी द्वारा देय ऋण से उद्‌भूत होता है।

(2) स्वामी का कब्जे का अधिकार इस प्रकार अस्थाई रूप में एक अन्य (व्यक्ति) में सन्निविष्ट होता है।

4. वाद चलाने के लिए आवश्यक है वर्तमान कब्जे का अधिकार –

(i) वर्तमान कब्जे का अधिकार स्वामित्व से उद्‌भूत हो सकता है या नहीं हो सकता है।

(ii) वर्तमान कब्जे का अधिकार विशेष या अस्थाई हो सकता है।

(2) कब्जे का अधिकार स्वामी के कार्य से अन्यथा –

(1) खोए माल को पाने वाला कब्जे का अधिकार रखता है।

(2) यह स्वामी के कार्य का परिणाम नहीं है।

(3) वरन् वह स्वामी के अतिरिक्त समग्र विश्व के विरुद्ध सही है।

II. ऐसा वाद जिसके विरुद्ध वाद चलाया जा सकता है –

(1) धारा 10 के अधीन वाद किसी एक (व्यक्ति) के विरुद्ध चलाया जा सकता है और यहां तक कि वास्तविक स्वामी के विरुद्ध भी चलाया जा सकता है।

(2) आवश्यक यह है कि वादी कब्जे का हक अवश्य रखता हो।

धारा-11 जंगम संपत्ति

1. प्र. 1 – धारा 11 के अधीन कौन वाद चला सकता है?

उ. – तत्काल कब्जे का हकदार व्यक्ति।

2. प्र. 2 – इस प्रकार का वाद किसके विरुद्ध चलाया जा सकता है?

उ. – हर एक के विरुद्ध यदि वह स्वामी नहीं है।

प्रतिवादी स्वामी न हो। यदि है, तब धारा 10 लागू होगी।

3. प्र. 3 – किस वाद में कब्जे के प्रत्युद्धरण के द्वारा विशिष्ट विनिर्दिष्ट अनुतोष होगा?

उ. – जहां व्यक्ति जो वस्तु धारण करता है दावेदार का न्यासी या अभिकर्ता है।

(ii) जहां क्षति के लिए दावेदार के लिए धनीय प्रतिकार उपयुक्त प्रतिकार नहीं हो।

(iii) जहां वस्तु की हानि से उत्पन्न नुकसान को निश्चित करना नितांत कठिन है।

(iv) जहां व्यक्ति का कब्जा दावेदार से सदोष अंतरण का परिणाम है।

संपत्ति के कब्जे के संबंध में विनिर्दिष्ट अनुतोष

वे धारा 8-11 में दिए गए हैं।

धारा 8 - विनिर्दिष्ट स्थावर संपत्ति का उसके कब्जे के हकदार व्यक्ति द्वारा प्रत्युद्धरण।

धारा 9 - विनिर्दिष्ट स्थावर संपत्ति का कब्जे का प्रत्युद्धरण ऐसे व्यक्ति द्वारा जो बेकब्जा किया जाता है।

धारा 10 - विनिर्दिष्ट जंगम संपत्ति का उसके कब्जे के हकदार व्यक्ति द्वारा कब्जे प्रत्युद्धरण (1) स्वामित्व के कारण (2) अस्थाई या विशेष अधिकारों (न्यासी) उपनिधान पण्यम् के कारण।

धारा 11 - विनिर्दिष्ट स्थावर संपत्ति वे, ऐसे व्यक्ति द्वारा जो उसके तत्काल कब्जे का हकदार है कब्जे का प्रत्युद्धरण।

विधि में कब्जे से क्या अभिप्रेत है?

विधिक कब्जा दो अवयवों का यौगिक है : काय एवं आधिपत्य का आशय

टिप्पणी :-

(i) विधिक कब्जा हक या अधिकार के तत्त्व से वहां बनता है।

विधिक कब्जा अधिकार या हक के स्वतंत्र होता है। विधिक कब्जा विधिपूर्ण या अविधिपूर्ण हो सकता हैं

यदि कोई कब्जा धारक अपना वास्तविक कब्जा विधि द्वारा मान्य (न्यायिक औचित्य) अर्जन के साधनों से अर्जित करता है तो वह विधिपूर्ण कब्जा रखता है। यदि उसने उसको इस प्रकार अर्जित नहीं किया (जैसे कि एक चोर की दशा है तो वह विधिक कब्जा तो रखता है किंतु वह अविधिपूर्ण कब्जा है।

(ii) विधिक कब्जा दोषकर्ता से रक्षित होने वाले व्यक्तिगत अधिकार से अधिक प्रदान करता है। वह कब्जा का विशेषित अधिकार संपत्ति की प्रकृति में एक अधिकार प्रदान करता है, जो हर एक व्यक्ति जो उसके पूर्व का और श्रेष्ठतर हक नहीं दिखा सकता है के विरुद्ध विधिमान्य है। विधिक कब्जे में दो तत्त्व होते हैं :-

(i) कार्य अर्थात् भौतिक संबंध।

(ii) आशय अर्थात् मानसिक संबंध।

कार्य या भौतिक संबंध का अभिप्राय भौतिक संपर्क मात्र इसके अंतर्गत भौतिक संपर्क भी है जिसे जब चाहे ग्रहण किया जा सके। कार्य का सार वस्तु के उपयोग से अन्यों को अपवर्जित करने की शक्ति है। अर्थात् सकब्जा वस्तु की प्रकृति के अनुसार प्रभावी अधियोग या नियंत्रण।

आशय अन्यों को अपवर्जित करते हुए और वस्तु के साथ सहर्ष व्यवहार करने की ऐसी शक्ति का प्रयोग करने का आशय है।

आशय के तीन रूप

अपने कब्जे की वस्तु के संबंध में भौतिक काबिज की मानसिक मनोवृत्ति की तीन डिग्रियां हो सकती हैं :-

(i) उसका आशय वस्तु की सुरक्षा करने का हो सकता है। अधिकार का प्राख्यान नहीं। मालिक के सामान पर नौकर का कब्जा।

(ii) कुछ सीमित प्रयोजनों के लिए नियंत्रण करने का आशय - अर्थात् किराएदार स्वामी के अतिरिक्त हरेक को अपवर्जित करने का आशय।

(iii) हर एक अन्य व्यक्ति के अधिकार की इन्कारी के समान आशय। यह वास्तविक आधिपत्य का आशय है।

कब्जा एवं अतिचार में अंतर

इस प्रकार के वादों में वादी को जो सिद्ध करना है वह है विवादित संपत्ति का कब्जा न कि केवल उस संपत्ति पर अतिचार के पृथक कार्य। वह अवश्य सिद्ध करे -

(i) कि उसने ऐसे कार्य किए जो आधिपत्य के समान थे, आधिपत्य के इन कार्यों की प्रकृति संपत्ति की प्रकृति के साथ-साथ भिन्न-भिन्न होती है।

(ii) यह कि आधिपत्य का वह कार्य अनन्य था।

2. यदि वादी का अधिभोग जैसा कि उन कार्यों से इंगित था शांतिपूर्ण एवं अविच्छिन हुआ है और पर्याप्त दीर्घ समय तक चला है तो निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि वादी का कब्जा था।

धारा 8 एवं 9 के उद्देश्य

(i) अधिनियम की धारा 8 उपबंध करती है कि विनिर्दिष्ट स्थावर संपत्ति के कब्जे के लिए हकदार व्यक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता में निर्धारित रीति से कब्जे का प्रत्युद्धरण कर सकता है - अर्थात् हक के आधार पर बेदखली का वाद लाकर।

(ii) धारा 9 इस व्यक्ति को जो उसकी संपत्ति के बिना स्थावर संपत्ति से विधि के अनुसार से अन्यथा बेकब्जा किया जाता है, हक सिद्ध किए बिना कब्जे के प्रत्युद्धरण

के लिए संक्षिप्त उपचार प्रदान करती है।

धारा 9

यह धारा अवैध बेकब्जा किए जाने के विषय के बारे में और बेकब्जा व्यक्ति को दो वैकल्पिक उपचार प्रदान करती है :-

(i) वह अपने अवैध बेकब्जा किए जाने के तथ्य का, उसके छः माह के अंतराल में उसके द्वारा प्रस्तुत वाद में साधारणतः सिद्ध कर सकता है और संपत्ति के कब्जों पर कर सकता है।

(ii) वह उसी उद्देश्य से अपने द्वारा लाए गए वाद में अपने हक पर निर्भर करते हुए कब्जों पर कर सकता है। यहां उसकी सफलता उसके हक के सबूत पर निर्भर करती है।

पहला उपचार कब्जे के वाद के रूप में उपचार कहलाता है और धारा 9 में अधिनियमित है दूसरा हक पर आधारित वाद का एक साधारण उपचार है और धारा 8 में लेखबद्ध है।

धारा 9 की प्रकृति एवं उद्देश्य

(i) लोगों को अपने हाथ में विधि को लेने से रोकना, उनका हक भले ही कितना भी अच्छा हो।

(ii) बेकब्जा के कारण सबूत के भार को दूसरे पर डालने से रोकना हक प्रथम दृष्टया है।

धारा 9 के अधीन वाद में अर्थात् कब्जा छीनने के छः माह के भीतर बेकब्जा एवं बेकब्जा कर्ता के बीच पूर्ववर्ती कब्जा स्वतः संपत्ति में परिपूर्ण हक गठित करता है।

प्रश्न – ऐसे व्यक्ति द्वारा जो छः माह व्यतीत हो जाने पर कब्जाहीन है, और धारा 9 के अधीन वाद लाना वर्जित है, कब्जे के लिए लाए गए वाद में पूर्ववर्ती कब्जे का क्या प्रभाव है?

निम्नलिखित प्रतिपादिताएं न्यायिक रूप से स्थापित की गई हैं:-

(i) साठ वर्ष एवं इससे अधिक समय तक कब्जा कब्जेदार व्यक्ति में हक सृजित करने के लिए पर्याप्त है, जिस पर कोई उंगली नहीं उठा सकता। 1-8 डी.आर. 386

(ii) अनुच्छेद 142 के अधीन 12 वर्ष का हक प्रतिकूल कब्जा स्वयं साधिकार स्वामी के विरुद्ध भी हक होता है।

फलतः जहां कब्जे के एक वाद में प्रतिवादी द्वारा निर्धारित सीमाकाल में प्रतिकूल कब्जे का तर्क स्थापित कर दिया जाता है वहां परिसीमा का प्रश्न हक का प्रश्न हो जाता है और वादी को प्रथम दृष्टया अपने वाद के दिनांक पर अपने हक के बने रहने का सबूत प्रतिकूल कब्जे को स्थापित करने के लिए प्रतिवादी से अपेक्षा किए जाने से पूर्व प्रस्तुत कर देना चाहिए।

(iii) पूर्ववर्ती कब्जा कितना भी अल्प हो, दोषकर्ता के विरुद्ध स्वत: एक हक है और पूर्ववर्ती कब्जा एवं कब्जाहीनता का अभिनाक मात्र है वस्तुत: कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए एक अच्छा आधार है।

(1) जहां कब्जाहर्ता कोई हक साबित नहीं कर सकता या

(2) जहां दोनों में कोई साक्षी पक्ष हक को साबित नहीं कर सकता।

स्थिति का विवरण
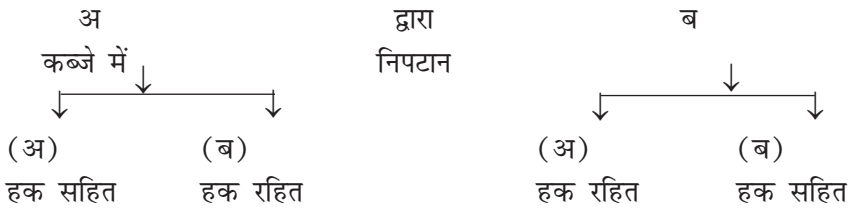
I. छ: मास के भीतर लाया गया वाद

(अ) और (अ) अ धारा 9 के अधीन

(ब) और (ब) हक से निरपेक्ष होकर भी

(ब) और (अ) कब्जा पा सकता है।

II. छ: माह के बाद लाए गए वाद में :-

(अ) और (अ) अ कब्जा पा सकता है क्योंकि हक अ को है।

(ब) और (ब) अ कब्जा नहीं पा सकता क्योंकि हक ब को है।

(ब) और (अ) पूर्ववर्ती कब्जे के कारण अ कब्जा पा सकता है।

1. कब्जे के लिए हकदार

कब्जे के लिए अधिकार अस्तित्व में होता है या तो –

(i) स्वामित्व के भाग रूप या

(ii) स्वामित्व से स्वतंत्र, अस्थाई या विशेष अधिकार के तौर पर ये विशेष अधिकार या तो –

(1) स्वामी के कृत्य से या

(2) स्वामी के कृत्य से अन्यथा उत्पन्न होते हैं।

स्वामी के कृत्य से

(1) उपनिधान (2) धारणाधिकार।

उपनिधान धरोहर और भाड़े का साधारण और (2) विशेष होता है।

(i) साधारण उपनिधान जेसे ऋण, अभिरक्षा, वाहन एवं अभिकरण।

साधारण उपनिधान में उपनिधानता को कब्जे का अधिकार होता है और अपने हितों का विधिक कब्जा होता है।

(अ) उपनिधाता और (ब) उपनिहिती है। दोनों स के विरुद्ध कब्जे का प्रत्युद्धरण कर सकते हैं।

(ii) विशेष उपनिधान (अर्थात् धारणाधिकार – अनु) – धरोहर एवं भाड़ा।

उपनिधाता को उपनिधान के प्रवर्तन कार्यकाल के कब्जे का अधिकार नहीं होता है और वह केवल कब्जे का प्रत्युद्धरण कर सकता है। धारणाधिकार ऋण से उद्‌भूत होता है – विक्रेता का विक्रीत वस्तु के कब्जे का अधिकार बनाए रखता है जब तक कि क्रेता क्रय धन आदान कर चुके।

2. द्वितीय स्वामी के कृत्य से अन्यथा कब्जे का अधिकार।

खोए सामान को पाने वाला – स्वामी के अतिरिक्त समग्र जगत के विरुद्ध कब्जे का हक।

भाग II

संविदा का पालन

संविदा का विशिष्ट पालन, उसका अनुबंधों एवं निबंधनों के अनुसार वास्तविक निष्पादन है, और संविदा के अनिष्पादन के लिए नुकसानी या प्रतिकार से विषम है।

यह विनिर्दिष्ट अनुतोष की एक किस्म है जो पक्ष को वही कार्य करने का आदेश देने से मिलता है जिसे ठेकेदार के नाते करने के लिए वह बाध्य है।

संविदा का विशिष्ट पालन

धारा 12 एवं 21 संविदा के विशिष्ट पालन के बारे में है।

धारा 21 – परिभाषित करती है उन संविदाओं को जो विशिष्टतः लागू नहीं हो सकती हैं।

धारा 12 – परिभाषित करती है उन संविदाओं को जो विशिष्टतः लागू की जा सकती हैं।

धारा 21 – आठ प्रकार की संविदाएं हैं जो विशिष्टतः लागू नहीं हो सकतीं।

(1) संविदाएं जिनके पालन न करने पर धनीय प्रतिकार पर्याप्त अनुतोष है।

(2) संविदाएं (i) जो सूक्ष्म विवरणों में होती है, (ii) पक्षों की निजी योग्यता या इच्छा पर आश्रित होती हैं।

(iii) ऐसी हैं कि न्यायालय उसकी तात्विक शर्तों का विनिर्दिष्ट पालन लागू नहीं करा सकता।

(3) संविदाएं जिनकी शर्तों को न्यायालय युक्तिमुक्त निश्चिंतता से नहीं पा सकता जैसे आवश्यक उपयंत्र।

(4) संविदाएं जो अपने स्वभाव में खंडनीय हैं जैसे बिना कार्यकाल की भागीदारी।

(5) संविदाएं जो न्यासियों द्वारा अपनी शक्ति या अपने विश्वास भंग में की जाएं।

(6) संविदाएं जो कंपनी द्वारा उसकी शक्ति से अधिक हो।

(7) संविदाएं जिनके पालन में उसके दिनांक से 3 वर्षों से अधिक लंबी अवधि तक निरंतर कर्त्तव्यपालन होना चाहिए।

(8) संविदाएं जिनकी विषय-वस्तु का तात्विक भाग जो दोनों पक्षों द्वारा अस्तित्वशील माना गया अस्तित्व में नहीं है।

(9) संविदाएं विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजना।

टिप्पणी :- व्यावहारिक दृष्टि से विनिर्दिष्ट पालन क्योंकि दावा करने का अधिकार नहीं दिया गया है।

संविदाओं का विनिर्दिष्ट पालन

धारा 12

ऐसी चार स्थितियां हैं जिनमें विनिर्दिष्ट पालन लागू हो सकता है -

(i) जहां वायदाकृत कार्य न्यास के पालन में हैं।

(ii) जहां वास्तविक क्षति को निश्चित करने का कोई मानक नहीं है।

(iii) जहां नुकसानी उपयुक्त अनुतोष नहीं है।

(iv) अनुपालन के लिए प्रतिकार नहीं दिया जा सकता।

संविदा

एक करार के विनिर्दिष्ट पालन के वाद में न्यायालय द्वारा निश्चित किया जाने वाला प्रथम प्रश्न है - क्या प्रश्नगत करार संविदा है या नहीं। धारा-4 (क) अनुतोष जब तक कि करार संविदा नहीं है।

निम्नलिखित करार, संविदा नहीं है क्योंकि वे प्रवर्तन योग्य नहीं है, और इसलिए अपवर्जित किए जाते हैं:-

(i) अपूर्ण करार - भागीदार समझौता वार्ताओं से आगे नहीं गए हों।

(ii) करार जो शून्य है।

(iii) आकस्मिक करार - जब तक आकस्मिकता लागू नहीं है "उद्भूत" होना चाहिए।

शून्यकरणीय संविदा अपवर्जित नहीं है।

न्यायालय के समक्ष एक संविदा हो जिसका पालन नहीं हुआ है।

परस्परता – विनिर्दिष्ट पालन निष्पादन रूप से उपचार परस्परतः होता है अर्थात् विक्रेता सभी स्थितियों में अपना वाद ला सकता है, जहां क्रेता विनिर्दिष्ट पालन के लिए निश्चित हो सकता है।

यह परस्परता का सिद्धांत स्थावर एवं जंगम दोनों के विषय में लागू होता है।

परस्परता का सिद्धांत – इसका अर्थ है कि संविदा करने के समय दोनों ओर से विचार या उभय पक्ष द्वारा परस्पर प्रदत्तनीय पालन का अभिलेख स्वीकृत नहीं किया जाएगा न एक अव्यस्क इस उपचार के द्वारा संविदा को प्रवर्तित कर सकता है। उसका वायदा उसके विरुद्ध प्रवर्तनीय नहीं है और यह कि न्यायालयों का केवल वहां हस्तक्षेप करना जहां परस्पर उपचार एक सामान्य सिद्धांत है।

धारा 13

संविदा का विनिर्दिष्ट पालन और पालन की असंभाव्यता। संविदा अधिनियम की धारा 56

धारा 56 खंड (2) सामान्य नियम अधिनियमित करती है। यह निर्धारित करती है कि कब संविदा शून्य हो जाती है।

यह नियम असंभाव्यता के हर एक आधार पर लागू होता है और इस धारणा पर आधारित है कि संविदा के सभी मानकों में एक विवक्षित शर्त होती है कि पालन संभव है।

संविदा के संबंध में असंभाव्यता।

(1) समय पर या (2) बाद में

भौतिक रूप से या विधिवत असंभव | संविदा की विषयवस्तु विद्यमान नहीं।

पश्चात्वर्ती असंभाव्यता

क्या एक पक्ष अन्वेक्षण पर मुक्त किया जा सकता है, पश्चात्वर्ती असंभाव्यता इस पर निर्भर करती है –

(i) क्या संविदा सशर्त है या अशर्त है।

(I) यदि अशर्त – पालन अवश्य।

(II) यदि सशर्त – तीन परिस्थितियों में –

(i) निरंतर विधिकता –

(ii) व्यक्त शब्दों में सशर्त।

(iii) प्रवर्तन द्वारा सशर्त – धारा 56 संविदा अधिनियम में वस्तु की विषय-वस्तु की निरंतरित विद्यमानता – संभाव्यता के पश्चात्वर्ती संविदा शून्य।

दो आधारों पर हो सकती है:-

(i) करार की वस्तु भौतिकत: या विधिकत: असंभव है।

(ii) संविदा की विषय-वस्तु अविद्यमान है।

ऐसी असंभाव्यताएं हो सकती हैं या तो –

(1) प्रारंभिक या पश्चात्वर्ती

यदि असंभव संविदा शून्य है और विनिर्दिष्ट पालन कोई प्रश्न नहीं है तो क्या असंभाव्यता प्रारंभिक या पश्चात्वर्ती है।

धारा 13 – विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, अधिनियम की धारा 56 एक अपवाद असंभाव्यता के संबंध में अर्थात् विषय-वस्तु की अविद्यमानता के कारण असंभाव्यता।

धारा 13 बताती है कि संविदा का विनिर्दिष्ट पालन प्रवर्तित कराया जा सकता है हालांकि विषय-वस्तु आंशिकत: विनष्ट है।

मकान का विक्रय – चक्रवाद – बवंडर द्वारा विनष्टता – क्रेता पालन के लिए बाध्य किया जा सकता है।

धारा – 13 एक अपवाद अधिनियमित करती है।

यह एक ऐसी स्थिति के बारे में है जहां विषय-वस्तु का एक भाग विद्यमान नहीं रहता है।

संक्षिप्तत: नियम इस प्रकार है –

क्योंकि अ विशेष अपरिहार्य परिस्थितियों के होते हुए अपना वायदा पूरा करने में असमर्थ है यह कोई कारण नही है, अपने (वायदे) को क्यों पूरा न करे, विशेषत: जैसे कि वह स्वयं को अ के पालन पर अपने वायदे के पालन को सशर्त बना कर संरक्षित करे। एक अविशेषित वायदा करके उसे वह अवश्य पूरा करे।

संविदा के एक भाग का विनिर्दिष्ट पालन

क्या न्यायालय संविदा के एक भाग के पालन की डिक्री दे सकता है?

यह प्रश्न धारा 14-17 में देखा गया है।

धारा 17 सामान्य नियम अधिनियमित करती है। यह वर्णित करती है कि न्यायालय सामान्य नियम के रूप में जब तक कि वह समग्र संविदा का विनियोजन नहीं कर सकता संविदा के विनिर्दिष्ट पालन को बाध्य नहीं करेगा। विनिर्दिष्ट पालन समग्र का हो या कुछ भी नहीं।

धाराएं 14, 15, 16 नियम के अपवाद हैं।

अपवाद: उपक्रमित किए गए वायदे - विभाज्य या अविभाज्य हो सकते हैं।

(I) विभाज्य वायदे अर्थात् वायदे - एक भाग दूसरे एक भाग से एक पृथक और स्वतंत्र आधार पर संबद्ध होता है। यदि पूर्ववर्ती का विनिर्दिष्ट पालन हो सकता है या हो सकता था तो इसका पालन इस प्रकार किया जाएगा, यद्यपि परवर्ती का विनिर्दिष्ट पालन नहीं हो सकता है या निश्चित नहीं हो सकता है - धारा 16

(II) अविभाज्य वायदे - (वह) भाग जिसका पालन किया जा सकता

(i) धनीय प्रतिकार स्वीकार करना।

(ii) यह नहीं हो सकता।

(अ) प्रतिकार की स्वीकृति - दो स्थितियों में -

यह वहन कर सकता है -

(1)समग्र वचन का एक छोटा भाग।

(2)समग्र उपक्रम का एक बड़ा भाग।

यदि (1) वह छोटा भाग वहन करते हैं तब एक पक्ष दोनों के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद ला सकता है और प्रतिकार के लिए किसी का नहीं। धारा 14

यदि (2) वह बड़े भाग को वहन करता है, तब वायदी शेष भाग के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद ला सकता है, यदि वह आगे निष्पादन के सभी दावों और नुकसानी के सभी अधिकारों को त्याग देता है।

(ब) जो भाग जिसका पालन नहीं किया जा सकता प्रतिकार को स्वीकृत नहीं करता तब वायदी शेष भाग के विनिर्दिष्ट पालन का वाद ला सकता है, यदि वह आगे निष्पादन के सभी दावों और नुकसानी के प्रति सभी अधिकारों को त्याग देता है - धारा 15

दृष्टांत:- अ ब को एक घर एवं संपदा के साथ एक लाख रुपए में बेचने की संविदा करता है। घर के उपभोग के लिए उद्यान महत्त्वपूर्ण है। यह विदित होता है कि अ बाग का हस्तांतरण करने में असमर्थ है।

क्या ब संविदा का विनिर्दिष्ट पालन करा सकता है? - हां, यदि ब सहमत मूल्य अदा करने और संपदा को लेने और बिना उद्यान के घर को लेने या तो कमी के लिए या अ की अवहेलना या उपेक्षा के लिए अपनी हानियों के लिए प्रतिकार के सभी अधिकारों को छोड़ देने का इच्छुक है।

इस प्रकार नियम के चार अपवाद है -

(1)जहां भाग विभाजनीय है - एक भाग का विनिर्दिष्ट पालन डिक्री हो सकता है। यद्यपि सभी भागों का नहीं - धारा 16

(2)जहां भाग विभाजनीय भागों में होते हुए भी जो प्रतिकार स्वीकृति से पालन नहीं हो सकते और समग्र में एक छोटा अनुपात वहन करता है, वहां वह पक्ष विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद ला सकता है। धारा 14

(3)जहां भाग अविभाजनीय हो, वहां भाग जो प्रतिकार की स्वीकृति से पूरा नहीं हो सकता और समग्र उपक्रम वचन के बड़े अनुपात को वहन करता है वायदी शेष के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद ला सकता है बशर्ते कि वह पालन कराने के सभी दावों और नुकसानी के सभी अधिकारों को त्याग देता है जो पालन योग्य है – धारा 15

(4)जहां भाग अविभाजनीय हो वहां वह भाग जिसका पालन नहीं किया जा सकता प्रतिकार की स्वीकृति नहीं करता और बड़ा भाग विनिर्दिष्ट पालन वहन करता है उस भाग की जो पालन योग्य है धारा 15 में वर्णित शर्तों के अंतर्गत डिक्री हो सकती है।

संविदा का विनिर्दिष्ट पालन

जहां विक्रेता या पट्टाकर्ता के पास अपूर्ण हक है।

(1)इसके लिए नियम धारा 18 में रखा गया है। यह धारा चार खंडों में है:-

(i) जहां एक क्रेता/पट्टेदार ने संविदा के बाद अच्छा हक पा लिया है।

(ii) जहां अन्य व्यक्ति की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।

(iii) जहां एक अभिभारित संपत्ति बेची जाती है मानों वह अनअधिभारित थी।

(iv) जहां निक्षेप अदा कर दी गई है और विनिर्दिष्ट पालन का वाद खारिज कर दिया गया।

खंड – (क) अखंडनीय सिद्धांत पर आधारित है कि जब कोई व्यक्ति संविदा संविदा पालन की शक्ति के बिना करता है और बाद में वह उस संविदा का पालन करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है तब वह ऐसा करने को बाध्य है।

दृष्टांत :- एक उत्तराधिकारी प्रत्यक्षत: जो अपने अधीन संपत्ति को संविदा करता है, यदि एवं जब वह संपत्ति को प्राप्त करता है, ऐसी संविदा का विनिर्दिष्ट रूप से पालन करने को बाध्य किया जाएगा।

जब कभी विक्रेता संविदा के बाद संपत्ति में हित प्राप्त करता है, वह क्रेता को अंतरित करने को बाध्य होगा।

खंड (ख) इस सिद्धांत पर आधारित है कि जहां संविदा की वैधता संविदा के अजनबी व्यक्ति की सहमति पर निर्भर करती है और संविदा के लिए अजनबी विक्रेता या पट्टेदार की मांग पर अंतरण करने को आबद्ध है और क्रेता और पट्टेदार इस प्रकार की सहमति पाने के लिए उसे बाध्य कर सकते हैं।

खंड (ग) इस सिद्धांत पर आधारित है कि जहां संपत्ति बेची या पट्टे पर दी गई है वहां वह अधिभार मुक्त होने के रूप में प्रस्तुत की गई है। किंतु अधिभारित है, विक्रेता उसको संपत्ति के अधिभार विक्रय जो बंधित है से मुक्त करने के लिए बाध्य किया जाएगा बशर्ते कि मूल्य बंधक धन से अधिक न हो।

खंड (घ) खंड ख एवं ग में वे मामले आते हैं जहां क्रेता या पट्टेदार के पूर्णत्व के लिए वाद लाने वाला वादी है। खंड (घ) में ऐसा मामला आता है जहां विक्रेता या पट्टेदार द्वारा विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद लाया जाता है और उसके हक को पूर्ण करने के लिए समर्थ न होने के कारण वह (वाद) असफल हो जाता है।

इस प्रकार के वाद में न्यायालय वादी को न केवल व्यय के साथ निरस्त करता है, वरन प्रतिवादी क्रेता को एक विशेष अनुतोष दिलवाने की कार्यवाही करता है। यथा उसके निक्षेप ब्याज सहित और उसके हर्जाने की वापसी और बेची जाने या किराए पर दी जाने वाली संपत्ति पर इन सबके लिए एक धारणाधिकार।

जमा के संबंध में सामान्य नियम – निक्षेप संविदा के पालन की प्रत्याभूति (गारंटी) के रूप में अदा की जाती है और जहां संविदा क्रेता की अवहेलना के कारण असफल हो जाती है वहां विक्रेता निक्षेप का प्रतिधारण करने के लिए हकदार है।

विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद लाने के संविदा के पक्षों के अधिकार

चार स्थितियों पर विचार करना होगा –

(1)किसके लिए संविदा विशिष्टतः लागू की जा सकती है।

(2)किसके लिए संविदा विशिष्टतः लागू नहीं की जा सकती है।

(3)किसके विरुद्ध संविदा विशिष्टतः लागू की जा सकती है।

(4)किसके विरुद्ध संविदा विशिष्टतः लागू नहीं की जा सकती है।

I. किसके लिए संविदाओं को विशिष्टतः लागू किया जा सकता है।

धारा 23 इस प्रश्न के बारे में कि कौन विनिर्दिष्ट पालन उपलब्ध कर सकता है?

(खंड क) – उसका हर एक पक्ष।

(खंड ख)

(1)वचनग्रहीता का समनुदेशिती प्रतिनिधि।

(2)वचनग्रहीता की मृत्योपरांत उसका विधिक प्रतिनिधि।

(3)एक वचनग्रहीता का गुप्त सिद्धांत।

इनमें से हर एक संविदा जिसमें वह हितबद्ध है, का विनिर्दिष्ट पालन उपलब्ध कर सकता है, किंतु हर एक इस परंतुक के अधीन है कि संविदा निश्चित व्यक्तिगत नहीं

होनी चाहिए, न संविदा वचनग्रहीता के हित के समनुदेशक को निषिद्ध करे।

(ग) एक वैवाहिक संविदा के लाभों के लिए या उसी परिवार के सदस्यों के बीच संदिग्ध अ धकारों के समझौते के लिए हकदार व्यक्तिगण।

(घ) आजीवन किराएदार के द्वारा की गई संविदा पर शेष व्यक्ति।

(ङ) सकब्जा उत्तरभोगी।

(च) शेष में उत्तरभोगी।

(छ) आमेलन पर नई कंपनी।

(ज) संप्रवर्तकों द्वारा कृत संविदा पर कंपनी।

IV. वे स्थितियां जिनमें संविदा उसमें परिवर्तन के सिवाए विशिष्टतः प्रवर्तित नहीं कराई जा सकती - धारा 76

(1) मूल या कपट से संविदा शर्तों में हैं जो उनसे भिन्न है जिनकी उसमें होने की प्रतिवादी ने अपेक्षा की थी।

(2) प्रतिवादी ने संविदा प्रतिवादी एवं वादी के बीच उसके प्रभाव के संबंध में यथोचित प्रतिबोध में की।

(3) वादी के किसी दुर्व्यपदेशन पर भरोसा करके संविदा।

(4) जहां उद्देश्य यह है कि वस्तु कोई परिणाम देने वाली है जिसे देने में संविदा असफल रहती है।

(5) जहां पक्षगण उसे परिवर्तित करने को सहमत हो गए हों।

टिप्पणी

धारा 91, 92 साक्ष्य अधिनियम - वादी परिवर्तन करने के संबंध में मौखिक साक्ष्य नहीं दे सकता। वह प्रतिवादी को यह दर्शाने को विवर्जित नहीं करता है कि कपट या दुर्व्यपदेशन के कारण विलेख में समग्र संविदा अंकित नहीं है। वह धारा 92 के परंतुक के अधीन प्रमाणित करने के लिए कि मौखिक साक्ष्य दे सकता है उसमें परिवर्तन है।

वादी उस वाद में डिक्री नहीं प्राप्त कर सकता है जब तक वह परिवर्तन के लिए प्रस्तुत नहीं होता है, वादी को चुनाव करना है या तो (1) अपनी विनिर्दिष्ट पालन की कार्यवाही को निरस्त करा ले या (2) उसे परिवर्तन के अधीन कर दें। यदि वह परिवर्तन को स्वीकार करता है तो वह प्रतिकार का उपचार नहीं गंवाता है।

(2) (ii) व्यक्ति जिनके लिए संविदा विनिर्दिष्टतः प्रवर्तित नहीं हो सकती। धारा 24 एवं 25 में।

धारा 24

(i) जो उसके अतिक्रमण के लिए प्रतिकार वसूल नहीं कर सका।

(ii) जो संविदा का निपालन करने में अक्षम हो गया है या (उसकी) किसी अनिवार्य शर्त को भंग करता है।

(iii) जो पहले ही अपने उपचार को चुन चुका है और अभिकथित भंग के लिए मनस्तोप प्राप्त कर चुका है।

(iv) जिसको संविदा से पूर्व सूचनार्थ थी कि एक व्यवस्था की गई और प्रवर्तित थी।

यह धारा, धारा 23 से इस बात में भेदनीय है कि विनिर्दिष्ट पालन का बचाव स्वतः संविदा में किसी बात पर आधारित नहीं है वरन् केवल वादी के कार्यों एवं आचरण पर पूर्णतः आधारित है।

धारा 24 एक सामान्य धारा है। जबकि धारा 25 एक धारा है जो विशेष है और यह प्रवर्तन में मात्र दो प्रकार की चल या स्थावर संविदाओं तक सीमित है – (i) विक्रय के लिए संविदा और (ii) संपत्ति को किराए पर देने की संविदा।

धारा 25 व्यक्त करती है कि इस प्रकार संविदा विक्रेता या पट्टेदार के पक्ष में विशिष्टतः प्रवर्तित नहीं हो सकती है, अर्थात् निम्नलिखित स्थितियां :

(i) संपत्ति में कोई हक न होने के विषय में जानते हुए उसको बेचने या किराए पर देने के लिए संविदा कर चुका है।

(ii) जो न्यायालय या पक्षों द्वारा नियम दिनांक पर यथोचित संदेह से मुक्त हक नहीं दे सकता है।

(iii) जो संविदा करने से पूर्व संविदा की विषय-वस्तु की व्यवस्था कर चुका था।

धारा 3 में व्यवस्थापन परिभाषित है और अभिप्रायः है कि कोई विलेख जिसके द्वारा लक्ष्य या न्यागमन चल और स्थावर संपत्ति में उत्तरवर्ती हितों का व्ययन किया जाता है या व्ययन करने की सहमति दी जाती है।

III. व्यक्ति जिनके विरुद्ध संविदा प्रवर्तित कराई जा सकती है।

(i) *धारा 27* दोनों में से कोई पक्ष।

(ii) संविदा के पश्चात्वर्ती उद्भूत हक के द्वारा एक पक्ष के अधीन दावा करने वाला कोई अन्य व्यक्ति बिना सूचना के मूल्य के लिए हितों के सिवाए।

(iii) किसी हक के अधीन जो संविदा के पूर्व शून्यकरणीय था और वादी को ज्ञात था और प्रतिवादी द्वारा विस्थापित था के अधीन दावा करने वाला कोई व्यक्ति।

(iv) आमेलन के बाद नई कंपनी।

(v) संप्रवर्तकों द्वारा की गई संविदा के संबंध में कंपनी।

पक्षों के दायित्व

विक्रेता के	क्रेता के		
अंतरण के पूर्व	अंतरण के बाद	अंतरण के पूर्व	अंतरण के बाद
1. धारा 55 (1) (क) तात्विक दोषों को प्रकट	1. धारा 55 (11) (ख) कब्जा देना	1. धारा 55 (5) (क) तात्विक रूप से मूल्य बढ़ाने वाले तथ्यों को प्रकट करना	1. धारा 55 (5) (ग) संपत्ति की हानि या क्षति वहन करना।
2. धारा 55 (1) (ख) हक विलेखों को प्रस्त करना।	2. धारा 55 (2) हक के लिए अंतर्विष्ट औचित्य	2. धारा 55 (5) (ख) मूल्य अदा करना।	2. धारा 55 (5) (घ) जावकों को अदा करना।
3. धारा 55 (1) (ग) हक के संबंध में प्रश्नों के उत्तर देना।	धारा 55 (3) मूल्य प्राप्ति पर हक विलेख देना।		
4. धारा 55 (1) (घ) अंतरण को कार्यान्वित करना।			
5. धारा 55 (1) (ङ.) संपत्ति की सावधानी करना।			
6. धारा 55 (1) (छ) जावकों को अदा करना।			

पक्षों के अधिकार

विक्रेता के		क्रेता के	
अंतरण के पूर्व	अंतरण के बाद	अंतरण के पूर्व	अंतरण के बाद
1. धारा 55 (4) (ए) किरायों एवं लाभों का लेना।	1. धारा 55 (4) (ब) अदा न किए मूल्य के लिए प्रभार का दावा करना।	1. धारा 55 (5) (ब) पूर्व अदा किए मूल्य के लिए प्रभार का दावा करना।	1. धारा 55 (6) (स) संपत्ति की वृद्धि के लाभ का दावा करना।

IV. जिनके विरुद्ध संविदा प्रवर्तित नहीं हो सकती।

धारा 28

(i) जहां प्रतिफल छल कपट का साक्ष्य होने के बारे में सकलतः अनुपयुक्त है।

(ii) जहां अनुमति दुर्व्यपदेशन अनुचित व्यवहार या अन्य अधूरे वायदे के द्वारा प्राप्त की जाती है।

(iii) जहां अनुमति तथ्यात्मक भूल, भ्रांति या आश्चर्य के प्रभाव में दी जाती है।

विनिर्दिष्ट पालन और न्यायालय का विवेकाधिकार

विनिर्दिष्ट अनुतोष दिए जाने में महत्त्वपूर्ण विचार बिंदु हैं – न्यायालय कब विनिर्दिष्ट पालन किए अनुतोष प्रदान करने को बाध्य है? स्पष्टतः उन वादों में जहां विधि प्रावधानित करती है कि कोई विनिर्दिष्ट पालन अनुतोष प्रदान नहीं किया जाएगा जहां न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन अनुतोष प्रदान नहीं कर सकता।

ऐसे वाद तीन वर्गों में आते हैं :-

(i) जहां संविदा की प्रकृति ऐसी है कि विधि उसका विशिष्टतः प्रवर्तित होना अनुज्ञात नहीं करती है।

(ii) जहां वादी ऐसा व्यक्ति है जिसके पक्ष में संविदा विशिष्टतः प्रवर्तित नहीं कराई जा सकती है।

(iii) जहां प्रतिवादी ऐसा व्यक्ति है जिसके विरुद्ध संविदा विशिष्टतः प्रवर्तित नहीं कराई जा सकती।

शेष निम्न तीन स्थितियों में संविदा विशिष्टतः प्रवर्तित हो सकती है –

(i) जहां संविदा (ऐसी प्रकृति – अनु) का है ....

(आगे के पृष्ठ नहीं मिले – संपादक)

उबेर्रमा फाइडिस – (भरपूर विश्वास)

संविदाएं जिनके बारे में कहा जाता है कि भरपूर विश्वास की अपेक्षा वे

भाग चतुर्थ

अधिनियमों एवं विधियों पर टिप्पणियां

1. सामान्य विधि
2. डोमिनियन प्रस्थिति
3. विनिर्दिष्ट अनुतोष विधि
4. न्यास विधि
5. परिसीमा विधि
6. दंड प्रक्रिया विधि
7. संपत्ति अंतरण अधिनियम
8. साक्ष्य विधि

1. सामान्य विधि

सामान्य विधि

सामान्य विधि का साम्या से संबंध

1. इंग्लिश प्रणाली में साम्या का एक तकनीकी गुणार्थ हो गया है और इसके संबंध में सामान्य विधि-सिद्धांतों से पृथक संपूर्ण न्याय व्यवस्था के रूप में विचार करने के लिए अभ्यस्त हो गए हैं।

2. अच्छाई हो या बुराई - आंग्ल विधि का निर्झर दो स्रोतों में विभक्त हो गया जो देश किसी द्वीप के पर्याप्त उथल-पुथल से और जलाशयों की गहनता से रहित नहीं है।

3. किंतु विधि एवं साम्या (ईक्विटी) की परस्पर निर्भरता कभी भी पूर्णत: विलुप्त नहीं हो पाई है।

4. हमें सामान्य विधि एवं साम्या को परस्पर प्रतिद्वंद्वी प्रणालियों पर कभी नहीं सोचना चाहिए।

वह सिद्धांत जिसके अनुसार साम्या न्यायालय अनुतोष प्रदान करता है।

1. यदि हम एक सामान्य सिद्धांत खोजते हैं, जिसने चान्सरी न्यायालय (उच्च न्यायालय) द्वारा विकसित साम्या को किसी अन्य विधि से अधिक प्रभावित किया है तो हम उसे अंत:करण की दार्शनिक एवं धर्म शास्त्रीय संकल्पना में पाते हैं।

2. आंग्ल साम्या अंत:करण के शासी नैतिक सिद्धांत के निर्देशन में व्यवस्थित होना आरंभ होती है।

3. हम ऐसा नहीं मान सकते कि सभी चांसलर (न्यायाधीश) उस सिद्धांत के अनुपालन में अध्यवसायी एवं सुसंगत थे। ड्यूडर काल में उनमें से कुछेक ने पूर्ण स्वेच्छाचारिता से व्यवहार किया। हो सकता है इन सामयिक मतिभ्रंशों ने ही चांसलर के कद के बारे में सेल्डन के प्राय: उद्धृत किंतु संभवत: अर्द्धगंभीर उपहास को अभिप्रेरित किया हो। किंतु वे विचित्र नहीं थे। वह अंत:करण जिसे चांसलर ने सदा अपने सन्मुख

रखा, उसकी अपनी सनक तरंग मात्र से अधिक अविरत एवं अक्षयशील थी। एक दृढ़कारी प्रक्रिया चल पड़ती है। 1676 तक हम लॉर्ड नटिंघम को इस अवधारणा का अभिव्यक्त रूप से खंडन करते हुए पाते हैं कि चांसलर का अंतःकरण नैसर्गिक अंतश्चेतना मात्र है और 1818 में लॉर्ड सेल्डन साम्या न्यायाधीश के लिए मात्र व्यक्तिगत विवेकाधिकार के किसी भी विचार को संक्षिप्तः खंडित करते हैं। साम्या अंतःकरण की एक स्थिर प्रणाली है।

चांसलर के प्राधिकार की सीमाएं

अनुतोष प्रदान करने वाले इस परमाधिकार की कुछ सीमाएं थीं:-

(1) इसका प्रयोग केवल वहां किया जा सकता था जहां विधि ने कोई अधिकार नहीं दिया था किंतु जहां अंतःकरण अपेक्षा करता था कि कुछ अधिकार दिए जाने चाहिए - यह साम्या की अनन्य अधिकारिता के रूप में जानी जाती थी।

(2) इसका प्रयोग केवल वहां किया जा सकता था जहां विधि ने अंतःकरण द्वारा उपेक्षित अधिकार दिए, किंतु इसने जो उपचार (उपाय) दिए वे न्याय की पूर्ति के लिए अपर्याप्त थे - यह साम्या की समवर्ती अधिकारिता के रूप में जानी जाती थी।

(3) इसका प्रयोग इन मामलों में किया जा सकता था जिनमें विधि ने अंतःकरण द्वारा अपेक्षित अधिकार न्याय के लक्ष्य की पूर्ति करने वाले पर्याप्त उपचार दिए किंतु जिसकी प्रक्रिया बिना साम्या की सहायता के उपचार प्राप्त करने के लिए अत्यधिक दोषपूर्ण थी - यह साम्या की सहायक अधिकारिता के रूप में जानी जाती थी।

साम्यिक अधिकार की प्रवृत्ति

1. साम्यिक अधिकार की प्रवृत्ति भली प्रकार समझी जाएगी जब इसका अध्ययन नैतिक एवं विधिक अधिकार की तुलना में किया जाए। मात्र परिभाषा का उपयोग नगण्य होगा।

2. प्रस्तावना के तौर पर हम अधिकार की एक निश्चित संकल्पना प्राप्त करने की चाह तो प्रारंभ कर सकते हैं:-

(i) यदि कोई व्यक्ति आग्रह विनय में अपनी इच्छाओं को क्रियान्वित कर सकता है तो वह इस प्रकार अपनी इच्छाओं को कार्यान्वित करने की शक्ति रखता है।

(ii) यदि इस शक्ति के रखने के बावजूद उसकी इस प्रकार अपनी इच्छाओं को कार्यान्वित किए जाने की लोकमत अनुमोदन या उप-मति की दृष्टि से देखेगा और उसके ऐसा करने में किसी व्यवधान को अनुमोदन के साथ देखेगा तो अपनी इच्छाओं को इस प्रकार क्रियान्वित करने का उसे नैतिक अधिकार है।

(iii) यदि लोकमत की स्वीकृति या अस्वीकृति, उपमति या उपमतिहीनता

के बावजूद राज्य उसकी इच्छाओं के इस प्रकार कार्यान्वयन का समर्थन करेगा तो उसको इस प्रकार अपनी इच्छाओं को कार्यान्वित करने का विधिक अधिकार प्राप्त है।

3. क्या यह शक्ति का प्रश्न है यह बल या आग्रह मनुष्य की शक्ति पर निर्भर करता है। क्या यह नैतिक अधिकार का प्रश्न है, यह उसके पक्ष में लोकमत की अपनी अभिव्यक्ति की तत्परता पर निर्भर करता है। क्या यह विधिक अधिकार का प्रश्न है तो उसके पक्ष में राज्य द्वारा उसकी शक्तियों को प्रायोजित किए जाने की तत्परता पर निर्भर करता है। विधिक अधिकार वहीं अस्तित्व में आता है जहां संगठित समाज जिसे राज्य कहा जाता है के द्वारा कार्रवाई की एक प्रक्रिया को प्रवर्तित किया जाता है और दूसरी को निषिद्ध किया जाता है। अत: विधिक अधिकार एक हित है जो राज्य द्वारा मान्य एवं संरक्षित किया जाता है। अधिकार जिसका कोई भी हित हो उसका सम्मान करना एक कर्त्तव्य है और उसकी अवहेलना करना अपराध।

विधिक अधिकार की विशेषताएं

1. विधिक अधिकार एक ऐसा अधिकार है जो नैतिक अधिकार से भिन्न राज्य द्वारा प्रवर्तित किया जाता है।

2. विधिक अधिकार एक हक पर आधारित होता है जो विधिमान्य हकार्जनकारी प्रणालियों में से किसी एक द्वारा अर्जित किया हुआ दर्शाया गया हो, यथा कब्जा, चिरभोगाधिकार, करार एवं विरासत आदि।

3. एक निहितात्मक तथ्य जो एक व्यक्ति में अधिकार के हक को सृजित करता है, दूसरे व्यक्ति में उसी अधिकार के हक को नष्ट करता है।

4. विधिक अधिकार एक बाध्यता को सृजित करता है, जो या तो सर्वबंधी बाध्यता होती है या व्यक्तिबंदी बाध्यता।

किसी विषय में साम्यिक अधिकार विधिक अधिकार के समरूप होता है, किसी विषय में उससे भिन्न होता है।

1. साम्यिक अधिकार, नैतिक अधिकार जैसा नहीं है, जो राज्य द्वारा प्रवर्तित नहीं किया जाता है। साम्यिक अधिकार विधिक अधिकार के अनुरूप है, क्योंकि यह राज्य द्वारा प्रवर्तित किया जाता है।

2. साम्यिक अधकिार के हक का किसी एक मान्य ढंग द्वारा जिसके द्वारा विधिक अधिकार का हक सृजित किया जाता है, सृजित किया जाना आवश्यक नहीं है। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंतर है।

दृष्टांत:-

(i) भूमि का विधिक बंधक अवश्य ही एक विलेख द्वारा लिया जाना चाहिए। किंतु

साम्यिक बंधक विलेख से अन्यथा भी किया जा सकता है –

(क) व्यापार संविधि की अपेक्षा थी कि किसी भूमि या उसमें किसी हित की किसी संविदा या विक्रय के संबंध में कोई (न्यायिक) कार्यवाही नहीं ही की जाएगी जब तक कि करार लिखित नहीं और पक्षकार या उसके अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित नहीं।

किंतु यदि किसी संपदा के हक में विलेख, मौखिक संप्रेषण के बिना ही देनदार द्वारा लेनदार के पास जमा कर दिए गए हैं तो ऐसे जमा किए जाने का तथ्य मात्र लेनदार के पास संपदा को बंधक किए जाने के लिए पर्याप्त है।

(ख) ऐसा करार कि लेनदार ऋण के भुगतान के लिए भूमि को उचित किराए पर धारण करेगा, साम्या के अंतर्गत बंधक हैं, किंतु विधि के अंतर्गत नहीं।

(ii) **समनुदेशनः- विधिक एवं साम्यिक विधिक**

विधिक :-

1. समनुदेशन निश्चित समुदेश द्वारा लिखित हस्ताक्षरित होना चाहिए – अभिकर्ता के हस्ताक्षर पर्याप्त नहीं हैं।

2. विलेख में लेनदार का देनदार के लिए निर्देश या आदेश, समनुदेशिती अदा करने को निश्चित अंकित होना चाहिए।

3. देनदार को समनुदेशन की सुस्पष्ट सूचना (नोटिस) अवश्य होनी चाहिए।

साम्यिक:-

1. समनुदेशन या ढंग या प्रारूप महत्त्वहीन है परंतु पक्षों का आशय स्पष्ट हो, समनुदेशन मौखिक भी हो सकता है।

(iii) भार – विधिक एवं साम्यिक।

(iv) पट्टा – विधिक एवं साम्यिक।

(v) भोगाधिकार (सुविधा-अधिकार) – विधिक एवं साम्यिक।

विवाहित महिला की संपत्ति

यह निदर्शित करता है कि एक विधिक अधिकार के सृजन के लिए अपेक्षित हस्तांतरण की विधिक औपचारिकताओं के बिना एक साम्यिक अधिकार किस प्रकार उद्भूत हो सकता है।

1. सामान्य विधि के अनुसार पति एवं पत्नी एक व्यक्ति थे, और पत्नी की प्रस्थिति पति की प्रस्थिति में विलय हो जाती थी। इस विलय का परिणाम था कि पति उसकी व्यक्तिगत संपत्ति का पूर्ण स्वामी हो जाता था और उसकी निजी संपदा को नियंत्रित

करने एवं व्यवस्थित करने का एकांतिक अधिकार अर्जित कर लेता था।

उसके मृत्योपरांत उसकी (पत्नी की) व्यक्तिगत संपत्ति का जो पूर्णतः बेची नहीं गई थी और उसकी संपदा का आजीवन शुल्क अदा करने पर बशर्ते कि बच्चा जन्म ले चुका हो, सौजन्य से पूर्णतः हकदार हो जाता था।

2. द्वितीयतः एक पति अपनी पत्नी को प्रत्यक्षतः अनुदान नहीं दे सकता था या उसके साथ कोई प्रसंविदा नहीं कर सकता था क्योंकि इन दोनों में किसी को एक बात की अनुमति देना उसके पृथक अस्तित्व को मान लिया जाना होता था।

3. सामान्य विधि के अनुसार विवाह के परिणामस्वरूप पुरुष को उसकी पत्नी की संपत्ति का पूर्ण मालिक बनाना था और (पत्नी) को संविदिक सक्षमता से वंचित करना था।

4. यदि संपत्ति एक विवाहित महिला को वचनों द्वारा दी जाती थी, जो या तो अभिव्यक्ततः या विवशता द्वारा इंगित करते थे कि उसे उस (संपत्ति) का उपभोग अपने एकांतिक एवं पृथक उपयोग के लिए करना है। साम्या ने उस संपत्ति को पति के नियंत्रण से उसे न्यासी (ट्रस्टी) के रूप में मानते हुए हटा दिया और पत्नी को उसके उपयोग एवं व्ययन की पूरी शक्ति प्रदान कर दी।

किंतु साम्या इससे और भी आगे निकल गई। उस खतरे को देखते हुए कि एक पति अपनी पत्नी को उसकी पृथक संपत्ति को बेचने और उसकी आय को उसे (पति को) देने के लिए अभिप्रेरित कर सकता था, उसने वैवाहिक व्यवस्थापनों में यह निवेशन, जो पूर्वादान पर प्रतिबंध के रूप में जाना जाता है, की अनुमति प्रदान कर दी। ऐसे प्रतिबंध, जो अब भी सामान्य है का प्रभाव यह था कि एक महिला जबकि वह आय के पूर्ण उपभोग को अपने पास रखती थी, अपने प्रत्याश्रय काल में समग्र संपत्ति को अन्य संक्रामित या भारित करने से रोक दी गई। वह उसको विक्ति कर सकती थी किंतु उसको बेच या रहन नहीं कर सकती थी। यह सामान्य विधिक का पूर्णतः उल्लंघन था। सामान्य विधिक से न केवल विवाह एक निहितात्मक तथ्य बन गया जो पत्नी की संपत्ति पर पति को हक देता था अपितु या तो पत्नी के साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ कोई करार उसकी पत्नी की संपत्ति को धृत एवं अन्यसंक्रामित करने के अधिकार को नहीं छीन सकता था।

यह एक उदाहरण है जो दर्शाता है कि साम्यिक अधिकार, उससे बहुत भिन्न ढंग से उद्भूत होता है जिससे विधिक अधिकार उद्भूत होता है।

3. विधिक अधिकार एवं साम्यिक अधिकार के बीच दूसरा भिन्नत्व इस प्रकार अभिरूपित किया जा सकता है:–

1. एक स्वामी में निहित विधिक अधिकार उसके पूर्ववर्ती स्वामी में निहित

अधिकार को या तो भागतः या पूर्णतः नष्ट करता है। यह विनाश पूर्ण हो सकता है या आंशिक हो सकता है। यदि वह एक पट्टा है तो वह आंशिक नष्ट होता है। यदि वह एक विक्रय है तो वह पूर्णतः नष्ट होता है। चाहे वह पूर्ण हो या आंशिक, वह विनाश है। जब यह कहा जाता है कि निहितात्मक तथ्य एक निर्निहात्मक तथ्य भी है तो उसका अभिप्राय यही है।

2. यह तब सत्य नहीं है, जब विधिक अधिकार एवं साम्यिक अधिकार के बीच प्रतिस्पर्धा होती है। साम्यिक अधिकार, विधिक अधिकार को तब भी नष्ट नहीं करता है जब वह एक विधिक अधिकार के स्वामी के विरुद्ध हो। एक विधिक एवं साम्यिक अधिकार के मध्य संघर्ष में, साम्यिक अधिकार विधिक अधिकार को नष्ट नहीं करता जैसा कि एक विधि अधिकार दूसरे विधिक अधिकार को करता है।

3. यह ऐसा क्यों है? इसके लिए यह जान लेना आवश्यक है कि किस प्रकार चान्सरी न्यायालय द्वारा एकदम प्रारंभ में ही साम्यिक अधिकार मान्य हो गया। यह ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत की जा सकती है:-

(i) इंग्लैंड में नोरमन विजय से पूर्व एक व्यक्ति के लिए पृथकतः दूसरे व्यक्ति की ओर से - कोई कार्य करना एक सामान्य प्रचलन था। उदाहरण के लिए एक शेरिफ भूमि अधिग्रहीत कर लेता था और उन्हें अपने अधिप्रयोजनार्थ धारित करता था या जब भी कोई सरदार धर्मयुद्ध में बाहर जाता था तो वह अपनी पत्नी एवं बच्चों के प्रयोजनार्थ अपनी संपदा अपने मित्र को हस्तांतरित कर जाता था। "आपस" शब्द धीरे-धीरे "यूज" (प्रयोग) के रूप में बदल गया और अंतरित भूमि, उपयोग में रखी भूमि कहलाने लगी।

(ii) अब यदि कुछ परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति एक अन्य (व्यक्ति) के निमित्त या उपयोग के लिए भूमि का व्यवहार कर सकते थे तो अपरिहार्यतः मनुष्यों के सम्मुख प्रश्न उठा - क्या एक व्यक्ति द्वारा सामान्यतः दूसरे (व्यक्ति) के उपयोगार्थ भूमि को धारण किया जाना अनुज्ञात किया जाए। यह वस्तुतः ठीक ऐसा ही था जो कालांतर में किया गया था। काश्तकारों ने अपनी भूमि सामान्य विधि हस्तांतरण द्वारा 'ब' को हस्तांतरित की जिसने उसे 'अ' के निमित्त या सही पद को अपनाएं तो उसके उपयोग के लिए धारण करने का वचन दिया।

ऐसे विषयों में 'ब' उपयोगार्थ जागीरदार (फियाकी) कहलाया अर्थात् वह व्यक्ति जिसको कुछ शर्तों पर जागीरदार किया गया। जबकि 'अ' को अधिप्रयोजक 'अगस्टिन क्यू यूज' के रूप में जाना गया जिसका निर्वचन करने पर व्यक्ति अभिप्रेत था जिसके निमित्त भूमि धारित की गई।

(iii) जिन कारणों से यह प्रचलन आगे बढ़ा वे बहुत से हैं। कुल मिलाकर

छह कारणों से लोग उपयोगार्थ भूमि रखने के प्रचलन को पसंद करते थे। उनमें से दो महत्त्वपूर्ण हैं:-

(1) इसने एक पक्ष को उस जागीरदारी के अधिभारों से जिनके लिए वह सामान्य विधि में दायित्वाधीन था, बच निकलने में समर्थ बना दिया। सामान्य विधि में काश्तकार पर निम्नलिखित अधिभार डाल दिए गए थे :

(i) अनुतोष - पुराने काश्तकार की मृत्यु पर नए काश्तकार को देना पड़ता था।

(ii) सहायताएं - तीन मामलों में देय :-

(अ) स्वामी जब जेल में हो तो मुक्ति धन देना।

(ब) जब स्वामी अपने लॉर्ड को सरदार (नाइट) बना देना चाहे।

(स) जब स्वामी अपनी ज्येष्ठतम पुत्री को दहेज देने को बाध्य हो।

(iii) राजागामी संपत्ति - काश्तकार द्वारा महापराध के समान पर्याप्त गंभीर अपराध का कृतिकरण भूमि का राजागामी बनाने का कारण बन जाता था।

(iv) प्रतिपाल्यत्व - यदि कोई विद्यमान काश्तकार 21 वर्ष से कम का पुरुष या 14 वर्ष से कम की स्त्री को वारिस के रूप में छोड़कर मर जाता था तो स्वामी उस वारिस की प्रतिपाल्यता के हकदार था और परिणामस्वरूप अव्यस्कता के काल में भूमियों का बिना कोई हिसाब देने के दायित्व का मनचाहा उपयोग करने को स्वतंत्र था।

(v) विवाह - एक शिशु प्रतिपाल्य के लिए उपयुक्त वर खोजना स्वामी का अधिकार था और यदि शिशु प्रतिपाल्य के मना करने पर स्वामी प्रतिकार का अधिकारी था।

जागीरदार अपनी भूमि उपयोग में रखकर स्वतंत्र हो जाता था। भार उस व्यक्ति पर होता था जिसने सीसिन अर्थात् उपयोगार्थ जागीर को अर्जित किया था।

(2) दूसरा लाभ समपहरण एवं राजगामित्व से बचना।

सामान्य विधि में सावधि धारित भूमि सम्राट को समपहृत हो जाती थी, यदि काश्तकार ने विकट राजद्रोह किया हो और उसके सिद्ध दोष होने या महापराध के लिए दासत्व में जाने पर उसका स्वामी के हित में राजगमन हो जाता था। ये दुःखद परिणाम बचा लिए जाते थे, यदि एक काश्तकार किसी संदिग्ध उद्यम से पूर्व, अपनी भूसंपत्तियों को अपने कुछेक विश्वसनीय मित्रों में निवेशित करने की दूर दृष्टि रखता था। अपचारी संभवतः चरम दंड पा सकता था किंतु कम से कम उसका परिवार निराश्रित नहीं हो पाता था।

4. भूसंपत्तियों को उपयोग में रखने के विधिक परिणाम:-

(i) इस भूसंपत्तियों को उपयोग में रखने की परिपाटी के विधिक परिणाम

को जान लेना एक महत्त्वपूर्ण विचार बिंदु है। यह सामान्य विधि की दृष्टि से भूसंपत्ति के सभी संबंधों को उपयोग के अधिकारी व्यक्ति (सिस्टयू क्यू यूज) से विच्छेदित करना था। सामान्य विधि में पूर्ववर्ती हस्तांतरण द्वारा वह अपनी संपदा संप्रयोज्य जागीरदार (फिआकी) को उपयोगार्थ हस्तांतरित कर देता था और इसीलिए वह भूसंपत्ति पर सभी अधिकारों से वंचित हो जाता था। वह कुछ नहीं कहता था और फियाकी – संप्रयोज्य जागीरदार – सब कुछ होता था। वह प्रयोजनाधिकार सीसिन रखने के स्थान पर उस विश्वास पर भरोसा रखना ही ठीक समझता था जो उसने संप्रयोज्य जागीरदार पर किया था।

(ii) यदि संप्रयोज्य जागीरदार, उस पर अधिरोपित निदेशों का पालन करने में असफल होता या ऐसा करने से मना करता था, या यदि वह जानबूझकर भूसंपत्ति को अपने उद्देश्यों के लिए हस्तांतरित कर लेता था तो सामान्य विधि में ऐसी कोई कार्यवाही नहीं थी जिसके द्वारा दायित्वाधीन ठहराया जा सके।

(iii) यदि एक उपयोगाधिकारी का संप्रयोज्य जागीरदार द्वारा भूसंपत्ति का कब्जा दे दिया जाता था तो वह संप्रयोज्य जागीरदार का इच्छाधीन अभियासी माना जाता था। और वह किसी क्षण बाहर किया जा सकता था। धृष्टता किए जाने पर उस पर संप्रयोज्य जागीरदार द्वारा अतिचार के लिए वाद लाया जा सकता था।

5. उपयोगार्थ जागीरदाता (फियाफर) की रक्षा के लिए चांसरी न्यायालय द्वारा सुलभ उपचार प्रकृति को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए:–

(i) चांसलर (न्यायाधीश) स्वयं भू संपत्ति के विरुद्ध प्रत्यक्षत: कार्यवाही करके सामान्य विधि न्यायालय की अधिकारिता में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, क्योंकि हस्तांतरण द्वारा संप्रयोज्य जागीरदार में भूसंपत्ति का पूर्ण हक निहित रहता था। चांसलर इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकता था कि फियाफीमेंट नामक सामान्य विधिक हस्तांतरण के फलस्वरूप जिसके द्वारा भूसंपत्ति हस्तांतरित की गई थी सामान्य विधि में उसका पूर्ण स्वामी है।

(ii) चांसलर ने सुस्पष्टत: इस तथ्य को मान्य कर दिया कि फियोफी संप्रयोज्य जागीरदार भूसंपत्ति का मालिक है और उसे उसका विधिक अधिकार प्राप्त है किंतु उसने संप्रयोज्य जागीरदार से जो कुछ कहा वह इस प्रकार था :–

"आपका विधिक अधिकार है मैं उसको आप से नहीं लूंगा, किंतु मैं आपको उस विधिक अधिकार को इस प्रकार करने नहीं दूंगा कि उससे वह प्रतिपत्ति जिस पर जागीरकर्ता ने संप्रयोज्य जागीर फियोफमेंट बनाया था, अतिलंघित हो जाए।''

(iii) चांसरी (साम्यिक उच्च न्यायालय) ने उपयोग पर अपनी अधिकारिता ग्रहण करते हुए सामान्य विधि में स्वामी के विधिक अधिकार को अछूता और अलंघित

छोड़ दिया। उसने भूसंपत्ति पर कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण प्रयुक्त नहीं किया था। उसने विधिक अधिकारों के स्वामी पर शर्त के अनुपालन की बाहह्यता अधिरोपित करते हुए विधिक स्वामी ने भूसंपत्ति पर अपने स्वामित्व एवं कब्जे के विधिक अधिकार को कायम रखा। चांसलर ने फियोफर (जागीरकर्ता) को, फियोफमेंट की शर्तों के अनुपालन की मांग करने का साम्यिक अधिकार दिया।

6. यह विधिक अधिकार एवं साम्यिक अधिकार के बीच विभेद की व्याख्या है, जिसके अनुसार जबकि एक विधिक अधिकार दूसरे विधिक अधिकार को या तो अंशतः या पूर्णतः नष्ट करता है, एक साम्यिक अधिकार दूसरे विधिक अधिकार को नष्ट नहीं करता है।

7. यह स्त्रीहन द्वारा अनुच्छेद 11 में प्रतिपादित प्रस्थापना की भी व्याख्या है अर्थात् विधिक अधिकार या हित संपत्ति से उत्पन्न होता है जबकि साम्यिक अधिकार या हित विधिक हित से, न कि स्वयं संपत्ति से निर्गमित या उत्पन्न होता है।

यह इसलिए है, क्योंकि चांसलर साम्यिक स्वामी के संपत्ति पर कब्जा पाने के साम्यिक अधिकार को मान्यता प्रदान नहीं करता था। उस अधिकार को वह विधिक स्वामी के लिए बरकरार रखता था। जो वह साम्यिक स्वामी को देता था वह विधिक स्वामी के आचरण पर एक कर्त्तव्य अधिरोपित करने का अधिकार था और उसने उसे (साम्यिक स्वामी को) स्वयं संपत्ति का दावा करने का अधिकार नहीं दिया था।

दृष्टांतः- (1918) 2 के.बी. (लर) 353 - ग्राहम बनाम मालवेन

8. इस तथ्य से जो परिणाम निकलतें हैं इस प्रकार हैं:-

क्योंकि साम्यिक अधिकार एक विधिक अधिकार से होता है, संपत्ति से नहीं।

(i) यह विधिक संपदा से बड़ा नहीं हो सकता जिससे यह निर्गमित होता है।

दृष्टांतः- भूसंपत्ति 'ब' एवं उसके वारिसों के उपयोग के लिए 'अ' को हस्तांतरित की गई। 'अ' भूसंपत्ति का विधिक स्वामी है। 'ब' साम्यिक स्वामी है।

किंतु भूसंपत्ति 'अ' को हस्तांतरित की जाती है न कि 'अ' एवं उसके वारिसों को। परिणामतः 'अ' का विधिक अधिकार उसकी मृत्यु पर लुप्त हो जाता है। उसी प्रकार 'ब' का साम्यिक अधिकार भी लुप्त हो जााता है। साम्यिक हित विधिक हित के बाद जीवित नहीं रह सकता जिससे वह उत्पन्न होता है। (1914) 1 सी.एच. 300

(ii) साम्यिक अधिकार विधिक अधिकार से संबद्ध सभी कमियों से प्रभावित होगा।

'ब' और 'स' पुत्रों को छोड़कर 'अ' मर जाता है, इनमें 'ब' ज्येष्ठतम है।

'ब' के अन्यत्र होने से 'स' कब्जा कर लेता है और उसे अपनी पत्नी 'ई' के

प्रयोजनार्थ 'द' को हस्तांतरित कर देता है। 'ब' वापस आता है और संपत्ति का दावा करता है। 'द' का विधिक हक में त्रुटि होने के कारण समाप्त हो जाता है।

'स' की पत्नी 'ई' की साम्यिक संपदा भी समाप्त हो जाती है।

(iii) विधिक अधिकार एवं साम्यिक अधिकार के बीच तीसरा अंतर यह है कि विधिक अधिकार सर्व अधिकार या व्यक्ति (personom) अधिकार भी हो सकता है। किंतु साम्यिक अधिकार हमेशा व्यक्तिगत अधिकार होता है। साम्यिक मालिक के अधिकारों को सम्मान देने के लिए कौन बाध्य है? केवल विधिक मालिक ही अन्य कोई नहीं।

यह सत्य है कि विधिक स्वामी जो बाध्य है, विधिक स्वामी नहीं है जिसके विरुद्ध साम्यिक अधिकार प्रथम उद्भूत हुआ था वरन् प्रत्येक विधिक स्वामी को शामिल करता है जिसको अधिकार अंतरित किया जाता है। तथापि प्रतिपादन यह है कि साम्यिक अधिकार व्यक्तिपरक अधिकार है जो केवल विधिक स्वामी को बाध्य करता है।

दृष्टांत – "साम्यिक अधिकार में सर्वबंधी अधिकार की अनुरूपता होती है।"

(i) यह सत्य है कि साम्यिक अधिकार सर्वबंधी अधिकार के अनुरूप होता है।

(ii) यह अनुरूपता कैसे उद्भूत होती है?

1. साम्यिक अधिकार न केवल विधिक अधिकार के स्वामी के विरुद्ध पूर्ववर्तित किया जाएगा वरन् यह निम्नलिखित के विरुद्ध भी पूर्ववर्तित किया जाएगाः–

(अ) उसके माध्यम से या उसके अधीन दावा करने वाले उसके प्रतिनिधि और स्वयं सेवक।

(ब) वे व्यक्ति जो विधिक अधिकार रखते हैं।

(1) विधिक अधिकार की जानकारी के साथ

(2) उनके विरुद्ध जो जानकारी प्राप्त कर सकते थे, अर्जित करते हैं।

(3) चांसरी न्यायालय द्वारा निर्धारित जानकारी का मानदंड इतना ऊंचा था कि कोई भी बच नहीं सकता था और हर एक क्रेता आबद्ध रहता था।

साम्यिक प्राथमिकताएं

1. साम्यिक अधिकार एक व्यक्तिबंधी अधिकार है – एक विधिक अधिकार, जिसमें से यह निर्गित होता है, के स्वामी के विरुद्ध प्रवर्तित होने वाला।

2. एक विधिक अधिकार से दो साम्यिक अधिकार निर्गत हो सकतं है। दोनों विधिक अधिकार, जिसमें से वे निर्गत होते हैं, के स्वामी के विरुद्ध व्यक्ति संबंधी अधिकार होंगे।

3. विधिक (अधिकार) न कि संपत्ति, जो विधिक अधिकार की विषय-वस्तु है से उद्‌भूत होने वाला, एक साम्यिक अधिकार, व्यक्तिबंधी, अधिकार होते हुए एक विधिक अधिकार से उसके नए स्वामी को हस्तांतरित किए जाने से विफल हो जाएगा या एक अन्य साम्यिक अधिकार, इस अंतरण से उद्‌भूत हो सकता है, जो पूर्ववर्ती साम्यिक अधिकार को विफल कर सकता है।

4. विचारणीय प्रश्न है कि किन वादों में इस प्रकार का अंतरण एक साम्यिक अधिकार को विफल कर सकता है?

5. इस विषय का विवेचन सामान्यत: "साम्यिक प्राथमिकताएं" शीर्षक के अंतर्गत किया जाता है। यह इस प्रकार पदानिहित इसलिए किया जाता है क्योंकि इस मुद्दे को तय करने के लिए प्रयुक्त कसौटी समय की प्राथमिकता है। किंतु वास्तविक विषय-वस्तु है वे संभव मामले जहां साम्यिक अधिकार उस विधिक अधिकार, जिसमें से वह उद्‌भूत होता है, के अंतरण द्वारा या उसी विधिक अधिकार में से सृजित एक दूसरे साम्यिक अधिकार के द्वारा विफल किया जा सकता है।

6. विचारार्थ उत्पन्न होने वाले अमल दो वर्गों के अंतर्गत आते हैं:-

(प) वे मामले जहां विधिक अधिकार एवं साम्यिक अधिकार के बीच टकराव है।

(ii) वे मामले जहां दो साम्यिक अधिकारों के बीच टकराव है।

7. प्रथमवर्गीय मामलों में दो आकस्मिकताएं हो सकती हैं जो निश्चित प्रियेदित किया जाना चाहिए :-

(क) जहां एक साम्यिक अधिकार, विधिक अधिकार से पहले अस्तित्वशील है।

(ख) जहां एक साम्यिक अधिकार विधिक अधिकार से बाद में उद्‌भूत होता है। श्रीमती थार्नडिके एक निश्चित न्यासनिधि की हिताधिकारी थीं

(ग) जिसका न्यासी था। श्रीमती थार्नडिके एक वाद में न्यायालय ने ट्रस्टी को थार्नडिके के प्रयोजनों के लिए निधि को न्यायालय में अंतरित करने का निदेश दिया और न्यास एक प्रशासक के द्वारा धारित था। यह प्रतीत होता है कि न्यासीगण ने जिनके विरुद्ध आदेश किया था, अनुचित रूप से न्यासनिधि को न्यायालय में लाने के अपने व्यक्तिगत दायित्व से स्वयं को उन्मुक्त करने वाले साधन उपलब्ध कर लिए थे और यह कि तीसरे व्यक्ति थे जिनको उन्होंने क्षति पहुंचाई थी। इस प्रकार क्षतिग्रस्त तीसरे पक्ष ने वाद फाइल किया और प्रार्थना की कि थार्नडिके के नाम से धृत निधि उनको अंतरित की जानी चाहिए। दलील: श्रीमती थार्नडिके को विधिक अधिकार नहीं है, इसलिए उसका अधिकार अधिभावी नहीं रह सकता था। दलील नामंजूर अभिनिर्धारित व्यक्तिश: विधिक हक अर्जित किया जाना आवश्यक नहीं। सूचना (नोटिस) भी आवश्यक नहीं।

8. सब मिलाकर हमें तीन प्रश्नों पर विचार करना होगा। जो इस प्रकार हो सकते हैं:-

(i) क्या एक व्यक्ति जो एक विधिक अधिकार अर्जित करता है, पूर्ववर्ती साम्यिक अधिकार के अधीन होगा?

(ii) क्या किसी भी पक्ष का विधिक अधिकार नहीं है, दोनों के केवल साम्यिक अधकिार है, उनमें से किसकी प्राथमिकता होगी?

(iii) क्या एक व्यक्ति जिसने एक विधिक अधिकार अर्जित कर लिया है, वह पूर्ववर्ती साम्यिक अधिकार के अधीन होगा?

(1) इस प्रश्न का उत्तर है :-

मूल्य देकर और पूर्ववर्ती साम्यिक अधकिार की सूचना के बिना एक विधिक संपदा का क्रेता साम्यिक अधकिार से आबद्ध होगा।

(2) इस प्रतिपादन में तीन महत्त्वपूर्ण अवयव हैं:-

(1) क्रेता ने विधिक संपदा अवश्य अर्जित कर ली हो -

इस विषय में अधिक कहने को कुछ नहीं है। किंतु निम्नलिखित मुद्दों को ध्यान में रखा जा सकता है:-

(अ) यह आवश्यक नहीं है कि उसने विधिक संपदा व्यक्तिगत रूप से अर्जित की हो। यह पर्याप्त है कि कोई व्यक्ति उसके निमित्त इसे करता है।

थार्नडिके बनाम हंट, (1859) 3 डी ई जी आई 563-44 ई आर 1386

(ब) क्रेता का हक पूर्ण हक होना आवश्यक नहीं है।

दृष्टांत:- यदि संपत्ति पर न्यासी का हक त्रुटिपूर्ण है तो भी वह एक पूर्ववर्ती साम्यिक अधिकार के स्वामी के विरुद्ध प्रभावी होगा।

जेम्स बनाम पाओलेस (1834) 3 एम.वाई. एंड के. 581

तथ्य : 1. जेम्स जोन्स, स्वामी ने होलकुक के पास अपना घर बंधक रखा, बंधक का मोचन किया, अदायगी की अभिस्वीकृति प्राप्त कर ली - प्रतिहस्तांतरण पत्र प्राप्त नहीं किया। विधिक संपदा होलकुक के पास अदत्त रही।

2. जोन्स की मृत्यु पर उसके दुकान के सहायक मैरेडिथ ने जोन्स की जाली विल बनाई और उसके निर्विष्टों के आधार पर मकान का कब्जा ले लिया।

3. मैरेडिथ ने हस्तांतरण द्वारा उसे हॉल के पास बंधक रख दिया।

4. मैरेडिथ का देहांत हो गया। उसकी पत्नी जीवित थी, जिसके लिए एक विल द्वारा उसने मोचन का साम्यिक अधिकार भी छोड़ा था, जो उसके बाद जेम्स जोन्स के

पक्ष में था।

5. जेम्स जोन्स ने उसे वाटकिन्स को हस्तांतरित कर दिया।

6. जेम्स जोन्स एवं वाटकिन्स भागीदार हो गए और संपत्ति को पाओलैस के पास बंधक रख दिया जिसने बंधकों की हैसियत से कब्जा ले लिया।

7. अपनी पत्नी सारा को पीछे छोड़कर पाओलैस मर गया।

8. सारा पाओलैस ने संपदा का अभ्यर्पण प्राप्त कर लिया और कब्जा ले लिया।

9. सारा जोन्स ने सारा पाओलैस के विरुद्ध वाद फाइल किया और अभिकथन किया कि विल जाली थी और यह कि सारा पाओलैस को इसकी जानकारी थी और यह कि वह उसके (सारा जोन्स के) मोचनाधिकार को विफल नहीं कर सकती।

(ग) क्रेता को विधिक अधिकार प्राप्त करना चाहिए। किंतु यह :

(1) उसके क्रय के समय या

(2) यह उसे बाद में प्राप्त कर सकता है।

(ii) क्रेता को अपने अधिकार का मूल्यवान प्रतिफल अवश्य दिया हो।

एक स्वयंसेवक हमेशा साम्यिक अधिकार के अधीन होता है। कारण है कि वह कोई प्रतिफल अदा किए बिना पूर्ववर्ती साम्यिक अधिकार के दायित्वाधीन बनाए जाने से नुकसान का भागी न होता हो।

विद्यमान ऋण तथापि पर्याप्त प्रतिफल है।

दृष्टांत:- थार्नडिके बनाम हंट

'टी' ने कोई प्रतिफल नहीं दिया। उसका अधिकार न्यासी के विरुद्ध एक विद्यमान ऋण के प्रकार का था।

(iii) क्रेता ने अधिकार पूर्ववर्ती साम्यिक अधिकार के अस्तित्व की सूचना के बिना अर्जित किया हो।

प्रतिपादन में यह तत्त्व सर्वाधिक (महत्त्वपूर्ण) है और विचारार्थ जो प्रश्न उत्पन्न होता है, वह है (आगे का अंश अप्राप्य संपादक)

सूचना (नोटिस) क्या है?

1. *सूचना सीधी या आरोपित हो सकती है।* सीधी सूचना स्वयं क्रेता को दी गई सूचना होती है। आरोपित सूचना क्रेता के अभिकर्ता को दी गई सूचना होती है।

2. सीधी सूचना वास्तविक या आन्वयिक हो सकती है।

(1) जहां विषय-वस्तु क्रेता या उसके अभिकर्ता की जानकारी में हो तो वह सीधी सूचना हो।

(2) जहां यदि उपयुक्त जांच कर ली जाती हो और यह उसकी अपनी जानकारी में या उसके अभिकर्ता की जानकारी में आ गई होती तो वहां आन्वयिक सूचना होती है।

वास्तविक सूचना

1. यदि एक विधिक अधिकार विफल करने के लिए वास्तविक सूचना पर निर्भर किया जाए तो यह अवश्य साबित किया जाना चाहिए कि:-

(i) यह संपत्ति हितबद्ध व्यक्ति द्वारा दी गई थी।

(ii) यह समझौता वार्ता के दौरान दी गई थी।

(iii) यह स्पष्ट एवं सुभिन्न थी।

आन्वयिक सूचना

1. आन्वयिक सूचना वह होती है जहां एक तथ्य या तथ्यों की सूचना होती है जिससे एक साम्यिक अधिकार के अस्तित्व की सूचना स्वयं मानी जा सकती थी - यह सूचना नहीं वरन् सूचना का साक्ष्य है।

2. आन्वयिक सूचना की तीन विविधताएं हैं:-

(i) जहां एक वास्तविक तथ्य की सूचना है जो एक अधिकार के अस्तित्व की सूचना की ओर ले जा चुकी हो। विस्को बनाम अर्लआफ बन्बरी (1676) (16) 1 Ch. Ca 287

क्रेता को एक विशेष बंधक को वास्तविक सूचना थी किंतु उसने बंधक विलेख का निरीक्षण नहीं किया जो अन्य अधिकारों एवं भारों का हवाला दिया गया था।

वह अन्य भारों से आबद्ध होने वाला ठहराया गया क्योंकि वह उसके अस्तित्व का पता लगा लेता, यदि उसने यह विलेख निरीक्षण कर लिया होता जैसा कि कोई भी प्रज्ञावान पुरुष करता।

डेविस बनाम हटशिंग्स, 1907, 1 सी.एच. 356

एक न्यासी ने हिताधिकारी का अंश (शेयर) उसके द्वारा दिए गए वक्तव्य पर विश्वास करते हुए कि वह समनुदिष्ट सालिसिटर के समनुदेशन एक अन्य (व्यक्ति) के पक्ष में अधिकार के अधीन था। अभिनिर्धारित उनको भार की आन्वयिक सूचना थी।

अभिधारी (काश्तकार) का अधिभाग आन्वयिक सूचना

जहां भूमि विक्रेता के अतिरिक्त किसी अन्य के अधिभाग में है वह अधिभोगी का तथ्य क्रेता को अधिभोगी अधिभारी के किसी अधिकार की आन्वयिक सूचना देता है।

यह एक तृतीय व्यक्ति के अधिकार की सूचना की कोटि में नहीं आएगी। 9. एम.ओ. (ओ) पी.सी. 18

अब हम सूचना के वाचिक साक्ष्य पर आते हैं। इस विषय पर नियम स्थिर है कि एक क्रेता, क्रेता के संबंध में अस्पष्ट अफवाहों पर मात्र अजनबी कथनों पर ध्यान देने के लिए बाध्य नहीं है किंतु सूचना आबद्धकर तभी होगी जब वह संपत्ति में हितबद्ध व्यक्ति से मिले।

आर. 3 सी.एच.ए.पी.पी. 488 ललायड बनाम बैंक्स कैरिजेस - 1868

यदि वह न्यासी की जानकारी को बाहरी स्रोत से साबित करने का प्रयास करता है तो यह न्यायालय को हमेशा सरसरी वार्तालाप पर ध्यान देने या किसी प्रकार की सूचना पर ध्यान देने में कठिनाई होगी, कम हितकर स्थिति में रख देगी, यदि उसको उसके कार्य के ढंग के विषय पर भारों की स्पष्ट एवं सुभिन्न सूचना प्राप्त होने के साथ ही मैं यह कहने को बाध्य हूं कि मैं नहीं समझता कि यह सिद्धांतों के जिन पर यह न्यायालय कार्यवाही करता आया है या उन नजीरों के जो निर्देशित की गई है। अनुरूप होगा। यदि मुझे निर्णय करना होता कि किन्हीं परिस्थितियों में न्यासी अधिभार से अभिव्यक्त सूचना पाए बिना अधिभार की जानकारी रखने वाला नहीं माना जा सकता।

दृष्टांत:- 9 एम.ओ.ओ.पी.सी. 18 बर्नहर्ट बनाम ग्रीन शील्डस।

जहां अभिनिर्धारित किया गया था कि संपत्ति में अनहितबद्ध व्यक्तियों की अस्पष्ट सूचनाएं क्रेता के अंत:करण को प्रभावित नहीं करेंगी।

क्या अधिमारक से प्रत्यक्षत: सूचना होनी चाहिए?

क्रेता सूचना की अवहेलना सुरक्षित रूप से नहीं कर सकता चाहे वह किसी भी स्रोत से प्राप्त हो। यह ऐसी प्रकृति की है कि एक विवेकशील व्यावसायिक व्यक्ति उस सूचना पर अमल करेगा भले ही वह समाचार पत्र की रिपोर्ट से ही आई हो।

एस.आर. 3 सी.एच.ए.पी.पी. 488 पंजीकरण

किसी लिखित या अधिपत्र का जो विधि द्वारा रजिस्ट्रीकृत होना अपेक्षित या अधिकृत है - रजिस्ट्रीकरण ऐसे लिखित या अधिपत्र की वास्तविक सूचना होना समझा जाता है, किंतु उसकी विषय-वस्तु की (सूचना) अनिवार्यत: नहीं।

(ii) जहां जांच सोद्देश्य सूचना से बाध्य होने से बचने के लिए टाली जाती है।

1. जान टाउसे ने कुछ संपत्ति खरीदने के लिए 1776 में संविदा की।

2. उसने एक डॉ. पी से क्रय धन की रकम उधार ली और प्रति संदाय की प्रतिभूति के रूप में हक विलेख उसे सौंप दिए।

3. 1790 में टी एक इमालेस का एक बड़ी धनराशि का अत्यधिक ऋणी हो गया और उसने उसी संपत्ति को इलामेस के पास बंधक रख दिया।

4. डॉ. पी ने अपने दावे की कोई सूचना इलामेस को नहीं दी।

5. इलामेस ने कहा कि उसने हक विलेखों के बाद कोई जांच नहीं की, इससे पूर्व उसने प्रतिभूति ले ली, और स्वीकार किया कि बंधक विलेख लिखने पर उसने जांच की उनके लिए बगैर उनके डॉ. पी के हाथों में होने के संबंध में, सूचित किया, किंतु उसने उसको मात्र सुरक्षित अभिरक्षा में समझा था।

6. उसने यह सूचना एक व्यक्ति जे से पाई, जो उसका विधि बंधु (साला या बहनोई था) जिसने बंधक तैयार किया था और उसके संपादन के समय उसका अभिकर्ता था।

7. डॉ.पी. ने इलामेस पर प्राथमिकता का दावा किया। यह मंजूर किया गया था चूंकि इलामेस को सूचना प्राप्त ठहराया गया था।

(iii) जहां सामान्य एवं उचित जांच न किए जाने में भारी उपेक्षा होती है।

1899, 2 सी.एच. - 264,1921, 1 सी.एच. - 98,

आरोपित सूचना

1. अभिकरण (एजेंसी) का अंतर्निहित सिद्धांत है कि एक व्यक्ति अभिकर्ता (एजेंट) द्वारा कोई कार्य कर सकता है, जिसे वह स्वयं कर सकता है, विपरीतितः जो कुछ अभिकर्ता द्वारा किया जाता है, उसी के द्वारा किया जाता है। ऐसा होने पर यह तर्क दिया जा सकता है कि जो अभिकर्ता को ज्ञात है, उसे स्वामी द्वारा ज्ञात अवश्य माना जाए। इसी सिद्धांत पर आरोपित सूचना आधारित है।

आरोपित सूचना के अनिवार्य तत्त्व

1. उसको जानकारी अभिकर्ता के स्वरूप हुई हो, न कि किसी अन्य हैसियत में। दूसरे शब्दों में अभिकरण पूरी तरह सिद्ध करना चाहिए।

डाइली बनाम पोलेने 32 एल.जे.सी.एच. 782 (एन.एस.)

2. अभिकर्ता लिपिकीय काम करने के लिए नियोजित व्यक्ति से निश्चित सुभिन्न होना चाहिए। उदाहरणार्थ विलेख निष्पादित करने के लिए नियोजित व्यक्ति अभिकर्ता है। ऐसे व्यक्ति का ज्ञान आरोपित सूचना का आधार नहीं हो सकता है।

3. इस संबंध में एक व्यक्ति की स्थिति, जो दो स्वामियों की सेवा में अभिकर्ता है, विचारित की जानी है। मान लीजिए अ और ब दो कंपनियां है और स दोनों कंपनियों में नियुक्त एक अधिकारी है। मान लो कि अ कंपनी ने अपना विधिक अधिकार ब कंपनी को हस्तांतरित किया, जो द के पक्ष में एक साम्यिक अधिकार के अधीन था, जिसकी स को जानकारी थी।

क्या द कह सकता है कि ब कंपनी को उसके साम्यिक अधिकार की सूचना थी, क्योंकि स जो उनका अभिकर्ता है को अ के अभिकर्ता की हैसियत से इसकी सूचना थी।

उत्तर है कि उसकी जानकारी, जिसे उसने अ कंपनी के अभिकर्ता स्वरूप प्राप्त की थी, ब कंपनी पर अरोपित नहीं होगी, जब तक वह अपनी कंपनी के प्रति अपनी जानकारी ब कंपनी को संप्रेषित करने का और ब कंपनी के प्रति उस सूचना प्राप्त करने का कर्त्तव्य उसका न हो।

(1896) 2 सी.एच. 743 हैम्पशायर लैंड कंपनी के मामले में।

तथ्यः

1. हैम्पशायर लैंड कंपनी, कंपनी अधिनियम के अंतर्गत 1870 में रजिस्टर की गई थी।

2. कंपनी निकटतः पोर्ट सी आईलैंड बिल्डिंग सोसायटी से अंतर्संबंधित थी। विल्स चार निदेशक एवं एक सचिव दोनों में थे।

3. 19 फरवरी, 1881 को कंपनी की साधारण सभा हुई थी, जिसमें निदेशकों को 30,000 पाउंड ऋण लेने को प्राधिकृत किया जाना पारित हुआ था।

4. निदेशकों ने इस धनराशि को पोर्ट सी सोसायटी से उधार लिया।

5. सोसायटी का 1892 में परिसमापन हो गया। सोसायटी के समापक ने कंपनी को दिए ऋण 30,,000 पाउंड धनराशि का दावा किया।

6. दलील दी गई कि ऋण लेने के लिए प्राधिकृत किए जाने वाला प्रस्ताव शक्तिबाह्‌य था और यह कि चूंकि सचिव विलियम एक सामान्य अधिकारी था, उसको दी गई सूचना सोसायटी को दी गई सूचना थी और इसीलिए सोसायटी वसूल नहीं कर सकी।

7. अभिनिर्धारित किया गय कि सोसायटी पृष्ठ 749 पर दिए गए कारणों से वसूल कर सकती थी।

II. अभिकर्ता ने सूचना उसी संव्यवहार में प्राप्त की न कि पूर्ववर्ती संव्यवहार में। और भी एक प्रतिबंध है। भले ही अभिकर्ता द्वारा सूचना उसी संव्यवहार में प्राप्त की गई हो वह क्रेता पर आरोपित नहीं की जाएगी जब तक कि वह उस संव्यवहार में इतनी तात्विक न हो कि उसे स्वामी को बताना अभिकर्ता का कर्त्तव्य हो जाए।

(1886)–31 सी.एच.डी. 671 इनरी काजिन्स।

तथ्यः

1. 1871 में विलियम के चचेरे भाइयों ने अपनी संपत्ति की वसीयत की और उसे न्यासियों के विश्वास में छोड़ दिया।

2. विलियम बेंक्स न्यासियों के लिए सालिसिटर था।

3. एक चचेरा भाई मैथ्यू वसीयत के अंतर्गत विलियम के चचेरे भाइयों द्वारा छोड़ी गई वास्तविक एवं व्यक्तिगत संपत्ति की आय में से एक अंश प्राप्त करने वाला था।

4. मैथ्यू ने सालिसिटर विलियम बेंक्स के पास 35 पाउंड ऋण की प्रतिभूत स्वरूप अपने अंश को बंधक रख दिया।

5. 1873 में मैथ्यू ने अपने अंश को विलियम रिचर्डसन के पास बेंक्स के माध्यम से बंधक रख दिया और बेंक्स को चुकता कर दिया था।

6. 1874 में रिचर्डसन ने अपना अंश बंधक विलेख विलियम ड्रेक को अंतरित कर दिया। न्यासियों को कोई सूचना नहीं दी गई।

7. 1875 में मैथ्यू ने अपना अंश 500 पाउंड की अदायगी प्रतिभूत डैनिस पैपर के यहां बंधक रख दिया। बेक्स ने सालिसिटर के नाते कार्रवाई की। डैनिस पैपर के बंधक विलेख में विलियम ड्रेक के पूर्ववर्ती बंधक का विवरण नहीं था। बाद में इस संव्यवहार की सूचना न्यासी को दी गई थी।

8. ड्रेक ने अपने बंधक ऋण की अदायगी के लिए मैथ्यू के प्रति अपनी बकाया न्यासी निधि से भुगतान करने में पैपर के दावे पर प्राथमिकता हेतु समन निकलवाए। *1884, 26 सी.एच.डी. 482*

9. पैपर की दलील थी कि उसे ड्रेक के दावे की कोई सूचना नहीं थी – उसके बंधक विलेख में मैथ्यू द्वारा उसका विवरण नहीं दिए जाने पर।

10. ड्रेक द्वारा उत्तर दिया गया कि पैपर को सूचना थी क्योंकि सालिसिटर जिसने उसके अभिकर्ता के रूप में कार्य किया था मैथ्यू द्वारा ड्रेक के प्रति बंधक के विषय में जानता था।

11. यह कि बेक्स को सूचना थी यह नकारा नहीं गया। बेक्स पैपर का अभिकर्ता था यह नकारा नहीं गया। किंतु प्रश्न था कि क्या बेक्स को सूचना पैपर को सूचना होना माना जा सकता है।

12. अभिनिर्धारितः नं. पृष्ठ 677

कारण – बेंक्स की जानकारी 1875 में पैपर के साथ हुए संव्यवहार के समय उद्भूत नहीं हुई थी। पैपर के पास किसी सूचना का होना नहीं कहा जा सकता।

13. पैपर का दावा मंजूर किया गया।

(111) अभिकर्ता को दी गई सूचना क्रेता पर आरोपित नहीं की जाएगी जब अभिकर्ता को स्वामी के साथ कपट करने वाला दर्शाया जाए जो उसकी जानकारी का छिपाना और उसे स्वामी को संप्रेषित करना उपेक्षित करेगा।

(1880) 15 सी.एच.डी. 639 केन बनाम केव

(1428) ए.सी.आई. – हाफ्टन एंड कं. बनाम नादार्ड।

(II) जहां साम्यिक अधिकार विधिक अधिकार के अस्तित्व में आने के बाद उत्पन्न हुआ हो –

इस प्रश्न पर निर्देशक मामला निम्न है –

नार्दर्न कंट्रीज ऑफ इंग्लैंड फायर इंश्योरेंस कं. बनाम व्हिप

1884, 26 सी.एच.डी. 482

तथ्य:

(स) एक कंपनी के मैनेजर ने अपनी कंपनी को एक बंधक किया हक पत्र दे दिए, वे कंपनी की तिजोरी में रख दिए गए। उसकी चाबी स के कब्जे में थी। कुछ समय बाद स ने हक पत्र निकाल लिए और उसी संपत्ति का एक दूसरा बंधक श्रीमती व्हिप के पक्ष में कर दिया। श्रीमती व्हिप को कंपनी के पक्ष में प्रथम बंधक की कोई सूचना नहीं थी। अभिनिर्धारित किया गया : कंपनी प्राथमिकता की हकदार थी।

2. वाद में अभिकथित प्रतिपादन यह है :–

जहां किसी विधिक संपदा के स्वामी ने कपट में सहायता की या मौन सहमति दी है, जिसने एक पश्चात्वर्ती साम्यिक संपदा का सृजन किया और साम्यिक संपदा के स्वामी को पूर्ववर्ती विधिक अधिकार को कोई सूचना नहीं थी, न्यायालय विधिक संपदा को साम्यिक संपदा के लिए स्थगित करेगा, यद्यपि वह बाद में उत्पन्न हुआ है।

3. कपट में सहायता या उस पर मौन सहमति का साक्ष्य क्या है:–

(i) हक विलेखों के बाद जांच में साधारण सावधानी न बरतना।

(ii) हक विलेख पत्र को लेने की असफलता, कपट की सहायता या मौन सहमति के साक्ष्य हैं जहां इस प्रकार के आचरण को अन्यथा स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

4. एक अन्य वाद में भी यही नजीर है जिसमें भी विधिक संपदा पश्चात्वर्ती साम्यिक संपदा के लिए स्थगित की जाएगी।

जहां विधिक संपदा का स्वामी बंधकदार बंधककर्ता को बंधक संपत्ति पर धन उठाने के प्राधिकार के साथ अपना अभिकर्ता निर्धारित करता है और सृजित संपत्ति उस अभिकर्ता को कपट या दुराचार के द्वारा संपदा के रूप में दर्शायी गई है।

5. इस नियम के प्रवर्तन के लिए विधिक अधिकारी की ओर से मात्र असावधानी या प्रज्ञा की कमी पर्याप्त कारण नहीं होंगे। इसमें कपट और मौन सहमति या सहायता अवश्य होनी चाहिए। अन्य कुछ नहीं। केवल कपट स्थगित करेगा।

(1913) 2 सी.एच. 18

(III) जहां प्रतिद्वंद्विता दो साम्यिक अधिकारों के बीच है।

1. पूर्वोक्त दो वादों में विधिक अधिकार एवं साम्यिक अधिकार के बीच प्रतिद्वंद्वि ता थी। तीसरे वाद में दो साम्यिक अधिकारों के बीच प्रतिद्वंद्विता है।

केव बनाम केव (1880) 15 सी.एच. 639

तथ्य:

अ न्यासी और ब एक हिताधिकारी।

अ ने विश्वास भंग कर न्यास धन से भूसंपत्ति खरीदी और उसको स के नाम विधिक बंधक कर दिया।

स को न्यास की कोई सूचना नहीं थी।

बाद में एक साम्यिक बंधक विलेख के द्वारा उसी भूमि को द को अंतरित कर दिया।

तीन व्यक्ति हैं जिन्होंने अधिकार अर्जित कर लिए हैं। स जिसको विधिक अधिकार है, विधिक बंधक होने के कारण बंधकदारों के ब को अ के अधिकार से उद्भूत होने वाला, साम्यिक अधिकार है, जो अंतरित कर दिया गया है।

द को अ के अधिकार से निकलने वाला एक साम्यिक अधिकार है।

पक्षों की स्थिति क्या है?

1. जैसे कि स एवं ब के बीच यद्यपि ब का साम्यिक अधिकार स के विधिक अधिकार का पूर्ववर्ती है, चूंकि स को सूचना नहीं है, स प्राथमिकता लेता है।

2. जैसे कि स एवं ब, स प्राथमिकता लेता है क्योंकि द के अधिकारों के सृजन करने वाले कपट में स पक्षकार नहीं है।

3. जैसे कि ब एवं द के बीच, उनके अधिकार साम्यिक अधिकार है: किसका अधिकार प्रवृत्त करता है? ब का अधिकार नियम यह है कि जहां दो साम्यिक अधिकारों के बीच प्रतिद्वंद्विता है वहां उत्पत्ति में पूर्ववर्ती अधिकार बाद के अधिकार पर अविभावी होता है।

4. यह नियम केवल (वहीं) लागू होता है जहां साम्यिक अधिकारों की उनके पक्ष में, समान साम्याएं होती हैं। यदि साम्यताएं असमान हैं, तो दोनों में श्रेष्ठतर अविभावी होती है।

राइस बनाम राइस 2 ड्रेवरी, 73 (76-78)

अ भूमि बेचता है ब को और क्रय धन बिना प्राप्त किए (1) को भूमि हस्तांतरित करता है। (2) धन के लिए रसीद लिखता है। (3) ब को हक पत्र दे देता है। बाद

में ब संपत्ति को स के नाम बंधक करता है, जिसको अ के दावे की सूचना नहीं है। अ एवं स के बीच यद्यपि अ का साम्यिक अधिकार स के (साम्यिक अधिकार) का पूर्ववर्ती है तो भी साम्याएं असमान हैं। अ उपेक्षा का दोषी है, इसलिए स को साम्या श्रेष्ठतर है और प्रवृत्त होगी हालांकि वह समयानुसार बाद की है।

5. कुछ मामलों में दो साम्यिक हितों में टकराव उन अलग-अलग समयों का जिन पर हित अंतरित किया गया था, प्राथमिकता के विषय में विवाद होता है। अन्य मामलों में यह उन अलग-अलग समयों से जिन पर लिखित सूचना अंतरित हित (सही व्यक्ति या व्यक्तियों को दी जाती है, निर्धारित की जाती है) (उदाहरणार्थ, व्यवहार्य वस्तु के समनुदेशन के मामले में)

समाहार :- साम्या की तीन सूक्तियां हैं:-

(1) जहां साम्याएं समान होती हैं वहां विधि अविभावी होती है।

(2) जहां साम्याएं समान होती हैं वहां समय में प्रथम अविभावी होती है।

(3) जहां साम्याएं असमान होती हैं वहां श्रेष्ठतर साम्या अविभावी होती है।

स्पष्टीकरण :-

1. प्रथम प्रतिपादना में उन मामलों का हवाला है जिनमें साम्यिक अधिकार और विधिक अधिकार के बीच टकराव है और मामलों के दोनों वर्गों पर लागू होता है। (1) जहां साम्यिक अधिकार विधिक अधिकार से पूर्ववर्ती होता है। साथ ही (2) जहां साम्यिक अधिकार विधिक अधिकार से पश्चात्वर्ती होता है।

2. विधि अविभावी होती है का अर्थ है कि जहां असाम्या विधिक अधिकार से स्वामी पर आरोपित नहीं की जा सकती वहां विधिक अधिकार असाम्यिक अधिकार पर अविभावी रहता है - जैसे कि नोटिस (सूचना) या कपट।

3. प्रतिपादना दो एवं तीन उन मामलों का हवाला है जहां दो साम्यिक अधिकारों में टकराव होता है।

साम्यिक समनुदेशन

(i) सामान्य

1. यद्यपि यह विषय साम्यिक समनुदेशन कहलाता है, फिर भी यह संक्षेप शब्द है। एक विषय है व्यवहार्य वस्तु का साम्यिक समनुदेशन।

2. आरंभिक स्वरूप के तीन विषय है, जिन पर प्रारंभ में ही विचार किया जाना चाहिए:-

(1) समनुदेशन क्या है?

(2) व्यवहार्य वस्तु क्या है?

(3) विषय के अध्ययन की आवश्यकता क्या है?

(1) समनुदेशन क्या है?

1. संपत्ति की आंग्ल (इंग्लिश) विधि के अंतर्गत, संपत्ति, भूसंपत्ति भौतिक संपत्ति (रियलिटी) एवं वैयक्तिक संपत्ति (पर्सनेलिटी) के रूप में वर्गीकृत की जाती है।
2. भौतिक संपत्ति के अधिकारों के अंतरण के संबंध में प्रयुक्त शब्द है हस्तांतरण एवं वैयक्तिक संपत्ति पर अधिकारों के अंतरण के संबंध में उपयुक्त शब्द है अंतरण या समनुदेशन।
3. अतः समनुदेशन से अभिप्रेत है, एक व्यक्ति के द्वारा वैयक्तिक संपत्ति पर विशेषतः उसके एक रूप अर्थात् संपत्ति पर अपने अधिकारों का अंतरण।

(2) व्यवहार्य (पर्सनेलिटी) संपत्ति क्या है?

1. अंग्रेजी नाम पद्धति में वैयक्तिक संपत्ति दो वर्गों में विभाज्य है:

(1) जंगम = चल समान, जिनको एक व्यक्ति भौतिक कब्जे में ले सकता है।

(2) संपत्ति के वैयक्तिक अधिकार, जो केवल अनुमोदन या कार्यवाही द्वारा प्रवृत्तित कराए जा सकते हैं, भौतिक कब्जा लेकर नहीं।

2. पूर्वोक्त कहलाते हैं :-

(1) सकब्जा संपत्तियां - सकब्जा वस्तुएं।

(2) व्यवहार्य संपत्तियां - व्यवहार में वस्तुएं (चीज इन एक्शन)

3. पर्सनेलिटी (व्यवहार्य) संपत्ति की परिभाषा :-

(1902) 2 के.बी. 427 (430) - चन्नेल जे.

वस्तुएं यह एक ऋण है।

4. समनुदेशन शब्द व्यवहार्य संपत्ति के संबंध में प्रयुक्त होता है। यह ऐसी वस्तु है जिसे आप हस्ताक्षर करके अपने से अलग कर सकते हैं, यदि आप उसे अंतरित करना चाहते हैं। आप इसका कब्जा नहीं दे सकते।

(3) साम्यिक समनुदेशन के अध्ययन की आवश्यकता

1. समनुदेशन एक अधिकार का उसके स्वामी के द्वारा अंतरण है, एक दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध अस्तित्वशील रहने वाला, तीसरे व्यक्ति के प्रति, जिसके प्रति वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध अस्तित्वशील था, आबद्ध हो जाता है। अंतरण है।

दृष्टांतः- अ एक साहूकार है, ब ऋणी है, अ ब के विरुद्ध अपने अधिकार को

ब से स के नाम समनुदिष्ट करता है: ब, स के प्रति आबद्ध हो जाता है और स को उसे ब से वसूल करने का अधिकार मिल जाता है।

2. एक समनुदेशन में तीन व्यक्ति होते हैं:–

(1) मूल स्वामी।

(2) मूल स्वामी के प्रति आबद्ध व्यक्ति।

(3) तीसरा व्यक्ति जिसको मूल स्वामी ने अधिकार अंतरित किया है।

3. अधिकार, अर्थात् व्यवहार्य संपत्ति विधिक या साम्यिक हो सकती है जैसे कि एक वसीयती संपत्ति या न्यास निधि में हित।

4. व्यवहार्य संपत्ति का समनुदेशन साम्या और सामान्य विधि द्वारा भिन्न माना जाता था।

सामान्य विधि एवं व्यवहार्य संपत्ति

1. सामान्य विधि में व्यवहार्य संपत्ति का समनुदेशन नहीं हो सकता था। केवल एक व्यवहार संपत्ति का समनुदेश नहीं हो सकता था, वरन् एक विधिक संपत्ति का भी समनुदेशन नहीं हो सकता था।

2. कारण था वादों की बहुलता का भय।

3. सांविधिक विधि एवं विशेष विधि ने कुछ प्रकार की व्यवहार्य संपत्तियों को समनुदेशनीय बनाया:–

(1) परक्राम्य लिखित व्यापार विधि द्वारा समनुदेशनीय हो गई।

(2) जीवन बीमा और सागरीय बीमा पॉलिसियां संविधि द्वारा समनुदेशनीय बनाई गई।

(3) धारा 25 (6) ज्युदिकेचर एक्ट : सभी विधिक व्यवहार्य संपत्तियां समनुदेशनीय बना दी गई हैं।

साम्या एवं व्यवहार्य संपत्ति

1. साम्या में व्यवहार्य संपत्ति सर्वदा समनुदेशनीय थी। न केवल साम्या में एक व्यवहार्य संपत्ति समनुदेशनीय थी, वरन् एक विधिक संपत्ति भी साम्या में समनुदेशनीय थी।

2. यदि संपत्ति साम्यिक होती थी तो समनुदेशनी उसे पुन: प्राप्त करने के लिए चांसरी न्यायालय में अपने नाम से ही वाद ला सकता था।

3. यदि वह विधिक संपत्ति होती थी तो कार्यवाहियां समनुदेशक के नाम से जारी होती थीं। और वह ढंग जिससे चांसरी न्यायालय ने हस्तक्षेप किया था, समनुदेशक

को समनुदेशिती पर उसके नाम के इस प्रयोग पर आक्षेप करने से उसे खर्च की प्रतिपूर्ति देते हुए अवरुद्ध करता था।

4. फिर भी कुछ व्यवहार्य संपत्तियां थीं, जिनके समनुदेशन को लोक नीति के आधार पर साम्या ने प्रभावी नहीं किया :-

(1) राष्ट्रीय राजकोष से संदत्त लोक अधिकारियों के वेतन एवं अर्थ वेतन का समनुदेशन।

(2) पत्नी के निर्वाह धन का समनुदेशन।

(3) संपत्ति के रख रखाव से किया गया समनुदेशन।

निष्कर्ष

1. इस प्रकार समनुदेशन करने के दो तरीके हैं:-

(i) विधिक और (ii) साम्यिक

2. यद्यपि न्यायाधिक्षेत्र अधिनियम में विधिक संपत्ति के विधिक समनुदेशन के रूप में प्रक्रिया का यह एक व्यवहार्य संपत्ति के साम्यिक समनुदेशन से संबंधित चांसरी के नियमों को निरस्त नहीं करता है। ताकि यदि समनुदेशन विधि की दृष्टि में किसी न्यूनता के कारण निष्प्रभावी है तो यह उपयुक्त होगा कि यह साम्या के नियमों के अनुरूप है। दूसरे न्यायाधिक्षेत्र एक साम्यिक व्यवहार्य संपत्ति के समनुदेशन को स्पर्श नहीं करता है।

विचारार्थ मामलों के संवर्ग

व्यवहार्य संपत्ति के समनुदेशन संबंध में विचारार्थ मामलों के तीन प्रवर्ग हैं:-

(1) विधिक व्यवहार्य संपत्ति का विधिक समनुदेशन।

(2) विधिक व्यवहार्य संपत्ति का साम्यिक समनुदेशन।

(3) साम्यिक व्यवहार्य संपत्ति का समनुदेशन।

विधिक संपत्ति के विधिक समनुदेशन की अपेक्षाएं।

1. समनुदेशन अवश्य ही परिपूर्ण हो अर्थात् यह समनुदेशन के द्वारा अपने अधिकार के पूर्ण निमित्त हित के समान हो। ऋण पूर्ण हो और संपूर्ण धनराशि का हो।

2. समनुदेशन समनुदेशक द्वारा हस्तांतरित लिखित रूप में हो। यह आवश्यक नहीं कि विलेख द्वारा हो।

यह आवश्यक नहीं कि मूल्य के लिए हो।

3. ऋणियों को समनुदेशन की स्पष्ट सूचना दी जाए।

धारा यह नहीं बतलाती :-

(1) सूचना किसके द्वारा दी जानी है – समनुदेशन द्वारा या समनुदेशिती द्वारा।

(2) सूचना किस समय दी जानी है ताकि यह समनुदेशिती द्वारा समनुदेशक की मृत्योपरांत दी जा सके।

सूचना के अभाव का प्रभाव

1. सूचना का अभाव समनुदेशिती को समनुदेशन पर वाद लाने के हक से वंचित नहीं करता है। यह केवल कुछ नियोग्यताओं में अधिरोपित करता है। उसकी वजह से कुछ हानियां हो जाती हैं।

(i) समनुदेशिती मूल ऋणदाता को कार्यवाही में पक्षकार बनाए बिना ऋणी पर दावा (मुकद्दमा) नहीं कर सकता है।

(ii) समनुदेशिती समनुदेशन के दिनांक से पूर्व मूल ऋणदाता एवं ऋणी के बीच उद्भूत साम्याओं के अधीन होगा और यदि ऋणी मूल ऋणदाता के ऋण को चुकता कर देता है तो समनुदेशिती अपने अधिकार को खो बैठेगा। दूसरी ओर यदि ऋणी मूल ऋणदाता (उत्तमर्ण – साहूकार-महाजन) को सूचना पाने के बाद चुकता करता है तो समनुदेशिती इस पर भी उससे ऋण वसूल कर सकता है।

(iii) समनुदेशिती जो ऋणी को अपने समनुदेशन की सूचना देने में असफल रहता है मूल्यार्थो पश्चात्वर्ती समनुदेशन जिसको पूर्ववर्ती समनुदेशन की सूचना नहीं है और अपने समनुदेशन की सूचना ऋणी को देता है, के लिए स्थगित कर दिया जाएगा।

एक विधिक व्यवहार्य संपत्ति के साम्यिक समनुदेशन

एक समनुदेशन जो संविधिक अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता है, आवश्यकत: निष्प्रभाव नहीं होता क्योंकि वह साम्यिक समनुदेशन के रूप में प्रवर्तित हो सकता है।

दो बातें आवश्यक हैं:–

(1) समनुदेशक द्वारा मूल्य दिया गया हो।

(2) ऋणी (देनदार) एवं साहूकार (लेनदार) के बीच इकरार द्वारा विशिष्ट निधि पर सर्जित भार या ऋणों से संबंधित धन को रखने वाले व्यक्ति के संबंध में साहूकार को दिया गया आदेश, एक के समान माना जाएगा।

1839 बर्न बनाम कारवाल्लो 4 हिल्ली एंड क्रेग की रिपोर्ट 690

तथ्य:–

फ को र के पास, जो एक दूसरे नगर में व्यापार कर रहा था, सामान का पारेषण भेजने की आदत थी और वह र के प्रति हुंडी लिखा करता था। फ ने ब एंड कं के साथ यह व्यवस्था की थी कि उन्हें प्रेषित माल के प्रति र पर निकाली गई उसकी

हुंडियों को पृष्ठांकित कर परक्राम्यित करना चाहिए और उन्हें धन के साथ उसे आकलित करना था और उसे उस पर धन प्राप्त करना था। ब एंड कं को र से धन लेकर अपनी क्षतिपूर्ति करनी थी।

फ ने ब एंड कं के प्रति कुछ धन लिया किंतु र भुगतान की दिनांक को हुंडियों का भुगतान करने में असफल रहा।

फ जो ब एंड कं को प्रेषित पत्र द्वारा ब एंड क का ऋणी था ने वायदा लिया कि वह निर्देशित करेगा और एक पश्चात्‌वर्ती पत्र द्वारा ब एंड कं के अभिकर्ता के रूप में ब को सामान देने के लिए निर्देशित भी किया। फ ने र को उसके अधिकार में सामान को ब एंड कं. के अभिकर्ता व को शहर में प्रदान करने को लिखा। तदनुसार र ने ब को 30 जून 1829 को सामान दे दिया। 23 जून 1829 को किए गए एक कृत कार्य के लिए फ को 23 मई 1829 को दिवालिया निर्णीत कर दिया गया था - दिवालियापन के अंतराल में फ के न्यासी ने ब एंड कं. के विरुद्ध सामान का मूल्य वसूल करने के लिए वाद फाइल किया। ब एंड कं. की दलील थी कि फ द्वारा सामान के मूल्य का साम्यिक समनुदेशन या अभिनिर्धारित किया गया आदेश साम्या में एक अच्छा समनुदेशन है।

रोडिक बनाम गनडैल

(1851-2) डिजैक्स 763.42 ई.आर. 749

गनडैल एक इंजीनियर था और बहुत-बहुत बड़ी रकम का बैंक का ऋणी था और बैंक ऋण चुकाने के लिए दबाव डाल रहा था।

गनडैल एक रेलवे कंपनी का साहूकार था। भुगतान का दबाव न डालने और उसके प्रति अवशिष्ट ड्राफ्टों का भुगतान करने के लिए भी बैंक को प्रेरित करने के लिए यह व्यवस्था की थी कि गनडैल अपने सालिसिटर को रेलवे कंपनी से उसके देय धन को वसूल करने और उसे बैंक को अदा करने के लिए अनुदेशन करेगा। (गनडैल) ने एक पत्र द्वारा कंपनी के सालिसिटर को प्राधिकृत किया रेलवे कंपनी से उसके देय धन को वसूल करने और उसे बैंकर को अदा करने के लिए सालिसिटर ने उस धन को रेलवे से प्राप्त होने पर उसे बैंकर्स को अदा करने का वायदा किया।

क्यों - साहूकार और ऋणी के बीच कोई करार नहीं। सालिसिटर ने रेलवे कंपनी से धन वसूल किया किंतु उसे बैंक को अदा करने के बजाए उसे गनडैल को संदाय किया। गनडैल दिवालिया हो गया और उसका कब्जा सरकारी समनुदेशिती ने ले लिया। बैंक ने एक पॉलिसी के लिए वाद फाइल किया कि गनडैल ने अपने सालिसिटर के द्वारा रेलवे से अध्यर्थनीय धन निधियों पर साम्यिक समनुदेशन किया था। अतः बैंक सरकारी समनुदेशिती से धन वसूल करने के लिए समनुदेशिक एवं समनुदेशिती के बीच संपर्क अवश्य होना चाहिए। यदि संपर्क नहीं है तब साम्या में भी कोई साम्यिक

समनुदेशन नहीं होगा।

फलतः यदि मूल स्वामी अपने अभिकर्ता को मूल स्वामी को देय धन को संगृहीत करने और उसे तीसरे व्यक्ति को अदा करने के लिए निदेशित करता है तो ऐसा तीसरा व्यक्ति साम्यिक समनुदेशिती नहीं है यदि उसे आदेश की सूचना नहीं दी जाती है। यह मूल स्वामी द्वारा प्रतिसिद्ध किया जा सकता है।

इसी प्रकार धन संगृहीत करने और उसे मुख्तारनामा देने वाले पक्ष के साहूकार को अदा करने के लिए मुख्तारनामा या प्राधिकार एक साम्यिक समनुदेशन के समान नहीं होता है एक चैक, चैक दाता के बैंक में जमा धन का साम्यिक समनुदेशन या विनियोग नहीं है।

हापकिसन बनाम फारस्टर (1874) एल.आर. 19 ई.क्यू. 74

कोई वैध विनियोग या समनुदेशन नहीं हो सकता यदि कोई विशिष्ट निधि जिसमें से अदायगी की जानी है, उल्लिखित नहीं की गई है।

पर्सीवल बनाम डन (1885) 29 सी.एच.डी. 128

क्या एक साम्यिक समनुदेश्न के मामले में सूचना अनिवार्य है?

1. एक साम्यिक समनुदेशन समनुदेशक समनुदेशिती के बीच पूर्ण होता है। यद्यपि ऋणी को कोई सूचना नहीं दी जाती है।

2. तो भी दो कारणों से ऋणी को समनुदेशन की सूचना दी जानी चाहिए।

(i) यदि सूचना नहीं है तो ऋणी मूल साहूकार समनुदेशक अदा करने के लिए स्वतंत्र होगा और समनुदेशिती के प्रति दायी नहीं होगा। दूसरी ओर यदि वह सूचना की अवहेलना करके समनुदेशक को अदा करता है तो वह समनुदेशिती को पुनः देने के लिए दायी होगा।

स्टाक्स बनाम डाबसन (1853) 4 डी.ई.जी.एम. एंड जी. 11

(ii) यदि सूचना नहीं है तब उसी समनुदेशक द्वारा उसी व्यवहार्य संपत्ति के पश्चात्वर्ती समनुदेशिती पर समनुदेशिती को प्राथमिकता की अनुमति नहीं दी जाएगी।

यह डर्ल बनाम हाल (1823) 1 आर.एस.ई.एस.एस. 1 = एस.एफ.सी.पी. 57 में नियम कहलाता है।

तथ्य:

पीटर ब्राउन का देहांत हो गया और एक विल छोड़ गया था जिसके द्वारा उसने अपनी व्यक्तिगत संपदा का और अपनी निजी संपदा की बिक्री से उद्भूत धन तक भी न्यास बनाया और अपने निष्पादकों को निदेश दिया कि उसे निवेश करके उसके ब्याज को उसके पुत्र जकरिया ब्राउन को उसके जीवन काल में अदा करते रहें। आय लगभग

93 पाउंड प्रतिवर्ष आई।

19 दिसंबर 1808 को ब्राउन ने अपनी वार्षिक आय का एक अंश 37 पाउंड विलियम डरले को 204 पाउंड के बदले में समनुदेशित कर दिया। 26 सितंबर 1809 को ब्राउन ने 150 पाउंड के बदले में एक दूसरा वार्षिक आय का अंश 27 पाउंड शेरिंग को डरले के समनुदेशन के अधीन समनुदेशित कर दिया।

डरले ने या शेरिंग ने समनुदेशन की सूचना निष्पादक को नहीं दी। 1812 में ब्राउन ने न्यास निधि में अपने जीवन हित 93 पाउंड प्रति वर्ष को अनभारित निधि के रूप में विक्रयार्थ विज्ञापन दिया।

जोसफ हाल ने उसे खरीदना प्रस्तावित किया और अपने सालिसिटर के माध्यम से ब्राउन के हक की छानबीन की। उसने निष्पादकों की भी जांच की, जो ब्राउन के हित को प्रभावित करने वाले अधिभार के विषय में नहीं जानते थे। उसके बाद 711-3-66 (सात सौ ग्यारह पाउंड तीन शिलिंग 6 पैंस) में ब्राउन के हित को हाल ने खरीद लिया। उसने उसे उसको समनुदेशित कर दिया।

25 अप्रैल 1812 को हाल ने अपने समनुदेशन की लिखित सूचना निष्पादकों को दी। 27 अक्टूबर 1812 को डरले एवं शेरिंग ने अपने-अपने समनुदेशनों की सूचना निष्पादकों को दी।

निष्पादकों ने तीनों में से किसी एक को भी जब तक उनके अधिकार निर्णीत नहीं थे, धन अदा करना अस्वीकार कर दिया।

डरले और शेरिंग ने चांसरी (न्यायालय) में हाल के विरुद्ध दावा दायर किया और प्रार्थना की कि जोसफ हाल से पूर्व उनकी अदायगी के लिए 93 पाउंड की आय प्रयुक्त करनी चाहिए।

डरले ने दलील दी कि समय में प्रथम, विधि में प्रथम का सिद्धांत लागू होना चाहिए और चूंकि वह प्रथम था उसे हाल से अधिमान देना चाहिए। हाल को अभिनिर्धारित नहीं किया गया अधिमान दिया जाना चाहिए।

प्ल्यूमार का निर्णय (जजमेंट ऑप ... ्यूमर-एम.आर.एस. एंड सी.पी. 55

नियम अपने दावे को पूर्ण बनाने ... लिए असावधानी एवं उपेक्षा पर आधारित था। किंतु अब वह नियम पूर्ण और अरचरा ... स्वतंत्र है। वह समनुदेशिती जो उचित सूचना पहले देता है पहले अदा किया जाएगा, भले ही अन्य समनुदेशिती असावधानी का दोषी है या नहीं।

री डलस (1904) 2 सी.एच. 385 का मामला।

डरले बनाम हाल का नियम चल संपत्ति में सभी सामियक हितों के समनुदेशन पर

सर्वदा लागू होता है।

डरले बनाम हाल के नियम के अधीन सूचना किसे दी जानी चाहिए।

1. यह ऋणी न्यासी या अन्य व्यक्ति जिसका समनुदेशन को धन अदा करने का कर्त्तव्य है, दी जानी चाहिए।

स्टीफन्स बनाम ग्रीन (1895) 2 सी.एच. 148

2. सालिसिटर को सूचना केवल तभी प्रभावकारी होगी यदि जब वह उसको प्राप्त करने के लिए अभिव्यक्त या विधिवत रूप से प्राधिकृत हो।

(1880) 14 सी.एच.डी. 406

3. यदि कोई ऋणी या न्यासीगण है तो एक को सूचना सबको सूचना है।
4. नए न्यासियों को ताजा सूचना आवश्यक नहीं, यदि पुराने न्यासियों को सूचना दी जाती है।

नोटिस (सूचना) का प्रारूप क्या होना चाहिए

1. पहले तो सूचना का प्रारूपिक होना आवश्यक नहीं और मौखिक शब्दों में हो सकती है।
2. किंतु 1925 से यह अवश्य लिखित रूप में होनी चाहिए।

एक साम्यिक समनुदेशन से समनुदेशिती क्या हक करता है

1. यह साम्या का सर्वदा नियम रहा है कि एक व्यवहार्य वस्तु का समनुदेशिती को समनुदेशन से बेहतर अधिकार उपलब्ध नहीं हो सकता।
2. दूसरे शब्दों में समनुदेशिती उसको समनुदेशक के हाथों उसे प्रभावित करने वाली सभी साम्याओं के अधीन प्राप्त करता है।

   ताकि –

   (1) यदि समनुदेशक और ऋणी के बीच संविदा शून्यकरणीय है तो ऋणी संविदा के शून्यकरणीय लक्षण को समनुदेशिती के प्रति स्थापित कर सकता था, भले ही समनुदेशन प्रतिफल मूल्यवान का था।

   (2) यदि ऋणी को समनुदेशक के विरुद्ध प्रवृत्त करने का अधिकार था तो वही (अधिकार) उसे समनुदेशिती के विरुद्ध प्राप्त होगा।

3. तो भी, निर्धारित सूचना के बाद उद्भूत होने वाली साम्याओं से मुक्त होगा। एक ऋणी सूचना के दिनांक पर समनुदेशिती के उन अधिकारों, जिस रूप में भी वे हैं, को सूचना के दिनांक के बाद किसी कृत कार्य से समाप्त नहीं कर सकता है।

भविष्य में अर्जित किए जाने वाले अधिकारों का समनुदेशन

1. अब तक हम उन अधिकारों के संबंध में विचार कर चुके हैं जो उस समय उद्भूत हुए थे जब समनुदेशन हुआ था।
2. अब हमें भविष्य में अर्जित होने वाले अधिकारों के समनुदेशन पर विचार करना चाहिए।
3. ऐसे अधिकारों के उदाहरण:-

(i) संपदा को उत्तराधिकार में प्राप्त करने की विधि अनुकूल वारिस की प्रत्याशा।

(ii) पर्सनेलिटी को उत्तराधिकार में पाने की एक निकट संबंधी की प्रत्याशा।

(iii) अभी तक उपार्जित न किया गया भाड़ा।

(iv) भावी बही ऋण।

4. सामान्य विधि में वे सभी शून्य थे। कोई व्यक्ति जो उसके पास नहीं है उसे समनुदिष्ट नहीं कर सकता था। साम्या में वे समनुदेशनीय थे यदि मूल्यवान हों।
5. साम्या उन्हें समनुदेशन नहीं मानती वरन् समनुदेशन संविदा मानती थी और जब समनुदेशिती उस पर काबिज हो जाता तो वह अपनी संविदा का पालन करने को बाध्य किया जाता था।
6. जब समनुदेशक द्वारा अधिकार अर्जित कर लिया जाता था तो फायदा हित तुरंत समनुदेशिती को मिल जाता था, परन्तु विधिक हित समनुदेशक के पास ही रह जाता था। ताकि यदि समनुदेशक उसे पश्चात्वर्ती समनुदेशिती जिसने मूल्य दिया था और जिसके पूर्ववर्ती समनुदेशन की सूचना नहीं थी को अंतरित करता तो पश्चात्वर्ती समनुदेशिती का अभिभावी रहेगा।

संपरिवर्तन

1. संपरिवर्तन के सिद्धांत की आवश्यकता

1. आंग्ल विधि ने स्वामी को रियलिटी (निजी संपत्ति) एवं पर्सनेलिटी (भूसंपत्ति) के न्यायगमन के लिए भिन्न तरीका विदित किया था, यदि वह बिना वसीयत किए मर जाता था। उसकी स्थाई संपत्ति उसके वारिस को जाती थी और निजी संपत्ति उसके निकट संबंधी को जाती थी।
2. ऐसा होते हुए संपत्ति वारिस को मिलेगी या निकट संबंधी को यह उस दिनांक को जिसको उत्तराधिकार प्रारंभ होता है संपत्ति की स्थिति पर निर्भर होनी चाहिए।
3. सामान्यत: कोई कठिनाई नहीं है। वह वास्तविक स्थिति, जिसमें संपत्ति तात्विक

होगी, उसके न्यागमन का निर्धारण करेगी। किंतु मान लो, परिस्थितियां ऐसी हैं कि वह दिनांक जिसको उत्तराधिकार प्रारंभ होता है, भूमि का धन के लिए विक्रय होना था किंतु वह बेची नहीं जाती है, या भूमि के क्रय हेतु धन का निवेश किया जाना था किंतु किया नहीं जाता है, तो उस संपत्ति का न्यायगमन किस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए? यदि भूमि जब तक वस्तुतः बेची नहीं जाती है, भूसंपत्ति ही मानी जाती है तो वह वारिस को प्राप्त होगी। दूसरी ओर यदि वह धन के रूप में मानी जाती है तो क्योंकि उसे धन के लिए बेचने का इरादा किया था, तब यद्यपि वह भूमि ही है तो भी वह निकट संबंधी को दी जाएगी। दूसरे शब्दों में प्रश्न यह था क्या संपत्ति का न्यायगमन वास्तविक स्थिति के अनुसार होना था जिसमें वह अस्तित्वशील पाई जाती है। या उस रूप के अनुसार जिसमें इसको संपरिवर्तित किए जाने का इरादा किया था। साम्या में इसका उत्तर था कि न्यायगमन संपत्ति की स्थिति, जिसमें वह अस्तित्वशील थी के अनुसार नहीं वरन् उस रूप के अनुसार होगा जिसमें उसे परिवर्तित करने का इरादा किया था।

4. यही परिवर्तन का सिद्धांत कहलाता है। इस सिद्धांत की आवश्यकता नहीं पड़ती यदि स्थावर संपत्ति एवं निजी संपत्ति के विरासत के नियमों में भिन्नता न होती। यह अंतर अब धारा 33, 45 के अनुसार निरस्त कर दिया गया – अतः संपरिवर्तन ने अपने समग्र महत्त्व को खो दिया है।

5. भारत में संपत्ति की विरासत में ऐसा कोई अंतर नहीं है – स्थावर संपत्ति वारिस को और निजी संपत्ति निकट संबंधी को।

II. निम्न चार मामलों में संपरिवर्तन उद्भूत होता है –

(1) विधि के प्रवर्तन द्वारा।

(2) न्यायालय के आदेश के प्रवर्तन द्वारा।

(3) संविदा की प्रवर्तन द्वारा।

(4) विलेख या विल में निदेश के प्रवर्तन द्वारा।

1. विधि के प्रवर्तन द्वारा संपरिवर्तन

1. ऐसा केवल एक मामला है जिसमें संपरिवर्तन विधि के प्रवर्तन द्वारा संपन्न होता है। वह मामला भागीदारों का मामला है। भागीदारी अधिनियम 1890 की धारा 39 के अनुसार हर एक भागीदार को अपेक्षा करने का अधिकार है कि भागीदारी से संबंधित संपत्ति बेची जाएगी, और उसकी आय सभी ऋण एवं दायित्वों के उन्मोचन के बाद सभी भागीदारों में उनके पूंजी में अंश के अनुसार वितरित की जाएगी। फलतः भू संपत्ति जो भागीदारों की संपत्ति है, पर्सनेलिटी मानी जाती है, न कि रियलिटी के रूप में।

2. वह न केवल स्वयं भागीदारों और मृत्योपरांत उनके प्रतिनिधियों के बीच भागीदारी की परिसंपत्तियों के वितरण के उद्देश्य से पर्सनेलिटी मानी जाती है वरन् यह एक मृतक भागीदार को संपत्ति के लिए हकदार व्यक्तियों के बीच विरासत के प्रयोजन के लिए भी वह पर्सनेलिटी मानी जाती है।

3. भागीदारी अधिनियम के अंतर्गत रियलिटी का पर्सनेलिटी में संपरिवर्तन भागीदारी के विघटन या भागीदार की मृत्यु के दिनांक को नहीं वरन् उस समय त्यों ही हो जाता है ज्यों ही वह भागीदारी संपत्ति हो जाती है।

4. परिवर्तन का सिद्धांत भागीदारों की रियलिटी संपत्ति पर लागू होता है जब तक कि इसके विपरीत आशय प्रतीत न हो। भागीदारी का करार रियलिटी को पर्सनेलिटी में क्यों संपरिवर्तित करता है। इसका कारण यह है कि भागीदार सामान्यत: भागीदारी के विघटन पर किसी विशिष्ट भाग का हकदार नहीं होता बल्कि भागीदारी के करार में भागीदार को एक विशिष्ट संपत्ति को रखने की अनुज्ञा देने वाला एक परंतुक हो सकता है, ऐसी स्थिति में विपरीत आशय होने से संपरिवर्तन लागू नहीं होगा।

2. न्यायालय के आदेश द्वारा संपरिवर्तन

1. जहां न्यायालय द्वारा रियलिटी को बेचने के आदेश किए जाते हैं, वहां रियलिटी उस व्यक्ति की जिसकी संपत्ति बेचने का आदेश दिया गया था संपदा के उत्तराधिकार के प्रयोजनों के लिए वह पर्सनेलिटी में परिवर्तित मानी जाती है।

दृष्टांत:- अ ब स एक रियलिटी में समान अंश रखते हैं। न्यायालय उस संपत्ति में अंशों को पर्सनेलिटी में संपरिवर्तित करने का प्रभाव रखता है ताकि वे व्यक्ति जो उत्तराधिकार पाने के हकदार होंगे वे निकट संबंधी होंगे न कि वारिस।

2. निम्नलिखित सूत्रों पर अवश्य ध्यान दिया जाए:-

(i) विक्रय का आदेश न्यायालय की अधिकारिता में हो।

(ii) यह महत्त्वहीन है कि क्या वह प्रयोजन जिसके लिए वह बेची जाती है, विक्रय आगमों को नि:शेवित करेगा अथवा नहीं। विक्रय मात्र खर्च अदा करने के लिए हो सकता है। इस पर भी यदि विक्रय आदेश अधिकारिता में है तो इससे परिवर्तन हो जाएगा।

(iii) यह महत्त्वहीन है कि क्या वह वस्तु वास्तव में बेची जाती है या बेचने को आदेशित है। संपरिवर्तन करने के लिए विक्रय आदेश पर्याप्त है।

(iv) संपरिवर्तन विक्रय आदेश से घटित हो जाता है न कि विक्रय के दिनांक से।

3. ऐसे दो मामले हैं जिनमें न्यायालय का आदेश विरासत के प्रयोजन के लिए

संपरिवर्तन को प्रभावी नहीं करेगा –

(i) जहां न्यायालय स्वयं यह आदेश करता है कि संपत्ति की प्रकृति में इस प्रकार का संपरिवर्तन मृत्यु हो जाने पर उसकी विरासत को प्रभावी नहीं करेगा। वहां उस वाद में विक्रय आगम वारिस को मिलेंगे। निकट संबंधी को नहीं।

(ii) जहां किसी कानून का प्रावधान, संपत्ति की प्रकृति में संपरिवर्तन को उसके न्यायगमन को प्रभावी करने से निषिद्ध करता है – जैसे पागलपन अधिनियम (न्यूनेसी एक्ट) 1890 की धारा 123 उपबंध करती है कि यदि पागल की संपत्ति बेची जाती है तो विक्रय आगम उनके हकदार व्यक्तियों को जाएंगे मानों वह संपत्ति बेची नहीं गई हो।

3. संविदा के प्रवर्तन द्वारा संपरिवर्तन

1. जब रियलिटी संपत्ति को बेचने के लिए आबद्ध कर संविदा है तो रियलिटी संपत्ति विक्रेताओं की पर्सनेलिटी संपत्ति के एक भाग के रूप में मानी जाती है। विपरीततः क्रेता का हित रियलिटी संपत्ति माना जाता है, भले ही वह संपन्न होने से पूर्व मर जाए।

2. तो भी एक शर्त के अधीन है। अर्थात् संविदा निश्चय ही ऐसा हो जिसका विशिष्ट पालन न्यायालय द्वारा आदेशित किया जाएगा –

34 सी.एच.डी. 1661।

मात्र मानने की सूचना संपरिवर्तन के सिद्धांतों को प्रवर्तन में लाने के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि संविदा निष्क्रिय या अप्रवर्तनीय है तो परिवर्तन नहीं होगा।

4. क्रय के विकल्प के साथ पट्टा करने की संविदा के अधीन संपरिवर्तन

अ एक संपत्ति का ब के नाम सात साल के लिए पट्टा करता है और साथ ही उसको पट्टे द्वारा इस अवधि में एक संपत्ति को क्रय का विकल्प प्रदान करता है। ब अपने विकल्प का प्रयोग करता है। तीन प्रश्न उत्पन्न होते हैं:–

(i) क्या विकल्प के प्रयोग से परिवर्तन हो जाता है?

(ii) क्या सह संपरिवर्तन तब नहीं करता है जब विकल्प का प्रयोग पट्टाकर्ता की मृत्यु के बाद किया जाता है?

(iii) किस दिनांक से संपरिवर्तन का प्रवर्तन आरंभ होता है?

1. क्या विकल्प का प्रयोग परिवर्तन करता है?

विधि के अंतर्गत दिया गया विकल्प विक्रय का एक प्रस्ताव है। विकल्प का प्रयोग प्रस्ताव की स्वीकृति है और जब प्रस्ताव की स्वीकृति है तो, वही एक संविदा है। विकल्प का प्रयोग संविदा में फलित होने से संपरिवर्तन करता है। अतएव प्रथम प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है।

2. पट्टेदार की मृत्यु से पूर्व और पट्टाकर्ता की मृत्योपरांत विकल्प का प्रयोग

1. यदि पट्टेदार अपने विकल्प का प्रयोग पट्टाकर्ता की मृत्यु से पूर्व अर्थात् जबकि वह जीवित है, करता है तब संपरिवर्तन है क्योंकि विकल्प द्वारा संप्रेषित प्रस्ताव विधिकतः स्वीकृत हो सकता है और एक आबद्ध कर संविदा हो सकती है।

2. यदि पट्टेदार विकल्प का प्रयोग मृत्युपरांत करता है तो सिद्धांततः संपरिवर्तन का होना निश्चित नहीं है, क्योंकि तब संविदा नहीं हो सकती है। एक प्रस्ताव, व्यक्ति के बाद जिसने उसे प्रस्तावित किया था, मृत है, स्वीकृत नहीं हो सकता है।

   किंतु लाएस बनाम बैनट (1785) 1 क्स. 167 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पट्टेदार की मृत्योपरांत भी विकल्प का प्रयोग संपरिवर्तन के प्रयोजनों के लिए सही है।

3. लाएस बनाम बैनट में नियम विलक्षण होने से उसका प्रवर्तन सीमित है। वह पट्टाकर्ता के अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच ही लागू किया जाता है। किंतु यह पट्टाकर्ता एवं पट्टेदार के मध्य लागू नहीं बनाया जाता है।

दृष्टांत:- अ ने एक संपत्ति का पट्टा ब के नाम क्रय करने के विकल्प के साथ किया। परिसरों का बीमा था वे ब द्वारा विकल्प का प्रयोग करने से पूर्व आग से नष्ट हो जाती है। ब अपने विकल्प का प्रयोग करने पर अपने क्रय के भाग के रूप में बीमा धन का दावा नहीं कर सकता अर्थात् वह दावा अ और ब के मध्य है।

(1878) 7 सी.एच.डी. 858, 10 सी.एच.डी.ए.पी.पी. 386

(iii) किस दिनांक से संविदा द्वारा संपरिवर्तन प्रवर्तित होना आरंभ होता है?

1. संपरिवर्तन उसी क्षण से प्रवर्तनीय हो जाता है जब संविदा संपन्न हो जाती है।
2. क्रय किए जाने के विकल्प के विषय में जैसे ही पट्टे का निष्पादन होता है, संपरिवर्तन घटित हो जाता है।
3. लाभों आदि के प्रयोजन के लिए जब तक विकल्प का प्रयोग नहीं किया जाता है तब तक संपत्ति रीयल संपत्ति रहती है ताकि किराया एवं लाभ रियलिटी के हकदार वारिस द्वारा लिए जाए।
4. न्ययगमन के प्रयोजनों के लिए वह पर्सनेलिटी है।

स्वामी के निदेश द्वारा संपरिवर्तन - चाहे एक विलेख में या विल में अंकित हो

1. एक विलेख या विल से संपरिवर्तन के लिए दो बातें आवश्यक हैं:-

   (i) रियलिटी निजी संपत्ति के विक्रय या क्रय का निदेश अवश्य होना चाहिए।

   (ii) कोई व्यक्ति विद्यमान अवश्य होना चाहिए, जो निदेश का पालन कराने के

विषय में आग्रह करने का अधिकारी कहा जा सके। संपरिवर्तन हमेशा किसी व्यक्ति के लाभ के लिए होता है। यदि लाभ के लिए दावा करने वाला कोई व्यक्ति नहीं है तब संपरिवर्तन आवश्यक नहीं होता है।

2. संपरिवर्तन करने की दृष्टि से निदेश आज्ञात्मक अवश्य होना चाहिए। यदि निदेश मात्र वैकल्पिक है तो कोई संपरितवर्तन नहीं होगा और संपत्ति निजी संपत्ति या भू संपत्ति के रूप में उसकी वास्तविक अवस्थिति जिसमें वह पाई जाती है, के अनुसार मानी जाएगी।

टिप्पणी:- ऐसे निदेश जो वस्तुत: वैकल्पिक हैं और ऐसे निदेश जो प्रकटत: वैकल्पिक वरन् वस्तुत: आज्ञात्मक हैं के अंतर के लिए देखिए -

अर्लोम बनाम साँडर्स (1754) एम्बलर्स रिपोर्ट्स 241

यदि निदेश वैकल्पिक है तो वह अभिव्यक्त हो अन्यथा वह सर्वदा आज्ञात्मक माना जाएगा।

3. रियलिटी (निजी संपत्ति) के विक्रय अथवा क्रय के लिए निदेश और वह समय जिस पर विक्रय अथवा क्रय किया जाएगा, के विषय में विवेकाधिकार के बीच भेद अवश्य होना चाहिए :-

   (अ) यदि निदेश आज्ञात्मक है तो मात्र यह तथ्य कि वह विवेकाधिकार के साथ है, संपरिवर्तन प्रभावी रखने से निवाहित नहीं करेगा।

   (ब) यदि निदेश आज्ञात्मक है तो यह तथ्य कि वे जिनको निदेश दिया गया था, उसके अनुपालन में असफल हो गए हैं, संपरिवर्तन को अपना प्रभाव रखने से निवारित नहीं करेगा।

4. विक्रय या क्रय के मात्र निदेश और इस निदेश जिसका निष्पादन किसी अन्य व्यक्ति के अनुरोध या सम्मति पर निर्भर किया जाता है, के बीच भेद अवश्य किया जाना चाहिए।

ऐसे मामले में संपरिवर्तन होगा या नहीं यह दस्तावेज के अर्थान्वयन पर निर्भर करता है।

(अ) यदि खंड का आशय नामित व्यक्ति को संपरिवर्तित करने के कर्त्तव्य को लागू करने के योग्य बनाना है तब संपरिवर्तन होगा।

(ब) यदि खंड का आशय निदेश को उपयोग के अधीन बनाकर उसे नियंत्रित करना है, तब जब तक इस प्रकार उपयोग नहीं किया जाता है कोई संपरिवर्तन नहीं होगा।

5. संपरिवर्तन करने की शक्ति एवं संपरिवर्तन करने के निदेश में अंतर अवश्य करना चाहिए:

(1892) 1 सी.एच. 279

(1910) 1 सी.एच. 750

मात्र संपरिवर्तन करने की शक्ति आज्ञात्मक नहीं है और वहां संपरिवर्तन नहीं होगा जहां केवल शक्ति है।

दृष्टांत:

अ 300 पाउंड अ की संपत्ति को ब के पास बंधक कर ब से उधार लेता है और ब को विक्रय करने की शक्ति प्रदान करता है, जिसकी शर्त यह है कि विक्रय भाग पर आधिक्य अ द्वारा उसके निष्पादकों एवं प्रशासकों को अदा किया जाएगा।

अ बिना वसीयत किए मर गया और अ की मृत्योपरांत ब ने संपदा बेच दी और वहां अतिरिक्त आगम विक्रय थे।

वह अतिरिक्त धन किस के पास जाएगा?

चूंकि उसे विक्रय करने का निदेश नहीं था, इसलिए संपत्ति का अ की मृत्यु के समय उसकी वास्तविक अवस्थिति के अनुसार आगमन होगा। अ की मृत्यु के समय वह एक रियलिटी संपत्ति थी, अत: वारिस उसका हकदार था। यदि विक्रय अ के जीवन काल में हो जाता तो अ की मृत्यु पर वह पर्सनेलिटी (संपत्ति) होती, अतएव वह निकट संबंधी को जाती।

II. समय, जिससे निदेश द्वारा संपरिवर्तन होता है।

1. यह एक विल या विलेख में अंकित निदेश के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है।

2. यदि निदेश विल में अंकित है तो संपरिवर्तन वसीयतकर्ता की मृत्यु से होगा।

3. यदि निदेश एक विलेख में अंकित है तो संपरिवर्तन विलेख के निष्पादन के दिनांक से प्रवर्तित होगा - भले ही वसीयतकर्ता की मृत्योपरांत भी विक्रय या क्रय करने का न्यास उत्पन्न न हो।

III. उन उद्देश्यों की जिनके लिए विल या विलेख में निदेश किया गया था असफलता का प्रभाव

1. दो वादों में अवश्य भेद करना चाहिए:-

   (1) पूर्ण असफलता के बाद।

   (2) आंशिक असफलता के बाद।

(1) पूर्ण असफलता के बाद

जहां उद्देश्यों की पूर्ण असफलता उसी समय है या उससे पूर्व होती है, जब विलेख

या विल प्रवर्तन में आएगा, उस समय या उससे पूर्व होती है जिस पर संपरिवर्तन करने का कर्त्तव्य उद्भूत होना है, कोई संपरिवर्तन घटित नहीं होगा और संपत्ति जैसी थी वैसी ही रहेगी। कारण है कि कोई व्यक्ति नहीं है जो संपरिवर्तित होने वाली संपत्ति के स्वरूप के बदले जाने का आग्रह कर सके।

2. असफलता पूर्ववर्ती हो, पश्चात्वर्ती नहीं।

3. पूर्ण असफलता के मामले में संपरिवर्तन से संबंधित नियम एकसमान हैं और विलेख में निदेश एवं बिल में निदेश के प्रभावों में कोई अंतर नहीं है।

(ii) आंशिक असफलता के वाद

1. जहां प्रयोजन केवल अंशतः असफल हो चुके हैं वहां ऐसे प्रयोजन असफल नहीं हुए हैं, निष्पादित करने के लिए संपरिवर्तन आवश्यक है। फलतः संपरिवर्तन का सिद्धांत प्रवर्तित होगा और वह प्रतिनिधि संपत्ति को उस रूप में वह जिसमें संपरिवर्तित होने को निदेशित की गई है, लेने के लिए हकदार होगा।

2. वह आवश्यक सीमा तक निष्पादित किया जाएगा।

दृष्टांतः अ रियलिटी संपत्ति को बेचने और विक्रय आगम को ब एवं स में वितरित करने के लिए न्यासियों को विश्वास पर वसीयत में देता है। ब पहले मर जाता है, अ एवं स उसके बाद भी जीवित रहते हैं। यहां विक्रय इसलिए आवश्यक हैं कि जो अ उसको देने का आशय रखता है स उसे अर्थात् धन पा सकता है। स अपने अंश का धन लेगा।

ब के अंश क्या होगा?

वह वस्तुतः धन है और निश्चित ही निकट संबंधी को जाना चाहिए। किंतु वारिस को जाएगा क्योंकि उस सीमा तक संपरिवर्तन आवश्यक था। वारिस उसे लेता है परंतु धन के रूप में ही।

दृष्टांतः-

अ पर्सनेलिटी संपत्ति को वसीयत करके ब एवं स के लिए भूमि क्रय में निवेश करने के लिए न्यासियों को देता है। ब पहले मर जाता है और अ तथा स बाद में जीवित रहते हैं यहां क्रय आवश्यक है क्योंकि जो अ, स को देना चाहता है अर्थात् भूमि स उसे ले सकता है। स भूमि में अपने अंश को लेगा।

ब के अंश का क्या होगा? वह निकट संबंधी को जाएगा क्योंकि उस सीमा तक संपरिवर्तन अनावश्यक है। किंतु निकट संबंधी उसे भूमि के रूप में ही लेगा।

प्रतिसंपरिवर्तन

1. प्रतिसंपरिवर्तन का अभिप्राय है, पूर्ववर्ती संपरिवर्तन का निष्प्रभावीकरण या

रद्दकरण। यह संपत्ति की धारणात्मक अवस्थिति से उसकी वास्तविक स्थिति में प्रत्यावर्तन या पुनःस्थापन है।

2. प्रतिसंपरिवर्तन दो तरह हो सकता है –

(1) पक्षों के कार्य द्वारा।

(2) विधि के प्रवर्तन द्वारा।

(1) पक्षों के कार्यों द्वारा

1. यह वहां होता है जहां एक व्यक्ति की संपत्ति को उसकी संपरिवर्तित स्थिति या उसकी वास्तविक स्थिति में लेने के बीच चुनने का अधिकार होता है।

2. वे व्यक्ति जिनको इस प्रकार चुनाव करने का और तद्द्वारा उसको संपरिवर्तित करने का अधिकार है :-

(1) पूर्ण स्वामी।

(2) एक अविभाजित अंश का स्वामी। भूमि को धन के रूप में संपरिवर्तित करने के मामले में यह स्वामी की सहमति के बिना किंतु भूमि को धन में संपरिवर्तित करने के मामले में नहीं। यह इस कारण है कि धन विभाजन योग्य है भूमि नहीं।

दृष्टांतः-

(1)जहां धन सह अभिधारियों के रूप में अ एवं ब के हित में भूमि में निवेशित किया जाता है। अ ब की सहमति के बिना संपरिवर्तन करने का चुनाव कर सकता है।

(2)प्रश्नः- क्या एक अवशेष पुरुष उसे उसकी वास्तविक स्थिति में लेने के चुनाव के द्वारा प्रतिसंपरिवर्तन को प्रभावी कर सकता है? यह स्पष्टतः सुनिश्चित नहीं है।

(3)पक्षों के कार्य द्वारा प्रतिसंपरिवर्तन करने का यह नियम वहां प्रवर्तित होता है जहां स्वामी, जिसको चुनाव करने का अधिकार है और एतद्द्वारा प्रतिसंपरिवर्तन को प्रभावी करना इस सीमा के अधीन है कि वह किसी निर्योग्यता के अधीन न हो।

शिशु एवं पागल निर्योग्यता के अंतर्गत आते हैं। अतः वे प्रतिसंपरिवर्तन नहीं कर सकते। किंतु न्यायालय उनके पक्ष में निदेश कर सकता है यदि वह उनके लिए लाभकारी है।

विवाहित महिला, यदि संपत्ति उसके पृथक उपयोग के लिए उससे संबंधित है तो प्रति-संपरिवर्तित कर सकती है। यदि वह उसकी पृथक संपत्ति नहीं है तो वह केवल अपने पति की सहमति से ही ऐसा कर सकती है।

(4)प्रतिसंपरिवर्तन के चुनाव का साक्ष्यः-

(1) उस निमित्त आशय की स्पष्ट घोषणा।

(2) चुनाव करने के समान आचरण।

2. **विधि द्वारा प्रतिसंपरिवर्तन :–** जहां एक व्यक्ति जो संपत्ति को संपरिवर्तित करने के कर्त्तव्य के अधीन है, कर्त्तव्य के समाप्त हो जाने के बाद, संपत्ति को कब्जे में रखने और उसके प्रति पूर्ण हकदार है, संपत्ति घर पर ही है और उसके द्वारा कुछ भी किए बिना प्रति–संपरिवर्तित हो गई। इस प्रकार है:–

अ, ब के साथ शादी होने के बाद तीन वर्षों में 1000 पाउंड भूमि क्रय करने में निवेश करने और उन्हें अपनी पत्नी ब पर निर्धारित करने में संपरिवर्तन करता है। ब विवाहोपरांत एक वर्ष के अंदर मर जाती है। चूंकि भूमि में निवेश करने का कर्त्तव्य और उसके निवेशन को प्राप्त करने का अधिकार दोनों ही अ में निहित हैं। इस बाध्यता का उन्मोचन विधिक प्रवर्तन द्वारा होता है और वह जो प्रसंविदा द्वारा भूमि में निवेशित किया गया था पुनः संपरिवर्तित हो जाता है और निकट संबंधी को चला जाता है।

चुनाव

1. विधिक चुनाव एवं साम्यिक चुनाव में अंतर :–

(अ) विधिक चुनाव एक पक्ष के एक अनधिकृत कार्य से उद्भूत होने वाले दायित्व को खंडित करने या कार्य को अनुसमर्थन करने एवं दायित्व को स्वीकार करने की पसंद से संबद्ध होता है।

(ब) साम्यिक चुनाव एक व्यक्ति के एक उपहार को जो एक भार के रूप में है स्वीकार करने या उपहार को अस्वीकार करने में से चुनाव से संबद्ध होता है।

II. चुनाव के साम्यिक सिद्धांत की आवश्यकता

1. यह सिद्धांत किस समस्या के बारे में है।

समस्या की प्रकृति

अ एक विलेख पत्र या विल द्वारा अपनी संपत्ति ब को देता है और उसी दस्तावेज द्वारा ब की एक संपत्ति स को देता है। ऐसी लिखित के अधीन ब क्या प्राप्त कर सकता है?

यहां दो दान हैं –

(1)अ द्वारा ब को अ की संपत्ति।

(2)अ द्वारा स को ब की संपत्ति।

अ की संपत्ति का ब को दान वैध है, क्योंकि अ दान की गई संपत्ति का स्वामी है। अ द्वारा ब की संपत्ति का दान अवैध है, क्योंकि ब द्वारा वह प्राधिकृत नहीं की गई है। प्रश्न है कि क्या ब अ द्वारा दान में दी गई अ की संपत्ति को ले सकता है और अ द्व ारा स को दान में दी गई ब की संपत्ति को रद्द कर सकता है। चुनाव का सिद्धांत इसी समस्या के बारे में है।

(ii) **चुनाव के सिद्धांत** में विहित है कि ब को दान तभी प्रभावी होगा जब स को दान प्रभावी होने देने के लिए ब अनुमति देता है।

III. नियम का सिद्धांत

जब कोई व्यक्ति इस प्रकार कोई दान करता है तो साम्या उपधारित करती है कि ऐसे दान में एक निहित शर्त होती है कि वह व्यक्ति जो लिखित के अंतर्गत फायदा स्वीकार करता है उसके सभी प्रावधानों के अनुरूप और उससे असंगत प्रत्येक अधिकार का त्याग करते हुए उसे समग्रत: स्वीकार करता है।

(iii) चुनाव करने का आहूत व्यक्ति के लिए विकल्प

(अ) जिस व्यक्ति को चुनाव करने के लिए आहूत किया जाता है उसके लिए दो विकल्प होते हैं:-

(1) ब अपनी (ब की) संपत्ति लेने को स को अनुज्ञात कर सकता है और अ की संपत्ति स्वयं लेता है।

(2) अ की संपत्ति को ब ले सकता है और स को उसकी (ब की) संपत्ति को लेने के लिए अनुज्ञात नहीं करता है वरन् स की तुष्टि करने के लिए उस सीमा तक प्रतिपूर्ति करता है।

दृष्टांत:- अ 20,000 पाउंड मूल्य की संपत्ति से संबंधित पारिवारिक संपदा ब को प्रदान करता है और उसी लिखित द्वारा अ अपनी (अ की) 30,000 पाउंड की संपत्ति की वसीयत स को प्रदान करता है। स दोनों बातों में से किसी एक को कर सकता है।

(1) ब को पारिवारिक संपदा लेने के लिए ज्ञात करे या

(2) पारिवारिक संपदा को रख ले और ब को 20,000 पाउंड दे।

(ब) पहला विकल्प लिखित के अधीन लेना कहलाता है पश्चात्वर्ती लिखित के प्रतिकूल लेना कहलाता है। निम्न विचार बिंदु इन दो चुनाव करने के ढंगों के संबंध में अवश्य जान लेने चाहिए:-

(i) लिखित पर चुनाव की अनुमति केवल वहीं दी जाती है जहां दान एक निहित शर्त पर किया जाता है कि आदाता अपनी संपत्ति को विलग करेगा। जहां दान एक अभिव्यक्ति शर्त पर किया जाता है कि आदाता अपनी संपत्ति को विलग करेगा। साम्या लिखित पर चुनाव की अनुमति नहीं देगी। आदाता कुछ नहीं ले पाएगा यदि वह शर्त का अनुपालन करना अस्वीकार करता है।

(ii) जब किसी व्यक्ति का चुनाव लिखित के अधीन होता है तो मुआवज़े का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

(iii) लिखित के विपरीत चुनाव जहां अनुज्ञात किया जाता है - संपूर्ण

वसीयती संपत्ति का समपहरण नहीं करता। वरन् प्रतिकार के लिए पर्याप्त एक भाग को ही।

IV. सिद्धांत के लागू होने की शर्तें

1. दाता ने आदाता की संपत्ति किसी तीसरे व्यक्ति को दे दी हो।

2. दाता ने स्वसंपत्ति उसी विलेख द्वारा आदाता को दी हो।

3. आदाता को दी गई संपत्ति ऐसी हो कि वह तीसरे व्यक्ति की क्षतिपूर्ति के लिए प्रयोज्य हो सके।

4. आदाता की संपत्ति अन्य संक्राम्य होनी चाहिए।

टिप्पणी:- आदाता को ऐसे हित का ही व्ययन करने वाला समझा जाएगा जैसा कि वह संपत्ति में रखता है, अधिक नहीं।

V. कुछ वाद जो चुनाव के वादों से अवश्य प्रभेदित होने चाहिए

1. एक व्यक्ति को दो दान के वाद।

ऐसे वादों में चुनाव का सिद्धांत लागू नहीं होता। वे उसकी स्व-संपत्ति के दानों के वाद है।

यहां आदाता एक को स्वीकार कर सकता है जो लाभकारी है और दूसरे को अस्वीकार कर सकता है जो भारित है - जब तक कि दाता का आशय यह न हो कि भारित को स्वीकार करना लाभकारी के अनुदान की एक शर्त है।

2. एक दान में दो संपत्तियों के वाद - एक लाभकारी, दूसरी भारित। लाभग्राही दोनों को ले या एक को भी नहीं, जब तक यह आशय न हो कि एक के बिना दूसरी को लेने की अनुमति दी जाए।

VI. उपसंहार

1. संपरिवर्तन एवं चुनाव के सिद्धांत है जो साम्या की सूक्ति को स्पष्ट करते हैं - साम्या आशय को देखती है।

वह दोनों का अपवाद है?

57 कलकत्ता 1062

(तृतीय) के संबंध में

मामला धारा 24 से विनियमित होता है।

स्पष्टीकरण - 1 प्राधिकारी व्यक्ति।

2. उपस्थित होता है।

ध्यान में रखने की बातें:

1. धारा 28 अपराध-स्वीकरण के बाद .... दूर किया जाता है

2. धारा 29

शंकाएं -

1. क्या धारा 24 सुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 387 के अंतर्गत अभियुक्त द्वारा किए गए अभिकथन पर प्रयुक्त होती है।

प्रश्न, असमाधानित।

17 बंबई, एल.आर. 1059

II. क्या धारा 24 भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 339(2) के अंतर्गत क्षमाधीन एक इकबालिया गवाह के अभिकथन पर प्रयुक्त होती है।

(22 बंबई एल.आर. 1247)

अपराध-स्वीकरणों का उपयोग

1. एक अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किया गया अभिकथन मात्र इस प्रकार उसको आबद्ध करता है, क्योंकि इसके दो कारण हैं।

(i) विधि का सामान्य नियम है कि एक व्यक्ति द्वारा किया गया कथन पूर्वाग्रहपूर्वक एक दूसरे व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है।

(ii) एक अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किया गया अभिकथन शपथ नहीं है।

(iii) अभिकथन प्रतिपरीक्षण के अधीन नहीं है।

2. किंतु यदि अभिकथन एक अपराध-स्वीकरण है जो दोनों स्वयं को और एक अन्य व्यक्ति को प्रभावित करता है, तब धारा 30 व्यक्त करती है कि न्यायालय अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध स्वीकरण को अपराध-स्वीकरण में आरोपित अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध विचार करने में ले सकता है।

3. अतः धारा 30, सामान्य नियम का एक अपवाद है। इस अपवाद का कारण है, स्वालिप्तन का तथ्य जो कुछ-कुछ अन्य व्यक्ति के विरुद्ध अभियोजन के सत्य के लिए वही प्रत्याभूतित करना माना जाता है।

4. एक अन्य अभियुक्त के विरुद्ध एक अभियुक्त के अपराध-स्वीकरण के संबंध में महत्त्वपूर्ण शब्द "न्यायालय विचारण में ले सकता है" है। इसका अभिप्राय है

(1) कि उपयोग आवश्यक नहीं है। वह अनुज्ञात्मक और विभेदमूलक है। न्यायालय उसे उपयोग करने को अनुज्ञात है। न्यायालय उसका प्रयोग करने को बाध्य नहीं है।

(2) न्यायालय उस पर **विचार** कर सकता है। शब्द विचार करना महत्त्वपूर्ण है।

1. एक साक्षी द्वारा किया गया एक अभिकथन, उस शब्द की परिभाषा के अनुसार "साक्ष्य" है। एक अभियुक्त द्वारा स्वयं उसको और उसके सहअभियुक्त को प्रभावित करने वाला एक अपराध स्वीकरण, उस विशेष अर्थ में "साक्ष्य" नहीं है। वह इस अर्थ में है कि वह न्यायालय के समक्ष एक मामला है जिसे वह विचारित कर सकता है। प्रश्न है जबकि उसे इस प्रकार विचारित होने के लिए अनुमत करते हुए क्या वह अन्य साक्ष्य की आवश्यकता को समाप्त कर देता है? इसका साक्ष्य अधिनियम में कोई प्रत्यक्ष उत्तर नहीं दिया गया है। किंतु सभी न्यायालयों ने निर्णीत किया हुआ है कि वह अन्य साक्ष्य का उन्मूलन नहीं करता है। इसके कारण हैं।

(1)अपराध स्वीकरण अन्य व्यक्तियों, जिनको वह शामिल करता है, के विरुद्ध उसके सत्य की एक परिपूर्ण प्रत्याभूति कभी नहीं होती। एक अपराध स्वीकरण जहां तक वह उसके कर्ता को आलिप्त करता है सत्य हो सकता है, किंतु जहां तक वह दूसरों की दुर्भावना और बदले की भावना द्वारा प्रभावित करता है, असत्य और कूटरचित हो सकता है।

(2)अपराध-स्वीकरण एक सहअपराधी के साक्ष्य से ऊपर नहीं रखा जा सकता, क्योंकि बाद का प्रतिपरीक्षण के अधीन है, जबकि पूर्ववर्ती नहीं है। और यदि एक सह-अपराधी का साक्ष्य पुष्टिकरण की अपेक्षा करता है, एक अपराध-स्वीकरण होना ही चाहिए।

निष्कर्ष:-

यदि यह है :-

(अ) वाद में कोई अन्य साक्ष्य पूर्ण नहीं है, या

(ब) अन्य साक्ष्य आग्राह्य है,

ऐसा एक अपराध-स्वीकरण अकेला, दोषसिद्धि को संपोषित नहीं करेगा। यहां पुष्टिकरण होना ही चाहिए।

जब कई व्यक्ति एक ही कार्य से उद्भूत होने वाली एक ही परिभाषा के अंतर्गत एक अपराध के अभियुक्त हैं, तो एक के अपराध-स्वीकरण का दूसरे के विरुद्ध उपयोग किया जा सकता है, यद्यपि इसलिए उस सह-अपराधी में से एक पृथक अपराध संघटित करने में सक्षम और अपने सह-अपराधी पर उन आरोपियों से पृथक्करणीय कार्यों द्वारा उसे स्वयं हृदयंगम करता है।

8 बंबई 223 : 7 मद्रास 579

उपशमन - अपराध

1. शब्दों के **निर्माण** और **प्रमाणित** होने का महत्त्व। क्या धारा अन्वीक्षण करने पर एक अभियुक्त द्वारा किए गए अभिकथन जो स्वयं उसको अभिशस्त करता है और

एक सह-अभियोगी को आलिप्त करता है, को शामिल करती है?

उत्तर है कि वह नहीं करती।

धारा पढ़ी जानी नहीं है जैसे कि शब्द "अनुवीक्षण पर" शब्द, निर्माण के बाद जोड़ा गया था और शब्द "अभिलेखित" शब्द "प्रमाणित" के लिए प्रतिस्थापित।

(1890) 14 एम.ओ. (मो. जुर) एन.एस. 516

धारा अनुवीक्षण पर किए गए अभिकथनों को संदर्भित नहीं करती। वह पहले किए गए और अन्वीक्षण पर प्रमाणित अभिकथनों को संदर्भित करती है। वाक्यांश एक अपराध-स्वीकरण को प्रमाणित करने का प्रयोग अनुप्रयोजनीय है वहां जहां न्यायाधीश प्रश्न करता है और अभियुक्त स्पष्टीकरण करता है।

45 इलाहाबाद 323

2. संयुक्त रूप में अन्वीक्षित का महत्त्व

इस संबंध में दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत होते हैं - जब एक अभियुक्त अपराध-स्वीकरण करता है और अपने अपराध-स्वीकरण में सह-अभियुक्त को आलिप्त करता है और अपराध स्वीकार करता है।

(1)ऐसे एक मामले में, क्या वह शेष के साथ संयुक्त रूप से अन्वीक्षित हो रहा है, के रूप में माना जा सकता है, जैसे इस धारा के अंतर्गत उसके अपराध-स्वीकरण में सह-अभियुक्त के विरुद्ध रहने देना है?

(2)ऐसे एक मामले में क्या एक अभियुक्त जो अपराध स्वीकार करता है, उनके विरुद्ध जो अपराध स्वीकार नहीं करते हैं, एक साक्षी के रूप में बुलाया जा सकता है?

प्रश्न 1 - उसका साक्ष्य विचाराधीन नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि वह संयुक्त रूप से अन्वीक्षित होने से समाप्त हो जाता है।

5 बंबई 63, 7 मद्रास 102, 19 बंबई 195

यद्यपि यह न्यायालय के लिए अभियुक्त जिसने अपराध-स्वीकारा था को दोषसिद्ध किए बिना अन्वीक्षण को निरंतर खुला रखता है। तथापि यह अनुचित है उनको दोषसिद्ध करने से अलग करना मात्र इस क्रम में उनको अपराध-स्वीकरण अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध विचारित किए जा सकते हैं।

23 इलाहाबाद 53

प्रश्न 2 - यह शब्द "अभियुक्त" की परिभाषा पर निर्भर करता है, जब एक अभियुक्त, एक अभियुक्त-व्यक्ति प्रविरत जाता है?

जब तक एक अभियुक्त जो अपराध स्वीकार कर चुका है दोषसिद्ध या उन्मुक्त नहीं किया जाता है, तब तक वह एक अभियुक्त व्यक्ति है और इसलिए सह-अभियुक्त के विरुद्ध साक्षी नहीं है।

13 सी.डब्ल्यू.एन. 55

जब तक एक अभियुक्त व्यक्ति जो अपराध स्वीकार कर चुका है, दोषसिद्ध और दंडादेशित नहीं हो जाता तब तक वह एक अभियुक्त व्यक्ति है और इसलिए, सह अभियुक्त के विरुद्ध एक सक्षम साक्षी नहीं है।

3 बंबई एल.आर.

सारांश

1. जब एक व्यक्ति अपराध स्वीकार करता है - संयुक्त रूप से अन्वीक्षित होने से पर्यवसित हो जाता है किंतु वह अभियुक्त व्यक्ति होने से पर्यवसित नहीं होता। इसलिए अपराधों के तर्क पर उसका अपराध-स्वीकरण अन्य सह-अभियुक्त के विरूद्ध विचाराधीन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे संयुक्त रूप से अ अन्वीक्षित सह-अभियुक्त नहीं है, न ही वह एक साक्षी के रूप में बुलाया जा सकता है क्योंकि जब तक वह दंडादेशित नहीं होता है वह निरंतर एक अभियुक्त बना हुआ है।

2. जब एक व्यक्ति अपराध स्वीकार करता है और वह संयुक्त रूप से अन्वीक्षित किया जाता है और अभियुक्त व्यक्ति होने से अलग हो जाता है उसका अपराध-स्वीकरण उपयोग नहीं किया जा सकता किंतु वह एक सक्षम साक्षी हो जाता है।

निर्णयों की सुसंगतता

धारा 40

जहां प्रश्न है क्या एक न्यायालय को एक मामले में संज्ञान लेना या ऐसा अन्वीक्षण नियंत्रित करना चाहिए।

एक निर्णयादेश या डिक्री का अस्तित्व जो किसी न्यायालय को ए मामले का संज्ञान लेने या अन्वीक्षण करने से निरोधित करता है सुसंगत तथ्य है।

टीका

1. विधि, जिसके द्वारा एक पूर्ववर्ती निर्णयादेश या डिक्री एक सिविल न्यायालय को एक वाद का संज्ञान लेने से निरोधित करती है सिविल प्रक्रिया संहिता में अंतर्विष्ट है और विधि, जिसके द्वारा एक पूर्ववर्ती निर्णय एक खंड न्यायालय को अन्वीक्षण करने से निरोधित करता है, खंड प्रक्रिया संहिता में अंतर्विष्ट है।

2. सिविल प्रक्रिया संहिता की सुसंगत धारा 11-14 हैं। व्यवस्थाएं संक्षिप्त है "फील्ड" में पृष्ठ 260 पर।

3. दण्ड प्रक्रिया संहिता की सुसंगत धारा 434 है।

4. धारा 40 के अंतर्गत एक निर्णय सुसंगत है, यदि उसका प्रभाव न्यायालय को निष्कर्षित करता है।

5. ऐसा एक निर्णय उन्हीं पक्षों के बीच और उन्हीं विवाद्यकों पर होना चाहिए।

6. अंतर पक्षों में एक निर्णय एक अपरिचित को आबद्ध नहीं करता है। नियम के मूल में सिद्धांत है कि कोई मानव कर्यवाहियों द्वारा बाध्य नहीं हो सकता जिनके लिए वह एक अपरिचित था और जिनके ऊपर उसका कोई नियंत्रण नहीं था।

नियम का अपवाद

(1) धारा-41, अपने अंतर्गत नियम का एक अपवाद अधिनियमित करती है। एक सक्षम न्यायालय का एक अंतिम निर्णय निम्न के निष्पादन में

(i) प्रमाणित इच्छापत्र

(ii) वैवाहिक

(iii) नौ अधिकरण अधिकार क्षेत्र

(iv) दिवाला

जो एक विधिक चरित्र को प्रदान करता या ले लेता है या जो किसी व्यक्ति को किसी विशिष्ट बात का सत्वाधिकृत होने वाला घोषित करता है, सुसंगत है।

टीका -

1. इसका अभिप्राय है कि अंतरपक्षीय निर्णय ग्राह्य है पक्षों के मध्य की एक कार्यवाही में, जो उस कार्यवाही के पक्ष नहीं थे।

2. यह धारा जो निर्णय लोकबंधी कहलाते हैं के साथ कार्य करती है उस अभिव्यक्ति का प्रयोग किए बिना। सभी निर्णय अंतरपक्षीय हैं किंतु कुछ अंतरपक्षीय निर्णय, व्यक्तिबंधी निर्णय हैं और कुछ लोकबंधी निर्णय हैं। दोनों ही अंतरपक्षीय हैं। लोकबंधी निर्णयों की परिभाषा करने के स्थान पर - धारा उनकी गणना करती है।

3. परिणाम यह है कि प्रत्येक निर्णय जो एक चरित्र को देता या ले लेता है, स्वीकार्य नहीं है। ये एक विशेष प्रकार के अधिकार क्षेत्र के निष्पादन में दिए गए केवल निर्णय हैं, जो स्वीकार्य हैं।

दृष्टांत:-

अपरिचितों के मध्य में अंगीकरण स्वीकार्य नहीं है।

यह एक निर्णय है जो एक स्थिरता प्रदान करता है। किन्तु यह स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह किसी कथित अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत नहीं है।

2. अपवाद – *धारा 42*

व्यक्तिबंधी निर्णय अपरिचितों के मध्य के रूप में सुसंगत है, यदि निर्णय लोक प्रकृति के एक विषय से संबंधित है।

लोक प्रकृति के विषय

(1) प्रथाएं

(2) निर्धारण

(3) कर

(4) सीमाएं

(5) नौ–अधिकार

(6) समुद्र तटबंध आदि।

III. अपवाद *धारा 43*

इस धारा के अंतर्गत अपरिचितों के मध्य व्यक्तिबंधी निर्णय स्वीकार्य हैं, दो परिस्थितियों के अधीन हैं।

(i) जहां ऐसे निर्णय का अस्तित्व एक विवाद्यक तथ्य है।

(ii) जहां निर्णय साक्ष्य अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अंतर्गत सुसंगत है।

टीका –

1. प्रथम परिस्थिति को समझना आसान है।

दृष्टांत:–

(1) अ ने मिथ्यापवाद के लिए ब पर यह दावा किया कि वह कूट करण के लिए दोषी सिद्ध हुआ था। ब ने यह कहते हुए न्यायसंगत ठहराया इस आधार पर कि वह सत्य था।

अ की दोषसिद्धि कूटकरण एक विवाद्यक तथ्य होगा और उसकी दोषसिद्धि का समर्थन करने वाला निर्णय ग्राह्य भी होगा। ब उसी निर्णय का एक पक्ष नहीं था।

(2) साहूकार द्वारा उपलब्ध जमानती के विरुद्ध किसी एक मामले में एक निर्णय मान्य होगा जिसमें जमानती ने मुख्य ऋणी पर मुकदमा चलाया हो। यद्यपि मुख्य ऋणी इसका एक पक्ष नहीं था।

(3) अन्वीक्षण की एक न्यायिक कार्यवाही में अभिच्छित मिथ्या साक्ष्य देने के लिए अभिलेख साक्ष्य होगा कि वहां एक न्यायिक कार्यवाही थी।

2. यह दूसरी परिस्थिति है जिसने कठिनाई उत्पन्न की है। वे धाराएं क्या हैं जिनके अंतर्गत एक निर्णय संभवत: सुसंगत है।

धारा 7 के अंतर्गत – कारण दर्शाना, अवसर।

धारा 8 के अंतर्गत – अभिप्रेरक चरित्र।

धारा 9 के अंतर्गत – सुसंगत तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक तथ्य।

धारा 11 के अंतर्गत – विसंगत तथ्य।

धारा 13 के अंतर्गत – संव्यवहार।

3. दो प्रश्न

I. क्या निर्णय एक तथ्य है?

II. क्या निर्णय एक संव्यवहार है?

6 कलकत्ता 171 एफ.बी.

4. 6 कलकत्ता 171 पर टीका, वह एक तथ्य है पृ. 181

तथ्य:

(1) विवेकों के अनुभवों के योग्य वस्तु की दशा या वस्तु के संबंध की कोई बात

(2) कोई मानसिक दशा जिसके लिए कोई व्यक्ति चैतन्य है।

II. प्रलेख्य साक्ष्य

1. व्यवहार में आने वाला विषय है एक प्रलेख में उल्लिखित अभिकथनों का प्रमाण अर्थात् एक प्रलेख की अंतर्वस्तुओं का प्रमाण। मौखिक साक्ष्य एक पक्ष द्वारा किए गए कथन के साथ बर्ताव करता है।

2. एक प्रलेख की अंतर्वस्तुओं के प्रमाण के संबंध में सर्वोत्तम साक्ष्य की क्या अपेक्षाएं हैं? यह दो अपेक्षाएं हैं –

(i) कुछ मामलों में साक्ष्य प्रलेख होना चाहिए और मौखिक नहीं।

(ii) उन मामलों में जहां साक्ष्य प्रलेख्य होना चाहिए वह साक्ष्य प्राथमिक होना चाहिए।

मामले जिनमें साक्ष्य प्रलेख्य होना चाहिए

1. बहुत से विषय लिखित में लिए जाते हैं। किंतु क्योंकि वे लिख लिए जाते हैं, विधि अपेक्षा नहीं करती है कि हर ऐसे मामले में, वे केवल प्रलेख के प्रस्तुतीकरण प्रस्तुत किए जाने के द्वारा ही प्रमाणित किए जाएंगे।

कुछ मौखिक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित किए जा सकते हैं और अन्य प्रलेख्य साक्ष्य द्वारा ही प्रमाणित होने चाहिए।

2. इस उद्देश्य के लिए यह जानना आवश्यक है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम दो प्रभेद करता है –

(1) प्रलेख जो निवर्तनात्मक अनुरूप हैं और प्रलेख जो अनिवर्तनात्मक अनुरूप है, के मध्य में।

(2) कार्रवाई जो विधि द्वारा लिखित में होनी अपेक्षित की जाती है और वे जो नहीं की जाती हैं, के मध्य में।

3. **निवर्तनात्मक एवं अनिवर्तनात्मक।** निवर्तनात्मक का अभिप्राय है वह कार्यवाही जिनमें पक्षकार अपने अधिकारों का निवर्तन करते हैं, जैसे कि एक संविदा, अनुदान आदि, अनिवर्तनात्मक का अभिप्राय है वह कार्यवाही जिनमें कोई अधिकारों का निवर्तन अंतर्ग्रस्त नहीं है।

4. साक्ष्य अधिनियम में उल्लिखित नियम दो परत वाला है:-

(i) जब एक प्रलेख निवर्तनात्मक है और जब विषय ऐसा है कि विधि अपेक्षा कतार है कि उसे लिखित के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया जाएगा। दूसरे शब्दों में ऐसे मामलों में प्रलेख्य साक्ष्य के स्थान पर मौखिक साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है। किंतु यदि प्रलेख अनिवर्तनात्मक अनुरूप का है तब यह ऐसा है जो विधि द्वारा लिखित में होना अपेक्षित नहीं है तब यद्यपि कार्यवाही के प्रमाण में मौखिक साक्ष्य दिया जा सकता है।

(ii) यदि कार्यवाही एक निवर्तनात्मक कार्यवाही है या ऐसी कोई है जिसका लिखित में होना विधि द्वारा अपेक्षित किया जाता है तब न केवल मौखिक साक्ष्य, प्रलेख्य-साक्ष्य के लिए प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है वरन् प्रलेख के निबंधनों में परिवर्तन करने के लिए संविदा के लिए मौखिक साक्ष्य ग्राह्य नहीं हो सकता है।

5. यह नियम धारा 91-92 में अंतर्विष्ट है।

धारा 91-92 में अंतर्विष्ट हैं नियम के अपवाद

1. इस नियम के अपवाद हैं। वे वर्गों में विभाजित हैं। वे पृथक रखने चाहिए। एक वर्ग उन मामलों के साथ संबंध रखता है जहां प्रश्न है कि क्या मौखिक साक्ष्य, प्रलेख्य साक्ष्य के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है। दूसरा उन मामलों के साथ संबंध रखता है जहां प्रश्न है कि क्या मौखिक साक्ष्य प्रलेख्य साक्ष्य, जहां नियम अपेक्षा करता है कि प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं वरन् परिवर्तित करने के लिए साक्ष्य प्रलेख्य होगा, ग्राह्य हो सकता है।

अपवाद जो प्रलेख्य साक्ष्य के लिए मौखिक साक्ष्य अनुज्ञात करता है।

1. वे धारा 91 में अंतर्विष्ट हैं और निम्नलिखित वादों को समाविष्ट करते हैं।

(i) एक लोक सेवक की नियुक्ति।

(ii) वसीयत संप्रमाण द्वारा प्रमाणित की जा सकती है।

अपवाद जो प्रलेख के निबंधनों को परिवर्तित करने के लिए मौखिक साक्ष्य का दिया जाना अनुज्ञात करते हैं।

1. वे धारा 92 में अंतर्विष्ट हैं और उनके अंतर्गत निम्नलिखित मामले आते हैं।

2. ध्यान देने की प्रथम बात है कि ऐसा साक्ष्य दिया जा सकता है। उन व्यक्तियों द्वारा, जो प्रलेख के प्रति पक्षकार नहीं थे या जो प्रलेख के पक्षकारों के हित के प्रतिनिधि नहीं थे।

3. मामले जिनमें प्रलेख के पक्षकार या उनके हित के प्रतिनिधि मौखिक साक्ष्य दे सकते हैं, निम्नानुसार हैं :-

(i) तथ्य जो एक प्रलेख को अमान्य करेंगे, जैसे कपट, क्षमता का अभाव।

(ii) तथ्य जिन पर प्रलेख मौन है और जो उसके निबंधनों के साथ असंगत हैं।

(iii) पूर्ववर्ती प्रतिबंध।

(iv) मौखिक करार।

(v) प्रथा या रूढ़ि जिनके द्वारा प्रसंगतियां संविदाओं से संलग्न की जाती हैं (बेकर्स डॉजन) परन्तु वह असंगत नहीं हैं।

(vi) तथ्य दर्शाते हुए कि भाषा तथ्यों से किस प्रकार संबंधित है।

मामले जहां प्रलेख्य साक्ष्य का स्पष्टकीरण करने हेतु मौखिक साक्ष्य ग्रहण किए जा सकेंगे।

विधि की दो प्रस्थापनाएं हैं जो प्रलेख्य साक्ष्य से संबंधित सर्वोत्तम साक्ष्य के प्रथम नियम से उद्भूत होती हैं।

1. जहां एक प्रलेख में सम्मिलित कार्यवाही एक अव्ययनात्मक प्रकृति की है या जिसका लिखित में होना विधि द्वारा अपेक्षित नहीं है, उस कार्यवाही का तथ्य मौखिक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित किया जा सकेगा।
2. जहां वह व्ययनात्मक या विधि द्वारा लिखित होना अपेक्षित है तब कार्यवाही को प्रमाणित करने के लिए न केवल मौखिक साक्ष्य दिया जा सकता है वरन् प्रलेख में सम्मिलित कार्यवाही के अनुबंधों का खंडन परिवर्तन या संशोधन करने के लिए भी साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है।
3. तो भी एक प्रश्न बाकी रहता है। क्या प्रलेख्य साक्ष्य का स्पष्टीकरण करने के लिए मौखिक साक्ष्य दिया जा सकता है? यह एक प्रभिन्न प्रश्न है और उस प्रश्न से पृथक किया जाना चाहिए कि क्या प्रलेख्य साक्ष्य के अनुबंधों/संविदा आदि को परिवर्तित करने के लिए साक्ष्य दिया जा सकता है।

4. यह प्रश्न 93-100 तक की धाराओं में व्यवहारित किया गया है।
5. प्रलेख्य साक्ष्य के व्यवहार में तीन अभियोगी विषयों पर विवाद उद्‌भूत हो सकेगा।

(i) वर्तमान तथ्य के प्रलेख की भाषा की प्रयुक्ति या अप्रयुक्ति के संबंध में विवाद।

(ii) प्रलेख के अर्थ के संबंध में विवाद जहां उसमें उपयोग की गई भाषा संदिग्ध

या सदोष है।

(iii) प्रलेख में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ के संबंध में विवाद।

1. प्रथम के अंतर्गत विवाद के तीन संभव मामले हैं -

(1) जहां भाषा तथ्यों के लिए यथार्थतः प्रयुक्त की जाती है और प्रतिवाद यह है कि वह प्रयुक्त करने के अर्थ में नहीं थी - प्रतिवाद के समर्थन में साक्ष्य नहीं दिया जा सकेगा यह जाहिर करने के लिए कि वह वर्तमान तथ्यों के लिए प्रयोग करने के तात्पर्य से नहीं थी जिसके लिए वे प्रयुक्त होते ही हैं। - धारा 94

(2) जहां भाषा वर्तमान तथ्यों में से एक पर प्रयुक्त होती है किंतु उन सबके लिए नहीं - और प्रतिवाद है कि वह एक विशिष्ट तथ्य के प्रति प्रयुक्त होती है - प्रतिवाद के समर्थन में साक्ष्य दिया जा सकेगा, यह बताने के लिए कि किस विशेष तथ्य के प्रति उसका प्रयोग किया जाना अभिच्छित था।

(3) जहां भाषा अंशतः तथ्यों के एक संवर्ग पर प्रयोग होती है और अंशतः एक दूसरे तथ्यों के संवर्ग पर और प्रतिवाद है कि वह एक संवर्ग पर प्रयुक्त होती है एवं दूसरे पर नहीं। प्रतिवाद के समर्थन में साक्ष्य दिया जा सकेगा यह बताने कि दोनों में से जिस पर वह प्रयुक्त होने को थी। - धारा 97

1. विवादों के दूसरे शीर्षक के अंतर्गत दो संभव मामले हैं :

(i) जहां भाषा संदिग्ध या सदोष है और प्रतिवाद है कि पक्षकारों का एक विशेष बात से अभिप्राय है - प्रतिवाद के समर्थन में उसके तात्पर्य को दर्शित करने या उसके दोषों को प्रस्तुत करने हेतु साक्ष्य नहीं दिया जा सकेगा। - धारा 93

(ii) जहां भाषा स्वतः सरल है किंतु विद्यमान तथ्यों के संदर्भ में निरर्थक है और प्रतिवाद है कि वह एक विशेष बात को इंगित करने हेतु अभिप्रेत थी - प्रतिवाद के समर्थन में जिससे संबंधित थी, को दर्शाने के लिए साक्ष्य दिया जा सकेगा। - धारा 95

3. विवादों के तीसरे शीर्षक के अंतर्गत निम्नलिखित मामला खड़ा होता है।

(i).................. (पांडुलिपि में स्थान खाली छोड़ा गया है - संपादक)

अप्रत्यक्ष संदिग्धता एवं प्रत्यक्ष संदिग्धता में अन्तर।

II. एक प्रलेख के विषय को किस प्रकार प्रमाणित किया जाए?

1. एक प्रलेख के विषय संबंध में प्रमाण के सर्वोत्तम साक्ष्य के नियम की क्या अपेक्षाएं हैं?

2. जैसा कि साक्ष्य अधिनियम में निर्धारित है इस संबंध में दो अपेक्षाएं हैं।

(i) एक प्रलेख के विषय को प्राथमिक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित करना चाहिए।

(ii) प्रलेख की यथार्थता को प्रमाणित करना चाहिए।

प्राथमिक साक्ष्य का क्या तात्पर्य है?

धारा 62

1. न्यायालय के निरीक्षण के लिए स्वत: प्रलेख को प्रस्तुत किया जाना प्राथमिक साक्ष्य का तात्पर्य है।

स्पष्टीकरण:-

(पांडुलिपि में स्थान खाली छोड़ा गया है - संपादक)

किस प्रकार प्रमाणित किया जाए कि प्रलेख यथार्थ है?

1. यथार्थता को प्रमाणित करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य प्रलेखों को दो वर्गों में विभाजित करता है। (1) सार्वजनिक प्रलेख और (2) निजी प्रलेख।
2. सरकारी प्रलेख धारा 74 में परिभाषित किया गया है।
3. धारा 75 घोषित करती है कि प्रलेख जो सरकारी प्रलेख नहीं है, निजी प्रलेख हैं।
4. एक प्रलेख की यथार्थता को प्रमाणित करने के लिए नियम, सरकारी प्रलेख या एक निजी प्रलेख है, के अनुसार अंतर करते हैं।
5. एक लोक-प्रलेख की यथार्थता को प्रमाणित करने की विधि धारा 76-78 में अभिव्यक्त है।
6. एक निजी प्रलेख की यथार्थता को प्रमाणित करने की विधि धारा 67-75 में अभिव्यक्त है।
7. निजी प्रलेखों को सामान्यत: हस्तलेखन, हस्ताक्षर या निष्पादन जैसे मामले में साक्ष्य के साथ संयोजित मूल के प्रस्तुतीकरण द्वारा प्रमाणित करना चाहिए।

अपवाद:- संप्रमाणन द्वारा प्रमाणित किया जा सकेगा।

8. सरकारी प्रलेखों की यथार्थता या तो धारा 77 के अंतर्गत प्रमाणित प्रतिलिपियों के प्रस्तुतीकरण द्वारा या यदि वे धारा 78 में वर्णित प्रकार के प्रलेख हों तो उस धारा में निर्धारित विभिन्न विधियों में, प्रमाणित की जा सकेगी।

9. एक प्रलेख की यथार्थता के भार के संबंध में कि क्या वह सरकारी या निजी है साक्ष्य अधिनियम कुछ धारणाएं अधिनियमित करता है, जो धारा 79-90 में अंतर्विष्ट हैं यद्यपि वे निर्णायक धारणाएं नहीं हैं।

10. ये धारणाएं निम्न वर्गों में आती हैं:-

(1) वे जिनमें न्यायालय धारणा करेगा। 79-85 एवं 89

(2) वे जिनमें न्यायालय धारणा कर सकेगा। 86-88 एवं 90

प्राथमिक साक्ष्य कब समाप्त किए जाते हैं?

(पांडुलिपि में स्थान खाली छूटा हुआ है - संपादक)

किस प्रकार एक प्रलेख के विषयों को प्रमाणित किया जाता है जहां प्राथमिक साक्ष्य संपन्न किया जाता है?

1. गौण साक्ष्य द्वारा।

(पांडुलिपि में स्थान खाली छूटा हुआ है - संपादक)

साक्ष्य क्या है?

(पांडुलिपि में स्थान खाली छूटा हुआ है - संपादक)

प्रमाण का भार

1. विधि अपेक्षा करता है कि जिस व्यक्ति पर साक्ष्य का भार रखा जाता है वह उसको उन्मोचित करे।

2. इस प्रमाण के भार को उन्मोचित करने में निम्नोक्त विचारों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए :-

(i) ऐसे मामले हैं जिनका प्रमाण अपेक्षित नहीं होता।

(ii) ऐसे मामले हैं जिनका प्रमाण अनुमत नहीं किया जाता।

3. (i) के अंतर्गत भार हल्का किया जाता है जबकि (ii) के अंतर्गत उसका भार बढ़ाया जाता है।

प्रमाण का भार

(i) मामले जिनका प्रमाण विधि द्वारा अपेक्षित नहीं है

1. मामले, जिनका प्रमाण विधि द्वारा अपेक्षित नहीं है, तीन शीर्षकों के अंतर्गत आते हैं:-

(अ) मामले जो न्यायिकत: जाने जाते हैं।

(ब) मामले जो पक्षकारों द्वारा स्वीकार किए जाते हैं।

(स) मामले जिनके अस्तित्व को विधि द्वारा अनुमानित किया जाता है।

मामले जो न्यायिकतः जाने जाते हैं

1. धारा 56 और 57 उन तथ्यों के साथ व्यवहार करती हैं जो न्यायिकतः जाने जाते हैं। धारा 57 तेरह मामलों का गणन करती है जिन पर न्यायिक ध्यान देना चाहिए।

धारा 56 कहती है कि कोई तथ्य जिस पर न्यायालय न्यायिक ध्यान देगा को साक्ष्य द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है। पक्षकार एक तथ्य जो, धारा 57 के अंतर्गत जिस पर न्यायिक ध्यान देना चाहिए के अंतर्गत आने वाले मामलों में से किसी एक के अंतर्गत आती है, को प्रमाणित करने हेतु कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने के भार से मुक्त किए जाते हैं।

2. *धाराओं के मूल में सिद्धांत* :- कुछ मामले इतने विख्यात हैं और इतने स्पष्टतः प्रस्थापित हैं कि यह आग्रह करना व्यर्थ होगा कि वे साक्ष्य द्वारा प्रमाणित किए जाने चाहिए।

दृष्टांतः-

1. शत्रुता का आरंभ और निरंतरता।
2. देश के भौगोलिक विभाजन।

ये तथ्य इतने विख्यात हैं कि साक्ष्य द्वारा उनका प्रमाण अनावश्यक है।

3. धारा 57 में आगणित मामले।

(i) विधि का बल रखने वाले नियम

बहुत से अधिनियम स्थानीय अधिशासन को इस अधिनियम के अनुबंधों को प्रभावी रूप में क्रियान्वित करने का नियम बनाने और घोषित करने कि ऐसे नियम विधि की शक्ति रखेंगे, की शक्ति देने वाली एक धारा अंतर्विष्ट करते हैं। अर्थात् भारतीय शासन अधिनियम के अधीन बनाए गए नियम ऐसे नियम इस धारा के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।

2. नियम, विधि और रूढ़ि जो विधि के स्रोत हैं की शक्ति रखने वालों के बीच एक प्रभेद अवश्य करना चाहिए। हिंदू विधि का बड़ा भाग रूढ़ि पर आधारित है। किंतु न्यायालय एक रूढ़ि को कानूनी रूप से नहीं देखेगा। पक्षकार जो रूढ़ि पर निर्भर है उन्हें रूढ़ि के अस्तित्व को अवश्य प्रमाणित करना चाहिए। जब पक्षकार ने रूढ़ि के अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया है तो न्यायालय इस पर सोच-विचार करेगा, यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वह एक वैध रूढ़ि है।

3. यह सत्य है कि कुछ रूढ़ियां हैं जिनके प्रमाण के लिए न्यायालय साक्ष्य की

अपेक्षा नहीं करता है। किंतु वह इस कारण नहीं कि न्यायालय उस पर कानूनी रूप से सोच-विचार करने को बाध्य है। न्यायालय औपचारिक प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता क्योंकि पूर्व निर्णय के नियम से न्यायालय एक रूढ़ि का समर्थन करने को बाध्य है, जिसकी विद्यमानता एवं वैधता एक न्यायालय जिसके वह अधीन है के द्वारा एक पूर्व निर्णय में मान्यता प्रदान की जा चुकी है।

(ii) परिनियम

संसद के द्वारा पारित संविधियां या तो सामान्य होती हैं या विशेष। एक सामान्य संविधि अपनी प्रयुक्ति में सार्वभौमिक है और सभी व्यक्तियों और राज्यक्षेत्रों तक विस्तृत है।

एक विशेष संविधि या तो स्थानीय या वैयक्तिक और विशेष व्यक्तियों और वैयक्तिक संबंधों पर कार्यशील होती है।

2. संसद के सभी अधिनियम सार्वजनिक समझे जाते हैं जब तक कि उनको प्रतिकूल घोषित नहीं किया जाता है - धारा 13, 14 विक्टो. सी. 21

3. सभी सार्वजनिक अधिनियमों को न्यायिक रूप से अवश्य देखना चाहिए। न्यायालय एक वैयक्तिक अधिनियम की न्यायिक जानकारी लेने को बाध्य नहीं है जब तक कि विशेष निजी अधिनियम उसमें न हो। यदि उसमें ऐसा निर्देशन नहीं है, तो पक्षकार को सिद्ध करना चाहिए कि निजी अधिनियम जिस पर विश्वास किया जा रहा है संसद का अधिनियम है।

(iii) युद्ध के भारतीय अनुच्छेद

यह महामहिम की भारतीय सेना में स्थानीय अधिकारी सैनिकों और अन्य व्यक्ति के लिए अनुशासन के नियम हैं। वे 1911 के भारतीय सेना अधिनियम में समाहित हैं।

1. संसद और परिषद की कार्यवाहियों का क्रम।

1. कार्यवाहियों का क्रम, स्वतः कार्यवाहियों से प्रारंभ किया जाना चाहिए।

2. न्यायालय कार्यवाही के क्रम की न्यायिक अधिसूचना लेगा और कार्यवाही की नहीं।

विदेशी राज्य

न्यायालय इस बात की न्यायिक अधिसूचना लेगा कि एक विदेशी राज्य महामहिम द्वारा या वायसराय की परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त है या नहीं।

युद्ध स्थिति

विदेशी राज्यों के बीच युद्ध स्थिति की विद्यमानता की न्यायिक अधिसूचना नहीं ली जाएगी।

भूमि या समुद्र पर सड़क के नियम

अंतिम पैरा का प्रभाव।

1. कुछ परिस्थितियों के अधीन न्यायालय न्यायिक अधिसूचना लेना अस्वीकार कर सकता है, उन मामलों में जिनकी अधिसूचना लेने को वे बाध्य हैं।

2. न्यायालय को न्यायिक अधिसूचना लेने के लिए सक्षम बनाने हेतु पक्षकार आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है।

दृष्टांत:-

यदि पक्षकार न्यायालय से न्यायिक अधिसूचना लेने की अपेक्षा करता है तो राजपत्र अवश्य प्रस्तुत करना चाहिए।

प्रमाण की विधि

1. प्रमाण की विधि के संबंध में सामान्य नियम इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

विधि, साक्ष्य दिए जाने की अपेक्षा करती है, एक व्यक्ति द्वारा -

(i) जो न्यायालय में उपस्थित है।

(ii) जो एक साक्षी के रूप में विधिकत: सक्षम है।

(iii) शपथ या सत्य प्रतिज्ञान पर।

(iv) परीक्षण के नियमित क्रम में।

(v) तथ्यों की प्रतिकूलता के अधीन।

(vi) सत्यता के संबंध में अविश्वास के अधीन।

(i) न्यायालय में उपस्थिति:-

1. न्यायकरण के लिए आवश्यक हो सकने वाले अपनी जानकारी के अंतर्गत ऐसे तथ्यों को प्रमाणित करने के लिए उपस्थित होना नागरिकों का कर्त्तव्य है। यह एक कर्त्तव्य है जो सामान्य विधि द्वारा एक प्रारंभिक काल से मान्यता प्राप्त है और लागू की जाती है।

2. साक्षियों की उपस्थिति को बाध्य करने का अधिकार सामान्य विधिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के लिए आनुषंगिक था और संविधियां इस अधिकार को अन्य अधिकारियों जैसे कि मध्यस्थों को प्रदान करती हैं। प्रत्येक न्यायालय किसी वाद में निश्चित रूप से सुनने और निर्धारित करने का अधिकार रखते हुए, अपने समक्ष साक्षियों की उपस्थिति को बाध्य कर और इस हेतु सम्मन देने और विवादित तथ्यों के सम्यक प्रमाण के लिए बुलाने का सामान्य विधि द्वारा अधिकार रखता है।

3. उपयुक्त एवं युक्तियुक्त शास्ति लेख के निर्वहन और सिविल मामलों में शोधन के अधित्याग का साक्षियों के शुल्क को देने या शोधन के बाद उपस्थित होने और साक्ष्य देने में जानबूझकर उपेक्षा करना न्यायालय की अवहेलना करना है।

4. साक्ष्य अधिनियम में साक्ष्य देने या प्रलेखों को प्रस्तुत करने के लिए साक्षियों को बाध्य करने की प्रक्रिया का प्रावधान नहीं है। यह सिविल एवं दंड प्रक्रिया संहिताओं में प्रावधानित है।

5. सिविल एवं दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा उपलब्ध कराए गए मामले निम्नलिखित हैं:-

(i) साक्षियों का आह्वान

सिविल प्रक्रिया संहिता आदेश XII (द्वादश)

दंड प्रक्रिया संहिता (धारा) 68-74 (सम्मन)

90-93 (प्रक्रिया संबंधी अन्य अधिनियम)

धारा 328 (जूरर या असेसर पर सम्मन)

244 सम्मन मामलों में प्रक्रिया का निर्णय

धारा 254 (वारंट मामलों में)

धारा 256

धारा 257

धारा 540 (उपस्थित व्यक्ति के परीक्षण पर सारभूत साक्षियों के सम्मन का अधिकार)

(ii) प्रलेख एवं अन्य वस्तुओं के प्रस्तुतीकरण:-

सिविल प्रक्रिया संहिता आदेश XI, XVI

दंड प्रक्रिया संहिता धारा (94-95 प्रलेख एवं अन्य वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए सम्मन।

96-99 (अन्वेषण अधिपत्र) (सर्च-वारंट)

485 (प्रस्तुत करने की अस्वीकृति के परिणाम)

III. साक्षियों के व्ययः

सिविल प्रक्रिया संहिता आदेश (XVI) रि. 2-4

खंड प्रक्रिया संहिता धारा 244-257

IV. दंड मामलों में परिवादियों एवं साक्षियों की पुलिस कैद से स्वतंत्रता

दंड प्रक्रिया संहिता 171

V. दंड कार्यवाहियों में परिवादियों एवं साक्षियों की उपस्थिति के लिए मान्यता।

दंड प्रक्रिया संहिता 217, 170

टिप्पणी – सिविल मामलों में प्रावधानित नहीं।

VI. सिविल प्रक्रिया में बंदीकरण से साक्षियों की विमुक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता धारा – 135

टिप्पणी: दंड प्रक्रिया में कोई संरक्षण नहीं दिया गया है।

6. न केवल साक्षी को सम्मन करने का प्रावधान है, बल्कि उसकी उपस्थिति को बाध्य करने के लिए भी प्रावधान है।

(1) एक सम्मन के आज्ञापालन में अनुपस्थिति धारा 174, 175 दंड प्रक्रिया संहिता के द्वारा अपराध करार दी जाती है।

(2) एक सम्मन के आज्ञापालन में अनुपस्थिति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 75-86 के अंतर्गत गिरफ्तारी के अधिपत्र (वारंट) द्वारा और धारा 87-89 के अंतर्गत मुनादी एवं कुर्की के द्वारा अनुसरित की जा सकेगी।

(3) 1885 के XIX अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत और बॉम्बे एवं मद्रास में लागू 1855 के X अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत अनुपस्थिति एक साक्षी को सिविल कार्यवाही में उत्तरदायी बना सकेगी। (बंगाल में लागू है)। 24 डब्ल्यू.आर. 72

7. यद्यपि विधि साक्षी के रूप में सम्मानित व्यक्तियों की वैयक्तिक उपस्थिति की अपेक्षा करती है तो विधि कुछ मामलों में अनुपस्थिति को माफ भी करती है।

(i) निश्चित सीमाओं के अंतर्गत न रहने के कारण।

सिविल प्रक्रिया संहिता आदेश XVI आर. 19

(ii) साक्षी पर्दानशीन महिला होने के कारण।

सिविल प्रक्रिया संहिता, धारा 132

(iii) साक्षी एक पदवीधारी व्यक्ति होने के कारण।

सिविल प्रक्रिया संहिता, धारा 133

साक्षी साक्ष्य देने के लिए सक्षम होना चाहिए।

1. एक व्यक्ति की सक्षमता का प्रश्न दो दृष्टिकोणो से विचारणीय है।

(1) उसकी बौद्धिक क्षमता के दृष्टिकोण से।

(2) उसकी सत्यवादिता के दृष्टिकोण से।

I. प्रथम बौद्धिक क्षमता के दृष्टिकोण से सक्षमता

1. धारा 118 बौद्धिक क्षमता के प्रश्न के साथ व्यवहार करती है।

2. धारा 118 में अधिनियमित नियम, एक नियम है, जो *केवल* सक्षमता के परीक्षण के रूप में समझने की शक्ति को मान्यता प्रदान करता है।

3. चूंकि हर एक सामान्य व्यक्ति बातों को समझने और उनके महत्त्व को जानने की बौद्धिक क्षमता रखता है, धारा 118 घोषित करती है कि सभी व्यक्ति जब तक कि वे समझदारी की कमी से दु:खी नहीं है, साक्ष्य देने के लिए सक्षम है।

4. अत: सक्षमता की विधि वास्तव में असक्षमता की विधि है। एक व्यक्ति सक्षम साक्षी है, जो असक्षम नहीं है।

5. अत: असक्षमता का अभिप्राय है समझदारी की कमी। यह समझदारी की कमी उद्भूत हो सकती है, इनसे -

(i) कम आयु

(ii) अत्यधिक बुढ़ापा

(iii) शरीर या मन की बीमारी

(iv) इसी प्रकार का कोई अन्य कारण

6. *टिप्पणी:-*

(i) कम आयु या (ii) अत्यधिक बुढ़ापा-परिभाषित नहीं है।

एक 7 वर्ष का लड़का असक्षम नहीं हो सकता वरन् 12 का हो सकता है यदि पहला समझ रखता है जबकि दूसरा नहीं। 60 वर्ष का एक मनुष्य असक्षम हो सकता है और 80 वर्ष का मनुष्य नहीं।

आयु मापदंड नहीं है। मापदंड समझदारी का होना या न होना है।

(iii) शारीरिक बीमारी

एक साक्षी ऐसी अत्यधिक पीड़ा में हो सकता है जिससे कि वह समझने के अयोग्य हो या प्रश्न का उत्तर देने की समझ के योग्य हो। वह मानो एक अचेतनकारी मिरगी, मूर्म या इसी प्रकार से बेहोश हो सकता है। यहां फिर तथ्य का वह एक प्रश्न है कि क्या एक विशेष मामले में शरीर की बीमारी ऐसी है जो कि व्यक्ति को उसकी समझने की शक्ति से वंचित करने वाली हो।

(iii) मानसिक बीमारी -

1. यह एक मूढ़मति और एक पागल के मामले का चिंतन करती है, दोनों ही मानसिक बीमारी से ग्रस्त हैं।

2. एक मूढ़मति वह व्यक्ति है, जो अविवेकी, विवेकशक्ति रहित जन्मा है। एक पागल वह व्यक्ति है, जो जन्मा तो विवेकी है, बाद में अविवेकी हो गया है, और अपनी विवेक शक्ति खो चुका है।

3. एक पागल या तो एकोन्मादी होता है या किसी समय पर उन्मादी होता है। उसके ऐसा होने पर, एक पागल असक्षम नहीं होता है मात्र इसलिए क्योंकि वह एक पागल है। पागलपन का तात्पर्य समझदारी का संपूर्ण उन्मूलन नहीं है। यदि वह सामान्य पागलपन है, वह अंतरालों पर सुबोध हो सकेगा। यदि वह एक एकोन्मादी है, अन्य मामलों के बारे में उसकी समझ स्पष्ट हो सकती है।

दृष्टांत - आंशिक पागलपन का -

1. पागलखाने में हत्या का विचार-विमर्श।

2. एक व्यक्ति का उसके पागल मित्र के साथ पागलखाने में साक्षात्कार और उस समय उसकी आलोचना।

दृष्टांत - उन्मादी का -

1. आर.वी. हिल-हिल हत्या के लिए अनुवीक्षित किया गया था। डॉनेली साक्षी-पागल-भ्रम से आग्रस्त था कि उसके आसपास 20,000 प्रेत हैं जो उससे निरंतर बात करते रहते हैं।

ऐसा होने पर एक पागल एक सक्षम साक्षी हो सकता है। यह स्पष्टीकरण में मान्यता प्राप्त है।

(iv) कोई अन्य कारण -

इसका अभिप्राय है, एक व्यक्ति को उसकी समझने की शक्ति से वंचित करने का कोई अन्य कारण जैसे - नशे में होना।

इन अयोग्यताओं में किसी कारण के साथ सह-विस्तृणीय है, अत: जब कारण हटा दिया जाता है, साक्षी सक्षम हो जाता है।

जैसे - जब पीड़ा समाप्त हो जाती है।

मदहोशी समाप्त हो जाती है।

पागलपन समाप्त हो जाता है।

अर्थात् साक्षी में समझदारी है या नहीं, एक मामला है जो न्यायालय द्वारा साक्षी से प्रश्न किए जाने से निर्धारित किया जाता है।

एक साक्षी के रूप में अभियुक्त

1. वे सभी व्यक्ति जो समझदार हैं, साक्षी के रूप में सक्षम हैं, इस नियम का एक

अपवाद है। वह है कि एक अभियुक्त व्यक्ति एक दंड–वाद में जिसमें वह अनुवीक्षित किया जा रहा है, को साक्षी के रूप में परीक्षित नहीं किया जा सकता है।

शारीरिक बीमारी का एक मामला है जो समझदारी के दिमाग को प्रभावित नहीं करती है। मूकता ऐसी ही एक बीमारी है।

धारा 119 ऐसे ही एक साक्षी के विषय में बतलाती है। धारा उसका असक्षम होना घोषित नहीं करती है। दूसरी ओर वह उसको एक सक्षम के रूप में मानती है, और उसको खुले न्यायालय में किसी भी ढंग से लिखित रूप में या संकेतों द्वारा साक्ष्य देने की अनुमति देती है।

साक्षी की सत्यवादिता के दृष्टिकोण से सक्षमता

1. अभिप्रेरक, जो सत्य बोलने से एक व्यक्ति को रोकते हैं, जीवन के साधारण कार्यों की तुलना में न्यायिक कार्यवाहियों में अधिक हैं, इस तथ्य के कारण कि न्यायिक कार्यवाही के परिणाम की आज्ञा नहीं की जा सकती है और एक पंच की अनौपचारिक कार्यवाहियों से कहीं अधिक एक ढंग में बाध्यकारी हैं। फलतः विधि एक मामले में एक समय पर बहुत से लोगों को बौद्धिकतः सक्षम, असक्षम कर देगी।

2. पूर्वतः अतः, असक्षमता के लिए न केवल मानसिक अक्षमता एक अच्छा आधार थी वरन् *हित* भी असक्षमता का एक आधार था। कारण था कि एक हितधारी व्यक्ति सच नहीं बोलेगा। फलस्वरूप एक समय, निम्नोक्त व्यक्ति असक्षम समझे जाते थे।

1. मुकदमे के पक्षकार।
2. एक दूसरे के विरुद्ध पति एवं पत्नी।
3. स्वयं के विरुद्ध अभियुक्त।
4. एक सह अपराधी।

3. विधि का यह दृष्टिकोण अब प्रवर्तित है और सिद्धांत परिवर्तित हो गया है। सक्षमता या असक्षमता का प्रश्न, विश्वसनीयता या अविश्वसनीयता में परिवर्तित हो चुका है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति साक्ष्य देने के लिए सक्षम बना दिया गया है, किंतु उसका विश्वास करना या अविश्वास करना यह न्यायालय पर छोड़ दिया गया है।

4. यह नया सिद्धांत धारा 120 और 133 में समाहित कर दिया गया है।

धारा 120

I. *सिविल कार्यवाहियां*

(i) मुकदमे में पक्षकार सक्षम साक्षी हैं।

(ii) मुकदमे के कि भी पक्ष के पति एवं पत्नी सक्षम साक्षी हैं।

II. *दंड कार्यवाहियां*

अभियुक्त के पति या पत्नी या तो पक्ष या विपक्ष के लिए एक सक्षम साक्षी है।

धारा 133

1. यह धारा एक सह–अपराधी की सक्षमता के साथ लागू होती है। एक सह–अपराधी का साक्ष्य तीन कारणों से अविश्वसनीय निर्धारित है:

(i) क्योंकि एक सह–अपराधी का स्वयं के अपराध को दूसरे पर मढ़ने के क्रम में असत्यतः शपथ लेना संभव है।

(ii) क्योंकि एक सह–अपराधी अपराध में सहभागी और दुष्चरित्र व्यक्ति के रूप में, संभवतः शपथ की अवहेलना करने वाला होता है।

(iii) क्योंकि वह एक वायदे के अधीन या अभियोजित न होने की आशा में अपना साक्ष्य देता है, यदि वह अपने सहभागियों के विरुद्ध एवं वह जो जानता है, सब प्रकट करता है।

2. बल्कि यह मुख्य अपराधियों को न्याय के लिए लाने को ऐसे साक्ष्य की शरण लिए बिना असंभव होने पर, आवश्यकतावश उसके साक्ष्य को ग्रहण किया जााता है।

अपराधियों और व्यक्तियों के साक्ष्य के मूल्य के बीच अंतर

1. सह–अपराधी से अन्य व्यक्ति न केवल सक्षम हैं वरन् विश्वसनीय भी हैं। दूसरी तरह एक सह–अपराधी, केवल सक्षम है किंतु विश्वसनीय नहीं है।

2. साक्षीगण न्यायाधीश की दृष्टि में अविश्वसनीय हो सकते हैं, किंतु वे विधि की दृष्टि से अविश्वसनीय नहीं है। एक सह–अपराधी विधि द्वारा उससे संलग्नित एक सांविधिक अविश्वसनीयता रखता है।

3. यह सांविधिक अविश्वसनीयता, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्टांत (ब) से उद्भूत होती है। यह धारणा अधिनियम द्वारा अनुमोदित है और यद्यपि यह खंडनीय है, वह एक विधि की भूल होगी लेकिन आज्ञा करना नहीं होगी।

4. इस सांविधिक अविश्वसनीयता को संलग्नित करने के लिए यह निर्धारित करना आवश्यक होगा, कि क्या साक्षी एक सह–अपराधी है। शब्द परिभाषित नहीं है।

(i) एक सह–अपराधी एक व्यक्ति है जो एक अपराध के कृतकरण में एक दूसरे या अन्य से संबंधित है। वह एक सहभागी है। किंतु एक अपराध में प्रत्येक सहभागिता नहीं है जो एक सह–अपराधी बनाती है। यह अपराध की प्रकृति और उसमें साक्षी की सह–आपराधिकता के विस्तार पर अधिक निर्भर करती है। 5 डब्ल्यू.आर. कृ. 59

(ii) एक सह–अपराधी वह एक व्यक्ति है जो अपराध में संयुक्त अपराधी है

या जो अपराधिक कार्य से ऐसा एक संबंध रखता है कि वह समुचित रूप से, अभियुक्त, जो अनुवीक्षित किया जा रहा है, के साथ किया जा सकता है। *27 मद्रास, 271*

धारा 120 एवं 133 का प्रभाव

1. धाराएं साक्ष्य देने को सक्षम होने के रूप में खास व्यक्तियों की गणना करती है। प्रश्न है, क्या अन्य व्यक्ति सक्षम नहीं है? धारा अभिप्राय से समझी जाने वाली नहीं है कि केवल ये ही व्यक्ति सक्षम है और अन्य नहीं है। धाराओं का प्रभाव है कि सभी व्यक्ति, उन धाराओं 120 एवं 133 में वर्णित को समाविष्ट करते हुए, सक्षम हैं।

2. इन वर्गों के साथ विशिष्टत: व्यवहार करना क्यों आवश्यक है। कारण है क्योंकि पूर्ववर्ती विधि में वे असक्षम थे। उनके प्रति लगा प्रतिबंध हटाया जाना था, अत: उनसे संबंधित विशिष्ट अनुबंध हैं। व्यक्तियों के अन्य वर्ग पहले से ही सक्षम समझे जाते थे और इसलिए उनके संबंध में कुछ भी कहना अनावश्यक था।

3. धारा 120 एवं 133 का प्रभाव यह है कि न केवल

(1) मामलों के पक्षकार।

(2) पति एवं पत्नी।

(3) सह अपराधी।

सक्षम साक्षी हैं वरन्

(1) जूरी एवं असेसर - धारा 294 भा.दं.प्र.सं.

(2) एक वसीयत का निष्पादक

(3) एक पक्षकार के लिए अधिवक्ता

एक मामले में जिसके वे पक्षकार हैं, में सक्षम साक्षी हो सकते हैं, यद्यपि वह एक मामले में जिसमें वे हितधारक हैं, भी एक कारण है।

साक्ष्य, शपथ पर ही दिया जाना चाहिए

1. शपथ भारतीय साक्ष्य अधिनियम की एक आवश्यकता नहीं है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम से छूट एक साक्षी का साक्ष्य विधिक साक्ष्य होगा, यद्यपि साक्षी द्वारा बिना शपथ लिए साक्ष्य दिया गया था।

2. शपथ 1873 के दशम् भारतीय शपथ अधिनियम की अपेक्षा है। शपथ अधिनियम की धारा 5 निर्धारित करती है।

1. यह कि शपथ प्रतिज्ञान निम्नोक्त व्यक्तियों द्वारा की जाएगी।

(अ) सभी साक्षीगण।

(ब) व्याख्यातागण।

(स) जूरीगण।

धारा 6 – एक व्यक्ति जो शपथ का प्रतिज्ञान करने का प्रतिवाद करता है को अनुज्ञात करती है।

4. धारा 14 – किसी न्यायालय या प्राधिकृत व्यक्ति के समक्ष शपथ या प्रतिज्ञान होने पर साक्ष्य देने वाला प्रत्येक व्यक्ति ऐसे विषय पर सत्य व्यक्त करने के लिए बाध्य होगा।

5. तीन प्रश्न हैं जो विचार के लिए उठते हैं।

(1) क्या एक न्यायालय, एक साक्षी को शपथ या प्रतिज्ञान कराना अस्वीकार कर सकती है?

(2) क्या एक पक्षकार, शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना अस्वीकार कर सकता है?

(3) एक साक्षी द्वारा शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से इन्कार और एक न्यायालय की शपथ कराने में असफलता का प्रभाव।

प्रश्न 1 का उत्तर। शपथ दिलाना न्यायालय का सांविधिक कर्त्तव्य है।

यह एक गुण है, जैसे न्यायालय, एक व्यक्ति जो सक्षम है को साक्ष्य दिलाने के लिए बाध्य है और एक व्यक्ति जो असक्षम है को दिलाने के लिए बाध्य नहीं है, अर्थात् एक बच्चा।

6 पट. एल.जे. 147

प्रश्न 2 का उत्तर। उत्तर धारा 12 में दिया गया है। पक्षकार बनाने के लिए विवश नहीं किया जाएगा। किंतु न्यायालय को उसके द्वारा इन्कार एवं दिए गए कारणों, यदि कोई हो, का एक लेखा जोखा बनाना है।

प्रश्न 3 का उत्तर –

भाग I – पक्षकार के शपथ लेने या (1) प्रतिज्ञान करने से इन्कार करने का प्रभाव,

(2) ऐसा इन्कार केवल साक्ष्य की उपयोगिता को प्रभावित करता है।

भाग II – न्यायाधीश को शपथ देने में असफलता का प्रभाव।

(1) साक्ष्य ग्राह्य रहता है।

(2) सत्य बोलने की जिम्मेदारी रहती है।

6. भारत में शपथ अधिनियम की धाराएं इतनी दृढ़ नहीं हैं जैसे इंग्लैंड में हैं।

(1)शपथ सत्य बोलने के दायित्व के लिए एक आवश्यक प्रतिबंध नहीं है। मात्र

एक साक्षी को उसके अनुमोदन का स्मरण कराने के लिए आवश्यक है।

(2) भारतीय अधिनियम स्मरण कराने या शपथ न लेने की असफलता को अनदेखा करता है। आंग्ल विधि साक्ष्य को अग्राह्य बनाता है।

(IV) परीक्षा का अनुक्रम

1. दो संभव रास्ते हैं जिनमें एक साक्षी साक्ष्य दे सकता है।

(i) तथ्यों को वर्णित करके।

(ii) उससे किए गए प्रश्नों के उत्तर देकर।

2. साक्ष्य अधिनियम प्रावधान करता है कि एक साक्षी का साक्ष्य परीक्षण के रूप में लिया जाएगा, वर्णन के रूप में नहीं। कारण है कि विधि, प्रासंगिकता के नियमों से अन्वेषित होने वाले साक्ष्य देने की पद्धति के रूप में परीक्षण को क्यों वरीयता देती है। एक व्यक्ति विषयों, जो सुसंगत हैं का साक्ष्य देने को अनुज्ञात किया जाता है। वह विवाद्यक से संबंधित सभी विषयों का साक्ष्य देने को अनुज्ञात नहीं है। विषय जो विवाद्यक से संबंधित हैं विवाद्यक से आवश्यकत: सुसंगत नहीं हैं और साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत यह न्यायाधीश का निर्णय करने का कर्त्तव्य है कि क्या कोई विशेष तथ्य सुसंगत या असंगत है और उसी समय असंगत को वर्जित कर देगा।

यदि एक साक्षी को उसका साक्ष्य, वर्णन के रूप में देने के लिए अनुज्ञात किया जाता है तो दो बातें घटित होंगी:-

(i) साक्षी पूरी संभाव्यता में सभी सुसंगत, साथ ही साथ संबंधित सभी तथ्यों को बताएगा और यह असंगत विषयों को सन्निविष्ट करेगा, और

(ii) कार्यवाही जिसे एक न्यायाधीश लेने के योग्य हो सकेगा असंगत विषयों को वर्जित करना घटनोत्तर होगा।

दूसरी ओर, यदि साक्षी प्रश्नों के उत्तरों के रूप में उसका साक्ष्य देने के लिए अपेक्षित था, दो लक्ष्य उपलब्ध होंगे:-

(i) उसका साक्ष्य भटकने के लिए अनुज्ञात न होने से केवल सुसंगत विषयों तक परिबद्ध हुआ बनाया जा सकेगा, और

(ii) न्यायालय तुरंत रोक सकता है और असंगत साक्ष्य के प्रवेश को निकाल सकता है।

3. साक्षियों के परीक्षण के संबंध में, दो प्रश्न हैं जो विशिष्ट हैं और जो विभिन्न विधियों द्वारा विनियमित हैं। *आदेश* जिसमें पक्षकार अपने साक्षियों को परीक्षण के लिए प्रस्तुत करने को है और परीक्षण के, प्रगतिक्रम में जिसके अधीनस्थ हर एक साक्षी को किया जाता है जब वह न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, दो पृथक प्रश्न हैं।

धारा 135, 138

आदेश जिसमें पक्षकारों द्वारा साक्षियों को प्रस्तुत किया जाना है, एक विषय है जो सिविल एवं दंड प्रक्रिया संहिताओं द्वारा विनियमित किया जाता है। जबकि परीक्षण के प्रगति क्रम जिसके अधीनस्थ एक साक्षी को किया जाता है, कब प्रस्तुत हो, साक्ष्य अधिनियम द्वारा निर्धारित है।

साक्षियों के प्रस्तुतीकरण का अनुक्रम

सिविल मामलों के वादों में दंड मामलों में

आदेश XVIII नियम 1 सम्मन मामलों में 224 दं.प्र.सं.

अधिपत्र मामलों में 252, 254, 257

संक्षिप्त मामलों में 262

नियम ऐसा प्रतीत होता है।

1. प्रथम प्रश्न यह निर्धारित होना है कि प्रारंभ करना किसका अधिकार है।

2. प्रारंभ करने का अधिकार उस पर निर्भर करता है जिस पर प्रमाण का भार है।

परीक्षण का अनुक्रम

1. साक्ष्य अधिनियम द्वारा निर्धारित एक साक्षी का परीक्षण गतिक्रम 3 भागों में सम्मिलित है।

धारा 138

(i) मुख्य परीक्षण

(ii) प्रति-परीक्षण

(iii) पुनर्परीक्षण

2. पक्षकार जो साक्षी को बुलाता है, के द्वारा साक्षी का मुख्य परीक्षण है।

धारा 137

प्रतिपरीक्षण, प्रतिपक्षी द्वारा साक्षी का परीक्षण है।

पुनप।रीक्षण, वह परीक्षण है जब, प्रतिपक्षी द्वारा उसके प्रतिपरीक्षण के बाद पक्षकार जो उसको बुलाता है के द्वारा साक्षी का परीक्षण किया जाता है।

विचार करने वाले प्रश्न -

3. मुख्य परीक्षण एक इच्छा का विषय है। कोई व्यक्ति एक पक्षकार को, साक्षियों को बुलाने के लिए विवश नहीं कर सकता है। किंतु यदि साक्षियों को बुला लिया जाता

है और मुख्य रूप से परीक्षित हो जाता है, तब प्रश्न जो उठता है वह यह है:–

क्या प्रतिपरीक्षण और पुनप।रीक्षण एक अधिकार या एक विशेषाधिकार का विषय है, जो न्यायालय के विवेकानुसार प्रदान या धारण किया जा सकता है।

इस प्रश्न का उत्तर है कि प्रतिपरीक्षण और पुनप।रीक्षण विशेषाधिकार के नहीं, अधिकार के विषय हैं। न्यायालय एक पक्षकार को साक्षी, जिसका पक्षकार द्वारा मुख्य परीक्षण हो चुका है, का प्रतिपरीक्षण या पुनप।रीक्षण करने से रोक नहीं सकता है। एक साक्षी जो न्यायालय द्वारा बुलाया गया है कार्यवाही के किसी पक्षकार द्वारा नहीं, के बारे में क्या हो? क्या ऐसे साक्षी का प्रतिपरीक्षण करने का कोई अधिकार है? यदि ऐसा है तो किस पक्ष का? साक्ष्य अधिनियम में ऐसे एक वाद के लिए कोई प्रावधान नहीं है। तो भी यह निर्धारित किया गया है कि न्यायालय द्वारा आहूत और परीक्षित एक साक्षी का अधिकृत रूप से न्यायाधीश की अनुज्ञा के बिना प्रतिपरीक्षण दोनों में से किसी पक्षकार द्वारा नहीं किया जा सकता है।

(1894) 2 क्यू.बी. 316
3 बी.एल.आर. 145
II डब्ल्यू.आर. 110
24 कलकत्ता 288
5 कलकत्ता 614
16 डब्ल्यू.आर. 257

4. कब प्रतिपरीक्षण के अधिकार को निष्पादित किया जा सकता है? इस संबंध में सिविल मामलों और दंड मामलों में एक अंतर है।

(i) सिविल मामलों में यह अधिकार तुरंत निष्पादित किया जाना चाहिए। वह किसी आने वाले दिनांक के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता है।

(ii) दंड–मामलों में, दंडाधिकारी के समक्ष एक मामले में और सत्र न्यायालय के मामले में वह अधिकार तुरंत निष्पादित किया जाना चाहिए। किंतु एक अधिपत्र मामले में अभियुक्त को अभियोजन–साक्षी के प्रतिपरीक्षण के आगे की सुनवाई के दिनांक तक स्थगित करने का अधिकार है।

एक व्यक्ति, जो दोनों पक्षकारों द्वारा साक्षी के रूप में बुलाया जाता है: का मामला अ और ब के बीच एक मामले में, स एक साक्षी के रूप में दोनों अ और ब द्वारा तलब किया जाता है। प्रथम, वह अ द्वारा उसके पक्ष में साक्षी के रूप में बुलाया जाता है। उसके बाद प्रतिपरीक्षण ब द्वारा और अ द्वारा पुन:परीक्षण के लिए, वह ब द्वारा उसके अपने पक्ष में साक्षी के रूप में बुलाया जाता है।

क्या ब, स का प्रतिपरीक्षण कर सकता है?

साक्ष्य विधि में इस प्रश्न का उत्तर देने का कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है। यह न्यायिक सम्मति का प्रश्न है। इस प्रश्न पर विविध दृष्टिकोण हैं।

(1)एक दृष्टिकोण है कि जब एक व्यक्ति एक साक्षी का प्रतिपरीक्षण करने का अधिकार पाता है, तो वह अधिकार उस साक्षी के प्रतिवाद की प्रत्येक स्थिति पर उसके लिए निरंतर रहता है, कोई बात नहीं साक्षी किस भूमिका में पुनः उपस्थित होता है, ताकि यहां तक कि वह उसके अपने साक्षी के रूप में वह उसका प्रतिपरीक्षण कर सकता है। यह राय इस सैद्धांतिकता पर आधारित है कि प्रत्येक साक्षी उसको बुलाने वाले पक्षकार के लिए अनुकूलतः निपटाने योग्य होता है।

(2)दूसरा दृष्टिकोण है कि हर एक पक्षकार को वैकल्पिक रूप से एक साक्षी का प्रतिपरीक्षण करने का अधिकार उसके प्रतिवादी के रूप में होना चाहिए, जब कि दोनों को मुख्य परीक्षण के गतिक्रम में उनके अपने मामले के संबंध में सूचक प्रश्न करने से प्रवारित करना चाहिए। ताकि वादी किसी को अपने साक्षियों में से बाद में प्रतिवादी द्वारा बुलाए जाने पर सुनने के बाद प्रतिपरीक्षण कर सके।

श्रेष्ठतर सम्मति है कि प्रतिपरीक्षण का अधिकार जीवित नहीं रहता और उससे उसके द्वितीय परीक्षण में सूचक प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। यदि प्रतिपक्षी उसे पुनः उसी साक्ष्य के रूप में बुलाता है, जो दूसरे पक्ष की ओर से परीक्षित किया जा चुका है और उसके द्वारा प्रतिपरीक्षित किया जा चुका है वह स्पष्टतः मुख्य परीक्षण कर सकेगा।

यह नियम साक्ष्य अधिनियम द्वारा अंगीकृत किया हुआ प्रतीत होता है।

5. क्या यह परीक्षण का निर्धारित अनुक्रम प्रत्येक साक्षी पर लागू होता है?

(1) तीन प्रकार के साक्षी हैं जो न्यायालय के सामने बुलाए जाते हैं:-

(i) वे जो सुसंगत तथ्यों का साक्ष्य देने के लिए बुलाए जाते हैं।

(ii) वे जो चरित्र के बारे में बोलने के लिए बुलाए जाते हैं।

(iii) वे जो प्रलेखों को प्रस्तुत करने के लिए बुलाए जाते हैं।

(2) उन साक्षियों के संबंध में जो सुसंगत तथ्यों या चरित्र पर बोलने के लिए बुलाए जाते हैं, वे परीक्षण के पूर्ण निर्धारित अनुक्रम में परीक्षण, प्रतिपरीक्षण एवं पुनः परीक्षण के अधीन होते हैं। किंतु साक्षी जो प्रलेख प्रस्तुत करने के लिए बुलाया जाता है, भिन्न आधार पर स्थित होता है। वह साक्षी नहीं है, अतः उसे प्रतिपरीक्षित नहीं किया जा सकता।

6. क्या एक सह-अभियुक्त, एक दूसरे सह-अभियुक्त द्वारा बुलाए गए एक साक्षी का प्रतिपरीक्षण कर सकता है? क्या एक सह-प्रतिवादी एक दूसरे सह-प्रतिवादी या एक

सह–प्रतिवादी द्वारा बुलाए गए साक्षी का प्रतिपरीक्षण कर सकता है?

(1) सह–अभियुक्त या सह–प्रतिवादी द्वारा प्रति परीक्षण के विषय में धारा में कोई विशेष प्रावधान नहीं किया गया है।

(2) साक्ष्य अधिनियम प्रतिपक्षी द्वारा बुलाए गए साक्षियों का प्रतिपरीक्षण करने का अधिकार देता है और किसी अन्य को नहीं। फलतः यह अनुगमन करता है कि एक सह–अभियुक्त एक सह–अभियुक्त द्वारा बुलाए गए साक्षी का प्रति परीक्षण केवल तभी कर सकता है जबकि दूसरे का मामला प्रथम के विपरीत है।

21 कलकत्ता 401

(3) इस संबंध में आंग्ल विधि का नियम भिन्न है। आंग्ल विधि के अंतर्गत 'एक सह–प्रतिवादी या सह–अभियुक्त का' प्रतिपरीक्षण करना (एक प्रतिवादी और एक अभियुक्त का) अधिकार है, आंग्ल मामलों के अनुसार अप्रतिबंधित है और इस तथ्य पर निर्भर नहीं करता कि अभियुक्त एवं सह–अभियुक्त के वाद प्रतिकूल हैं या कि प्रतिवादी और उसके सह–प्रतिवादी के मध्य एक विवाद्यक है और एक सह–प्रतिवादी एक सह–प्रतिवादी के साक्षी और सह–प्रतिवादी का प्रतिपरीक्षण कर सकेगा यदि वह साक्ष्य देता है।

इस आंग्ल नियम के कारण हैं:–

(i) यह निश्चित है कि एक पक्षकार का साक्ष्य एक अन्य पक्षकार के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता है जब तक कि परवर्ती प्रतिपरीक्षण द्वारा परीक्षण का मौका नहीं पाता।

एलन बनाम एलन, एल.आर.पी.डी. (1894) 248/254

(ii) यह भी निश्चित है कि सभी लिए गए साक्ष्य चाहें मुख्य परीक्षण या प्रतिपरीक्षण में, सभी पक्षकारों के लिए समान रूप से खुले हैं।

लॉर्ड बनाम कालोइन, 3 डियूरी 222

(iii) इसका परिणाम है कि सभी साक्ष्य सामान्य हैं और जो एक अन्य पक्षकार के पक्ष या विरोध में पक्षकार द्वारा दिया गया है, उपयोग किया जा सकता है, परवर्ती को प्रतिपरीक्षण का अधिकार होना चाहिए।

7. विधि द्वारा निर्धारित एक साक्षी के परीक्षण के अनुक्रम में एक चूक का क्या प्रभाव होता है?

(1) यह प्रश्न केवल तब उठ सकता है जब प्रतिपरीक्षण या पुनःपरीक्षण में एक चूक है। जब तक मुख्य–परीक्षण नहीं होता है, उस निबंधन के विधिक तात्पर्य में कोई भी साक्ष्य नहीं है।

यह केवल तब होता है जब अपने मुख्य परीक्षण में साक्षी ने दिया है कि यह प्रश्न उद्भूत हो सकता है। प्रश्न साक्षी के साक्ष्य पर प्रतिपरीक्षण या पुनर्परीक्षण की चूक के प्रभाव तक विचार करने के लिए सिमट जाता है।

(2) ऐसी चूक तब घटित होती है जब साक्षी उसके मुख्य परीक्षण के बाद या प्रतिपरीक्षण से पहले, मर जाता है या बीमार पड़ जाता है, पागल हो जाता है या अपंग या गायब हो जाता है।

(3) साक्ष्य अधिनियम स्पष्ट शब्दों में व्यक्त नहीं करता है कि प्रत्यक्ष निबंधनों में इसका क्या प्रभाव होगा। क्या एक साक्षी के प्रतिपरीक्षण या पुनर्परीक्षण के अभाव में, उसका मुख्य परीक्षण में दिया गया साक्ष्य शब्द के विधिक अर्थ में साक्ष्य नहीं रहेगा, और निरस्त कर दिया जाएगा या कि क्या वह अपनी साक्षीय उपयोगिता का प्रभाव मात्र डालेगा, साक्ष्य अधिनियम में व्यक्त नहीं है। यह प्रश्न न्यायिक व्याख्या द्वारा निर्धारित किया जाता है।

न्यायिक व्याख्या के अनुसार दो प्रस्थापनाएं सुस्थापित हैं :

(1) इस प्रकार की चूक से साक्ष्य अग्राह्य नहीं हो जाता। यह मात्र उसकी विश्वसनीयता को प्रभावित करती है।

(2) अर्थात् वह अविश्वसनीय या विश्वसनीय होगी, यह प्रतिपरीक्षण में चूक के कारणों पर निर्भर करना चाहिए।

दो युक्तियां हैं जिससे प्रतिपरीक्षण में चूक घटती है:

(i) जहां एक पक्षकार प्रतिपरीक्षण कर सकता था किंतु वह ऐसा नहीं करता है।

(ii) जहां एक पक्षकार प्रतिपरीक्षण कर सकता था किंतु वह ऐसा नहीं कर सका।

विश्वसनीयता का प्रश्न केवल दूसरे मामले में उठ सकता था। वह प्रथम में उद्भूत नहीं हो सकता। विधि एक मौका प्रदान कर सकती है और इससे अधिक कुछ नहीं। यदि मौके का प्रयोग नहीं किया गया तो विधि धारित करती है कि कोई हानि नहीं है।

परीक्षण का विनियमित अनुक्रम

1. एक साक्षी के परीक्षण का अनुक्रम नियमित रूप से होना ही चाहिए।

2. परीक्षण का अनुक्रम नियमित होने के लिए उसे साक्ष्य अधिनियम में निर्धारित नियमों के अनुसार होना चाहिए?

3. परीक्षण के नियमित अनुक्रम के नियम निम्न से संबंधित हैं:

(i) परीक्षण के क्षेत्र से।

(ii) परीक्षण के ढंग से।

(iii) परीक्षण की सीमाओं से।

एक साक्षी के परीक्षण का क्षेत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत हम उन विषयों पर विचार करते हैं, जिन पर एक पक्षकार साक्षी से प्रश्न पूछे जाने के लिए अनुज्ञेय है।

1. एक साक्षी के परीक्षण के उद्देश्य मुख्यत: दो हैं:

(i) वह जिसे जानता है उसको उससे प्रकट कराना।

(ii) जो वह कहता है उसकी सत्यता का परीक्षण कराना।

2. साक्षी ने जो व्यक्त किया है से परीक्षण का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है केवल यदि, साक्षी का परीक्षण ऐसे प्रश्नों तक बढ़ाया जाता है संबंध रखते हैं:

(i) साक्षी के पुष्टिकरण एवं खंडन से।

(ii) साक्षी के विश्वास या चरित्र के अनुमोदन या दोषारोपण से।

3. परीक्षण के क्षेत्र के अंतर्गत हम निम्नलिखित विषयों से संबंधित नियमों के साथ संबंध रखेंगे:–

(i) विषय, जो साक्षियों के परीक्षण के अनुक्रम में प्रकाश में लाए जा सकते या नहीं लाए जा सकते हैं, से संबंधित नियम।

(ii) साक्षी की विश्वसनीयता या अविश्वसनीयता के परीक्षण के लिए नियम।

(iii) साक्षी द्वारा अभिसाक्ष्य में विषयों के पुष्टिकरण या खंडन के संबंध में नियम।

1. एक परीक्षण के अनुक्रम में प्रकाश में लाए जा सकने वाले या नहीं लाए जा सकने वाले विषय:–

1. यह प्रश्न 138 एवं 146 धाराओं में वर्णित है। इन धाराओं का प्रभाव है कि दो प्रकार के विषय हैं जो, एक साक्षी के परीक्षण के क्रम में प्रकाश में लाए जा सकते हैं।

(i) विषय जो सुसंगत विवाद्यक है और

(ii) विषय जो साक्षी की विश्वसनीयता से संबंध रखते हैं।

केवल ये दो विषय है जिन पर एक साक्षी को परीक्षित किया जा सकता है।

2. किंतु इन दोनों विषयों पर एक साक्षी का परीक्षण करने के लिए प्रत्येक पक्षकार अधिकृत नहीं है।

1. उन विषयों के संबंध में, जो सुसंगत हैं, दोनों पक्षकार अर्थात् पक्षकार जो उसको बुलाता है और प्रतिपक्षी साक्षियों का परीक्षण करने को अधिकृत हैं, वास्तव में वह नियम

नहीं है कि पक्षकार सभी सुसंगत विषयों पर साक्षी का परीक्षण करने के लिए अधिकृत है, नियम है कि साक्षी का परीक्षण सुसंगत तथ्यों तक ही सीमित रहना चाहिए।

यह नियम न केवल मुख्य परीक्षण पर वरन् प्रतिपरीक्षण पर भी लागू होता है। अंतर केवल यह है कि प्रतिपरीक्षण के मुख्य परीक्षण में उठाए गए मुद्दों तक सीमित होने की आवश्यकता नहीं है। वह मुख्य परीक्षण में न उठाए गए अन्य मुद्दों तक विस्तृत किया जा सकता है। किंतु ये अन्य मुद्दे भी सुसंगत विषय होने चाहिए। ऐसी कोई बात जो या तो मुख्य परीक्षण में या प्रतिपरीक्षण में असंगत है, अनुज्ञेय नहीं है।

अतः जहां तक सुसंगत विषयों का संबंध है मुख्य परीक्षण या प्रतिपरीक्षण में कोई अंतर नहीं है।

(यहां अंग्रेजी पांडुलिपि का पृष्ठ 203 समाप्त होता है। पृ. 205 से निम्नलिखित पाठ्य विषय प्रारंभ होता है – सम्पादक)

यहां सहमति है, कि सत्य बोलने के विशेष गुण का अभाव मनुष्य के विश्वास को हिला देने वाला है जो आवश्यक प्रभाव डालता है और इसीलिए ऐसे प्रश्न जो साक्षी–चरित्र के इस पहलू से संबंधित हैं, हमेशा अनुज्ञेय हैं और प्रति परीक्षण में पूछे जा सकते हैं।

किंतु साक्षी की सत्यवादिता पर सामान्य सुचरित्र के अभाव के संबंध में कोई सामान्य सहमति नहीं है।

इस विषय पर दो दृष्टिकोण हैं। एक है कि सामान्य दुराचरण सत्य बोलने की समर्थता की क्षीणता को अनिवार्यतः समाविष्ट करता है और इसलिए सामान्य आचरणीय पतन को दर्शित करना, सत्यवादिता के अनिवार्य पतन को दर्शित कराना है। दूसरा दृष्टिकोण है, एक सामान्य स्वभाव सत्यवादिता की एक कमी को आवश्यकता या सामान्यतः समाविष्ट नहीं करता है और कि, इसलिए, एक सामान्य दुरस्वभाव एक साक्षी की विश्वसनीयता को हिला देने के प्रयोजन के लिए किसी सम्प्रमाणात्मक मूल्य का नहीं है।

आंग्ल विधि के अंतर्गत, सामान्य चरित्र, चरित्र की क्षति द्वारा विश्वसनीयता को नष्ट करने के प्रयोजन के लिए अपवर्जित है और मात्र सत्यवादिता के लिए चरित्र पर विचार किया जाता है।

प्रतिपरीक्षण से अन्यथा, चरित्र का दोषारोपण

धारा 155

1. एक साक्षी के चरित्र का दोषारोपण, धारा 155 के प्रावधानों के अंतर्गत स्वतंत्र साक्ष्य के प्रस्तुतीकरण द्वारा अनुज्ञात है।

2. *यह पुनः प्रतिपक्षी पक्षकार का अधिकार है।* ताकि एक पक्षकार जो एक साक्षी

लाता है, उस साक्षी के चरित्र पर अन्य व्यक्ति के साक्ष्य द्वारा दोष नहीं लगा सकता है।

3. दोषारोपण निम्नलिखित तरीकों से उपक्रमित किया जा सकता है:–

(1) उन व्यक्तियों के सक्ष्य द्वारा जो वैयक्तिक ज्ञान से परिसाक्ष्य देते हैं कि साक्षी विश्वासपात्र नहीं है।

(2) प्रमाण द्वारा कि अपना साक्ष्य देने के लिए रिश्वत दी गई है या एक घूस को स्वीकार कर चुका है या अन्य पृष्ठ प्रलोभन प्राप्त कर चुका है।

(3) उसके साक्ष्य के किसी भाग से जिसका खंडन किया जा सकता है के अस्थिर पूर्व कथनों को प्रमाणित करने के द्वारा।

(4) बलात्कार में प्रमाणन द्वारा कि अभियोक्त्री साधारणत: व्यभिचारिणी थी।

3. एक साक्षी के पुष्टीकरण एवं खंडन के संबंध में नियम

1. *एक परिपोषी साक्ष्य की परिभाषा* – परिपोषी साक्ष्य का साधारणत: अभिप्राय है साक्ष्य जो एक साक्षी के परिसाक्ष्य की सत्यता को पुष्ट करने का प्रभाव रखता है। वह एक साक्ष्य है जो एक साक्षी को दुगना विश्वस्त होने का आश्वासन देता है।

2. परिपोषी साक्ष्य के प्रकार – साक्ष्य अधिनियम परिपोषी साक्ष्य के दो वर्गों को मान्यता देता है।

(i) सुसंगत तथ्यों के अलावा तथ्यों का साक्ष्य।

(ii) अतिरिक्त साक्ष्य का।

धारा 156

सुसंगत तथ्यों के अलावा तथ्यों का परिपोषी साक्ष्य दो अपेक्षाएं हैं जो पूर्ण की जानी चाहिए।

(i) परिपोषी परिस्थितियां जिनका साक्ष्य दिया जा रहा है सुसंगत तथ्यों के घटित होने के समय के निकट या समय पर साक्षी द्वारा देखी जानी चाहिए।

(ii) न्यायालय की राय होनी चाहिए, कि ऐसी परिस्थितियां यदि प्रमाणित हों तो सुसंगत तथ्यों के संबंध में साक्षी का परिसाक्ष्य परिपुष्ट करेगी।

दृष्टांत:–

अ और ब ने संयुक्त रूप से किसी एक स्थान पर लूट की। ब को दोषारोपित किया जाता है और अ सह-अपराधी उसके विरुद्ध साक्ष्य देता है। अपने साक्ष्य में अ लूट से संबंधित बहुत-सी घटनाओं, जो मार्ग में घटित हुईं, का विवरण देता है।

मार्ग की घटनाओं से संबंधित सह अपराधी के परिसाक्ष्य को प्रमाणित करने के लिए

अभियोजन स्वतंत्र साक्षियों को बुलाता है।

सुसंगत प्रश्न है, कि क्या ब ने लूट की। अभियोजन द्वारा दिया गया साक्ष्य सुसंगत प्रश्न से संबंधित नहीं है। फिर भी वह एक परिपोषी साक्ष्य के रूप में अनुमत किया जाएगा, यदि न्यायालय की राय यह है कि लूट के संबंध में वह सह-अपराधी के परिसाक्ष्य को परिपोषित करने में सहायता करेगा।

सुसंगत तथ्यों के अतिरिक्त साक्ष्य के माध्यम से परिपोषी साक्ष्य

धारा 157

1. यह, साक्षी द्वारा उसी तथ्य से संबंधित किए गए किसी पूर्व-कथन के साक्ष्य द्वारा किया जा सकता है। यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि वह जो संगत है वह विश्वास करने योग्य है। एक व्यक्ति का एक पूर्ववर्ती अवसर पर किए गए उसी कथन का मात्र तथ्य सत्यता के साथ जरा सा या कुछ भी नहीं जोड़ कर सकेगा। कोई व्यक्ति एक बार बोले गए असत्य से सतत संसक्त रह सकता है यदि उसके लिए कोई अभिप्रेरणा है ताकि यदि संगतता निर्णायक थी तो एक निर्दोष व्यक्ति को जो उसके लिए हानिकर है, दोषसिद्ध करने, उपाप्त करने और दुष्चरित्र व्यक्तियों द्वारा पहले अपराध करने और उसके बाद उस निर्दोष व्यक्ति को आवेष्टित करते हुए विभिन्न व्यक्तियों से विभिन्न समय या स्थानों पर कथन करने से सरलतर कुछ भी नहीं होगा।

आर. बनाम मल्लप्पा 11 बंबई, एच.सी.आर. 196 (198)

2. पूर्ववर्ती कथन सशपथ या अन्यथा और या तो साधारण वार्तालाप में या किन्हीं व्यक्तियों के समक्ष जो परिपृच्छा करने एवं व्यक्ति से जिसने उसे किया था, से प्रश्न करने के प्राधिकारी थे से किया गया एक कथन हो सकता है। वह मौखिक या लिखित हो सकता है। *एक पूर्ववर्ती कथन, एक व्यक्ति जो परिपृच्छा करने का प्राधिकार रखता है और एक व्यक्ति इस प्रकार प्राधिकृत नहीं है के समक्ष किए गए के बीच एक प्रभेद है।* यदि ऐसे व्यक्ति जो विधिकतः तथ्य की जांच करने का परिवाद करने वाला है के समक्ष नहीं किया गया, तब ग्राह्य होने के लिए तथ्य उसी समय घटित या लगभग उसी समय घटित हुआ माना जाना चाहिए। यह प्रतिबंध, जांच करने का प्राधिकार रखने वाले एक व्यक्ति के समक्ष किए गए कथन पर प्रयुक्त नहीं होता है।

25 मद्रास 210

दृष्टांत:-

(i) एक लड़की द्वारा यह आरोपित करने वाला कौन कि उसके साथ बलात्कार किया गया बलात्कार के बाद तुरंत किया, ग्राह्य है।

(ii) एक व्यक्ति के मरणासन्न कथन जिसके जीवित रहने की संभावना है, साक्ष्य

के एक सम्पुष्टिरूपक अंश के रूप में ग्राह्य है।

(iii) पुलिस को दी गई प्रथम सूचना, सूचना देने वाले का साक्ष्य समर्थक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य है।

(iv) समर्थन के रूप में पंचनामा ग्राह्य है।

सावधानी के लिए दो बातें अवश्य कहनी चाहिए।

(1) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के अंतर्गत जांच के क्रम में पुलिस से किए गए कथन का उपयोग। *एक व्यक्ति जो जांच करने को अधिकृत है के समक्ष किए गए ये पूर्वकथन भी हैं।*

क्या वे पुष्टिकरण के प्रयोजन के लिए उपयोग किए जा सकते हैं?

एक समय पर यह निर्णीत किया गया था कि वे इस प्रकार उपयोग किए जा सकते हैं।

36 कलकत्ता 281

35 मद्रास 397

39 बंबई 58

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 का संशोधन पुलिस के लिखित अभिलेख और मौखिक किए कथन दोनों को अलग करता है। यद्यपि पूर्ववर्ती कथन संपुष्टिकरण के रूप में उपयोग नहीं किए जा सकते हैं।

(2) परिपोषी साक्ष्य और सारभूत साक्ष्य के बीच प्रभेद महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसी पर परिपोषी साक्ष्य का उपयोग निर्भर करता है। परिपोषी साक्ष्य सारभूत साक्ष्य नहीं है।

दृष्टांत:–

एक कैदी के अन्वीक्षण में, उसी अपराध में अभियोजित होने वालों के साथ आरोपित अन्य व्यक्तियों के एक अन्वीक्षण में दिए गए साक्षियों के साक्ष्य उसके विरुद्ध उपयोग किए गए थे। साक्षीगण साधारण रीति से परीक्षित किए जाने के स्थान पर, पुनः शपथित किए गए थे, और कहा "इस न्यायालय में मैंने पूर्व में साक्ष्य दिया था और यह साक्ष्य सत्य था।"

निर्णीत कि यह साक्ष्य अमान्य था। यह केवल एक सहायक साक्ष्य था और केवल जब सारभूत साक्ष्य दिया जाए तो उपयोग किया जा सकता था। यदि सारभूत साक्ष्य नहीं दिया जाता है तो संपोषी साक्ष्य भी नहीं दिया जा सकता है।

12 डब्ल्यू.आर.सी.आर. 3

इसी प्रकार यदि एक पंच, अभियुक्त की शिनाख्त नहीं करता है, शिनाख्त, पंचनामा संपोषी साक्ष्य के रूप में अमान्य हो सकता था।

इस संबंध में प्रश्न उठता है, एक व्यक्ति जो सारवान साक्ष्य देने के लिए इस तथ्य के कारण बुलाया नहीं जा सकता कि वह मर गया है या वह पाया नहीं जा सकता है या साक्ष्य देने के लिए अक्षम हो गया है या जिसकी उपस्थिति भारी विलंब या व्यय के बिना उपलब्ध नहीं की जा सकती है, के संपोषी साक्ष्य का, जिसे न्यायालय परिस्थितियों के अधीन बेकार समझता है।

धारा 158 संपोषी साक्ष्य का दिया जाना अनुज्ञात करता है, यद्यपि कोई सारवान साक्ष्य नहीं दिया गया है तो यह सामान्य नियम का एक अपवाद है। यह अपवाद यदि साक्षी उपलब्ध नहीं किया जा सकता है केवल तभी प्रयुक्त किया जाता है।

यह संविधि द्वारा संरक्षित एक अपवाद है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 288 में अंतर्विष्ट संविधि द्वारा संरचित एक अन्य अपवाद है। उस धारा द्वारा, सुपुर्दगीकार दंडाधिकारी के समक्ष साक्ष्य सभी प्रयोजनों के लिए सत्र-न्यायालय के समक्ष साक्ष्य समझा जाता है, अर्थात् वह साक्ष्य के सभी तथ्यों का सारवान साक्ष्य है।

(3/2) एक साक्षी के खंडन के संबंध में नियम

1. यह एक मामला है जो दो तर्कों से अनिवार्यतः विनियमित होना चाहिए:

(i) न्यायालय द्वारा जांच का उद्देश्य सत्यता पर पहुंचना है और इसलिए खंडन अवश्य अनुज्ञात होना चाहिए।

(ii) यदि खंडन अनुज्ञात किया जाता है, जांच अंतहीन हो जाएगी और इसलिए खंडन की कार्यवाही पर कुछ परिबद्धता अवश्य होनी चाहिए।

2. *किन मामलों में एक साक्षी खंडित किया जा सकता है?*

धारा जो एक साक्षी के खंडन में लागू होती है, वह 153 है। खंडन के प्रयोजन के लिए, धारा साक्षियों के उत्तरों को दो संवर्गों में विभाजित करती है (1) सुसंगत तथ्यों के उत्तर और (2) साक्षी की विश्वसनीयता से संबंधित प्रश्नों के उत्तर।

3. *क्या साक्षी के विश्वसनीयता से संबंधित प्रश्नों के उत्तर खंडन के योग्य हैं?*

धारा 153 में दिया गया उत्तर प्रभाव की सकारात्मकता है कि ऐसा उत्तर खंडित नहीं किया जाएगा।

इस नियम के केवल दो अपवाद हैं:

(i) यदि पूर्ववर्ती दोषसिद्धि अमान्य की जाती है, आप उसे सक्ष्य द्वारा खंडित कर सकते हैं।

(ii) यदि साक्षी अंशतः अमान्य करता है वह खंडित किया जा सकता है।

इस संबंध में यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि धारा 155 के प्रावधानों के अंतर्गत

प्रतिपरीक्षण में एक अन्य साक्षी की अविश्वसनीयता में उसके विश्वास के लिए, एक साक्षी द्वारा कारण दिए जाने वाले उत्तर खंडित किए जाने योग्य नहीं हैं।

इन सब मामलों में, जहां विश्वसनीयता से संबंधित प्रश्नों के एक साक्षी के उत्तर खंडन के योग्य नहीं हैं, विधि प्रावधान करती है कि यदि उनके उत्तर असत्य हैं तो वे बाद में झूठा साक्ष्य देने के लिए आरोपित किए जा सकते हैं।

4. *क्या साक्षी के सुसंगत तथ्यों के प्रश्नों के उत्तर खंडन योग्य हैं?*

(1) धारा 153 अपने स्वरूप में नकारात्मक है और मात्र उन मामलों को व्यक्त करती है जिनमें खंडन अनुमत नहीं है। यह उन मामलों को व्यक्त नहीं करती जिनमें खंडन अनुमत है।

(2) यह अपने अपवर्जन में सुसंगत प्रश्नों के उत्तरों को शामिल नहीं करती है। निहितार्थ द्वारा ऐसे उत्तरों के खण्डनों को अनुज्ञात करती प्रतीत होती है।

(3) धारा 153 का दृष्टांत (स) है, जो दर्शित करता है कि विधायिका ऐसे उत्तरों के खंडन को शामिल करना अभीप्सित करती थी।

5. अत: धारा 153 नियम निर्धारित करती है कि आप सुसंगत प्रश्नों के उत्तरों का खंडन कर सकते हैं। किंतु आप विश्वसनीयता के प्रश्नों के उत्तरों का खंडन नहीं कर सकते।

सुसंगत तथ्यों पर खंडन

1. *अगला प्रश्न है, क्या ऐसे खंडन पक्षकार के लिए अनुज्ञात हैं, जो साक्षी को बुलाता है, या केवल प्रतिपक्षी पक्षकार के लिए अनुज्ञात हैं?*

2. कि एक पक्षकार, प्रतिपक्षी पक्षकार के लिए बुलाए गए साक्षी द्वारा दिए गए उत्तरों का खंडन कर सकता है, प्रश्न के परे है और सर्वदा ग्राह्य है। उनके द्वारा बचाव साक्षी खंडित किए जाते हैं। एक साक्षी एक पक्षकार के पक्ष में बुलाया जाता है। एक सुसंगत तथ्य पर प्रश्न के उत्तर में वह एक विशेष उत्तर देता है, जिसे वह पक्षकार जिसने उसको बुलाया था असत्य अनुभव करता है। क्या वह पक्षकार जिसने उसको बुलाया था, उसका खंडन करने के लिए एक अन्य साक्षी को बुला सकता है?

3. *उत्तर है कि वह बुला सकता है।* विधि उसके अपने साक्षी के चरित्र पर आक्रमण करने द्वारा और यह दर्शित करने के एक विशेष संबंध में कि उसका साक्ष्य असत्य है के मध्य अंतर करने वाली प्रतीत होती है।

एक साक्षी के परीक्षण की पद्धति

1. *परीक्षण की पद्धति से अभिप्राय है साक्षी से प्रश्न करने का ढंग अर्थात् प्रश्न करने की पद्धति।*

2. यह विषय साक्षी से प्रश्न करने वाले पक्षकार के विवेक पर नहीं छोड़ा गया है, वरन् विधि द्वारा विनियमित किया जाता है।

3. प्रश्न करने की पद्धति के दृष्टिकोण से, प्रश्न या तो सूचक प्रश्न हैं या असूचक प्रश्न हैं।

4. एक सूचक प्रश्न समानरूपतः एक ऐसा प्रश्न कहलाता है, जिसका मात्र हां या ना में उत्तर दिया जा सकता है। यद्यपि सभी ऐसे प्रश्न निसंदिग्ध रूप में इस नियम के अंतर्गत आते हैं, सूचक प्रश्न का लक्षण उनसे परिबद्ध नहीं हैं।

साक्ष्य अधिनियम एक सूचक प्रश्न की परिभाषा करता है एक रूप में जो एक विशेष उत्तर को सुझाता है, जिसे प्रश्नकर्त्ता साक्षी से प्राप्त करने की आशा करता है।

दृष्टांत:-

चाकू घोंपकर हत्या के एक आरोप पर, साक्षी से प्रश्न करता है, क्या आपने अभियुक्त को खून से लथपथ और हाथ में चाकू लिए शव के पास से आते हुए देखा था एक सूचक प्रश्न है।

5. दो प्रकार के सूचक प्रश्नों के बीच एक प्रभेद अवश्य करना चाहिए?

(i) एक सूचक प्रश्न जो उत्तर सुझाता है।

(ii) एक सूचक प्रश्न जो साक्षी का ध्यान विषय की ओर जिसके संबंध में उससे प्रश्न किया जाता है, निर्देशित करता है।

दूसरे प्रकार के सूचक प्रश्न को दृष्टांत के रूप में, निम्नोक्त को लेकर अ पर ब द्वारा मानहानि के लिए मुकद्दमा किया गया था, स से एक वार्तालाप में कहने के लिए कि ब दिवालिया परिस्थितियों में था और कि उसका नाम लन्दन राजपत्र (गजट) में दिवालियों में प्रकाशित होगा। साक्षी से प्रश्न पूछा गया था।

"क्या राजपत्र के बारे में कोई बात कही गई थी?"

एक प्रश्न के तात्पर्य में, जो एक उत्तर सुझाता है, यह एक सूचक प्रश्न नहीं है। यह एक सूचक प्रश्न है जो साक्षी का ध्यान निर्देशित करता है, उस *विषय* की ओर जिसके बारे में उससे प्रश्न किया जा रहा है।

मुख्य परीक्षण में परिप्रश्न का ढंग, प्रतिपरीक्षण में जांच के ढंग से परिवर्तित होता है।

प्रतिपरीक्षण में, एक साक्षी से सूचक प्रश्न के रूप में परिप्रश्न किया जा सकेगा। किंतु सूचक प्रश्न मुख्य परीक्षण में नहीं पूछना चाहिए, यदि प्रतिवादी पक्षकार द्वारा प्रतिवादित किया जाता है।

मुख्य परीक्षण में, साक्षी से मात्र ऐसे प्रश्न ही पूछने चाहिए।

जैसे "आपने क्या देखा?" "आपने क्या सुना?" "आगे क्या घटित हुआ?"

नियम के लिए कारण –

1. एक साक्षी, उसको बुलाने वाले पक्षकार के हित में पक्षपात रखता है और प्रतिपक्षी के लिए बैर रखता है। अतः वह संभवतः पक्षकार के अधिवक्ता द्वारा सुझाए गए उत्तरों को देने को सहमत है।

2. यह कि एक साक्षी को बुलाने वाला पक्षकार उसके प्रतिपक्षी पर एक लाभ रखता है यह पहले ही जानने में जो साक्षी प्रमाणित करेगा, या कम से कम प्रमाणित करने की आशा की जाती है, और कि, फलतः यदि वह सूचक हेतु अनुमत किया जाए, वह उससे ऐसे ढंग से परिप्रश्न कर सकता था जैसे केवल साक्षी की जानकारी का इतना निकाल लेने के लिए जितना उसके पक्ष के लिए हितकर होगा, या समूचे पर असत्य का मुलम्मा भी चढ़ा देगा।

नियम के अपवाद –

मुख्य-परीक्षण में सूचक प्रश्न निम्नोक्त मामलों में अनुज्ञेय हैं:-

(i) जहां विषय मात्र परिचयात्मक हैं, जैसे कि नाम, साक्षी का व्यवसाय।

(ii) व्यक्ति या वस्तुओं का अभिज्ञान।

(iii) उन मामलों के विषय में जो विवाद में नहीं है।

(iv) जब एक प्रश्न उसके यथार्थ लक्षण से एक सूचक रूप के अतिरिक्त नहीं किया जा सकता हो।

(v) दूसरी ओर से पूर्वतः एक साक्षी द्वारा दिए साक्ष्य को खंडित करने हेतु। जैसेः- यदि वादी शपथ लेता है कि प्रतिवादी ने कहा था, "माल पूरे का पूरा नमूने के समान होना आवश्यक नहीं है"। प्रतिवादी से पूछा जा सकता है और पूछा जाना चाहिए भी। "क्या आपने वादी से कभी कहा कि माल पूरे का पूरा नमूने के समान होना आवश्यक नहीं या उसी प्रभाव के अन्य शब्दों में"?

(vi) जहां साक्षी प्रतिकूल है। प्रतिकूल एवं हितकर साक्षी के बीच अंतर है।

एक साक्षी को जो घटित हुआ उसकी अपनी स्मृति के अनुसार व्यक्त करना चाहिए, और जो उससे कहा गया है के अनुसार नहीं।

मान लो, साक्षी तथ्यों का स्मरण नहीं कर सकता है, और उसकी स्मरण शक्ति असफल हो जाती है, तो क्या किया जाना चाहिए?

दो उपाय सामने हैंः

(1)सूचक प्रश्नों द्वारा साक्षी की स्मृति की सहायता करना।

(2)उसकी स्मृति को ताजा करने के लिए अनुमति देना उसे किसी लेख जो तथ्य का एक अभिलेख है को संदर्भित करने की अनुज्ञा करने से।

स्मृति को स्वस्थ करने हेतु उपयोगी लेखन के उदाहरण –

(i) डायरियों में प्रविष्टियां।

याचना पुस्तकों में प्रविष्टियां।

लेखा पुस्तकों में प्रविष्टियां।

रेलवे की समय–सारणियों में प्रविष्टियां।

एक साक्षी, स्वयं उसके द्वारा बनाए गए प्रलेखों या किसी लेखन का संदर्भ लेने के द्वारा अपनी स्मृति को जागृत कर सकता है। साथ ही वह उसके तुरंत अवलोकन में अन्य व्यक्तियों द्वारा बनाए गए प्रलेखों से भी अपनी स्मरण शक्ति को जागृत कर सकता है।

केवल प्रतिबंधिता यह है कि प्रलेख, उस समय बनाया गया था जब संव्यवहार उसके मस्तिष्क में ताजा था या उसके द्वारा *पढ़ा* गया था, यदि एक अन्य व्यक्ति द्वारा बनाया गया था, उस समय जब संव्यवहार उसकी स्मृति में ताजा था और उसके सही होने को जानता था।

एक प्रतिलिपि उपयोगी हो सकती है, यदि मौलिक प्रति प्रस्तुत नहीं की जा सकती है उन कारणों से जो उसके अप्रस्तुतीकरण के लिए न्यायालय को संतुष्ट करते हैं।

एक लेखन या प्रलेख के निरीक्षण द्वारा स्मृति को ताजा करना उसे प्रलेख्य साक्ष्य नहीं बनाता है। ताकि एक प्रलेख जो स्टॉम्प के अभाव में साक्ष्य में अग्राह्य हो सकता था, स्मृति जागृत करने के लिए ग्राह्य होगा।

स्मृति को जागृत करने के लिए एक लेखन का संदर्भ लेने और संपोषण के लिए एक प्रलेख का उपयोग करने के बीच एक भेद है।

एक प्रलेख जो संपोषण के लिए उपयोग नहीं किया जा सका, उसे ताजा करने के लिए किया जा सकता है।

उदाहरण: पुलिस डायरियों का उपयोग

स्मृति को जागृत करने के लिए उपयोगी एक प्रलेख के संबंध में यह सुनिश्चित कर ही लेना चाहिए कि क्या एक ज्ञापन स्मृति की सहायता करता है या नहीं।

अत: विधि अपेक्षा करती है कि ऐसा लेखन प्रस्तुत किया जाएगा और विरोधी पक्षकार को दिखाया जाएगा, यदि वह उसकी अपेक्षा करता है और वह उस पर साक्षी का प्रतिपरीक्षण कर सकेगा यदि वह ऐसा चाहता है।

8 कलकत्ता 739 (745)

आधार जिन पर प्रतिपक्षी को निरीक्षण करने को अनुज्ञात किया जाता है त्रिविध हैं :- (i) साक्षी की तथ्यों के संबंध में स्मृति का पूर्ण लाभ सुनिश्चित करना, (ii) अनुपयुक्त प्रलेख के उपयोग को रोकना एवं (iii) उसके लिखित शब्दों से उसके मौखिक साक्ष्य की तुलना करना।

क्या प्रतिपक्षी साक्षी के लेखन का संदर्भ लेने से उसकी स्मृति को जागृत करने को बाध्य कर सकता है?

एक अभियुक्त व्यक्ति के लिए वह बहुत लाभप्रद हो सकता है कि पुलिस अधिकारी कुछ तथ्यों को व्यक्त करेगा। पुलिस अधिकारी तथ्य का स्मरण नहीं करता और वह अपनी डायरी का संदर्भ लेने से स्मृति को जागृत नहीं करेगा।

(8 कलकत्ता 154), (8 कलकत्ता 739) कहता है वह बाध्य नहीं किया जा सकता।

ए.आई.आर. (1924) पट. 829 कहता है वह बाध्य किया जा सकता है।

एक साक्षी के परीक्षण पर सीमाबंधन

1. इस शीर्षक के अंतर्गत विचार किए जाने की विषय-वस्तु इन प्रश्नों से संबंध रखती है, एक साक्षी उत्तर देने को बाध्य है या बाध्य नहीं है।

2. सामान्य नियम है कि एक साक्षी को, उससे किए गए सभी प्रश्नों के उत्तर अवश्य देने चाहिए।

धारा 132

धारा 132 विषय को नकारात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है।

3. यह नियम दो योग्यताओं के अधीन है:

(i) कुछ प्रश्न, जिनका एक साक्षी को उत्तर देने को विवश नहीं किया जा सकता।

(ii) कुछ प्रश्न, जिनका एक सक्षी उत्तर देने को अधिकृत नहीं है।

4. धाराएं जो उन प्रश्नों के साथ संबंध रखती हैं, जिनका उत्तर देने को विवश नहीं किया जा सकता: 121, 122, 124, 125, 129

5. धाराएं जो उन प्रश्नों के साथ संबंध रखती हैं जिनका उत्तर देने को एक साक्षी अधिकृत नहीं है: 123, 126, 127, 128

प्रमाण के भार का उन्मोचन

1. साक्ष्य का प्रभाव हो सकता है:

(i) एक तथ्य को प्रमाणित करना।

(ii) एक तथ्य को अप्रमाणित करना।

(iii) प्रमाणित करने में असफल होना और इसलिए अप्रमाणित।

2. प्रमाण के भार का उन्मोचन किया जाता है जब:

(i) जब तथ्य का सिद्ध हो जाना अपेक्षित है, सिद्ध हो जाता है।

(ii) जब तथ्य का असिद्ध हो जाना अपेक्षित है, सिद्ध हो जाता है।

3. प्रमाण का भार उन्मोचित नहीं किया जाता जब पक्ष जिस पर प्रमाण का भार है, प्रमाणित या अप्रमाणित जैसा भी मामला है करने में असफल हो जाता है।

4. कब एक तथ्य का प्रमाणित या अप्रमाणित होना कहा जा सकता है? और कब उसका न प्रमाणित होना कहा जा सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर धारा 3 में दिया गया है।

टिप्पणी - दो बातें अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए -

(i) प्रमाण का अभिप्राय कठोर गणितीय प्रमाणन नहीं है।

(ii) नैतिक दृढ़ धारण प्रमाण नहीं है।

प्रमाण का अभिप्राय है साक्ष्य :-

किंतु ऐसा साक्ष्य है जैसा किसी परिणाम पर पहुंचने के लिए कोई विवेकशील पुरुष देगा।

(1911) 1. के.बी. 988 (995) (31 बंबई एल.आर. 516)

प्रमाण का प्रश्न संभाव्यता का एक प्रश्न है, निश्चितता का नहीं।

प्रमाण के भार का उन्मोचन और साक्ष्य की प्रमात्रा

1. आंग्ल विधि के अंतर्गत कुछ मामलों में संपोषण आवश्यक है:

(1) घोर राजद्रोह - दो साक्षी।

(2) कूट साक्ष्य

(3) प्रतिज्ञा-भंग

(4) दोगला (जारंज) - मां का साक्ष्य अवश्य संपोषित होना चाहिए।

भारतीय विधि के अंतर्गत नियम एकांतिक है। न्यायालय एक ही साक्षी के साक्ष्य, चाहे वह समर्थन में न हों, पर कार्यवाही कर सकता है।

अपवाद......

* * * * *

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
DR. AMBEDKAR FOUNDATION

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
MINISTRY OF SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA

☎ 23320571
23320589
23320576
FAX : 23320582

निदेशक
DIRECTOR

15, जनपथ,
15, JANPATH
नई दिल्ली - 110001
NEW DELHI-110001

दिनांक – 31.10.2019

रियायत नीति (Discount Policy)

सक्षम प्राधिकारी द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि पहले के नियमों के अनुसार CWBA वॉल्यूम के संबंध में रियायत नीति (Discount Policy) जारी रखें। तदनुसार, CWBA इंग्लिश वॉल्यूम (डिलक्स संस्करण–हार्ड बाउंड) के एक पूर्ण सेट की कीमत और CWBA हिंदी वॉल्यूम (लोकप्रिय संस्करण–पेपर बाउंड) के एक पूरे सेट की कीमत निम्नानुसार होगी :

क्र.सं.	सीडब्ल्यूबीए सेट	रियायती मूल्य प्रति सेट
	अंग्रेजी सेट (डिलक्स संस्करण) (वॉल्यूम 1 से वॉल्यूम 17)– 20 पुस्तकें।	रू 2,250/–
	हिंदी सेट (लोकप्रिय संस्करण) (खंड 1 से खंड 40 तक)– 40 पुस्तकें।	रू 1073/–

2. एक से अधिक सेट के खरीदारों को सेट की मूल लागत (Original Rates) यानी रू 3,000/–(अंग्रेजी के लिए) और रू 1,430/–(हिंदी के लिए) पर छूट मिलेगी जो कि निम्नानुसार है।

क्र.सं.	विशेष	मूल लागत पर छूट का प्रतिशत
	रू 1000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	10%
	रू 1001–10,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	25%
	रू 10,001–50,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	33.3%
	रू 50,001–2,00,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	40%
	रू 2,00,000/– से ऊपर की पुस्तकों की खरीद पर	45%

3. इच्छुक खरीदार प्रतिष्ठान की वेबसाइट : www.ambedkarfoundation.nic.in पर विवरण के लिए जा सकते हैं। संबंधित CWBA अधिकारी / पीआरओ को स्पष्टीकरण के लिए दूरभाष नंबर 011–23320588, पर कार्य दिवसों में पूर्वाह्न 11:30 बजे से शाम 5:30 बजे तक संपर्क किया जा सकता है।

(देबेन्द्र प्रसाद माझी)
निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय (भाग-II)

ISBN (सेट) : 978-93-5109-129-5

रियायत नीति के अनुसार
सामान्य (पेपरबैक) खंड 01-40
के 1 सेट का मूल्य : ₹ 1073/-

प्रकाशक :

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार
15, जनपथ, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571
जनसंपर्क अधिकारी फोन : 011–23320588
वेबसाइट : http://drambedkarwritings.gov.in
ईमेल : cwbadaf17@gmail.com